मासिक

RNI No. MPHIN/2004/14249

अक्षर वार्ता

वर्ष - 20 अंक - 4
(फरवरी - 2024)
Vol - XX Issue No - IV
(February - 2024)

मूल्यः 100 /- रूपये

कला-मानविकी-समाजविज्ञान-जनसंचार-वाणिज्य-विज्ञान-वैचारिकी की अंतरराष्ट्रीय रेफर्ड एवं पियर रिव्यूड शोध पत्रिका

8.0
IMPACT FACTOR

Indexed In International, Impact Factor Services (IIFS) Database and Indexed with IIJIF
Indexed In the International, Institute of Organized Research, (I2OR) Database
Monthly International, Refereed Journal & Peer Reviewed
ISSN 2349 - 7521 , IMPACT FACTOR - 8.0

» aksharwartajournal@gmail.com » www.facebook.com/aksharwartawebpage » +918989547427

AKSHARWARTA IS registered MSME with Ministry of MSME, Government of India
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021

ISSN 2349 - 7521
RNI No. MPHIN/2004/14249

मासिक

अक्षर वार्ता

मूल्यः 100 /- रूपये

MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021

वर्ष-20 अंक - 4 , फरवरी - 2024
Vol - XX, Issue No. IV
February - 2024
Impact Factor - 8.0
aksharwartajournal@gmail.com

Monthly International Refereed & Peer Reviewed Journal

प्रधान संपादक - प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

संपादक- डॉ. मोहन बैरागी

संपादक मंडल :-

डॉ.जगदीशचन्द्र शर्मा (उज्जैन)
प्रो.राजश्री शर्मा
डॉ. शशि रंजन 'अकेला' (आरजीपीवी,भोपाल)
डॉ. सदानन्द काशीनाथ भोंसले (पुणे)
प्रो. उमापति दिक्षित
डॉ. मोहसिन खान (महाराष्ट्र)
डॉ. दिग्विजय शर्मा

सहायक सम्पादक :-

डॉ.भेरुलाल मालवीय
डॉ. अंजली उपाध्याय
डॉ. उपेन्द्र भार्गव
डॉ. पराक्रम सिंह
डॉ. रूपाली सारये
डॉ. अवनीश कुमार अस्थाना

आवरण चित्र - इंटरनेट से साभार

विशेषज्ञ समिति

डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' (नार्वे), श्री शेर बहादुर सिंह (यूएसए), डॉ. रामदेव धुरंधर (मॉरीशस), डॉ. स्नेह ठाकुर (कनाडा) डॉ. जय वर्मा (यू.के.), प्रो. गुणशेखर गंगाप्रसाद शर्मा (चीन), डॉ. अलका धनपत (मॉरीशस), प्रो. टी. जी. प्रभाशंकर प्रेमी (बैंगलुरू), प्रो. अब्दुल अलीम (अलीगढ़), प्रो. आरसु (कालिकट), डॉ. रवि शर्मा (दिल्ली), डॉ. सुधीर सोनी (जयपुर), डॉ. अनिल सिंह (मुंबई), डॉ. तुलसीदास परौहा, उज्जैन

सह संपादक

डॉ. उषा श्रीवास्तव (कर्नाटक), डॉ. मधुकांता समाधिया (उत्तर प्रदेश), डॉ. अनिल जूनवाल (मप्र), डॉ. प्रणु शुक्ला (राजस्थान), डॉ. मनीष कुमार मिश्रा (मुम्बई/वाराणसी), डॉ. पवन व्यास (उड़ीसा), डॉ. गोविंद नंदाणिया (गुजरात), डॉ. रत्ना कुशवाह, (अंडमान निकोबाद), प्रो. डॉ. किरण खन्ना (अमृतसर, पंजाब)

नोट : पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, लेखकों के अपने विचार है, इनसे संपादक या संपादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शोध-पत्र भेजने संबंधी नियम

शोध-पत्र 2500-5000 शब्दों से अधिक नही होना चाहिये। ०. हिन्दी माध्यम के शोध पत्रों को कृतिदेव 010 (**Kruti Dev 010**) या युनिकोड मंगल फोंट में टाईप करवाकर माईक्रोसॉफ्ट वर्ड में भेजें। ०. अंग्रेजी माध्यम के शोध-पत्र टाईम्स न्यु रोमन (**Times New Roman**) ,एरियल फोंट (**Arial**) में टाईप करवाकर माईक्रोसॉफ्ट वर्ड में अक्षरवार्ता के ईमेल पर भेजने के बाद हार्ड कॉपी तथा शोध-पत्र मौलिक होने के घोषणा-पत्र के साथ हस्ताक्षर कर अक्षरवार्ता के कार्यालय को प्रेषित करें। ०. **Please Follow- APA/MLA Style for formatting** अक्षरवार्ता का वार्षिक सदस्यता शुल्क रूपये 1200/-रूपये साधारण डाक से एवं 1800/- रूपये रजिस्टर्ड डाक से एवं प्रकाशन पंजीयन शुल्क रूपये 1500/- का भुगतान बैंक द्वारा सीधे ट्रांसफर या जमा किया जा सकता है। बैंक विवरण निम्नानुसार है- बैंक:- **Union Bank of India,**

Account Holder - Aksharwarta
Current Accont NO. 510101003522430
IFSC- UBIN0907626 Branch- Rishi Nagar,Ujjain,MP,India

गुगल पे, फोन पे, पेटीएम, भीम आदि युपीआई से भुगतान के लिए मोबाईल नं. 9424014366 का उपयोग करें
तथा भुगतान की मूल रसीद,शोध-पत्र एवं सीडी के साथ कार्यालय के पते पर भेजना अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय का पता- संपादक अक्षर वार्ता
43,क्षीर सागर,द्रविड मार्ग,उज्जैन,मप्र. 456006,भारत, मोबा :-8989547427 Email: aksharwartajournal@gmail.com

नोट:- अक्षरवार्ता में सभी पद मानद व अवैतनिक है।/ शोध पत्रिका में प्रकाशित सभी लेखों में लेखकों के अपने विचार है, संपादक मंडल का इससे सहमत होना आवश्यक नही हैं।

Peer Review Board/Committee

1. **Dr. Shalini Gupta, Asasistant Professor,ovt. Ganesh Shankar Vidyarthi College,Mungaoli,Ashoknagar ,MP**
2. **Shishir Desai, UDT,Govt.Girls.H.S.scool Sanawad M.P.**
3. **Dr. Parikshit Layek, Sri RamaKrishna Sarada Ashrama Teacher's Training College, Hazaribag.**
4. **Vandana Singh Yadav, Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University, Uttarakhand**
5. **Dr. Mukesh Chandra Dwivedi, Principal, RSGU PG College Pukhrayan Kanpur Dehat, 209111**
6. **DIPITI YADAV, BABA SHAEB BHIMRAO AMBEDKAR UNIVERSITY, LUCKNOW U.P,**
7. **Dr. PRABHA CHOUDHARY,Jawahar Inter College, Rardhana, Meerut**
8. **Dr APARNA U NAIR,St. XAVIER'S COLLEGE VAIKOM, KOTHAVARA, KOTTAYAM**
9. **Dr Bhawna shrivas,Govt geetanjali girls p g College Bhopal Madhya Pradesh**
10. **Sneha Khare,Govt. P.G college Rajgarh**
11. **Dr Jeetendra Kumar Pandey, Government College Nashtigawan Rewa MP**
12. **Dr Radhika Devi,A.K.P(P.G) COLLEGE KHURJA BULANDSHAHR**
13. **Rashmi pandey,Atal bihari vajpayee University bilaspur Chhattisgarh**
14. **Dr. Nisha Sharma,Future Institute of Management & Technology**
15. **Dr. Buddhi prakash, Associate professor, Jain diwakar kamla college, kota, rajasthan**
16. **Dr. Kumari Subhra Rani Sil (Assistant Professor),S.B.M. Teachers' Training College, Hazaribag**
17. **Dr. Priya Deo Assistant Professo,Sri Ramakrishna Sarada Ashrama Teacher's Training College, Hazaribag)**
18. **Dr. Samapti Paul,Principal,Sri Ramakrishna Sarada Ashrama Teacher's Training College, Hazaribag)**
19. **Dr. C.P. Raju, HOD, St. Aloysius College, Elthuruth, Trissur, Kerala**

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र. से शोध, प्रकाशन, सेमीनार, संगोष्ठी, अवार्ड आदि के लिए अक्षर वार्ता अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका एवं संस्था कृष्ण बसंती शैक्षणिक एवं सामाजिक जनकल्याण समिति, उज्जैन, मप्र. एम ओ यू हस्ताक्षरित।

अनुक्रम

» यथार्थ के धरातल पर मन्नू भंडारी की कहानियाँ
रूवि सिंह 07

» स्वातंत्र्योत्तर किसान-मजदूर और निम्न वर्ग से संबंद्ध हिंदी उपन्यास
डॉ. सोहन लाल 10

» शशांक का जीवन-रहस्य
नेहा कुमारी 13

» निर्गुण भक्ति काव्य और समकालीन दलित समाज
सत्यनारायण खोईवाल, प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा 15

» जीवन की आशाओं पर झपट्टा मारती - 'चील'
दीपक कुमार सेठिया 18

» कामायनी और गीतांजलि का दर्शन
प्रिया श्रीवास्तव 20

» उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति की झलक धनानन्द पाण्डेय 'मेघ' की यादों के झरोखे से
डॉ. रेखा मेहता 22

» ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों और दलित समाज का प्रतिरोध
रोहित यादव 25

» "हिन्दी कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्रियाँ दशा एवं दिशा"
शहजादी खातून 27

» यात्रा के कलेवर में प्राकृतिक छटा
कु. चाँदनी गोले 32

» "महादेवी वर्मा के साहित्य में स्त्री विमर्श"
श्रीमती प्रेमलता पाटिल 35

» औपनिवेशिक भारत में प्रेस का विकास
शीतल यादव, डॉ. पंकज शर्मा 39

» पितृ भक्त परशुराम "एक विवेचनात्मक अध्ययन"
आशीष पाठक 43

» बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ग्रामीण पर्यटन की क्षमताएँ एवं संभावनाएँ : एक भौगोलिक अध्ययन
अजय कुमार यादव 45

» वेदांङ्ग ज्योतिष : एक अध्ययन
नर्वदेश्वर पाण्डेय, डॉ. प्रभाकर पाण्डेय 49

» "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत व्यवसायिक शिक्षा में किए गए प्रावधानों का एक अध्ययन"
किरन गुप्ता, डॉ. रतन सिंह 52

» 'अगम बहै दरियाव' उपन्यास में चित्रित लोक-संस्कृति
अखिलेश कुमार मौर्य 54

» इतिहास बोध और निर्मल वर्मा
डॉ. आशुतोष कुमार मिश्रा 57

» भारतीय साहित्य में प्रकृति-चित्रण की प्रासंगिकता
विश्राम कुमार, डॉ. विनय कुमार दूबे 60

» श्रीवामनपुराणस्य अर्वाचीनसाहित्ये प्रभावः
राहुल सिंह सोलंकी 63

» लेखक के दृष्टिकोण में आत्मकथा लेखन के प्रयोजन
उर्मिला कुमारी, डॉ. धर्मेन्द्र कुमार शुक्ल 65

» छायावादी काव्य : राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना
डॉ. अमित कुमार 68

» बिहारी सतसई में आभरण, अलंकरण एवं अंगराज-सौंदर्य
डॉ. ममता शर्मा 70

» निराला की 'अर्चना' में रूप-सौन्दर्य का सौरभ
सुमेधा दुबे 73

» रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से पड़ने वाला प्रभाव 'हनुमानगढ़ जिले के विशेष सन्दर्भ में'
कृष्ण लाल, डॉ. हरवीर यादव 77

» हिंदी की आदिवासी कविता का आर्थिक परिप्रेक्ष्य
डॉ. परविंदर कौर 79

» अंतरराष्ट्रीय संबंधों में मानवाधिकार की भूमिका
डॉ. शकरी चौहान 81

» दलित कहानी में ब्राम्हणवाद के प्रति विद्रोह
रिकू शाह 83

» अनुवाद की समस्याएँ
माधुरी सुरेशराव दीक्षित-क्षीरसागर
डॉ. अशोक वसंतराव मर्डे 86

» प्रेमचंद्र के कथा साहित्य में बालमन की अभिव्यक्ति
पूजा सिंह 89

» हिंसा का मार्ग छोड़ शांति पर बल देना होगा
डॉ. संदीप कुमार 92

» आर्य समाज का हिंदी के विकास में यांगदान
कमलेश 94

» नरसिंहपुर जिले में स्वतंत्रता संग्रामः राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में
डॉ. अमित कुमार ताम्रकार 97

» जनपद बदायूँ की ऐतिहासिकता
मोहित कुमार सिंह, डॉ. पंकज शर्मा 101

» राजा भोज द्वारा स्थापित जालोर संस्कृत पाठशाला : अतीत एवं वर्तमान
डॉ. समय सिंह मीना 103

» धर्मवीर भारती की कहानियों में नारी जीवन
अन्जू परिहार 107

» नई शिक्षा नीति 2020 : अवसर एवं चुनौतियाँ
योगेश बनिया, डॉ. पंकज पारीक 111

» ज्ञानेंद्रपति की कविताओं में युग चेतना
बिजय कुमार पधान 114

» अनुज लुगुन की कविता में पितृसत्ता का प्रतिरोध
अपर्णा ए 118
» हिंदी दलित साहित्य की चयनित कहानियों में आर्थिक वैषम्य का स्वरूप
डॉ. तपस्या चौहान 121
» हिंदी की आदिवासी कविता का आर्थिक परिप्रेक्ष्य
डॉ. परविन्दर कौर 124
» ग्रामीण महिलाओं में परिवार नियोजन संबंधी मनोवृत्तियों में आए बदलाओं का प्रश्नावली के माध्यम से परीक्षण
मधु 126
» अमृता प्रीतम के उपन्यास 'पिंजर' में भारत विभाजन की त्रासदी और स्त्री उत्पीड़न
डॉ. राजेश चौहान 131
» संगीत में सौंदर्य एवं रस का महत्व
दिनेश कुमार मिश्रा, डॉ. प्रकाश कड़ोतिया 134
» प्राचीन भारतीय शिक्षा के 'पाठ्यक्रम एवं शिक्षणविधियों ' की वर्तमान समय में प्रासंगिकता
डॉ. सुरेन्द्र कुमार 137
» आधे अधूरे का अधूरापन
डॉ. मीनाक्षी 141
» त्रिलोचन के काव्य में ग्रामीण चरित्र विशेष संदर्भ :- ताप के ताए हुए दिन और स जनपद का कवि हूँ, काव्य संग्रह
सत्यनारायण मीणा 143
» 'सावित्री व्रत का समापन' कहानी में पितृसत्ता का प्रतिरोध
अमृता सी एस 146
» 'कुछ जनसांख्यिकीय चर के संबंध में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का अध्ययन'
डॉ. अमर ज्योति 149
» राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य में सामाजिकता
डॉ. मनु प्रताप 154
» A Brief Review of Victim Rights & Dishonour of Cheques in India
Syed Mazahir Hussain Chishty
Dr. Dushyant Kumar 156
» "Role of National Human Rights Commission For the Protection of Human Rights in India"
Syed Raghib Chishty
Dr. Dushyant Kumar 161
» Role of Ayurveda and Yoga in Mental Disorder of Mental illness
Sagar Mantry 166
» Yoga and Ayurveda : Concomitant Preventive therapeutics some important Lifestyle Disorders
Sujata Jena 170

शोध आलेख प्रकाशन संबंधी नियम

शोध आलेख 2500 से 5000 शब्दों का होकर यूनिकोड मंगल अथवा कृतिदेव 10 में 12 के फॉन्ट साइज में ही भेजें। शोध आलेख एपीए एमएलए फार्मेट में होना आवश्यक होकर फुटनोट व रिफ्रेंसेस के साथ भेजना आवश्यक है। अंग्रेजी माध्यम के शोध-पत्र टाईम्स न्यु रोमन (Times New Roman) ,एरियल फोंट (Arial) में टाईप करवाकर माईक्रोसॉफ्ट वर्ड में अक्षरवार्ता के ईमेल पर भेजने के बाद हार्ड कॉपी तथा शोध-पत्र मौलिक होने के घोषणा-पत्र के साथ हस्ताक्षर कर अक्षरवार्ता के कार्यालय को प्रेषित करें।

पुस्तकों से संदर्भ देने के लिए क्रम

लेखक का अंतिम नाम (सरनेम), पहला नाम; पुस्तक का शीर्षक (इटैलिक्स में; प्रकाशक का नाम और पूरा पता (प्रकाशन का वर्ष) कोष्ठक में; पृष्ठ संख्या ....।

द्विवेदी,हजारी प्रसाद, कबीर, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, चौदहवीं आवृति, 2014, पृ. 108

पत्रिकाओं के संदर्भ

लेखक का अंतिम नाम (सरनेम), पहला नाम। लेख का शीर्षक। जर्नल का शीर्षक/नाम (इटैलिक्स में)। वॉल्यूम। संस्करण (महिना, वर्ष): पृष्ठ संख्या। प्रकाशन मीडिया।

वेबसाइट के उद्धरण का प्रारूप

लेखक का अंतिम नाम (सरनेम), पहला नाम। ''पृष्ठ का शीर्षक।''
क्षेत्र शीर्षक। (साईट) प्रकाशित करने वाली कंपनी। (युआरएल) तथा सर्च डेट (अभिगमन तिथि)।
पुस्तक, पत्रिका, आवधिक, वेबसाइट आदि) के शीर्षक को इटैलिक में लिखें।
शोध आलेख के साथ प्लेगरिज़्म रिपोर्ट / स्व घोषणा पत्र (आलेख की मौलिकता व अप्रकाशित होने के संदर्भ में) अवश्य भेजें।
आलेख की वर्ड और पीडीएफ दोनों फाइल् अनिवार्य रूप से भेजें।
शोध आलेख प्रत्येक माह की 7 तारीख तक आगामी माह के अंक के लिए स्वीकार्य होंगे।
शोध आलेख का प्रकाशन रिव्यू कमेटी द्वारा अनुसंशा के आधार पर किया जावेगा।

संपादकीय

धर्म के अध्ययन में साहित्यिक सामग्री को शामिल करने का सबसे स्पष्ट और उचित औचित्य ऐतिहासिक है। हालाँकि, जो सबसे स्पष्ट है, उसे अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है। वस्तुतः हर उच्च-सांस्कृतिक प्रणाली में, चाहे वह इंडिक हो, इस्लामी हो, चीन-जापानी हो, या यहूदी-ईसाई हो, साहित्यिक परंपरा, हालांकि बहुत अलग-अलग रूपों और रूपों में, अंतरंग रूप से विकसित हुई है-वास्तव में, अक्सर अंतर्संबंधित - संबंध धार्मिक विचार, अभ्यास, संस्था और प्रतीकवाद के लिए। ग्रीक मिथक और विचार, हिब्रू गाथा और ज्ञान, और ईसाई प्रतीकवाद और धर्मपरायणता पर ध्यान दिए बिना, पच्चीस सौ साल का 'यूरोपीय साहित्य का नाटक', जैसा कि जर्मन विद्वान एरिच ऑरबैक इसे कहते हैं, आसानी से नहीं समझा जा सकता है। इसके विपरीत, इन तीन धार्मिक परंपराओं, उनकी आत्म-अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक प्रभाव के बारे में हमारा ज्ञान, विहित और गैर-विहित लेखन दोनों में उनकी साहित्यिक विरासत पर विशेष विचार किए बिना पूरी तरह से कम हो जाएगा। इसी तरह, चीनी गीत कविता, नाटक और गद्य कथा के क्लासिक रूपों को आकार देने और बनाए रखने के लिए, शाही चीन में दाओवादी अनुष्ठान, बौद्ध हठधर्मिता और कन्फ्यूशियस नैतिकता शामिल हो गई। मध्ययुगीन जापान में घुमंतू बौद्ध पुजारी और उनके भूत भगाने के कारनामों ने एक नाटक के लिए कई कथानक प्रदान किए हैं, जबकि पेड़ों और पौधों के बुद्धत्व (सोमोकु जोबुत्सु) पर सूक्ष्म बहस बारहवीं शताब्दी के कवि सैग्यो के कई उत्कृष्ट वाका का आधार है। हिंदू धर्म, यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और बौद्ध धर्म के कई प्रमुख प्रभागों में, पवित्र और धर्मनिरपेक्ष व्याख्याशास्त्र, विभिन्न अवधियों में, समानांतर या पारस्परिक रूप से प्रभावशाली तरीके से विकसित हुए हैं। पवित्र और अपवित्र ग्रंथों के इस अंतर्संबंध और उनके व्याख्यात्मक विज्ञान की परस्पर निर्भरता को नजरअंदाज करना दुनिया के साहित्यिक और धार्मिक इतिहास के बड़े हिस्से को विकृत करना है।

विद्वानों ने अक्सर सुझाव दिया है कि साहित्य की कुछ शैलियाँ, विशेष रूप से कविता और नाटक, सीधे धार्मिक अनुष्ठानों से उत्पन्न हुई होंगी। हालांकि ऐसा दृष्टिकोण साहित्य के सभी रूपों पर लागू नहीं हो सकता है, रोमानियाई मूल के अमेरिकी धार्मिक विद्वान मिर्सिया एलियाडे ने निर्धारित किया कि कुछ प्रकार के महाकाव्यों की उत्पत्ति शर्मिंदगी के अभ्यास से पता लगाई जा सकती है। धर्म के साथ साहित्य के संबंध की सबसे महत्वपूर्ण और विशिष्ट विशेषताओं में से एक पुष्टिकरण है, इस अर्थ में कि साहित्य - मौखिक और लिखित दोनों - धार्मिक विचारों और कार्यों को संरक्षित और प्रसारित करने का कार्य करता है। रोमन कवि वर्जिल के एनीड (6.77-102) में सिबिलीन भविष्यवाणी या रोमन नाटककार सेनेका के ओडिपस (303एफएफ) में हैरुस्पिसी (भविष्य की भविष्यवाणी) का विस्तृत विवरण देखें । कभी-कभी किसी विशेष संस्कृति में, जैसे प्राचीन भारत के मामले में, साहित्य किसी धार्मिक परंपरा का प्रमुख अभिलेख हो सकता है। जर्मन विद्वान एल्बिन लेस्की ने ए हिस्ट्री ऑफ ग्रीक लिटरेचर (1966) में उल्लेख किया है कि 'देवताओं और मनुष्यों के बीच का संबंध होमर की दुनिया में केंद्रीय है' और भी अधिक हद तक, लेस्की का अवलोकन प्राचीन निकट पूर्वी और भारतीय साहित्य की एक बड़ी मात्रा का वर्णन करेगा। एलिएड द्वारा हिस्टोइरे डेस क्रॉयन्सेस एट डेस आईडी ईएस रिलिजियस (1976) में डब किया गया महाकाव्य, गिलगमेश का महाकाव्य, अपने सुमेरियन और पुराने बेबीलोनियाई संस्करणों में, मनोरंजन और रोमांच के साथ जुड़ी धार्मिक सामग्रियों का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। धर्मनिरपेक्ष साहित्य की स्वीकृत पहचान। यद्यपि इसकी कार्रवाई ज्ञान के लिए मानवीय खोज और नश्वरता से बचने से संबंधित है, और हालांकि इस बात का कोई पुख्ता सबूत नहीं है कि कविता को कभी धार्मिक अनुष्ठान के हिस्से के रूप में पढ़ा गया था (जैसा कि एनुमा एलिश , सृजन की बेबीलोनियाई कविता थी), गिलगमेश ही फिर भी यह अपने पाठकों को मेसोपोटामिया के ब्रह्मांड विज्ञान और थियोगोनी का पूर्ण और जटिल दृश्य प्रदान करता है। जैसा कि गिलगमेश और एनकीडु की कहानी इसके कई मौजूदा प्रसंगों के माध्यम से सामने आती है - एक शहर की घेराबंदी, एक जंगल की यात्रा, एक चंचल देवी का मार्ग, एक संरक्षक साथी की शोकपूर्ण मृत्यु - महाकाव्य एक साथ एक मेजबान के चरित्र और गतिविधि का वर्णन करता है देवताओं का. विशाल देवता और कविता में इन देवताओं द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका इस प्राचीन सभ्यता में परमात्मा की महत्वपूर्ण अवधारणाओं को प्रकट करती है। इसके अलावा, जलप्रलय की कहानी और अंडरवर्ल्ड के ज्वलंत विवरण, स्पष्ट रूप से, सृजन और युगांतशास्त्र की हिब्रू धारणाओं के साथ तुलना को उजागर करते हैं।

भारतीय परंपरा के छात्रों के लिए, यह दावा करना पूरी तरह से उचित है, यहां तक कि सामान्य भी है कि धर्म लगभग सभी शास्त्रीय साहित्यिक संस्कृति के लिए रूप और सार दोनों प्रदान करता है। ये दोनों घटनाएं इतनी अविभाज्य हैं कि द लिटरेचर ऑफ इंडिया-एन इंट्रोडक्शन में एडवर्ड डिमॉक और उनके सहयोगियों ने लिखा है कि 'भारत में अपेक्षाकृत आधुनिक समय तक - जिसका अर्थ भारत से भारत-पाकिस्तान उपमहाद्वीप है-कभी-कभी साहित्य को धार्मिक दस्तावेज़ीकरण से अलग करना मुश्किल होता है। ऐसा इसलिए नहीं है क्योंकि समाज पर धार्मिक मूल्यों की एक प्रणाली थोप दी गई है; बल्कि इसलिए है क्योंकि भारत में धर्म साहित्य के कई रूपों सहित जीवन के हर पहलू के साथ इतना जुड़ा हुआ है कि यह अप्रभेद्य हो जाता है' (1974)। इस तरह की व्यापक घोषणा की सच्चाई सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण भारतीय पुरातनता में बोले गए शब्द के उत्कृष्ट सिद्धांत में पाई जाती है, जो हर मायने में हेब्रिक डावर या जोहानाइन लोगो के बराबर शक्तिशाली है। यह दृष्टिकोण मानता है कि साहित्यिक भाषण, घर या अदालत का नहीं बल्कि बोलने का एक तरीका जो जानबूझकर विकसित किया जाता है, वस्तुतः देवत्व के समान है, 'स्वयं देवी, प्रजापति का पहला उच्चारण, सृष्टि के भगवान, और स्वयं सृष्टि के साथ जुड़ी हुई हैं' (डिमॉक)। साहित्यिक भाषण वेदों में निहित भाषा है, जिसमें भजनों के चार संग्रह हैं जिनकी उत्पत्ति ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी से हुई है। यद्यपि ये भजन स्वयं ब्रह्मांड में मानव जाति के स्थान और हमारे साथी प्राणियों के साथ हमारे संबंध, और जीवन और मृत्यु के महान प्रश्नों पर शानदार और राजसी चिंतन हैं, यह भाषा ही है जो ग्रंथों के प्रतिलेखित होने से बहुत पहले सर्वोच्च पूजनीय थी। यह ऐसा है मानो पाठ की शांत उदात्तता, जिसे श्रुति ('रहस्योद्घाटन' या 'जिसे किसी ने पवित्र रूप से सुना है') कहा जाता है, अपने सांसारिक उत्सवकर्ताओं से संचरण की एक विधि की मांग करती है जो समय की संक्षारक शक्ति को चुनौती दे।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

यथार्थ के धरातल पर मन्नू भंडारी की कहानियाँ

रूचि सिंह

शोधार्थी, हिन्दी साहित्य, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

मन्नू भंडारी की कहानियों में यथार्थ पर बात करने से पहले यह जरूरी है कि यथार्थवाद की पूर्व पीठिका को नई कहानी के संदर्भ में समझ लें। क्योंकि प्रत्येक रचनाकार की उपज अपने युग और परिस्थितियों से ही होता है। हम सब जानते हैं कि प्रेमचंद-युग के अंतिम वर्षों में कल्पना और आदर्श का बादल छँटने लगा था। लेखक वास्तविकता में प्रवेश करने लगे थे। हिंदी कहानी में यथार्थ को स्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी क्योंकि यथार्थबोध की स्वीकृति और अस्वीकृति का द्वंद्व बहुत दिनों तक नहीं चल सकताथा। स्वतंत्रता मिलने के साथ देश का मानसिक पुनरुत्थान हुआ। आजादी को राजनीतिक मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया था, साथ ही विचारों को पुनर्जीवित करने का सपना भी था। जब लोगों को मतदान का अधिकार मिला, लोकतंत्र में व्यक्तिगत शक्ति की गरिमा बढ़ी और पुराने नियमों, विचारों, सामाजिक-संरचनाओं और नैतिक मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगा।

देश में स्वतंत्रता के साथ एक झिलमिलाता हुआ उत्साह दिखाई दिया। कांग्रेस-शासन के नेताओं ने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सपनों की दुनिया बनाने की इच्छा व्यक्त की। कुछ वर्षों तक लोगों को बड़ी-बड़ी योजनाओं का कार्यान्वयन, उद्योग-धंधों की शुरुआत, यातायात के साधनों का विकास, कृषि में नए वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग, आत्मनिर्भरता का आश्वासन और शिक्षा में हुई प्रगति ने मोहित किया। किंतु शीघ्र ही मोहभंग हो गया और हमारे कलाकारों ने ऊपर के सारे शोरगुल के बीच देखा कि- 'आज का नौजवान माथा झुकाए, घुटनों पर कुहनियाँ टिकाए, हथेलियों में सिर पकड़े, हताश, दिशाहारा, पस्त, बीमार, किसी चमत्कारी घटना की प्रतीक्षा में बैठा है और जो कुछ आस-पास हो रहा है, उसे सब झूठ-फरेब, दगाबाजी और धोखा लगता है।'[1]

नई कहानी में सामाजिक यथार्थकी व्यापक स्वीकृति है, यही कारण है कि नई-कहानी के दौर में स्त्री लेखिकाओं एवं स्त्री स्वर को मुखरता मिलती है। इससे पहले स्त्रियाँ इतने अलग संदर्भों के साथ साहित्य के मानचित्र पर कभी नहीं दिखी। स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप स्त्रियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में बदलाव आया। स्त्रियाँ शिक्षित होने लगी और जीवन के विविध क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करने लगी। निष्कर्षतः परंपरागत सामाजिक प्रतिबंधों और रूढ़ियों का चटकना-टूटना अनिवार्य था। प्रेम-विवाह यौन-शुचिता के नैतिक आग्रहों में आए परिवर्तन में इसे हर जगह देखा जा सकता है। ये स्थितियाँ संबंधों को नए सिरे से परिभाषित किए जाने की मांग करती है।

नई-कहानी दौर की महिला लेखिकाओं में 'मन्नू भंडारी' का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। 'नई कहानी' ने अपनी भूमिका के संदर्भ में अजीत कुमार को दिए साक्षात्कार में मन्नू भंडारी ने स्वीकार किया है कि-'नई कहानी' आंदोलनों के केंद्र में तो क्या मैं किनारे पर भी नहीं थी। यह महज संयोग की बात है कि जब मैंने लिखना शुरू किया तो नई-कहानी के सूत्रधार अपने पूरे चढ़ाव पर थे। उन सभी से मेरा घनिष्ठ संबंध था, संपर्क था, सो मेरा नाम भी जुड़ गया। इसे मेरी मासूमियत मत समझिए सच्चाई है कि मुझे आंदोलन का क-ख-ग भी नहीं आता था उस समय...।'[2]

घोषित और योजना बद्ध तरीके से वे भले ही इस आंदोलन में सक्रिय न रही हो, लेकिन यह सच है कि रचनात्मक स्तर पर वे इस आंदोलनों और उसकी उपलब्धियों से बहुत सीधे तौर पर जुड़ी रही है। रामदरश मिश्र के अनुसार-'मन्नू भंडारी की कहानियाँ अपने परिवेश के विविध अनुभवों, मानवीय पीड़ा, मानवीय दृष्टि, अपने खुलेपन और अकृत्रिम भाषा के कारण सार्थक और प्रभावशाली बन पड़ी है।'[3]

अकेलापन नई कहानी और आज की कहानी का विशेष स्वर है। किन्तु कई बार अकेलापन थोपा हुआ सा लगता है। मन्नू भंडारी की कहानी 'अकेली' इस अविश्वसनीयता की धारणा के विपरीत हमारे परिवार की एक ऐसी स्त्री के अकेलेपन की विश्वसनीयता कथा कहती है, जिसका पति संन्यासी हो गया है। एक मास के लिए घर आता है। अकेली बुआ वहाँ लोगों के यहाँ गा-बजाकर, काम करके गुजारा करती हैं। पति जब आता हैं तो वह यह सब देखकर नाराज होता है। देवरजी के ससुरालवालों की किसी लड़की की शादी बुआ के गाँव के भागीरथ के यहाँ होती है। बुआ सोचती है बुलावा आएगा। अंगूठी बेचकर वह दुल्हन के लिए उपहार खरीदती है और बुलावे की प्रतीक्षा करती है लेकिन बुलावा नहीं आता। कहने का आशय यह है कि उनकी कहानियों में बौद्धिक बहस नहीं आता। इस संबंध में नामवर जी कहते हैं कि 'बौद्धिक बहस तो नहीं है लेकिन कहानियों में घटनाएँ बोलती है, स्वयं कहानी बोलती है। उनके चरित्र स्वयं बहस नहीं करते। इससे यह भ्रम होता है कि बौद्धिक दृष्टि से वह कहानियाँ इतनी प्रबल नहीं है, पर यह सोचना सरासर गलत है।'[4]

पीढ़ियों का अंतर भी आधुनिक जीवन का यथार्थ है जिसे नई कहानी ने बार-बार उकेरा है। मन्नू भंडारी की कहानी 'मजबूरी' में यह अंतर साफ-साफ देखा जा सकता है। मन्नू भंडारी ने अपनी कुछ कहानियों में मजदूर वर्ग की असहाय नारियों की दरिद्रता, संघर्ष और मानसिकता का बड़ा ही मार्मिक और यथार्थ चित्र खींचा है। 'रानी माँ का चबूतरा' ऐसी ही एक मार्मिक कहानी है। मन्नू भंडारी की प्रचलित अर्थों वाली जिन कहानियों का उल्लेख यथार्थचित्रण के लिए किया जाता है उनमें 'यही सच है', 'एक बार

और', 'मैं हार गई' और 'त्रिशंकु' प्रमुख है। यहाँ वे प्रेम की उत्कटता तथा आवेग संकुलता को विशेष महत्व देती है। 'यही सच है' की विस्तृत चर्चा के बगैर बात अधूरी रह जाएगी। यह उनकी प्रायः उल्लिखित प्रसिद्ध कहानी है, जो उनके कृतित्व के रूप में उनकी अभिन्न पहचान बन चुकी है। छपने के साथ ही प्रसिद्ध हो जाने वाली इस कहानी की तुरंत प्रसिद्धि का कारण दो पुरुषों के प्रति समान स्नेह का भाव रखने वाली नायिका का चरित्र है जो तब तक की स्वीकृत नैतिकता के अनुसार स्त्री के प्रेम की एकनिष्ठता को प्रश्नात्मक बनाकर एक विद्रोही कथानक का सूत्रपात करता है। अब आज की स्वतंत्र स्त्री की मानसिकता को देखते हुए यह कथ्य उस स्तर पर वैसा विद्रोही नहीं रह गया है। लेकिन लेखिका की दृष्टि का संकलन यहाँ भी इस रूप में सामने आता है कि वह केवल चौंकाने या बौखला देने की इच्छा से किया गया विद्रोह नहीं बल्कि स्वतंत्र और आत्मनिर्भर स्त्री की भावनात्मक बनावट की गहराई में जाकर देखने का प्रयास है। यहाँ ऐसी कोई कोशिश नहीं, जो पहले प्रेमी को मात्र खलनायक बनाकर नायिका के आचरण में औचित्य और संगति ढूँढ़ती हो। बल्कि आज पड़ते हुए देखा जा सकता है कि स्वयं कहानी के लिए एक स्त्री का डॉ. पुरुषों से एक साथ प्रेम कोई खास बड़ा मुद्दा है ही नहीं। वह केवल कथा है, कथ्य नहीं। कथ्य तो अतीत की कटुता, प्रतिशोध और पराजय जैसी नकारात्मक भावनाओं से स्वयं को मुक्त करके फिर से एक सहज व्यक्ति बन पाने की प्रक्रिया है। पूर्व प्रेमी से सहसा मुलाकात, उसकी निर्दोषता व उसके प्रति अपने स्नेह का आविष्कार इस प्रक्रिया का माध्यम है।

इस कहानी के संदर्भ में मोहन राकेश का यह कथन है कि-'प्रेम की कहानियाँ पहले भी लिखी गई हैं और इस दृष्टि से कहानी में कुछ नयापन नहीं है, परंतु मन्नू ने जिस साहस और सहजता के साथ इस का चित्रण किया है और शिल्प के जिस अधिकार के साथ इसे क्लाइमैक्स तक निबाहा है, उससे इसमें एक अलग ही ताजगी आ गई है।'[5]

मन्नू भंडारी ने अपनी इस कहानी में स्त्री-पुरुष के संबंधों में प्रेम-घृणा, नैतिक-अनैतिक, श्लील-अश्लील, सच-झूठ, शुभ-अशुभ, हर्ष-शोक की परंपरागत जो धारणाएँ रही हैं, उनसे अलग रास्ता बनाते हुए स्वतंत्र चेतना का चयन किया है। कहानी की मुख्य पात्र 'दीपा' इन ऊहापोह के घटाटोपों को कैसे नियंत्रित कर सही मार्ग अपनाती है। कहानी का मुख्य कथ्य, वह तीन वर्ष पूर्व निशीथ की अभिन्न मित्र थी, लेकिन घटनावश स्वतंत्र रूप से झट से अलग रहने का निर्णय ले लेती है। उससे प्रेम के स्थान पर घृणा करने लगती है। सच है प्रेम सब कुछ सहन कर सकता है लेकिन उपेक्षा नहीं। शायद यही इस कहानी का यथार्थ है। संजय दूसरा युवक अगर कभी निशीथ का नाम लेता है तो वह अनमने भाव से नकारती है, अब उसे निशीथ के स्मरण मात्र से नफरत होने लगती है। दीपा के मन की खोज खबर ही 'कहानी' का उद्देश्य है, जो कि यथार्थ के धरातल पर आगे बढ़ता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर ज्यादा कुछ न कहते हुए यह जरूर कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी की कहानी आज के जीवन, जिसे आधुनिकता, समकालीनता, कुछ भी कह लीजिए, को जीने, उसे विभिन्न स्तरों पर समझने, उसके अर्थ तलाश करने, सार्थकता-निरर्थकता खोजने और स्वयं की जरूरत से फैसले को अख्तियार करने की कहानी है। इस प्रक्रिया में कहानी के स्वरूप शिल्प, भाषा और स्वयं जीवन, उसके आपसी संबंधों के इतने अधिक रूप और उनकी छायाओं को वाणी मिली है कि लगता है आज शायद साहित्य की कोई दूसरी विधा इतनी संपन्न नहीं है। 'त्रिशंकु' मन्नू भंडारी की प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी में नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के मध्य होने वाले संघर्ष को उसके यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है। मन्नू भंडारी की कहानियों में प्रायः परिवार को समाज की एक प्रतिनिधि इकाई के रूप में, उसके अंतर्विरोधों के बीच, सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रकार की शक्तियों के साथ देखा गया है। 'श्मशान' कहानी में एक के बाद एक तीन पत्नियों के निधन पर अपने भी जीवन का अंत मानकर रोने वाले युवक के माध्यम से कहानी का निष्कर्ष है कि मनुष्य वस्तुतःअपने आपको ही अधिक प्यार करता है और किसी प्रिय की हानि पर रोना वस्तुतः अपने ही उस अंश के लिए रोना है जो इस हानि में हाथों से छूट जाता है। कहानी का यह निष्कर्ष है, तो मनुष्य मात्र के विषय में, लेकिन एक पुरुष मात्र के माध्यम से पाया जाकर इस सामाजिक सत्य की ओर या कहे की यथार्थ की ओर संकेत करता है कि पुरुष स्त्री की अपेक्षा 'अधिक' और कुछ 'अधिक' मनुष्य हुआ करता है। इसी पितृसत्तात्मक समाज की कुछ परिष्कृत झलक 'नई नौकरी' नामक कहानी में मिलती है, वहाँ पति की बड़ी और नई नौकरी का मतलब यह हो जाता है कि एक स्वतंत्र व्यक्तित्व-संपन्न स्त्री होने के बावजूद पति न केवल नौकरी छोड़े बल्कि यह भी कि पति की नई नौकरी के हिसाब से वह अपने रुचि-रुझान से लेकर जीवनचर्या तक को भी बदल डाले और नए-नए दायित्व और कर्तव्य ओढ़ ले, मानो पति की नहीं उसकी अपनी नौकरी बदल गई हो। इस तरह से उद्घाटित स्थितियाँ भी कभी दुबारा उतनी सहज और मासूम नहीं रह जाती, वे यथार्थ का निर्वाह करते हुए विरोध दर्ज करने का एक कलात्मक तरीका बन जाती हैं। 'स्त्री सुबोधिनी' कहानी में प्रेम की भोली निश्चलता का दण्ड पाने वाली स्त्री को समूचे अनुभव की कथा सुनाने के लिए एक व्यंग्य और परिहास का स्वर दिया जाता है, जो अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच सार्थक तनाव की रचना करते हुए, विवाहित पुरुष के खिलाफ विवाहेतर संबन्धों से जुड़े छल-छंदों का ऐसी तटस्थ दृष्टि से पर्दाफाश करता है, मानो शिकार वह स्वयं नहीं, कोई और हो। एक तरह से यह भिन्न स्वर में 'यही सच है'कापुनर्लेखनहै। व्यावहारिकता के नए पाठ पड़ती हुई यह नायिका भी प्रेम के नाम पर टूटने से इंकार करती है। जोकि सामाजिक यथार्थ है। संबंधों के विघटन के इस दौर में ऐसी स्थितियाँ सामाजिक सच बन चुकी है।

'नई कहानी के संदर्भ में स्त्री-स्वर के विशेष रूप में देखें तो मन्नू भंडारी ने पर्याप्त संयत ढंग से एक ऐसी नारी गढ़ने की कोशिश की है, जो क्रमशः एक जीवंत और आत्मसजक स्त्री के रूप में विकसित होती है और जो अर्थहीन विधि-निषेधों के लिए जीवन नष्ट करने की अपेक्षा अपना जीवन अपने ढंग से जीना चाहती है। इस आत्मसजक स्त्री की उपस्थिति उनकी 'दीवार, बच्चें और बरसात' और 'तीन निगाहों की तस्वीर' में भी रेखांकित की जा सकती है।'[6] अपने समय-संदर्भों के प्रति यह खुली दृष्टि मन्नू भंडारी को अपने दौर की कथा-लेखिकाओं से तो अलग करती ही है, अनेक पुरुष कहानीकारों से भी अलग करती है। आज जब हिंदी जगत में स्त्री के लेखन को लेकर नारीवाद और अस्मिता-विमर्श का बोलबाला है, इसमें मन्नू भंडारी की कहानियाँ बिना किसी अतिरिक्त शोर शराबे, जलसे जुलूस की सुलभ नारेबाजी और 'युद्ध देहि' मुद्रा के , शांत और धीमे स्वर में प्रदर्शित करती हैं कि सहज रूप से व्यक्ति-सम्पन्न, मूल्य-सजक और उत्तरदायी स्त्री-दृष्टि क्या होती है, यद्यपि जरूरी नहीं कि कहानी का मुख्य पात्र कोई स्त्री ही हो।

नई कहानी की चेतना चूंकि स्वातंत्र्योत्तरभारतीय जीवन के यथार्थ की चेतना है और यह चेतना कलाकारों के अनुभव से जुड़ी होने के कारण अनेक रूप और रंग धारण करती है। नई कहानी की चेतना परिवेश से जुड़े हुए व्यक्ति-मन की चेतना है। इसलिए वह न तो बाहरी यथार्थ की अनुभूतिहीन

फारमूलाबद्ध कथा कहती है और न बाहरी परिवेश से विच्छिन्न होकर या बाहरी परिवेश को केवल अवचेतन की दुनिया से संदर्भित कर मात्र व्यक्ति मन का चित्रण करती है। वह जीवन-परिवेश के दबाव में बनते-बिगड़ते मानवीय रिश्तों, मूल्यों, संवेदनों की अभिव्यक्ति है। जिसका सशक्त उदाहरण मन्नू भंडारी की कहानियों में देख सकते हैं।

'मैं हार गई' कहानी एक कवि सम्मेलन में पड़ी गई 'बेटे का भविष्य' नामक कविता से आरंभ होती है। कविता में बेटे का असंगति पूर्ण चरित्र देखकर कवि ने निष्कर्ष रूप में कहा 'यह साला तो आजकल का नेता बनेगा।' कहानी की लेखिका इस निष्कर्ष से उत्तेजित होकर कहानी लिखने का विचार कर गरीब परिवार में एक नेता पात्र की सृष्टि करती है। लेकिन गरीबी के कारण उसका पतन हो जाता है। पर लेखिका हार नहीं मानती। पुनः कमर कसती है और इस बार उसका नेता बदते हुए रूप और बदली हुई परिस्थितियों में एक बार फिर संसार में आता है। उसका जन्म इस बार सेठ के यहाँ होता है, जहाँ परवरिश में कोई बाधा नहीं है। लेकिन नेता योग्य उसके सृजन में लेखिका जरूर असफल हो जाती है। और फिर कोई कोशिश किए बगैर कहती है-'मेरा रोम-रोम महसूस कर रहा था कि कवि भरी सभा में शान के साथ जो नेहला फटकार गया था, उसपर पर इक्का तो क्या, मैं दुग्गी भी न मार सकी। मैं हार गई, बुरी तरह हार गई।'[7]

इस कहानी में आदर्श और यथार्थ के बीच निरंतर चलते आ रहे संघर्ष में लेखिका ने यथार्थ की अत्यंत ही सहज विजय दिखाई है। समकालीन जीवन का यह परिवेश अपने पूरे दबावों के साथ मनुष्य को मूल्यहीनता की ओर धकेल रहा है। उसे कही पर स्थिर होकर उनका सामना नहीं करने दे रहा है। आदर्श और आर्थिक दबावों की टकराहट में कुंती का व्यक्तित्व जिस तरह से टूट कर बिखरता है, प्रस्तुत कहानी उसका एक करुणाजनक शिलालेख है। मध्यवर्ग के समाज की अभिशप्त जिंदगी की यह यथार्थपरक दास्तान पाठकों के मन में गहरी संवेदना से सराबोर कर देती है। इस तरह हम पाते हैं कि हिंदी कहानियों में यथार्थ का सही आयाम मुंशी प्रेमचंद में विकास तो पाता है, लेकिन यथार्थवाद को सही अर्थों में नई कहानी में आकर विकास का खुला मार्ग मिलता है। आजादी के बाद के इस दौर में कहानीकारों को यह दिखाई देने लगा कि यथार्थ वहीं नहीं है जो ऊपर-ऊपर दिखाई दे रहा है, यथार्थएक सीधी रेखा भी नहीं है और न वह कैमरे की तस्वीर है, जो सत्य के रूप में समाज के सामने परोसा जा रहा है, सत्य उतना ही नहीं है, यथार्थ कुछ और भी हो सकता है। सामाजिक झूठ से मुक्ति की तलाश भी पहली बार नई कहानी के दौर में शुरू हुई, यथार्थ बहुआयामी होने का एहसास नए सिरे से इस दौर में ही हुआ। यथार्थ वही नहीं है जो सतह पर दिखाई देता है, गहरे जाने पर या छानबीन करने पर वह कुछ और हो सकता है, 'यह पर्सपेक्टिव मन्नू भंडारी की कहानियों में अपनी पूरी कलात्मकता के साथ आता रहा, उनके लिए 'यही सच है' की यथार्थ इकहरा नहीं होता। लगभग उनकी सभी कहानियों में शुरू में जिस यथार्थ का हम साक्षात्कार करते हैं, वह कहानी के अंत तक कोई दूसरा ही यथार्थ होता है।'[8] लेकिन यथार्थ इकहरा हो या द्विहरा, है तो यथार्थ ही, इस दृष्टि से नई कहानी के संदर्भ में मन्नू भंडारी की कहानियाँ यथार्थ की धरातल पर ही फली-फूली है इसमें कोई संदेह नहीं है।

वस्तुतः हम कह सकते है कि मन्नू भंडारी का अनुभव संसार वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने नारी के परिवेश की विभिन्न समस्याओं के विविध पहलुओं को गहराई के साथ देखा है, और उसे यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया। साहस और तटस्थता के साथ। और यह मन्नू भंडारी की कहानियों की बड़ी विशेषता कही जा सकती है क्योंकि इससे पहले कथा-साहित्य में अक्सर नारी का चित्रण पुरुष की आकांक्षाओं से प्रेरित होकर किया गया है। नारी के समग्र व्यक्तित्व को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत नहीं किया गया था, लेकिन मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों में पुरानी रूढ़ियों का परित्याग करते हुए नारी को उसके यथार्थ रूप में अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। यही उनकी कथाकार के रूप में सफलता है।

संदर्भ सूची:-

1. यादव, राजेन्द्र. (1981). एक दुनिया- समानान्तर. राज कमाल प्रकाशन.
2. सिंह, नामवर. (2012). कहानी नयी कहानी. लोकभारती प्रकाशन.
3. कुमार, अजीत. त्रिशंकु और अन्य कहानियों में संकलित मन्नू जी के तमाम रंग.
4. मिश्र, रामदरश. (1993). हिंदी कहानी- अंतरंग पहचान. नई दिल्ली. नैशनल पब्लिशिंग हाउस.
5. अरोड़ा, सुधा. मन्नू का रचनात्मक अवदान. किताब घर प्रकाशन.
6. अरोड़ा, सुधा. मन्नू का रचनात्मक अवदान. किताब घर प्रकाशन.
7. भंडारी, मन्नू. (1969). मन्नू भंडारी- श्रेष्ठ कहानियाँ. अक्षर प्रकाशन.
8. वर्मा, अर्चना. (2011). मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ. नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया.
9. मिश्र, रामदरश. (1993). हिंदी कहानी- अंतरंग पहचान. नई दिल्ली. नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
10. मधुरेश. (2008). हिंदी कहानी का विकास. इलाहाबाद. सुमित प्रकाशन.
11. वर्मा, अर्चना. (2011). मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ. नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया.
12. चौहान, चंचल. (2011).हिंदी कथा साहित्य- विचार और विमर्श. इलाहाबाद.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

स्वातंत्र्योत्तर किसान-मजदूर और निम्न वर्ग से संबंद्ध हिंदी उपन्यास

डॉ. सोहन लाल

प्रोफेसर, हिंदी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुडामालानी, बाडमेर, राजस्थान

उपन्यास शब्द 'उप' .'न्यास' के योग से बना है। 'उप' का अर्थ समीप तथा 'न्यास' का अर्थ थाती या निकट (मनुष्य के) रखी वस्तु।[1] अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि हमारी ही हैं, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, उपन्यास कहलाता है। 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी मिलता है। संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग नाटक की संधियों 'प्रतिमुख संधि' के उपभेद के लिए हुआ था। इसकी दो प्रकार से व्याख्या की गई है। ''उपन्यासः प्रसादन'' - अर्थात् प्रसन्न करने को 'उपन्यास' कहते हैं। दूसरी व्याख्या के अनुसार ''उपपश्रिक्रतोहार्थ उपन्यासः संकीर्तितः ''अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप से उपस्थिति करना 'उपन्यास' कहलता है। किन्तु आज जिस अर्थ में ग्रहण किया जाता है, वह मूल 'उपन्यास' शब्द से पूर्णतः भिन्न हैं। हिन्दी में 'उपन्यास' शब्द आने से पहले बंगला में 'उपन्यास' नाम प्रचलित था। अंग्रेजी में 'नावेल' के अर्थ में लें, तो प्रायः आलोचक मानते हैं कि 'नावेल' 'Novel' अंग्रेजी साहित्य में ही नहीं, यूरोप में भी 'नया' था।

इतिहास की दृष्टि से देखें तो हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश उपनिवेश बन चुके भारत में निबंध, कहानी, नाटक आदि गद्य रूपों के साथ ही उपन्यास आया। वह कथातत्व के आकर्षण से लोकप्रिय भी हुआ। मुद्रण कला का विकास, समाचार पत्रों का प्रसार, नये पाठक वर्ग का उदय और गद्य का विकास आदि कारणों ने उपन्यास के लिए आधार भूमि तैयार की। वस्तुतः रूप की दृष्टि से 'उपन्यास' मुख्यत पश्चिम की देन है। उपन्यास के अन्य नामों में मुख्यतः गुजराती में 'नवलकथा' है या मराठी में 'कादम्बरी' शब्द मिलते हैं तो वहीं यूरोप में 'रोमांस' शब्द भी चला। परन्तु यह शब्द स्वच्छन्दता सूचक है। इसमें साहित्यक कथा और प्रेम-कथा का मिला-जुला रूप निहित है। वस्तुतः उपन्यास वह गद्य रूप है जिसे, आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है या कहा जा सकता है। वह एक आधुनिक गद्य रूप है जो जीवन को समग्रता में या कभी-कभी टुकड़ों में देख पाता है। प्रेमचंद के अनुसार उपन्यास मानव चरित्र का चित्र मात्र है। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।

हंगरी के उपन्यास आलोचक और सिद्धांतकार जॉर्ज लूकाच के अनुसार 'उपन्यास' ईश्वर विहीन दुनिया का महाकाव्य है।' भारतीय उपन्यास और विशेष रूप से हिन्दी उपन्यास को बनाने में बहुत सी परिस्थितियों का योगदान है। प्रस्तुत आलेख में हम स्वातंर्त्योश्र हिन्दी उपन्यासों में किसान-मजदूर और निम्नवर्ग, से संबंद्ध उपन्यासों पर चर्चा करते हैं। स्वतंत्रता से पूर्व स्वाधीनता आंदोलन को लेकर देश के सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रों में जो हलचलपूर्ण और उथल-पुथल भरी गतिविधियां थीं, वे समूचे हिन्दी साहित्य के साथ ही उपन्यासों में भी किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त हो रही थी। स्वातंर्त्योत्तर भारतीय सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य ने हिन्दी उपन्यासकारों के सामने एक नयी चुनौती प्रस्तुत की। यह वास्तविकता हैं कि संपूर्ण भारतीय जनता तथा उसके नेतृत्वकारी वर्ग के एक लम्बे संघर्ष के बाद 15 अगस्त, 1947 में मिली स्वतंत्रता से राष्ट्रीय उल्लास का माहौल बना। 26 जनवरी, 1950 के दिन नवनिर्मित संविधान के अंतर्गत भारत को संसदीय गणतंत्र घोषित किया गया। बालिग मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली द्वारा केन्द्र के लिए संसद और विभिन्न प्रदेशों के लिए विधान सभाओं के चुनाव हुए। अपनी स्वतंत्र देशी सरकार से देशवासियों में आशा और विश्वास की लहर फैली। नये संविधान के अंतर्गत जनता के मौलिक अधिकारों की व्यवस्था के साथ ही जाति-पांति, ऊँच-नीच की मान्यता को गैर-कानूनी घोषित किया गया। कानूनी तौर पर सभी को विकास के समान अवसर प्रदान किए गए। राष्ट्र की प्रगति, आर्थिक उत्थान के लिए सरकार ने पूंजीवादी और समाजवादी अर्थव्यवस्था के मध्य समन्वय की नीति के तहत मिश्रित अर्थव्यवस्था को स्वीकृति प्रदान की। इसके लिए पंचवर्षीय विकास योजनाओं की भी व्यवस्था की गयी। इसके माध्यम से देश के औद्यौगिक और कृषि के समुचित विकास और अधिक खर्चीली योजनाओं को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा गया। औद्योगिक उत्पादन के लाभकारी अन्य क्षेत्रों को पूंजीपतियों के हवाले कर दिया गया। कुल मिलाकर मिश्रित अर्थव्यवस्था के नाम पर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को ही प्रश्रय दिया गया। नतीजा अमीरी और गरीबी के बीच की खाई निरंतर बढ़ती ही गयी। योजना-आयोग के निर्देशन में रही पंचवर्षीय योजनाओं के तहत मिलने वाली सुविधाओं का लाभ योग्य किसानों, मजदूरों एवं ग्रामीणों को नहीं मिल पाया। योजनाओं से प्राप्त लाभ की बंदर-बाँट बड़े और प्रभावशाली किसानो, सम्पन्न लोगों और पेशेवर जालसाजों के बीच होने लगी। योग्य व पात्र सामान्य किसान-मजदूर तो मुँह ताकता ही रहा। जमींदारी उन्मूलन से लेकर भूदान आन्दोलन तक किसी से भी भूमिहीन किसान-मजदूर जनता को विशेष लाभ नहीं हो पाया। समस्त संवैधनिक प्रावधानों के बावजूद ग्रामीण क्षेत्र में जांति-पांति, ऊँच-नीच, छुआ-छूत के रूप में सामाजिक-आर्थिक विषमता अंधिकांशतः बरकरार रही।

यहाँ सांप्रदायिक आधार पर भारत-पाक विभाजन की त्रासदी भी उल्लेखनीय परिस्थिति रही। इस त्रासदी ने सांप्रदायिक वैमनस्य को कम नहीं होने दिया। हिन्दुओं- मुस्लिमों के बीच वैमनस्य की दीवार अब भी दुःख दे रही थी। विस्थापन और पुनर्वास की समस्या के साथ ही हिन्दु-मुस्लिम सांप्रदायिक दंगो ने पूरे देश को हिला दिया। द्वितीय विश्व युद्धोत्तर महंगाई और विभाजन की त्रासदी से उत्पन्न बेरोजगारी के कारण आर्थिक नवर्निर्माण बुरी

तरह बाधित हुआ।

स्वातंत्योत्तर साहित्य की एक प्रमुख प्रेरक शक्ति द्वितीय विश्व युद्धोत्तरकालीन देश और विश्व का राजनीतिक परिदृश्य भी कम महत्वपूर्ण परिस्थिति नहीं है। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के दो वर्ष बाद देश को मिली स्वाधीनता से शिक्षित मध्यवर्ग के एक बड़े हिस्से में बढ़ते अवसरवाद की प्रवृत्ति ने उसे राजनीति-विमुख ही नहीं समाज से भी विमुख किया। परिणामस्वरूप इस काल में व्यक्ति केन्द्रित आधुनिकतावादी भावधारा से प्रभावित उपन्यास ही अधिक लिखे गये। परन्तु समाजनिष्ठ प्रगतिशील चेतना से सम्पन्न मध्य वर्ग का एक तबका भी उपन्यास के क्षेत्र में सक्रिय था, जिसने अपने पूरे सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए उपन्यास लिखे। इसे कुछ उदाहरणों के माध्यम से समझा जा सकता हैं। इसे मात्र संयोग ही कहा जाय, ऐसा नहीं है। क्योंकि स्वातंत्योत्तर युग के एक ही कालखण्ड में एक तरफ नागार्जुन 'रतिनाथ की चाची' (1949), 'बलचनमा' (1952) और 'भैरव प्रसाद गुप्त' 'मशाल' (1951) 'गंगा मैया' (1953) जैसे समाजोन्मुख, भविष्य के प्रति आशावादी उपन्यास लिख रहे थे तो दूसरी ओर अज्ञेय 'नदी के द्वीप (1951), धर्मवीर भारती 'गुनाहों का देवता' (1949) 'सूरज का सांतवा घोड़ा' (1952) जैसे व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासों की रचना कर रहे थे इससे आगे आने वाले उपन्यासों से भी इस तरह के तमाम उदाहरण दिए जा सकते हैं। यह साहित्य संबंधी दो भिन्न जीवन दृष्टियांतो ही है लेकिन इनसे जीवन के प्रति, विशेष रूप से सामाजिक जीवन के प्रति दो विरोधी दृष्टियों, रूख-रूझानों का भी संकेत मिलता हैं, जो तत्कालीन समाज के गहरे अंतर्विरोध को दिखाता है। इसे स्पष्ट और गैर साहित्यिक शब्दों में कहा जाए तो यह एक ही समाज की जनोन्मुख और जनविमुख शक्तियों का संघर्ष है। आजादी के 15-20 वर्षों वाले आरंभिक दौर में शासन- सश्रा बहुत आतंकित और डरी हुई नहीं थी। वह बड़ी आसानी से किसान-मजदूरों को दबाने में समर्थ थी। 1970 से बाद के संदर्भ में देखे तो शासन सश्रा के चरित्र में एक स्पष्ट बदलाव दिखायी देता है। मेहनतकश जनता के किसान-मजदूर तबके में एकता के साथ ही अन्याय और शोषण के प्रति आक्रोश तथा संघर्ष की भावना में भी वृद्धि हुई। इस परिवर्तित सामाजिक राजनीतिक परिदृश्य में मध्यमवर्ग के जनोन्मुख तबके की संख्या में वृद्धि के साथ ही उसके चरित्र में भी बदलाव आया। शोषित- उत्पीड़ित बहुसंख्यक जनता के प्रति उसका मानसिक लगाव बढ़ा और निर्भय होकर उसने इसे अपने साहित्य में रूपान्तरित भी किया। जो उपन्यास विधा के रूप में हमारे सामने आया। अब अनेक साहित्यकारों ने किसान-मजदूर और निम्नवर्ग से संबंद्ध उपन्यास लिखकर इस वर्ग की पीड़ा,दुःख, दर्द, शोषण एवं आक्रोश को अभिव्यक्ति प्रदान की। स्वातंत्योत्तर काल में प्रेमचंद की परम्परा और प्रगतिशील साहित्यालोचन की अपेक्षाओं के अनुरूप बहुत सारे नये उपन्यासकार सक्रिय हुए। इनमें यशपाल, नागार्जुन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, भैरव प्रसाद गुप्त, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, शिव प्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, राही मासूम रजा, श्री लाल शुक्ल, मार्कण्डेय, उदयशंकर भट्ट, फणीश्वरनाथ रेणु, जगदीश चंद्र आदि जैसे दर्जनों उपन्यासकारों के नाम गिनाये जा सकते हैं। इन उपन्यासकारों ने प्रेमचंद की व्यापक लोकोन्मुखी यथार्थवादी परम्परा को अपने-अपने ढंग से विस्तार और परिष्कार प्रदान कर नवीन दिशा दी।

नागार्जुन ने रतिनाथ की चाची (1949) 'बलचनमा' (1952), नयी पौध (1954) बाबा बटेसरनाथ (1954), दुखमोचन (1956), हीरक जयंती (1958), कुम्भीपाक (1960), उग्रतारा (1964) इमरतिया (1968), जमनिया का बाबा (1968) आदि उपन्यास लिखकर ग्रामीण जीवन के केन्द्र से स्वातंत्योत्तर राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य की आलोचना प्रस्तुत की है। रामविलास शर्मा और नलिन विलोचन शर्मा जैसे सुधी समीक्षक जब प्रेमचंद की तरह के उपन्यास सृजन की इच्छा व्यक्त करने लगे तब इस अपेक्षा को पूरा करने के लिए नागार्जुन ने लगभग एक दर्जन उपन्यास लिखे। नागार्जुन के 'बलचनमा' के प्रकाशन से कुछ समय पूर्व उनकी यह चिन्ता स्वाभाविक ही थी, ''हिन्दी के साम्यवादी साहित्यिक किसान-मजदूर के लेखक रूप में प्रेमचंद की पूजा करते है। इस वर्ग के संबंध में प्रेमचंद ने सचमुच के आश्चर्यजनक ज्ञान और अनुभव के साथ लिखा भी है। उनके बाद किसी भी उपन्यासकार ने किसान-मजदूर वर्ग से संबंद्ध उल्लेख्य उपन्यास नहीं लिखा है- घोर साम्यवादी, उपन्यासकारों ने भी नहीं।''[2] इनकी इस अपेक्षा को पूरा किया नागार्जुन ने नागार्जुन ने,अपने उपन्यासों में मार्क्सवादी दर्शन और प्रगतिशील सामाजिक दृष्टि से मिथिला-अंचल के असंख्य नर-नारी, बाल-वृद्ध, पशु-पक्षी, ताल-पोखर, खेत-खलिहान, बाग-बगीचों के जीवन्त दृश्य प्रस्तुत किये है।

'बलचनमा' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। इसकी कथा की आधारभूमि मिथिला की विराट सांस्कृतिक भूमि है। इस उपन्यास में एक नवयुवक के करुण-वृत्त द्वारा इस अंचल के संपूर्ण सामाजिक ऐतिहासिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्तरों को कलात्मक अभिव्यक्ति दी गयी है। पूरे उपन्यास में किसान का दुःख-दर्द, आशा-आकांक्षा और भूख-प्यास के साथ उसका साहसपूर्ण संघर्ष भी उजागर हुआ है तथा मानवीय अधिकारों पर अंकुश लगाने वाली शोषण व्यवस्था की जर्जर मान्यताओं और परम्पराओं पर कड़ा प्रहार किया गया है। 'बाबा बटेसरनाथ' में बूढ़े बरगद को नायक के रुप में प्रतिष्ठित कर जमींदारों की सामंती प्रवृत्ति के विरूद्ध जनवादी चेतना को उभार कर क्रूर शोषण का विरोध किया गया है। 'दुखमोचन' में एक पिछड़े हुए टमका कोइली गांव के आर्थिक-सामाजिक पुनर्निर्माण का चित्रण किया गया है। 'इमरतिया' और 'जमनिया का बाबा' उपन्यास में अंचल विशेष के धार्मिक, सामाजिक भ्रष्टाचार, तस्करी, राष्ट्रीय अपराध का अत्यंत सीधा-सादा सूचनात्मक विवरण है। 'वरूण के बेटे' में मछुआरा जीवन के अभावों, उसकी संस्कृति और मोहन माझी के नेतृत्व में गढ़ पोखर के पानी पर अपने हक के लिए जमींदार और सरकार के साथ संघर्ष का चित्रण है। 'उग्रतारा' में बाल विधवा के जीवन की संघर्षपूर्ण कहानी है। नागार्जुन ने अपने सभी उपन्यासों में प्रगतिशील समाजवादी दृष्टिकोण अपनाकर तत्कालीन कांग्रेसी शासन सश्रा के प्रति अत्यंत कटु एवं व्यंग्यात्मक रूख का परिचय दिया है। 'नयी पौध' 'कुंभीपाक' 'रतिनाथ की चाची' आदि उपन्यासों में समाज के पुनर्निर्माण के विविध प्रयास दिखायी देते हैं। इनके अधिकांश उपन्यासों में ग्रामीण चेतना को राष्ट्रीय चेतना से जोड़ने का सफल प्रयास किया गया है।

वृन्दावन लाल वर्मा ने 'अमरबेल' (1953) नामक वृहद् उपन्यास में स्वातंत्योत्तर ग्रामीण जीवन के यथार्थ को चित्रित किया है। इसी प्रकार 'अचल मेरा कोई' नामक उपन्यास में भी यही वर्णित है। सुहाना और वांगुर्दन गांवों को केन्द्र बनाकर वर्माजी ने स्वातंत्र्योश्रर काल में जमींदारी उन्मूलन, सहकारिता आन्दोलन, ग्राम पंचायतों के गठन, विकास खण्डों की स्थापना के माध्यम से गाँवों के अधिक सामाजिक उत्थान के लिए अनेक योजनाओं के बावजूद ग्राम-शोषकों की एक लम्बी कतार को भी चित्रित करते हैं। जो परोपजीवी अमरबेल जिस वृक्ष पर चढती है, उसी का रस चूस कर हरी-भरी

और पुष्ट बनी रहती है। ग्रामीण विकास को अवरूद्ध करने के लिए ग्राम-शोषकों के इस जाल को कैसे तोड़ा जाएं, यही उपन्यास की मुख्य समस्या है। अनेक अवरोधों को छिन्न-भिन्न करते हुए ग्रामीण जनता की जागरूकता अंत में सहकारिता आंदोलन में सफल होती है। वस्तुतः यह इनकी आदर्शवादी अवधारणा है।

भैरव प्रसाद गुप्त 'गंगा भैया' उपन्यास में किसानों और जमींदारों के बीच सीधा संघर्ष चित्रित करते हैं। 'मशाल' उपन्यास में आन्दोलनकारी श्रमिक संगठन के संघर्ष का चित्रण है। 'जंजीरें और नया आदमी' सामंती दुराचारों के काले कारनामें उजागर करता है। 'सश्री मैया का चौरा' उपन्यास में कलापक्ष की अपेक्षा विचार-पक्ष अधिक प्रबल है। इस विशाल देश के एक साधारण गाँव के माध्यम से उपन्यासकार ने लाखों गांवों की यथार्थ कहानी प्रस्तुत की हैं। इस प्रकार भैरव प्रसाद गुप्त प्रेमचंद की मजदूर-किसान ग्रामीण परम्परा को आगे बढ़ाने वाले दूसरे महत्वपूर्ण उपन्यासकार है।

रामदरश मिश्र का उपन्यास 'जल टूटता हुआ' स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जनजीवन के विषाक्त वातावरण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। उपन्यास में पात्र सतीश, चन्द्रकांत एवं अन्य पात्रों के माध्यम से गांव की टूटती जिन्दगी के पुनर्निर्माण के प्रति आस्था भी प्रकट की गयी है। उपन्यास में कथा का मुख्य केन्द्र गोरखपुर जिले का तिवारीपुर तथा उसके निकट के कुछ अन्य अविकसित गांव है। जाति-प्रथा, दहेज-प्रथा आदि विकृतियों के साथ ही स्वातंत्र्योश्रर व्यवस्था और विशेष रूप से प्रजातंत्रीय चुनाव पद्धति ने ग्रामीण जीवन को विशेष रूप से संत्रस्त कर दिया है। आस्थाहीन एवं आदर्शहीन जिन्दगी बिताने के लिए पूरा गांव अभिशप्त है। जहाँ भी देखों बाहुबल और गुण्डई का बोलबाला है। परन्तु इन सारी विसंगतियों और नैराश्य के बावजूद उपन्यासकार ने सतीश के माध्यम से यह विश्वास भी प्रकट किया है, ''गाँव टूट रहा है, मूल्य टूट रहे हैं, सत्य टूट रहे हैं, कोई किसी का नहीं, सब अकेले हैं।..... गाँव टूट रहा हैं। मगर नहीं, एक नया गांव भी बन रहा है। वह है किसानों और मजदूरों का।

शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी (1967), लोकोन्मुख ग्रामीण जीवन के यथार्थ का दहकता दस्तावेज है। उपन्यास में भोजपुरी क्षेत्र के कवैता गाँवके माध्यम से गाँवों की वर्ण-व्यवस्था पर आधारित जाति-प्रथा की विषमता को अत्यंत यथार्थ परक ढंग से चित्रित किया गया है। स्वातंत्र्योश्रर काल के जमींदारी उन्मूलन और पंचायती राज की आड़ में एक नयी बिरादरी और नये रिश्ते पनपने लगे हैं। इसलिए सब लोगों की अब अलग-अलग वैतरणी (नदी) बन गयी है और सब उसे अपने-अपने ढंग से पार करना चाहते हैं। लेकिन गाँव की जो स्थिति बन चुकी है, उसमें लेखक ने वैतरणी को पार करने का एक ही रास्ता संकेतित किया है कि अवसरवादी, दलबदलुओं और चुनावीं हथकण्डों के माहिर लूट -खसोट में सक्रीय लोगों को परे हटाकर ऐसे कुशल परोपकारी व्यक्ति को सरपंच बनाया जाय जो ग्रामीण असामाजिक तत्वों से निपटने में समर्थ हो।

जगदीश चन्द्र का 'धरती धन न अपना', 'कभी न छोड़े खेत, 'घास गोदाम', 'मुट्ठीभर कांकर' आदि प्रेमचंद की उपन्यास परम्परा को स्वातंत्र्योश्रर कालीन दलित एवं निम्न वर्गीय किसान-मजदूर के यथार्थ को नयी अर्थवश्रा प्रदान करते हैं। इसी प्रकार मार्कण्डेय का 'रक्तबीज', कृष्णा सोबती का 'जिन्दगीनामा' भी विशेष उल्लेखनीय उपन्यास है। 'रक्तबीज' उपन्यास में प्रगतिशील दृष्टि से पूर्वी उश्रर प्रदेश के ग्रामीण परिवेश में शिक्षा-व्यवस्था, ऊँच-नीच की भावना पर आधारित जाति-व्यवस्था, शादी-विवाह संबंधी विकृतियों को यथार्थपरक ढंग से उद्घाटित किया गया है। 'जिन्दगीनामा' में कृष्णा सोबती ने पंजाब के कुछ गांवों को केन्द्र में लेकर स्वाधीनता आन्दोलन की गतिविधियों के साथ स्वतंत्रता प्राप्ति तक के पंजाब की समस्त सामाजिक हलचल को, उसके समूचे सांस्कृतिक परिवेशके साथ अत्यंत यथार्थ परक और कलात्मक ढंग से अपने इस उपन्यास में चित्रित किया है।

राही मासूम रजा का प्रसिद्ध उपन्यास 'आधा गांव' (1966), प्रेमचंद की परम्परा का स्वातंत्र्योश्रर कालीन एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें गाजीपुर के गंगोली गाँव के शिया मुसलमानों के दस परिवारों को मुख्य आधार बनाया गया है। इसलिए इसे 'आधा गाँव' की संज्ञा दी गयी है। लेकिन कथाक्रम में गाँव की समस्त ऊँची-नीची जातियां इसमें आ जाती है। उपन्यासकार ने 1937 से 1952 तक के 15 वर्षों के काल खण्ड में होने वाली विशिष्ट घटनाओं का शिया मुसलमानों पर पड़ने वाले प्रभाव को मुख्य रूप से हिन्दू-मुस्लिम और भारत-पाक विभाजन के संदर्भ में अंकित किया है। सन् 1937 से ही विभाजन की काली छाया फैलने लगती है, जो विभाजन के समय तक गंगोली के साथ ही पूरे देश को अपनी चपेट में ले लेती है। इस घटना ने केवल दो कौमों को बाँटा ही नहीं, वरन् हिन्दू को अधिक हिन्दू और मुसलमान को अधिक मुसलमान बना दिया।

इस उपन्यास में साम्प्रदायिक विद्वेष के साथ ही ग्रामीण जीवन की संपूर्ण विकृतियों को अत्यंत यथार्थ- परक ढंग से उजागर किया गया है। उपन्यासकार का दृष्टिकोण मार्क्सवादी प्रगतिशील चिन्तक होने के कारण इसमें हिन्दू-मुस्लिम तनाव, भारत-पाक विभाजन और तमाम सारी ग्रामीण विकृतियों को एक प्रगतिशील परिप्रेक्ष्य प्रदान किया गया है। इनके अन्य प्रमुख उपन्यास 'टोपी शुक्ला', 'हिम्मत जौनपुरी', 'असंतोष के दिन' आदि में भी स्वातंत्र्योश्रर कालीन अनेक विकृतियों और राजनीतिक षडयंत्र के चित्रण में अपनी इसी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय मिलता है।

साठोत्तरी उपन्यासकारों की चर्चा करें तो इनमे विशेष रूप से तत्कालीन जनजीवन के प्रति गहरे लगाव की प्रवृति तीव्र हुई है। जनजीवन पर चौतरफा आक्रमण में लीन राजनीतिक गुट, नौकरशाही, पुलिस तंत्र, पूंजीपति, जमींदार और धोखा-धड़ी में माहिर तबकों की नृशंसता को उपन्यासकारों ने अत्यंत यथार्थपरक ढंग से उजागर किया है। राही मासूम रजा का 'असंतोष के दिन', रवीन्द्र कालिया का 'खुदा सलामत है' अशोक अग्रवाल का 'वायदा माफगवाह' मुद्राराक्षस का 'शांति भंग', यादवेन्द्र शर्मा का 'प्रजाराम' आदि उपन्यासों में जनोन्मुखता की प्रवृश्रि निरंतर बढ़ती हुई दिखाई देती हैं।

सन्दर्भ सूची:-

1. हिन्दी साहित्य कोष, खंड एक
2. आलोचना इतिहास अंक, पृ. 11

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

शशांक का जीवन-रहस्य

नेहा कुमारी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार

अलका सरावगी द्वारा लिखा गया उपन्यास 'कोई बात नहीं' का शशांक एक ऐसा पात्र है जिसके जीवन को केंद्र में रखकर इस उपन्यास की सर्जना की गई है। उपन्यासकार ने शशांक के माध्यम से नारी जीवन के साथ मां की उस भावना को भी व्यक्त किया है जो पुत्र के लिए कुसमय आने पर असहज हो जाती है। यह उपन्यास शशांक की मनोवृतियों को खोलता है साथ ही कलकश्रा शहर के मन मिजाज को भी सामने रखता है। इस उपन्यास के प्रारंभ में अलका सरावगी ने प्रकृति चित्रण करते हुए लिखा है-''देख, इस पानी को देख। गंगा का बहता पानी, कितना पानी, न जाने कब से बहता आया। इसका कोई आदि है? कोई अंत है? और देख, यह हावड़ा पुल। इस किनारे से उस किनारे। इधर कलकश्रा, उधर हावड़ा। देखती है न? देखती- देखती तो बुढी हो गई। बच्ची से बुढी। पर क्या देखा? क्या समझा क्या पाया? पूछती है कि ऐसा क्यों हुआ? क्यों का पर्दा मत उठा बावली। उठेगा तो यों भी नहीं, पर कोशिश भी मत कर। नहीं तो राह भटक जाएगी।''[1]

शशांक सत्रह वर्षीय एक बालक है। वह अपने जन्म के समय से ही संघर्ष कर रहा है। उसका जन्म जिस रूप में हुआ था न तो आम लड़कों की तरह वह बोल सकता था, न चल-फिर सकता था। यही कारण है कि वह एक तरह से अपाहिज का जीवन जी रहा था। लेकिन उसके मन में ढेर सारे सपने थे। वह दूसरे लड़कों को पढ़ते-खेलते देखता, तो उसके मन में भी कई तरह का उमंग का भाव बनता और सोचता कि भले ही मैं अपाहिज हूं, अपंग हूं, लेकिन यह जितना काम करता है, जितना पढ़-लिख लेता है, मैं भी किसी तरह कर लेता। इसके मन में ये सारी भावनाएं तूफान मारती रहती थी। इन्हीं भावनाओं के बीच वह जिस परिवार में रहता आया था वहां की भी कई समस्याएं थी जिससे यह प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता था? उसकी दादी जिसकी शादी हुई थी, लेकिन 28 साल तक उसने अपने जीवन में वैधव्य की पीड़ा को सहा था। उसकी दादी नाटी थी, इस कारण उसकी शादी पैसे के बल पर हुई थी। वह अपने ही घर में इस पार से उस पार बिना किसी सहारे के जीवन को बीताये जा रही थी। उसका जीवन एक कैदी के जीवन की तरह हो गया था। जब भारत से चीन का युद्ध छिड़ा था उस समय जवाहरलाल नेहरू ने देशवासियों से मदद करने के लिए अपील की थी। उन दिनों उन्होंने अपने हाथ में पहनने वाली चूड़ियों को जो सोने की बनी थी, अपनी सहेली द्वारा भिजवा दिया था। इसकी दादी शशांक के जीवन को देखकर उसके प्रति हमेशा दया और सहानुभूति का भाव रखती थी। उसकी तकलीफसे यह भी हमेशा प्रभावित रहती थी और मन ही मन कल्पना करती थी कि जितना जल्दी हो यह ठीक हो जाए। इस तरह शशांक के सामने दादी का भी जीवन था इसके प्रति वह सोच करता था। एक बार शशांक विक्टोरिया मेमोरियल मैदान में गया था उसने जतीन दा को देखा। उसको देखने के बाद इसको लगा कि जतीन दा दो रूपों वाला आदमी है। उसके भीतर यह जिज्ञासा बनी रही। तब वह अपनी दादी से पूछता है-''एक आदमी के दो रूप हो सकते हैं।''[2] तो उसकी दादी तीन रूपों वाली मानहट्टी की कहानी तथा चार साड़ियों के लिए जान देने वाली औरत की कहानी को समझा कर कहती है। फिर वह यह भी सवाल करती है कि तुम्हें ऐसा कौन सा व्यक्ति मिला है जो दो रूपों वाला है। उसने बताया की जतीन दा मुझे दो रूपों वाले आदमी लगते हैं इतना ही नहीं उसने यह भी बताया कि वे मुझे कई तरह की कहानी सुनाते हैं और उन कहानियों का विषय वस्तु आतंक और हिंसा से जुड़ा हुआ होता है। इसके साथ ही मित्र जैंक्सन तथा बीस साल न्याय के लिए झगड़ने वाले षीर्शेन्दु की कहानी को भी बताता है। जब वह इन कहानियों को सुनता है तो उसके मन में संदेह होता है लेकिन उसके समाधान का कोई रास्ता नहीं निकल पाता।

शशांक रोज की तरह स्कूल जाता है लेकिन एक दिन लंच ब्रेक के समय वह बेहोश हो जाता है और उसका बोलना-चालना बंद हो जाता है। जब उसकी मां वहां पहुंचती है तो कहती है-'' शशांक तुम जब बोलने लगोगे, तो मैं तुम्हें कभी जिंदगी भर चुप रहने को नहीं कहूंगी।''[3] शशांक बेहोशी के कारण गूंगा बन जाता है लेकिन और छात्रों के साथ जो उसकी प्रतियोगिता चलती है वह सोचता है कि अब मैं असफल हो जाऊंगा। उसकी मां रात दिन इसका ख्याल करती है। उसने शशांक के शिक्षक जोसेफ के नाम एक पत्र लिखा था जिसमें अपनी मनःस्थिति के साथ शशांक विषयक उसका मनोभाव व्यक्त हुआ है जो इस प्रकार है- शशांक को लग रहा था क्यों अपनी मां को इतना परेशान कर रहा हूं। वह इसी उधेड़बुन में था। तब तक देखता है उसकी मां द्वारा लिखा हुआ एक पत्र था। उसे देकर वह चुपचाप कमरे से बाहर चली गई। शशांक बहुत परेशान था कि मां ने इस पत्र में आखिर क्या लिखा है? जब उसने लिफाफा खोल तो देखा लिखा हुआ है-

'' डियर मिस्टर जोसेफ

मैं जानती हूं आप शशांक और सारे बच्चों की भलाई की हमेशा चिंता करते आए हैं। कभी-कभी इतनी भी कि वह बेजरूरत लगने लगती है और लोग आपकी नेकनियति और निष्ठा की कदर नहीं कर पाते हैं। पर इस बात से घबराकर आप कभी पीछे नहीं हटे। यकीन मानिए कि इस बात के लिए मेरे दिल में आपके लिए बहुत इज्जत है और इसी कारण मैं आपको यह पत्र लिखने का साहस जुटा पाई हूं। आज शशांक जीवन के उस मोड पर खड़ा है जब उसने अपना बहुत कुछ खो दिया है। इतना कुछ कि उसके कष्ट की कल्पना करना उसकी मां होते हुए भी मेरे लिए असंभव है। पर उसकी हिम्मत का कायल होने के कारण सिर्फ उसकी मां होना नहीं है। यह तो कोई भी देख

सकता है कि उसके रास्ते पर चलना उसके जैसी स्थिति में पड़ने पर हम में से किसी के लिए नामुमकिन नहीं तो कम-से-कम आसान तो नहीं होता। यों शायद उसके पास भी इस रास्ते पर चलने के अलावा कोई चारा नहीं है।

कभी-कभी सिर्फएक कदम-भर चल पाना भी आदमी के हाथ में होता है, यह जानते हुए कि आगे तक नहीं पहुंच पाने की स्थिति में इस एक कदम चलने में जी- जान लगा देने का कोई मतलब नहीं होगा। मेरा ख्याल है कि हमें शशांक को वह एक कदम चलने देना चाहिए। क्या पता कि इसी एक कदम से कोई आगे का रास्ता निकल आए। वैसे भी इसके अलावा हमारे पास क्या चारा है?

शुभकामनाओं सहित
मिसेज चौधरी ''[4]

''उसे पत्र को पढ़कर शशांक के भीतर गर्व का भाव बना और वह सोचने लगा मां ने बिना कुछ कहे जोसेफको ठीक झापड़ लगा दिया है। साला, बहुत तीसमारखाँ समझता है अपने आप को। देखें क्या असर होता है इस चिट्ठी का उस पर। ठीक है मां ने धीरे से कमरे में आकर लगभग फुसफुसाकर पूछा। वह मुस्कुराया और उसे अंगूठा ऊपर कर शाबाशी का संकेत बनाया।''[5]

इसी समय भागवत कथा सुनने के लिए पंडित जी की एक बेटी सुमन बाई आई हुई थी। उन्होंने शशांक के भविष्य के बारे में बताया ''आपने तो नहीं पूछा भाभी पर मैं कहती हूं कि आपका बेटा ठीक हो जाएगा। एकदम पहले जैसा हो जाएगा।''[6] शशांक जिस स्कूल में पढ़ता था इसका एक दोस्त आर्थर है जो एंग्लो इंडियन है। वह हर समय शशांक के साथ रहता है इतना ही नहीं, वह उसके जीवन के सुख-दुख का साझेदारी भी है। बहुत अवसर ऐसा आया, जब उसने सोचा कि मैं शशांक को किस प्रकार खुश रख सकता हूं, उसके लिए हंसने-हंसाने का कोई-न-कोई अवसर ढूंढता रहता। आर्थर और शशांक दोनों में काफी अंतर था। इस कारण उसकी दादी ने कहा एक तो दूसरी जात का और ऊपर से पढ़ने में निखट्टू । और चलो तुम्हें अच्छा लगता है उसे दोस्त बनाया ही है तो उसे अच्छी बातें सिखाओ, उसे बुरी बातें क्यों सिखाते हो।[7] शशांक अपनी मौसी आरती के जीवन से भी प्रभावित है। वह किस्सा और कहानी लिखती है। जब वह कहीं प्रकाशित नहीं होती और वापस होकर लौट आती है तो उसकी मौसी को तकलीफतो होती ही है शशांक भी उन कहानियों के प्रति चिंता प्रकट करता है। शशांक को इन कहानियों के प्रारंभ और अंत के बारे में कुछ समझ में नहीं आता।

इस उपन्यास में हम देख पाते हैं कि शशांक प्रारंभ से लेकर अब तक अपने जीवन में आई हुई बीमारी से संघर्ष करता दिखाई देता है। जब उसकी उम्र आठ साल की थी। शशांक के बुआ के घर में मद्रास के एक डॉक्टर आए थे। उनसे अपने जीवन संघर्ष के बारे में बताते हुए वह कहता है- कि पैदा होते समय गले में लिपटी कार्ड या नली, डॉक्टर के मां का सिजेरियन ऑपरेशन करने में लापरवाही से देर होने के कारण उसके दिमाग में हुई ऑक्सीजन की कमी, पहले तीन महीनों में कई बार हुई ऐंठन, देर से गर्दन संभालना, देर से बैठना, खड़े होना- यानी माइल्स्टोन्स डिलेड आदि-आदि। 8 उसके इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि डॉक्टर की लापरवाही के कारण ही उसे इस तरह का जीवन जीना पड़ा है, साथ ही वह रोग और पीड़ा का शिकार हुआ है। शशांक को अपने जीवन में ढेर सारी मुसीबतों का सामना करना पड़ा है। एक बार स्कूल में जब लंच का समय होता है उस समय शशांक अपने संघर्ष के बारे में कहता है-''चारों तरफकी दुनिया धुंधली होते-होते काली हो रही हो। उसने कोशिश की थी वह अपनी पानी की बोतल से पानी पी ले, ताकि सब ठीक हो जाए पर पता नहीं क्या हुआ था। वह शायद गिर गया और पानी की बोतल भी उसे भींगोंते हुए गिर गई।''[9]

बाद में ईश्वर का आशीर्वाद कहें या शशांक का भाग्य, धीरे-धीरे वह ठीक होने लगा और वह अपनी बीमारी से छुटकारा पाने लगा। अब उसे एहसास हो रहा था कि धीरे-धीरे मैं ठीक होता जा रहा हूं और अब मैं चलने भी लगूंगा और बोलते भी लगूंगा। वह अपना काम धीरे-धीरे करना शुरू करता है उसकी ऐसी स्थिति देखकर उसकी मां मन-ही-मन प्रसन्न होती है और फोन पर दूसरे से बताती है-''शशांक अब अपने सारे काम खुद कर सकता है, नहाना-धोना, खाना-पीना, कपड़े पहनना वगैरह-वगैरह। वह दीवारें और फर्नीचर पड़कर इधर से उधर जा सकता है।''[10] शशांक की मां ईश्वर से बहुत नफ्रत करती है उसे इस बात की शिकायत है कि शशांक के लिए आपने कुछ नहीं किया। वह देखता है कि मेरी मां और पापा उन दोनों के भीतर भी अलग भाव बनता जा रहा है कभीं ईश्वर को खुश कर रहे हैं कभी अपने को भी देख रहे हैं। उन दोनों को ऐसी स्थिति में पाकर वह कहता है-''कोई बात नहीं।''[11]

कुल मिलाकर इस उपन्यास में हम पाते हैं कि शशांक के जीवन से इसका पूरा कथानक बुना हुआ है इसके साथ ही शशांक के लिए उसके माता-पिता अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं। वे चाहते हैं कि कब हम दोनों शशांक को दूसरे लड़कों की तरह चलता-फिरता-बोलता देखें। यह उपन्यास एक संदेश से भी छोड़ जाता है कि शशांक जिस तरह अपंग होने पर भी अपनी हार नहीं मानता, वह सतत् अपने जीवन पथ पर आगे बढ़ता है और कहीं न तो निराश होता है न समझौता करता है, इसी तरह दूसरे को भी चाहिए कि हम इसी मार्ग पर चलें, जीवन में हम कभी निराश न हो।

संदर्भ सूची:-

1. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-06
2. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-113
3. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-191
4. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-168
5. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-168
6. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-191
7. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-29
8. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-115
9. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-110
10. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाषन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-218
11. कोई बात नहीं-अलका सरावगी-राजकमल प्रकाषन, नई दिल्ली-2004-पृष्ठ सं0-220

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

निर्गुण भक्ति काव्य और समकालीन दलित समाज

सत्यनारायण खोईवाल
प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा

1. शोधार्थी, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
2. आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

प्रस्तावना:–मध्यकालीन भक्तिआंदोलन में निर्गुण आंदोलन अपनी जिस प्रवृत्ति के कारण सांस्कृतिक इतिहासपर एक अमिट छाप छोड़ता है वह है–लोक क्रांतिकारी प्रवृत्तियाँ। ऐसा लगता है कि इन संतों ने जनसामान्य की आशाओं, आकांक्षाओं को कविता के माध्यम से भक्ति की उठान में जो अत्यन्त प्रकृत रूप में प्रस्तुत किया उससे एक तरफ दलित शोषित जनता में आत्मविश्वास का संचार हुआ, दूसरी तरफ भारतीय सामाजिक व्यवस्था को पुनरालोचन की चुनौती मिली। यह नितांत आश्चर्य जनक लगता है कि महज अंत:साधना के बल पर कुछ संतों ने ऐसी बातें कही और इतनी शक्ति के साथ कही कि एक तरफभारतीय दर्शन को मुड़कर आत्मलोचन करना पड़ा वही दूसरी तरफ सांप्रदायिक भेदभाव जैसी कुरीतियों को भी गहरा धक्का लगा जिनके बलपर कथित कट्टरपंथी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे थे। निर्गुणमत अभिजात्य व्यवस्था को जहाँ सवालिया घेरे में खड़ा कर देता है वहीं सामाजिक सभ्यता के आधार और सद्प्रवृत्तियों के आधार पर एक नयी सामाजिक संरचना के लिए प्रोत्साहन देता है। निर्गुण भक्तिधरा का साहित्यिक मूल्यांकन करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं– ''इस कालखण्ड के सभी कवि प्राय: अनपढ़ है, इन कवियों ने लोक स्तर पर तो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं, जिससे दलितवर्ग का आत्मविश्वास जगा है और नीची समझी जाने वाली जातियों में विश्वास तथा उत्साह का संचार हुआ है। लेकिन दूसरे स्तर पर ये वेदशास्त्र को समझे बिना उसकी निंदा करते हैं, उनकी छवि लोक भंजक के रूप में नजर आती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उक्त बातें विशेषतया कबीर के संबंध में कहीं हैं। बाद में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा इस मत का कड़ा प्रतिवाद किया गया है। वे इन संतों में अस्वीकार का साहस देखते हैं और अस्वीकार का साहस ही निर्गुण साहित्य के सर्जनात्मक पक्ष का प्राणतत्त्व है। चाहे कबीर हो या भीखा हों, दादूया रैदास हों,ये सभी संत परम्परागत रूढ़िगत सामंती संस्कृति से समर्थित आचारविचार, जीवन, संस्कृति का विरोध करते हैं। कोई परोक्ष रूप से कोई प्रत्यक्ष रूप से लेकिन निर्गुण धारा के सभी कवियों के कृतित्व में भक्ति की शीतल गंगा के नीचे विद्रोह की भी एक सशक्त रचनाधरा बह रही है।

निर्गुण भक्तिधारा एवं दलित समाज:–चौदहवीं सदी में मध्य से सत्रहवीं सदी के मध्य तक भक्ति का अनवरत प्रवाह भारत की कोटि–कोटि दलित शोषित जनता के लिए शक्ति और स्फूर्ति का पर्याय रहा, इसलिए ग्रियर्सन से लेकर राम विलास शर्मा तक साहित्यकारों–आलोचकों ने इसकी पहचान लोक जागरण–नवजागरण के रूप में की है। निर्गुण काव्यधारा से ही भक्ति का आन्दोलनात्मक स्वरूप दिखाई पड़ता है। किसी भी साहित्यिक आन्दोलन के अपने गहरे सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार होते हैं। समाज निरपेक्ष जैसी रचना संभव ही नहीं है। निर्गुण कवियों की रचनाएँ भी इसका अपवाद नहीं हैं। वस्तुत: निर्गुण भक्ति आंदोलन का अपना एक वृहत्तर जनाधर था। समाज के शोषित–पीड़ित वर्ग की समस्याओं से इन आंदोलन का गहरा नाता था। साथ ही अपने व्यापक समाज की मूलभूत चिन्ताएँ इन कवियों की संवेदनाओं में विन्यस्त हैं।

पूर्व मध्यकाल में भक्ति को एक व्यापक आन्दोलन के रूप में विकसित करने का श्रेय दक्षिण भारत के तमिल क्षेत्र के अलवार एवं नयनार संतों को दिया जाता है। परन्तु उत्तर भारत में प्रेम आधारित भक्ति की शुरूआत का उचित श्रेय निर्गुण कवियों को ही दिया जाता है। 'भक्ति द्रविड़ उपजी 'की उक्ति इस का प्रमाण है कि भक्तिआन्दोलन का प्रारंभ दक्षिण भारत में पहले पहले शुरू हुआ। ऐतिहासिक रूप से भी इस बात की पुष्टि होती है कि''आलवारों एवं नायनारों ने ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत प्रेम तथा समर्पण को मोक्ष प्राप्ति का प्रत्यक्ष मार्ग बताया और जातिप्रथा की वर्जनाओं और इसकी कठोरता का विरोध किया।''वस्तुत:तुर्कों के आगमन से पूर्व की जातिप्रथा और वर्णाश्रम की दार्शनिक निष्पत्तियों को चुनौती मिलनी शुरू हो गई थीं।

इसका गहरा सरोकार समाज के अन्त्यज एवं अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों से था। पहले–पहल उत्तर भारत में सिद्ध एवं नाथों ने यह चुनौती वर्णाश्रम के समक्ष प्रस्तुत की। इसकी दार्शनिक निष्पत्तियों एवं शब्दावलियों की निर्गुण भक्ति संवेदना के संदर्भ में चर्चा की जा चुकी है, फिर भी इस क्रम में इस विचारधारा की सामाजिक पृष्ठभूमि की चर्चा कर लेना प्रासंगिक होगा। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सिद्धों एवं नाथों में बहुत से ब्राह्मण भी ऐसे थे, जिन्होंने ब्राह्मणों के जातिगत अभिमान पर चोट की ''बहुत से विद्रोही, उदारमना ब्राह्मण नई व श्रमिक जातियों से अधिक निकटता अनुभव करते थे, उनका जीवन, उनका चिंतन सभी उन्हें अनुदार ब्राह्मण कर्मकाण्ड से अधिक मानवीय, स्वस्थ और सहज लगता था जिससे स्पष्ट है कि सरहपा आदि उसी प्रकार के लोकजीवन से चलने वाले विद्रोही ब्राह्मण थे। आज के इस युग के अस्मितावादी विमर्श में उन सिद्धों की उक्तियों का अपना एक अलग महत्त्व है। आचार्य द्विवेदी ने सरहपाद कीएकरचना लिख करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार ब्राह्मणों के जातिगत अभिमान और कर्मकाण्ड पर चोट कि गई है। सरहपा कहते है कि –

ब्रहम्मा के मुँह से पैदा हुए थे, जब हुए थे तब हुए थे।

इस समय तो दलित भी वैसे ही पैदा होता हैं जैसे दूसरे लोग तो

फिर ब्राह्मणत्व कहाँ रहा।''

वस्तुतः वर्णाश्रमवादी व्यवस्था के प्रति सिद्धों-नाथों का वह विद्रोह मानव मात्रा की एकता को संपादित करने की दिशा में एक कदम था। नाथों एवं सिद्धों ने वर्णाश्रम की विचारधारा और कर्मकाण्डों को निशाने पर रखा। सिद्धों एवं नाथों की सामाजिक पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए धर्मवीर भारती ने लिखा है कि ''वास्तव में इसके पीछे वही सामाजिक परिस्थिति एवं जातिगत संघर्ष रहा होगा जिसमें वे ब्राह्मणों द्वारा तिरस्कृत किए जा रहे थे जो केवल कर्मकाण्ड पर निर्भर थे। इन नई प्रवृत्तियों वाले ब्राह्मणों तथा उनके साथ अन्य नई श्रमिक जातियों ने नव तांत्रिक सम्प्रदाय अपनाया।

नाथों-सिद्धों की परंपरा से जुड़कर और उनकी पारिभाषिक शब्दावलियों को ग्रहण करते हुए भी निर्गुणकवियों की'कथनी'और संवेदना इनसे बिल्कुल भिन्न हैं यह फर्क उनके अपने गृहस्थ जीवन के प्रति आस्था और सामाजिक विसंगतियों को अपने आलोचनात्मक विवेक से परखने के कारण है। वस्तुतः संतो ने नाथों-सिद्धों द्वारा निर्मित बाह्याचारों एवं यौगिक मुद्राओं का उसी तेवर में प्रतिवादकियाहै जिस तेवर में वे वर्चस्वशील वर्णाश्रमवादी विचारधारा के बाह्याचारों और कर्मकाण्डों को विरोध करते हैं। यही कारण है कि नाथ-सिद्ध (साहित्य के अध्येता रहे धर्मवीर भारती यत्किंचित आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखते हैं कि ''लोक ओर संत लोग चौरासी सिद्धों और नाथों की उपेक्षा कर रहे थे किन्तु दूसरी ओर उन्हीं सिद्धों द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों को ग्रहणकर उसको नया अर्थ देने का प्रयास कर रहे थे। आगे धर्मवीर भारती इस क्रम में लगभग अनुमान की मुद्रा में लिखते हैं कि''कबीर तथा अन्य संतों का कार्यक्षेत्र निम्नवर्ग ही था। अतःउन्हें उन्हीं सम्प्रदायों द्वारा स्वीकार शब्दावली अपनानी पड़ी होगी किन्तु सन्तों ने उन्हें अपने समय में प्रचलित वज्रयानी सम्प्रदायों के लोकप्रिय पारिभाषिक शब्दों के साथ प्रयोग किया।''

प्रायः निर्गुण कवियों का सम्बन्ध समाज की अशृष्य और अन्त्यज समझी जानेवाली जातियों से था। इनमें से कई संतो का सीधा सम्बन्ध शिल्पी जातियों से था। कबीर, रैदास, नामदेव और दादू तो क्रमशः घोषित तौर पर जुलाहा, चर्मकार, दर्जी और धुनिया नामक शिल्पी जातियों से आए थे। यह सभी व्यक्ति की योग्यता और प्रतिष्ठा को महत्त्व देने हुए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के समर्थक थे। के. दामोदरन ने भी निर्गुण भक्ति आन्दोलन के आरंभ को व्यक्तिगत स्वतन्त्राता की अभिव्यक्ति माना है। उनके अनुसार निर्गुण भक्ति आन्दोलन''व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं को ऐतिहासिक आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति था।''साथ ही यहभी सही है कि''निर्गुण परम्परा में सामान्यरूप से अन्तर्निहित व्यक्ति सत्ता की अवधारणा किसी पूर्णतः विकसित दार्शनिक परिकल्पना का रूप न ले सकी। इसके बावजूद 'प्रदत्त सामाजिक अस्मिता' का इन कवियों ने अपने तई विरोध करते हुएएक नए वैकल्पिक समाज व्यवस्था का प्रतिपादन किया। कबीर का 'शून्यदेश' और रैदास का 'बेगमपुरा' इसका प्रमाण है।

निर्गुण कवियों की भक्ति एवं कविता का आधार उनका अपना गृहस्थ जीवन था। इनका गृहस्थ जीवन वैराग्य जीवन की अपेक्षा ज्यादा कठोर और तपोमय था। ऐसे समय में तुर्को का आगमन एक युगान्तकारी घटना के रूप में सामने आता है। इस क्रम में आचार्य रामचन्द्रशुक्ल द्वारा अनुमोदित तुर्को के आक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न प्रतिक्रिया के विचार का आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बहुत पहले खंडन कर दिया था। उन्होंने अपनी पुस्तक'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में 'जोर देकर' कहा कि ''अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बाहर आना वैसा ही होता जैसा आज है।' इस क्रम मेंआचार्य द्विवेदी ने जो विचार अवकाश छोड़ा है उस पर भी विचार कर लेना प्रासंगिक होगा। वस्तुतः तुर्कों के आगमन से एक नई आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन की प्रतिक्रिया प्रारंभ हुई, जिसमें कई शिल्पी और श्रमिक जातियों की स्थिति सुधरी। अपनी आर्थिक स्थिति में आए हुए सुधार से इन शिल्पी और श्रमिक जातियों में अपनी सामाजिक स्थिति के प्रति एक नई चेतना विकसित हुई।

इरफान हबीब के शोध-निष्कर्षों से अपनी सहमति जताते हुए नामवर सिंह ने लिखा है कि ''इरफान हबीबने13वीं-14वीं सदी के सन्दर्भ में'प्रौद्योगिकीय परिवर्तन और समाज' शीर्षक शोध-प्रबन्ध म ठोस तथ्यों के आधार पर यह दिखाने का प्रयास किया है कि तुर्कों के शासन के समय वस्त्र उद्योग ,सिंचाई, कागज, प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय विकास हुआ। नई तकनीक में कुशलदक्ष कारीगर प्राप्त करने की ललक ने व्यक्तिगत कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया होगा।

कागज के प्रचलन से अखिल भारतीय बाजार के विकास में मदद मिली होगी।''ऐसे में तुर्को के कारण भारतीय समाज के सामन्ती ढाँचे के अन्दर व्यापारी पूँजीवाद के विकास की दिशा में अवश्य ही कुछ उल्लेखनीय परिवर्तन हुए होंगे, जोदेर-सवरे सामाजिक-साहित्यिक परिवर्तन के लिए भी पृष्ठभूमि तैयार कर सके होंगे।'' कबीर केवल ब्राह्मण धर्म ही नहीं, समूची रूढ़ सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए यह घोषणा करते हैं। वह अभिजात्यता, साम्प्रदायिकता, कर्मकाण्ड आदि पर पैना प्रहार करते हैं-

''जौ बामन तू बमनी जाया, आन राह तू काहे न आया'

या 'मुसलमान के पीरऔलिया मुर्गी मुर्गा खाई'

कबीर की इस खण्डनात्मक पक्ति में भी लोकधर्म की परिकल्पना है। यह परिकल्पना हमारे आज के समय से सीधे जुड़ती है।समूचे संत मत में लोक और शास्त्रों का ही द्वन्द्व नहीं है, बल्कि लोक और लोक के बीच का भी द्वन्द्व है। वह संसार को ऐसे ही ग्रहण करना चाहते थे जैसा कि वह है। लोक को सावधान करके ही कबीर अपनी आध्यात्मिक चिन्ता से जनता को मुखातिब करते हैं। जिसमें मानवीय शक्ति, मानवीय न्याय और इस सबसे ऊपर परम प्रेम की परिकल्पना लक्षित होती है। वह स्पष्ट कहते हैं - 'लोका का तुम हो, मति के भोरा हो।'

लोक और लोक शास्त्र के बीच का द्वन्द्व संतों के यहाँ समूचे अंतर्विरोधके साथ प्रकट हुआ है। निर्गुण संत लोक में प्रचलित समान कुरीतियों तथा प्रथाओं की निंदा करते हुए उसे विवेकशील बनाना चाहते हैं। इसे भी संत मत द्वारा निर्दिष्ट लोकधर्म के अन्दर ही जाना पहचाना जाना चाहिए। कहना न होगा कि निर्गुण भक्त कविता अपने आन्दोलनात्मक तेवर के साथ दलित-शोषित जनता के पक्ष में खड़ी होती है और समकालीन दलित विमर्श को एक प्रेरणा देती है। दोनों ही आन्दोलनों के केन्द्र में मानवीयता है यही इन दोनों आन्दोलनों का साम्य भी है और विशेषता भी है। संत काव्यधरा में धुनिया, चमार, जाट, खत्री, क्षत्रिय सभी शामिल हैं। 15वींशती से 18वीं शताब्दी तक संतमत का आन्दोलन राष्ट्रव्यापी रहा। प्रायः सभी संत गृहस्थ थे सामंतवाद से लोहा लेते हुए ये नवमानवतावाद को जन्म दे रहे थे। 1672 में सतनामियों का किसान विद्रोह इतिहास का प्रथम किसान विद्रोह था। नामवर सिंह,रामस्वरूप चतुर्वेदी,शिव कुमार मिश्र आदि आलोचकों ने संतकाव्य के अनगढ़ रचनात्मक चरित्र तथा प्रगतिशील वैचारिक दृष्टि को सराहते हुए इसे प्रथम प्रगतिशील रचनात्मक आंदोलन कहा है।

सन्दर्भ सूची:-

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी – मध्यकालीन बोध का स्वरूप, पृष्ठ 12
2. विजय कुमार मिश्र ;संपादक–सामयिक मीमांसा, अंक–1, वर्ष–4,जनवरी–जून 2011, पृष्ठ 16
3. सुमन राजे–हिन्दी साहित्य का आध इतिहास, पृष्ठ 55
4. भक्तिकाल पर संगोष्ठी 2012, जे.एन.यू., नई दिल्ली में. मैनेजर पाण्डेय द्वारा दिए गए व्याख्यान से साभार।
5. मिश्र बन्धु ;गणेश बिहारी, श्याम बिहारी व शुकदेव बिहारी मिश्र – हिन्दी नवरत्न, पृष्ठ 11
6. मिश्र बन्धु ;गणेश बिहारी, श्याम बिहारी व शुकदेव बिहारी मिश्र – मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ 57
7. इम्तयाज अहमद – मध्यकालीन भारत: एक सर्वेक्षण, पृष्ठ 130
8. हजारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृष्ठ 109
9. के. दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृष्ठ 334
10. नामवर सिंह – दूसरी परम्परा की खोज, पृष्ठ 75–76

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

जीवन की आशाओं पर झपट्टा मारती - 'चील'

दीपक कुमार सेठिया

नेट, सेट, हिन्दी, शिक्षक, मा. शा. पुलचा, जगदलपुर, बस्तर, छग.

गुलशेर खाँ षानी नई कहानी आंदोलन से जुडे कथाकार है। उनका जन्म जनजातीय क्षेत्र बस्तर (छ.ग.) के जगदलपुर कस्बे में 1933 में हुआ था। वे निम्न मध्यम वर्गीय मुस्लिम जीवन आदिवासी जीवन चित्रण के कथाकार है। निम्न या मध्यमवर्गीय जीवन उसकी अर्थाभाव, पीड़ा तथा जीवन संघर्ष को उन्होनें अत्यंत नजदीकी और पूरी सजगता से देखा और उसे पूरी शिद्दत से उकेरा भी।

आम आदमी के जीवन की कठिनाईयों, जीवन संघर्ष न्यूनतम जरूरतो के जीने के लिए जी तोड़ मेहनत करके भी असफल लोगो की कहानियाँ शानी कहते है, चाहे वह' रहीम चाचा' हो चाहे जीवन की स्वाभाविक आशाओं पर झपट्टा मारती 'चील' हो। हर जगह षानी की बुनियादी पक्षधरता निम्न या निहायत दबे-कुचले आम आदमी के प्रति है। इस दृष्टि से शानी की ''चील'' कहानी एक खास महत्व रखती है। भले ही शानी में यहाँ अनुभूति की प्रामाणिकता 'या' भोगा हुआ जीवन न हो, लेकिन जो भी चित्रित किया है वह 100 प्रतिशत सत्यता की झलक देती है। यहाँ कहानी कला की गूढ़ता, कौशल, सुगठितता भले न हो एक आम आदिवासी जीवन के जीवन संघर्ष की जलन भरी आँच अवश्य है जो हमें सोचने को प्रेरित करती है कि - आदिवासी जीवनोत्थान की बड़ी - बड़ी योजनाएँ, प्रोजेक्टस केवल फाइलो में बंद हो गई और उनके हिस्से को, किसी चील ने हड़प लिया है।

'चील' कहानी में विधवा टोकी के संघर्ष मय जीवन का रेखाकंन किया गया है। पति सलपी पेड़ से गिर कर मृत्यु को प्राप्त हो चुका है। पति के रहते हुए भी वह रोज जंगल जाती कंद-मूल पत्ते लकड़ियाँ चुन लाती थी वह घर में कभी बैठी नहीं रही, लेकिन पति का सहारा उसके लिए अलग महत्व रखता है, उसके अभाव में जीवन उसे बड़ा कठिन लगता है। घर में दो छोटे 2 बच्चे है। जिनके भरण-पोषण की जिम्मेदारी उसी पर है। उसी के लिए वह वनो की खाक छानती फिरती है। जब तक घर में दूसरो के खेत में मिला धान रहा, उसकी भूसी बाजार में बेचकर जीवन चलाती रही, आखिर भूसी कब तक साथ देती। घर में न पैसे है, न नमक। कई हफ्तो से हाट-बाजार भी बंद है, यही सोचकर पूरा जंगल छान मारती है, थक हारकर पीपल की कोमल और नर्म गुलाबी पत्तियों को बाजार में लाकर बेचने बैठती है, पंरन्तु यह भाजी सुखकर अल्लर हो जाती है परंतु कोई ग्राहक नहीं मिलता, यहाँ तक कि बाजार में टैक्स भी नहीं दे पाती। एक दूसरे प्रसंग में किलेपालवाली जिसका किसी आदमी से अवैध संबंध है, और उसका फायदा भी उठाती है। इस तरह षरीर के माध्यम से पैसे कमाने की सोच कर टोकी की रूह कांप उठती है। इसे एक पात्रीय कहानी कहा जा सकता है, तथापि लेखक टोकी के परिवेश को उभारते है। उल्लेखित पात्र किलेपालवाली, तथा उसका संगी आदमी एकल मुख्य पात्र टोकी के व्यक्तित्व को उभारते है। उसे चारित्रिक गौरव और निष्ठा प्रदान करते है। टोकी का संघर्षरत जीवन आदिवासी जीवन की संघर्षगाथा है। उसके जीवन में आनंद उल्लास का कोलाहल नहीं है, वरन परिथितियाँ और जीवन संघर्ष की व्रिदूप विभीषिका है। पति के गुजर जाने के पश्चात् भी वह जिस तन्मयता से अपने और बच्चों के भरण-पोषण के लिए संघर्षरत् है, वह उसे आदर्ष नारी बनाता है। पीपल की भाजी के लिए लहूलुहान होकर तपती दोपहरी में हाट बाजार जाना उसके जीवन संघर्ष एवं कठिनाइयों की तपिश को इंगित करती है। वनो के कटने तथा हरी -भरी धरती को बंजर होते देख वह चिंतित है, क्योकि वन ही उनकी जीविका है, वन न हो तो वे कहाँ जाये क्या खाये? आर्थिक विषमता के प्रबल झंझावतों को झेलते हुए भी, किलेपालवाली की तरह शरीर के माध्ययम से पैसे कमाने को लेकर उसकी रूह कांप उठती है, यह आदिवासी तथा अशिक्षित जीवन में अपनी अस्मिता के प्रति जागरूकता की द्योतक है।

वातावरण की दृष्टि से यह बस्तराचंल के वनाच्छादित प्रदेश की कथा है। इसकी अपनी विषेषता है। यहाँ का आदिवासी जीवन वनाश्रित है। कंद-मूल पत्ते, लकड़ियां, साग-भाजी सभी वन से प्राप्त होती है। वन साम्रगियो से पैसे, नमक तथा जीविका के अन्य साधन प्राप्त होते है। सलपी पेड़ का यहां के जीवन में अपना महत्व तथा उसका प्रभाव होता है। बस्तर के हाट-बाजार केवल विनिमय या लेन -देन के स्थल ही नहीं होते वरन् 'सामाजिक मिलन'' के स्थल होते है। जहाँ अपने दूरदराज के संगे संबंधियो से बहुतदिनो बाद मिलकर एक -दूसरे के सुख-दूख: की जानकारी प्राप्त कर संवेदना या उल्लास प्रकट किया जाता है। बस्तर के हाट-बाजार धीरे से भरते है, इसके पहले इक्के-दुक्के लोग टपकते, खाते,पीते, गप्पे, लगाते रहते है। इस कहानी में बाजार के पूरे परिदृश्य को उभारने का प्रयास किया गया है। चाहे टैक्स वसूल करता कर्मचारी, उसके चंगुल से भागती बोझवाली हो या टमाटर वाली, भट्टों की मंडी, या बटेर लेकर आने वाली महिला के हाथ से चील द्वारा बटेर ले जाने पर उसकी स्थिति सभी तो चित्रित है। हाट बाजार में लोगो का बैठने का विशेष ठौर ठिकाना होता है।

इस कहानी में लेखक कथावाचक पूरी कथा कहता है। नायिका टोकी के मन की समस्त संवेदना, जीवन संघर्ष, सभी को ध्वनित करने का प्रयास किया है। किलेपाल वाली तथा टोका का पति से संबंधित स्मृति खण्ड उसके चरित्र को दीप्त ही नहीं करते वरन् कथा संयोजन की दृष्टि से भी वे उपयुक्त है। साथ ही टोकी के खाली हाथ घर जाते समय अपने बच्चो को लेकर उसकी कल्पना बिंब कथा की मार्मिकता बढ़ाते है।

सधारण जीवन के षब्दो का प्रयोग है। बस्तरांचल के कुछ

आंचलिक शब्दों का प्रयोग कहानी में आंचलिकता का रंग भरता है जैसे करपन, पझरती, कलपना, पान, शब्दो का खास अर्थ भी है और उसका साभिप्राय प्रयोग भी। भाषा के माध्यम से छोटे – 2 ब्यौरे देकर चित्र उपस्थित करने में शानी माहिर है –

''और वह कोसुम पेड़ के पास टोकनी लिए कौन खड़ा है? वो कत्थई पत्तों वाले आम के पीछे, जहाँ छींद के चंद नुकीले बूढ़े पेड़ खड़े है, और जिसके पास से बांस की झाड़ियाँ शुरू हो जाती है? बिल्कुल वही तूसकी साड़ी.....कालारंग, दूर से ही चमकते हुए कोहनी भर-भर गिलट के कड़े और सिर धरी तीन-तीन टोकनियों की ऊँचाई।''[1]

छोटी से छोटी बात को भी षानी ओझल नही होने देते –'' वह अकेली जंगल में घुस रही है। बार-बार लौटकर चौकन्नी नजर से देखती जाती है.....किलेपाल वाली बुरी तरह थक गई है। सीधे आँखे मिलाकर बातें नहीं करती, उसकी पिछली पिंडलियाँ, कूल्हों पीठ और सिर के बालो में तमाम छोटे-2 फांस चुभे है और गर्दन झुकाए एक-एक करके वह उन्हे बीन रहीं है''[2]

इस प्रकार चील कहानी में शानी एक आदिवासी विधवा स्त्री 'टोकी' की जीवन संघर्ष और जीजिविषा को पूरी चमक के साथ उकेरते है। वह विधवा टोकी संघर्षो की जलन भरी आंच में भी पूरी प्रखरता से उभरती है अनैतिकता उसे छू भी नहीं पाती।

संदर्भ सूची :-

1. सब एक जगह एक – शानी –पृष्ठ 300
2. सब एक जगह एक – शानी –पृष्ठ 3005

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

कामायनी और गीतांजलि का दर्शन

प्रिया श्रीवास्तव

एम.फिल., पीएच.डी., कुमाऊ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

एक दार्शनिक कवि के रूप में प्रसाद की काव्य दृष्टि गंभीर दार्शनिक चेतना से अनुप्रमाणित और अनुभावित है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन उनकी सृजनात्मक चेतना की मूल भित्ती है। कामायनी काव्य की दृष्टि से जितनी सफल है उतना ही उसका दर्शन भी सबल है। काव्य और दर्शन का यह अद्भुत सामन्जस्य ही प्रसाद को श्रेष्ठतम कवि चिंतक बनाती है। प्रसाद के दर्शन का आधार शैवागम है। उन्होंने आगमों का गंभीर अनुशीलन किया, प्रतिभिज्ञा दर्शन के अद्वैतवाद या ईश्वरवाद ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया। वे अद्वैतवादी थे और अद्वैतमूलक रहस्यवाद के प्रबल समर्थक थे। उनके मत में रहस्यवाद अपरोक्ष अनुभूति, समरसता और प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदम से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। प्रसादसामरस्य समष्टि चेतना, रहस्य चिंतन और अहं का इदम समन्वय को ही प्रमुख मानते थे। आत्मा की सांकल्पिक अनुभूति को कामायनी का मूल प्रतिपाद्य माना।

आत्मा की यही सांकल्पिक अनुभूति आनंदवाद की स्थिति है। कामायनी की प्रमुख घटना है मनु की मनासरोवर यात्रा जिसका प्रतीकार्थ है मानव मन की आनंद साधना। कामायनी में जिस आनन्द की बात की गयी है उसका स्वरूप आत्मस्थ है। वह अंतमुर्खी आनन्द या आत्मानंद है- वह बाह्य गोचर और विश्व में प्रसारित आनंद नहीं है। रहस्य और आनन्द सर्ग में इसी आनन्द की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है यह आनन्द सामरस्य का पर्याय है-

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुक्त मनु बस तन्मय थे। (पृ. 275)

× × ×

समरस थे जड़ या चेतन
उदर साकार बना
चेतनता एक विलसती
आनंद अजड़े घना था।[1]

× × ×

इस आनंद की सिद्धि श्रद्धा द्वारा होती है जबकि इड़ा इसकी प्राप्ति में बाधक है अर्थात् आस्तिक बुद्धि या अभेद भावना इस आनन्दका साधक है और भेद कल्पना बाधक। इस अखण्ड आत्मानुभूति में द्वयता के लिए स्थान नहीं है। विश्व की बाध्यह्यता दुख और सुख की जड़ और चेतन की इससामस्य में अंतर्लीन हो जाती है।

सब भेदभाव भुलाकर
दु:ख सुख को दृश्य बनाता हूँ
मानव कह रे! यह मैं हूँ
यह विश्व नीड़ बन जाता[2]

इसी प्रकार कामायनी में आत्मा जीव, जगत सम्बन्धी विचार से भी जयशंकर अपने दर्श के रहस्य खोलते रहते हैं।

कामायनी में आत्मा के लिए चिति, महाचिति चेतना आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है और उसे विश्व प्रपंच का मूल कारण कहा गया है।

कर रही लीलामय आनंद
महचिति सजग हुई सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में होते सब अनुरक्त। श्रद्धा- पृ.53
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिरसुन्दर
चेतनता एक बिलासती
आनंद अखंड घना था।[3] आनंद पृ.- 294

शिव स्वयं अपनी इच्छा से विश्व का लीलामय विस्तार करती है। शिवरूप आत्मतत्व अपनी अविच्छिन्न शक्ति से संयुक्त है। यह स्वप्रकाशानंद है और मनु इसी आत्मरूप को प्राप्त करते हैं।

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन
निज शक्ति तरंगायित था
आनंद अबु निधि शोभन[4]

मनु शिव रूप हो जाते हैं और श्रद्धा शक्ति रूप। शिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप को कामायनी में साकार किया है। जिनमें शक्ति के बिना शिव भी अपूर्ण है। कामायनी में मनु प्रश्न है और श्रद्धा उत्तर। ''एकथा यदि प्रश्न तो उत्तर द्वितीय उदार ...''

यह संसार महाचित की लीलामय अभिव्यक्ति है अतएव मूलतः यह मंगलमय श्रेयस्कर और आनंदमय है इसके प्रति अनुराग स्वाभाविकहै परन्तु आणम स्थिति में होने के कारण मनु इस मंगल रहस्य को समझ नहीं पाते और जगत को निस्सार मानते हुए भटकते रहते हैं परन्तु अंत में श्रद्धा के संसर्ग से स्वस्थ और स्थिरचित हो जाने पर वह शांभव स्थिति में पहुँच जाने पर इस सत्य को प्राप्त कर लेते हैं।

अपने दुख-सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचरांचर
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत, चिर सुन्दर।[5]

शैव दर्शन के अतिरिक्त कामायनी में शून्यवाद, क्षणवाद, परिवर्तनवाद, परमाणुवाद, दर्शनों का भी प्रभाव दिखता है।

शून्यवाद- नाश विध्वंस अंधेरा
शून्य बना जो प्रकट अभाव
वही सत्य है अरी अमरते
तुझको यहाँ कहाँ अब ठांव[6]

क्षणवाद - जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यक्त नील घनमाला में
सौंदामिनि संधि सा सुंदर
क्षण भर रहा उजाला में।[7]

परिवर्तन- विश्व एक बंधनविहीन परिवर्तन तो है
इसकी गति में रवि-शशि तारे ये जब जो है
रूप बदलते रहते वसुधा जलनिधि[8]

उदधिबरना मरुभूमि जलधि में ज्वालामुखी (संघर्ष) कामायनी में फ्लयोज की सिद्धि श्रद्धा द्वारा होती है अर्थात् आत्मविश्वास पर आधृत अभेदमयी आस्तिक भावना ही आनन्द की साधिकाहै और भेदमयी बुद्धि बाधक है। इस प्रकार कामायनी में श्रद्धा द्वारा (ज्ञान द्वारा) मिथ्या अवरण हटा कर आनंद की प्रतिष्ठा स्थापित की गई। अब यदि हम गीतांजलि के दर्शन पर विचार करें तो हम देखते हैं कि रवीन्द्र वाङ्मय का अधिकांश भाग वैदिक (भारतीय हिन्दू) आध्यात्मिक दर्शन भारतीय जागृति और हिन्दू धर्म परायणता भी प्रदर्शित करता है।

टैगोर ने अपनी तरुणावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक सन् 1877-1930 तक भूमण्डल के प्राण, सभी महाद्वीपों की यात्रा की और जहाँ भी उन्हें सत्य शिव सुन्दर का रूप दर्शन पाया उनका कोमल मन उल्लास से नाच उठा और उनकी वाणी मुखरित हो उठी। टैगोर के दर्शन को हम तत्त्व मीमांसा और रहस्यवादी धारा में रख समझते हैं।

गीतांजलि की कविताओं में भी सृष्टि के प्रति वैराग लक्ष्य अहं से इदम में मिलना जैसी अभिव्यक्तियाँ दिखाई पड़ती है। ये सन्दर्भ हमें कामायनी में मिलने के कारण इन दोनों कृतियों के कारकों में साम्यता दिखाई पड़ती है।

जिस प्रकार कामायनी में मनु जगत से त्रस्त आकर थके हारे निर्जल स्थल पर अकेले निराश हताश बैठे है और उनके मन में कई सवाल कौंध रहे है। ठीक उसी प्रकार की छटपटाहट गीतांजलि की एक कविता कोथाय आलो को था ए आलो में भी दिखती है

कहाँ आलोक ..... माना अच्छा है।
कहाँ आलोक कहाँ अलोक
विरहानल से इसे जला लो
दीपक है पर दीप्ति नहीं है
क्या कपाल में लिखा यही है
इससे तो मरना अच्छा है।[9]
(कोथाय आलोक कोथाय आलोक)

जिस प्रकार कामायनी में श्रद्धा का प्रवेश होता है और वह अपनीवाणी से मनु को स्तब्ध कर देती है। इसी प्रकार गीतांजलि में भी यही भावासाम्य मिलता है।

लगी हवा यो मन्द मधुर इस
नाव पाल पर अमर धवल है
कहीं कभी देखा है मैंने किसी
नाव का चलना ऐसा
× × ×
कहा कौन हो तुम भंडारी
किसके हास्य रुदिर का धन है
सोच-सोचकर चिन्तित है मन
बाँधोगे किस स्वर में यन्त्र
मन्त्र और कौन सा गाना होगा।[10]
(लगेछे अमल धवल पाले मन्द मधुर हवा)

कामायनी के रहस्यवाद के समान ही गीतांजलि में भी अहं का इदम से समन्वय भाव मिलता है। टैगोर का दर्शन आत्मबल द्वारा अहंकार विसर्जन है।

मेरा माथा नत कर दो तुम
अपनी चरण धूलि तल में
मेरा सारा अहंकार दो
डूबी चक्षुओं के जल में
गौरव मंडित होने में नित
मैंने निज अपमान किया है
घिरा रहा अपने अपने में केवल
मैं तो अवरिल पल चल में
मेरा सारा अहंकार दो
डूबने चक्षुओं के जल मे[11]
(आभार माथा नत कर दुख लेकर चरण धूल तल)

टैगोर गीतांजलि में भी कामायनी के समान ही शिव द्वारा सृष्टि सृजन एवं उसके आदि-अनादि और अनित्य स्वरूप की कल्पना की गई है।

छोड़ पुरातन वास कही जब जाता हूँ मैं
नूतन बीच पुरातन हो तुम .... भूल इसे मैं जाता हूँ
× × ×
जीवन और मरण में होगा अखिल भुवन में जब जो भी
जन्म जन्म का परिचित चीन्होंगे, उन सबको तुम ही,
तुम्हें जानने पर न पराया होगा भी कोई भी
नहीं वर्जना होगी और न होगा भय कोई।[12]
कत अजानर जानाइले तुमि)

आत्मबल और आत्मज्ञान द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है। गीतांजलि में उस परमतत्व से इसी आत्मबल प्राप्ति की विनती की गई है।

मेरी रक्षा करो विपत्ति में मेरी यह प्रार्थना नहीं है।
मुझे नही हो भय विपत्ति में मेरी चाह यही है।
दु:ख ताप से व्यथित चित्त को, यदि आश्वसन दे न सको तो
विजय प्राप्त कर सकूँ दुख में मेरी चाह यही है।
मुझे सहारा मिले ने कोई, तो मेरा बल टूट न जाय।
यदि दुनिया में क्षति ही क्षति हो वंचना आड़े आए
मन मेरा रह पाये अक्षय, मेरी चाह यही है।[13]
(विपद मोरे रक्षा कोरे ए नाहै मोर प्रार्थना)

इस प्रकार कामायनी और गीतांजलि में सृष्टि के प्रति वैराग उत्पत्ति अन्तद्वन्द्व अहं का इदं में समवन्वय की चाह, आनन्द की खोज एवं आनंद प्राप्ति की चाह ऐसे सन्दर्भ हैं जो कामायनी और गीताजंलि दोनों में परस्पर मिलते हैं।

संदर्भ सूची:-

1. आनंद सर्ग- कामायनी जयशंकर प्रसाद
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. चिंता सर्ग कामायनी-जयशंकर प्रसाद
7. आशा सर्ग कामायनी- जयशंकर प्रसाद
8. संघर्ष सर्ग कामायनी- जयशंकर प्रसाद
9. गीताजलि कोयाय आलाक गीत रवीन्द्र नाथ टैगोर।
10. गीताजंलि लगेद अमल-धवल पाले मन्द मधुर हवा गीत रवीन्द्र नाथ टैगोर।
11. गीताजलि आभार माथा नत कर दुख लेकर चरण धूल तल गीत रवीन्द्र नाथ टैगोर।
12. गीताजलि कत अजानर जानाइले तुमि गीत रवीन्द्र नाथ टैगोर।
13. गीताजलि विपद मोरे रक्षा कोरे ए नाहै मोर प्रार्थना गीत रवीन्द्र नाथ टैगोर।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति की झलक धनानन्द पाण्डेय 'मेघ' की यादों के झरोखे से

डॉ. रेखा मेहता

राजकीय महाविद्यालय, अमोड़ी, जिला- चम्पावत

मानव जिस स्थान विशेष में जन्म लेता है, वहीं की माटी की सुगन्ध, हवा की शीतलता और निर्मल जल के सेवन में साँसें लेता है। वहीं वायु, जल और माटी की सुगन्ध उसकी धमनियों और सिराओं में अनवरत रूधिर कणिकाओं की भाँति प्रसारित होती रहती है। मातृभूमि जिसकी जहाँ भी हो उसके लिये वह जननी और जन्मदाता पिता की तरह होती है। उसका महत्ता का बखान वह शब्दों में सीमित नहीं कर सकता। माँ-पिता और जन्मभूमि हर प्राणी के लिये सबसे प्रिय होते हैं।

नगाधिराज श्वेत हिमालय की छत्रछाया में अवस्थित उत्तराखण्ड की रत्नगर्भा धरा की मनोरम वादियों की गोद में पैदा होने वालों की तो और भी महत्ता हो जाती है। यहाँ की प्राकृतिक छटा, पर्वतांचलों की हरियाली, लहलहाती फ़सलें, कल-कल निनाद करती हुई पावन नदियों की धारा इस धरा को विश्व में विशिष्टता प्रदान करते हैं।

ऐसे ही मनोरम प्रकृति की सुरम्य उपत्यका में स्थित जनपद, पिथौरागढ़ के विशिष्ट ग्राम-नैनी (उड़ाई) में 02 नवम्बर 1952 में पिता स्व. पं. मित्रदेव पाण्डेय एवं सादगी निर्मल स्वभाव की धनी माता श्री स्व. सरस्वती देवी की सुसन्तति के रूप में जन्मे श्री घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' द्वारा विरचित कुमाऊँनी गीत संग्रह ''नरै'' मेघ जी की खड़ी बोली में प्रकाशित अन्य गीत एवं कहानी संग्रहों में से एक है। नरै में मेघ जी की कुमारों की प्राकृतिक छटा,वहाँ की संस्कृति लोक साहित्य एवं श्रृंगार से सम्बन्धित तमाम यादें पिरोई गई हैं।

आपके ग्राम के 4.5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित पाठशाला देवलथल में मात्र हाईस्कूल तक की शिक्षा की सुविधा के रहते मेघ जी 1970 में लखनऊ में पहले से रह रहे अपने बड़े भाइयों के साथ आगे की शिक्षा गृहण करने के लिये अपनी मातृभूमि की तमाम यादों को लिए हुये आ जाते हैं और यहीं रोजगार की तलाश में अन्त में यहीं पर सेवा करते हुये यहीं के होकर रह जाते हैं। यह इसलिये भी करना पड़ा क्योंकि तत्कालीन समय में कुमाऊँ में शिक्षा और नौकरी की इतनी सुविधा नहीं थी।

मेघ जी अपने जन्म स्थान नैनी से दूर लखनऊ में अवश्य रह रहे थे किन्तु उनके अन्तर्मन में हर समय पहाड़ की ही छवि रहती थी। वहाँ बचपन की यादों ने जीवन की तमाम विडम्बनाओं और कठिनाइयों ने उन्हें कवि बनने की प्रेरणा दी। इसी प्रेरणा के रहते अन्य 8 काव्यकृतियों में से एक कुमाउँनी गीत संग्रह 'नरै' भी है। 'नरै' की व्याख्या एवं तीन मात्राओं के इस अक्षर में और भी व्यापकता का समावेश हुआ है। 'नरै' शब्द में सागर सी गहराई, धरती का सा विस्तार एवं आसमान सी ऊँचाई दृष्टिगोचर होती है। हिन्दी खड़ी बोली का प्यार शब्द नरै (नराई) से सीमित सा लगता है जिसका अंग्रेजी अनुवाद का लव (स्वअम) और भी गौढ यानी सीमित हो जाता है।

कुमाउँनी बोली के शब्दों की वैविध्यता एवं महत्ता इतनी व्यापक है कि भाषा के रूप में अभी तक जनमानस के सम्मुख नहीं आ पाया है। उत्तरांचल की पावन एवं दिव्यतम धरा पर एक से एक विद्वान निवास करते हैं। उनेक मार्गदर्शन एवं कटिबद्धता के रहते यह दुरूह कार्य भी निकट भविष्य में हो जायेगा। प्यार शब्द मूलतः सभी के लिये प्रयुक्त हो जाता है किन्तु यह अपने नरै की अपेक्षा कम विस्तृत भाव रखता है। लव (स्वअमद्ध तो मात्र रिश्ता विशेष के लिये प्रयुक्त होता है हालांकि पाश्चात्य संस्कृति का यही एक प्रचलित शब्द हो सकता है। हमारे पहाड़ में प्यार कह देना कुछ असहजता प्रकट करता है लेकिन नरै में ऐसा कुछ भी नहीं है नरै में सम्बन्धों में ममता, वात्सल्य, संस्कार संसकृति एवं सभ्यता का प्रादुर्भाव होता है। नरै शब्द हर सम्बन्धों की पराकाष्ठा प्रदर्शित करता है। जिस तरह दूध से दही, दही से मक्खन और फ़िर मक्खन से घी का विशुद्ध रूप सामने आता है जो हर प्राणी रसास्वादन आनन्द पूर्वक करता है। माता-पिता, बच्चों, पारिवारिक सदस्यों, वहाँ की वादियों, हवा-पानी, खेत-खलिहान के लिये सामूहिक रूप से 'नरै' शब्द को प्रयुक्त किया जाता है। इनके प्रति अपनी प्रगाढ़ता, प्रतिबद्धता, तड़पन और भावातिरेक पैदा करने वाला शब्द नरै मानवीय सद्गुणों एवं प्रवृत्तियों को उत्पन्न करता है।

मेरी इजु कांहि गौ हरै
मैकै लागी गै नरै
ब्या बटी का बाद म्यरि
भौ ले है गे परै
परदेश में आई बटी
मै कतुक रवै गयूँ
इजा बाबू छोडि बैर,
निसुरै है रयूँ
मैं गयूँ अच्यान झुरै
मेंकें लागि गै नरै[1]

रचनाकार जब अपने अध्ययन एवं रोजगार की खोज में अपना पहाड़ छोड़कर मैदान में अवास्थित हो जाता है तो वह चाहते हुये भी अपने पहाड़ की सुरम्य वादियों में विचरण नहीं कर पाता। जितना वह अपने पहाड़ से दूर होता है उतना ही वह अपने अन्तर्मन में पहाड़ जीने लगता है। अपनी यादों को मूर्त रूप देने की प्रत्याशा में 'नरै' जैसे गीत संग्रह का सृजन होता है। विभिन्न भावों, अनुभावों, सद्भावों एवं सद्भावनाओं पर केन्द्रित कुल 49 गीत 'नरै' संग्रह में उद्धृत हैं।

विद्या की एवं बुद्धि की देवी माँ सरस्वती की वन्दना के बिना कोई भी कविता संग्रह सफल नहीं हो सकता।

जै-जै माता सरस्वती, तेरी जे-जैकार ।
ज्ञान को उज्यालो लिजी, तेरी जै-जैकार ।।

ज्ञान की छै अम्बे.
तू छँ जगमाता ।
विद्या की छै बुद्धि की छै-
त्वी छै भाग्य विधाता ।।
ज्ञान ध्यान मान मिलं, त्यारा दरबार ।
जै जै माता सरस्वती, तेरी जै-जैकार ।।2

इसी के साथ ही माँ पूर्णागिरी एवं परम ब्रह्म परमेश्वर भगवान शंकर की वन्दना भी संग्रह के लिये अपरिहार्य हो जाता है। पहाड़ की वादियों के मनोरम दृश्यों के ये भगवान की माया का वर्णन कर मेघ जी ने भगवान को याद किया है।

लागि जा बाटा मांठु मांठु पूर्णागिरी मंदिर ।
जैकारा लगूंनै हिट्या पूर्णागिरी मंदिर ।।
कसि ल्हिया कमर पैली, हिटि जाला उकाला,
बाटा लाग्या राति ब्यांण, पुजि जाला छकाला ।
मन में धरया मै को नाम, बणि जालि तकदीर,
जैकारा लंगूनै हिट्या पूर्णागिरी मंदिर ।।
लागि जा बाटा मांठु-मांठु पूर्णागिरी मंदिर ।
जैकारा लगूंनै हिटया पूर्णागिरी मंदिर ।।[3]

रंगीले पहाड़ से परदेश को विदा होते वक्त की पत्नी के अन्त न की पीड़ा, वियोग की पराकाष्ठा पर आधारित गीत 'जा सुवा जा जा'' बड़ा ही मार्मिक बन पड़ा है। नारी एक तरफवियोग की ज्वाला में जलती है जब उसका पति छुट्टी काटकर पुनः सेना में जाने लगता है। उसे चिन्ता रहती है सीमाओं में दुश्मनों का सामना करते-करते पता नहीं कब क्या हो फिर वह अपने पति को देश का सपूत कह कर उसका उत्साहवर्धन करती हुई विदा करती है लेकिन कहती है तुम मुझे याद करते रहना मुझे हिचकी लगाते रहना, चिट्ठी पत्री देते रहना, कहती है जब अगले साल घर आओगे तो मेरे लिये मुरली (वंशी) जरूर ले आना क्योंकि उसको अपने कृष्ण से पति से मुरली की सुरीली धुन सुनना बेहद आल्हादित करता है ।

बेलि तलक तुम बुलां छया
भैर भितेर खिलखिलाछ्यां ।
कभै-कमै झुट्टी-मुट्टी,
बात-बात तमे तुम रिसांछ्या ।।[4]

मेघ ने बसन्त के महिने की शोभा का वर्णन किया है। पहाड़ों में चौत मास के महिने में विवाहित लडकियों को भिटोला दिया जाता है फिर वह अपने मायके जाती है इस प्रसंग को ध्यान में रखकर मेघ ने अपनी लेखनी चलायी है। 'कसिके जूँ मैत' व 'उदर की पीड' में कवि ने महिला के जीवन का संघर्ष लेखनी के द्वारा सबके सम्मुख रखा है।

ऐ गौ चौत म्हैण
ऐजा मैत एजा बैण
ऋतु बसन्त नौर्त जात
घ्यूक पुवा. इजुक् हात् ।[5]

चैत के महीने में जब कोयल अपना सुरीला संगीत सुनाने लगती है तो बहन भाई को आने के लिए कहती हैं। लेकिन बहन अपनी घर गृहस्थी में फंसी रहती है वह माइके आने में सर्वथा असमर्थ पा रही है। तब कहती है हे घुघुती तू मेरे सामने बोलना बन्द कर दे क्योंकि मुझे एक तरफपरदेश में रह रहे पति की याद आती है तो दूसरी तरफमाइके में माता-पिता, भाई-बहनों की।

दिन रात बित्या बितिज्ञान म्हैंणा
ऐगौ चैत म्हण
मैं रुलै ऐ जां घुघुति बैंणा,
तु जन बासे ये म्हैण चैत
तु ले दुःखी छै मैले दुःखी छुं
कैथें करनूं हम शिकैत ।।[6]

कवि ने जीवन के हर पक्ष को अपनी लेखनी से कोरे कागज पर उतार कर कागज को महत्वपूर्ण बना दिया हैं कहीं वह लड़का-लड़की के बीच के अन्तर को बनाये रखने वाले समाज की निन्दा करते हैं वहीं पर्यावरण की भी उन्हें चिन्ता होती है। उन्हें अपनी दुद बोली के प्रति बड़ी ही चिन्ता हैं पहाड़ की खुली-खुली वादियों, अपनी बोली, संसकृति, त्यौहारों, मेलों को इसी तरह चलते चलाते रहने की आकांक्षा उनके मन को कचोटती रहती है।

कहीं गंगा नदी के मैले होने की चिन्ता करते हैं तो वहीं अपने माता-पिता जो पहाड़ में रहते हैं उनके प्रति अगाध प्रेम दर्शाते हुये वहाँ की बचपन की सारी यादों को बार-बार अपने हृदय पटल पर अंकित कर पढ़ते रहते हैं।

इजा बाबू का दगाड,
भै-बैणा वै रुंछ्याँ ।
इजू जॉछी घा काटंणा,
बाटा चानें रुंछ्याँ।[7]

कहीं मालपा और उखीमठ की जैसी त्रासदी का वर्णन करते हैं तो कहीं रोज-रोज जंगल काटे जाने, हरियाली नष्ट करने की भी बात करते हैं बीच-बीच में जब अपने गाँव जाते हैं तो उन्हें सालों पुरानी यादें ताजा हो आती हैं लेकिन अब वहाँ सब कुछ बदल चुका है इससे उदास भी हो जाते हैं।

चौमास लागि गौ सरग उरी गौ ।
मालपा गौं बटि पहाड घुरि गो ।।
देखने-देखने गौं सार्वे स्वेरी गो ।
मालपा गौं बटि पहाड घुरी गो ।।[8]

पहाड़ में जिस तरह शराब और नशे ने अपना अधिकार जमा किया है कि लोग व्यंग करते हुये कहने लगे हैं कि ''सूर्य अस्त पहाड़ मस्त'' इसके कुप्रभाव से पहाड़ को बचाये रखने की तमन्ना है कवि के मन में।

जन पिया शराब दाज्यू, जन पिया शराब
नानतिना ले सिकि जाला, है जाला खराब है जाला खराब'[9]

अपने 'पर्यावरण' कविता के द्वारा आज असंतुलित भौगोलिक वातावरण के प्रति चिन्ता व्यक्त की है। वह सबसे अपने वातावरण को स्वच्छ व सुन्दर रखने की बात करते हैं। आज जिस तरह से जंगलों का कटान हो रहा है उसको देखते हुए भावी जीवन में जो संकट आने वाला है कवि उसको अपनी लेखनी से दर्शाते हुए कहते हैं -

रुख डाला काटि हालि कि हवाला लछिन ।
एकै लिजी बिगड गौ, पर्यावरण

बूँण छाडि लागि गयाँ सडल काटणं
एकै लिजी बिगडि गौ पर्यावरणं।[10]

पहाड के प्राकृतिक सौन्दर्य की व्याख्या में मेघ जी कहते हैं यहाँ की हवा-पानी में जो शीतलता व स्वच्छता युक्त है वह मन व मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करती है। जो शहरों में कहाँ।प्राकृतिक सौन्दर्य इतना सुन्दर लगता है कि यहॉ पर मानों भगवान का निवास हो, इतनी सुन्दरता का समावेश है पहाड़ में जिसका वर्णन 'मेघ' ने बड़ी कलात्मकता से किया है।

पहाड़ में पर्यावरण प्रकृति चित्रण, पावन नदियों, श्वेत हिगालय, खेत खलिहान, रीति रिवाजों आदि सभी पर अपनी लेखनी चलाते हुये मेघ ने अपनी अभिव्यक्ति दी है। एक-एक गीत की व्याख्या करना सम्भव नहीं है कुल मिलाकर मेघ जी ने एक महत्वपूर्ण गीत संग्रह पाठकों को उपलब्ध कराया है बशर्ते कि पाठक इसका मनन करें। मेघ जी की कृतियों-कल्पनाओं का सावन दर्द लेखनी का, भारती की आरती, चाँद सितारे आँगन के (बालगीत), विनय करूँ अम्बे (वन्दना गीत), नरै (कुमाउँनी) एवं कहानी संग्रह माटी का कर्ज जो विभिन्न संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। इनके अतिरिक्त मेघ के प्रकाशनार्थ और भी कृतियाँ यथा गीत संग्रह, राजुला मालूशाही (खण्ड काव्य) तथा कुमाउँनी गीत संग्रह दौकार तैयार है जो शीघ्र ही पाठकों के हाथों में आ सकेंगी। कवि ने जीवन के हर पक्ष को अपनी लेखनी से कोरे कागज पर उतार कर कागज को महत्वपूर्ण बना दिया है कहीं वह लड़का-लड़की के बीच के अन्तर को बनाये रखने वाले समाज की निन्दा करते हैं वहीं पर्यावरण की भी उन्हें चिन्ता होती है। उन्हें अपनी दुद बोली के प्रति बड़ी ही चिन्ता है पहाड़ की खुली-खुली वादियों, अपनी बोली, संस्कृति, त्यौहारों, मेलों को इसी तरह चलते चलाते रहने की आकांक्षा उनके मन को कचोटती रहती है।

मेघ जी ने अपनी वंशावली पर भी महत्वपूर्ण एवं सराहनीय कार्य किया है। मेघ जी का सद्प्रयास कुमाऊँनी बोली, वहां की संस्कृति पर्यावरण रीति-रिवाज आदि को बचाये रखने का है साथ ही राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनका समर्पण भी उल्लेखनीय है।

सन्दर्भ सूची:-

1. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 29
2. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 1
3. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 3
4. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 8
5. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 11
6. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 12
7. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 29
8. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 38
9. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 45
10. नरै घनानन्द पाण्डेय 'मेघ' पृष्ठ 21

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों और दलित समाज का प्रतिरोध

रोहित यादव

शोधार्थी, लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, (मुगलसराय) चंदौली, संबंद्ध- महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उप्र.

समकालीन विमर्शों में 'दलित विमर्श' एक महत्वपूर्ण विमर्शहै जिसमें साहित्य की सामाजिकी को एक नए पाठ केरूप में पड़ा जा रहा है। इसमें पौराणिक, परंपरा, विरासत, कथा-विषय तथा नायक- नायिका आदि विषयों पर अवलोकन व अन्वेषण किया जा सका है ।यह न केवल सैद्धांतिक परंपरावादी साहित्य और सौन्दर्यशास्त्र को नए सिरे से परिभाषित करने की वकालत करता है, बल्कि मानव को केन्द्र में रखते हुए मानवतावादी साहित्य को सर्वोपरि सिद्ध करने पर जोर देता है।

भारतीय सामाजिकपरिवेश में एक लम्बे समय से हाशिये की जिन्दगी जीने के लिए विवश दलित वर्ग वर्षों से वंचित अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हुआ है। लम्बे समय से स्थापित विकृत अवधारणाओं, रुढ़यिो, अन्यायो, अंधविश्वाशों से मुक्ति के लिए इसने साहित्य को माध्यम बनाया ।जहाँ कहानियों, कविताओं, आत्मकथाओं के जरिए अपनी बात कह रहे हैं ।जाति-प्रथा, अस्पृश्यता,अमीर, गरीब, उँच-नीच आदि न जाने ऐसी कितनी समस्याएँ है जिसे दलित लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम सेव्यक्त किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि एक दलित लेखक के रूप में दलितों के अधिकारों और समाज में असमानता की बढ़ती समस्याओं पर चर्चा करते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से जातिवाद, सामाजिक असमानता और उससे उत्पन्न समस्याओं पर चर्चा की है, जिससे समाज को जागरूक करने का प्रयास किया गया है ।उनकी कहानियां दलितों के जीवन, उनके संघर्षों, और समाज में परिवर्तन के प्रति उनके दृष्टिकोण को प्रकट करती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज में रहकर ही वह अपना विकास करता है लेकिन जब यही समाज उसके विकास में बाधक बनने लगे तो मनुष्य विद्रोह का रास्ता अपनाता है। ऐसे विद्रोह की कहानी है'सलाम'। कहानी में लेखक ने दलित समाज में प्रचलित 'सलाम' देने की प्रथा के विद्रोह का चित्रण किया है। इस प्रथा में नवविवाहित वर-वधु को सवर्णों के दरवाजे पर जाकर 'सलाम'देना होता है। जिसके बदले उन्हें भेट मिलती है। लेखक ने 'हरीश' के माध्यम से इस प्रथा के प्रति विद्रोह व्यक्त किया है। इस सामाजिक परंपरा को तोड़ने का काम किया है। दलित कोदबाकर रखने वाली इस प्रथा का खंडन कर हरीश दलित समाज कोएक नई दिशा प्रदान करता है। हरीश के इंकार से गाँव में भूचाल सा आ जाता है। वर्षों से यह प्रथा इस कदर रच-बस गई है कि यदि दलित समाज का व्यक्ति इस प्रथा को करने से मना करता हैतो सवर्ण समाज इसे अपना अपमान' समझता है। हरीश के इंकार करने पर उसे समझाया जाता है कि 'बाप दादों की रीत है, एक दिन में तो ना छोड़ी जावे। वे बड़े लोग है। 'सलाम' पे तो जाणा ही पड़ेगा। और फिर जल मे रहकर मगरमच्छ से बैर रखना तो ठीक नहीं है'[1] हरीश इस प्रथा को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता है। जिसमें दलित दूल्हे या दुल्हन को दरवाजे - दरवाजे ले जाकर सलाम की रश्म अदाकी जाती है।

सामाजिक संरचना का हवाला देकर सदैव दलितों से उनके परंपरागत कार्य करवाये जाते हैं। सवर्ण उन्हें ऐसे चक्र मेंघेरे रहता है कि वह चाह कर भी उससे बाहर नहीं निकल पाते हैं। ऐसे कार्यों को करते हुए दलित आय से अधिक अपमान मिलता है ।वाल्मीकि जी की कहानी 'बैल की खाल' में भी काले और भूरे के माध्यम से परंपरागत व्यवसाय करने को मजबूर दलित को प्रस्तुत किया गया है। पंडित बिरिज मोहन के बैल के अचानक से मर जाने पर काले और भूरे गांव के सर्वाधिक उपयोगी व्यक्ति बन जाते हैं। हर कोई उनको तलाश रहा है। क्योंकि उनके अलावा और कोई नहीं है जो उस कार्य को करे। गाँवके किसी भी मवेशी की मृत्यु पर उसे उठाकर बाहर ले जाने का काम काले और भूरे का ही है। मरे जानवर की खाल बेचकर उन्हें जो पैसे मिलते वहीं उनकी जीविका का साधन था। जीविका के लिए मरे जानवरो का इंतजारकरना ही उनकी नियतिबन गयी थी। प0 बिरिज मोहन जो उन्हें अपने काम के लिए खोज रहा है लेकिन जब वह दिखाई देते हैं तो उनके उपर गालियों की बौछार कर देता है 'कहाँ मर गए थे..... भोसड़ी के तड़के से ढू?-ढू? के गोड्डेटूट गए है। और इब आरहते हो महाराजकी तरियों.....इस बैल को कौन उठावेगा.....तुम्हारा बाप....'[2] यह अपमान दलित के हिस्से की सच्चाई है जिसे कहानीकार ने दिखाया है। 'भारतीय समाज में वर्ण एक सच्चाई है जिसने सदियों से इस देश के जनमानस को टुकड़ों में ही नही बाँटा उनके मानवीय संस्कारों को भी छिन्न-भिन्न किया है।'[3] इसमें जाति और परम्परा के कारण अपमानित होकर अपनी मर्जी के खिलाफ काम करने वाले काले और भूरे की परंपरागत व्यवसाय को स्वीकारने की विवशता की समस्या को दिखायागया है।

'कहाँ जाए सतीश' कहानी में सतीश अपने पिता द्वारा नगरपालिका में नौकरी करने की बात को सुनकर अपना घर छोड़कर उसी शहर में किराये पर रहता है और मेहनत मजदूरी कर अपनी पढ़ाई जारी रखता है। वह वर्षों से चली आ रही सामाजिक संरचना में दलित के लिए निर्धारित अपमान भरी जिन्दगी से पिछा छुड़ाना चाहताहै 'पिछले छह महीने से सतीश सुबह स्कूल जाता और दोपहर बाद से रात नौ-दस बजे तक ऐजाज साहब की बल्ब की फैक्टरी में काम करता था। हर रोज उसे बीस-पच्चिस रुपये मिल जाते थे। जिससे उसका स्कूल खर्च और खाना-पीना रहना चल रहा था। पंत के घर में पांच बाई छह के एक छोटे से स्टोर में रहता था। जिसमें छोटी सी चारपाई डालने के बाद चलने फिरने की जगह भी नही बचती थी। वैसे भी उसके पास नाममात्र का ही सामान था ।एक थैला भर किताबें दो जोड़ी

कपड़े, एक चटाई और एक चादर तथा रजाई, रजाई भी उसने अभी –अभी बनवायी थी।'[4] सतीश की जाति का पता चलते ही मिसेज पंत उसे अपने घर से निकाल देती है। अचानक उसे सतीश की हर चीज से घृणा होने लगती है। हमारी समाजिक व्यवस्था में जाति का स्थान मनुष्य से ऊपर रखा गया है। जिसमें दलित अथवा भंगी होना अपने आप मे एक गुनाह है जिसके लिए जीवन भर उन्हें घृणा का सामना करना पड़ता है। ऐसी ही घृणा भरी जिंदगी से भागता सतीश फिर उसी घृणा का शिकार हो जाता है। वह किसी भी परिस्थिति में वह जीवन नहीं जीना चाहता जो उसके माता–पिता और उसके आस–पास के लोग जी रहे हैं। अपनी इस इच्छा के पीछे के कारण को सतीश बताते हुए कहता है।' इसलिए नहीं कि वे सब गरीब लोग या छोटे लोग हैं। बल्कि इसलिए कि जिस तरह का जीवन वे जीते हैं– मैं उससे छुटकारा पाना चाहता हूँ। वे अपनी तकलीफों के इतने आदी हो गए हैं कि उसे अपनीनियति मान बैठे हैं। उनके भीतर हीनता बोध जड़े जमा चुका है। जिससे बाहर निकलकर ही दुनियाँ कोदेखा जा सकता है। हजारोंसालसे मिट्टी में दबे लोहे के टुकड़े की मानिंद उनकी सोच पर भी जंग लग गया है।'[5]

'गोहत्या'कहानी का 'सुक्का' मुखिया के यहाँ मजदूरी करता है।उसका जीवन समान्य गति से चल रहा था। लेकिनविवाह के पश्चात उसके स्वाभाव और जीवन में बदलाव की– झलक दिखाई देने लगी थी। जिसे मुखियाँभी भाँप गया था। सुक्का की पत्नी के रंग रूप की चर्चा मुखिया के कानों तक पहुँच चुकी थी,वह उसे देखना चाहता था। वह सुक्का से उसे लेकर हवेली आने के लिए कहता है।लेकिन सुक्का साफ इंकार कर देता है।' औकात में रह सुक्का। उड़ने की कोशिश ना कर, बाप–दादों से चली आई रीत है।सुक्का के भीतर बैठा कमजोर आदमी करवट बदल रहा था। उसने कमजोर पड़ते साहस को समेटा और बोला मुखियाँ जी कामकरता हूँ तो दो मुट्ठी चावल देते हो.....वह हवेली नहीं आएगी। कहकर हवेली से बाहर हो गया।'[6] इस अपमान को मुखियाँ भुला नहीं पा रहा था। गाय का मरना उसके लिए अपने हुए अपमान का बदला होने का अवसर लगता है। वह सुक्का को पंचायत में गोहत्या का दोषी करार दिलाकर दहकती फाल को हाथ में लेकर दश कदम 'गऊ माता' कहते हुए चलने की सजा दिलवाता है दहकती फाल को हाथ मे लेकर चलते सुक्का की चीखउस सामाजिक असहमती को दर्शाती है जिसमें दलित परंपरागत संरचना का विरोध कर अपने जीवन में बदलाव लाने का प्रयास करते हैं' दलित कथाकारोंमें ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस सामाजिक क्रांति को काफी सशक्त ढंग से अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। वे निःसंदेह पहले दलित कथाकार है, जिन्हें नये सौंदर्यशास्त्र के साथ दलित कहानी को स्थापित करने का श्रेय जाता है।'[7] 'यह अंत नहीं' कहानी सामाजिक संरचना में दलित चेतना और अस्मिता बोध की कहानी है। लेखक ने बिरमा और उसके भाई किसन के माध्यम सेदलितोंपर हो रहे अत्याचार और शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद कर प्रतिरोध प्रदर्शित किया है। बिरमा अपने साथ हुए छेड़खानी को चुपचाप नहीं सहती और अपने भाईकिसन से बता देती है। यही से दलित मुक्ति का एक नया अध्याय भी शुरु होता है। जिस समाज में वे रहते हैंवहाँ सभी के लिए यह सामान्य बात है कोई भी ऐसी घटनाओं पर ध्यान नहीं देता और परिवार के लोग इसे दबा देते है। वे जानते है कि जिसके खिलाफ यह लड़ाई है वो उनसे कई गुना अधिक ताकतवर है। बिरमा को भी ऐसा ही आदेश होता है लेकिन किसन और उसके दोस्तों के वार्तालाप जिसे उसने कई बार सुना है उसे आत्मसम्मान और अधिकार की लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित करते है। बिरमा अपने साथ हुए अन्याय के लिए आवाज उठाती है और पंचायत मे इसकी लिखित शिकायत करती है। उसकी अर्जी देखते ही तेजभान भड़क उठता है और उसके पिता को बुलावा भेजता है। 'उसने मंगलू को चौपाल पर बुलावा भेजा था।' मंगलू तू मुझे अच्छीतरह पिछाणे है। फिर भी ऐसी हरकत की।क्या समझता है– पंचायत हमें फाँसी पर चढ़ा देगी। पंचायत है क्या? हमारे पाँव की जूती। प्रधान कोई भी रहे नकेल हमारे हाथ मे होती है। जा जाके अपनी बेट्टी कू समझा। कुछ ऐसा–वैसा हो गिया तो मुझे दोस मत 'देणा.....आगे तेटी मर्जी' तेजभान की आँखों से आग बरस रही थी।'[8] दलित का अपने साथ हुए अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना सवर्णों को विचलित कर देता है। अब तक जो उनके सामने नज़र भी नहीं उठाते थे आज उनकी शिकायत कर रहे है यह बात तेजभान जैसे लोगो के लिए एक सबक है। 'जैसे–जैसे किसन और विरमा का स्वाभिमान जाग रहा था अपनी ही बस्ती में अलग थलग पड़ रहे थे। आखिर पंचायत के फैसले का दिन आ गया था। कार्यवाही ज्यादा लंबी नही थी। न किसी का बयान लिया गया था न किसी किस्म की कोई चर्चा ही हुई थी। न बहस ।न आरोपी को बुलाया गया, न फरियादी को। बस, सिर्फ फैसला था।सचीन्दर वल्द तेजभान ने बिरमावल्द मंगलू के साथ राह चलते छेड़खानी करने की कोशिश की। भविष्य में ऐसी घटना न हो, इसलिए पंचायत सचीन्दर पर पाँच रुपया जुर्माना करती है।'[9] पंचायत के इस फैसले से किसन,मंगलू, बिरमा, सभी उदास थे। उन्हे पंचायत से ऐसी उम्मीद न भी। सब को उदास देख बिरमा कहती है कि यह अंत नही बल्कि शुरुआत है। अपने स्वाभिमान के लिए प्रतिरोध करने की प्रेरणा इस घटना से औरो को मिलेगी। 'विद्रोह तभी होता है जब कोई चीज गले में पत्थर की तरह लटक जाती है।' निश्चित रूप से गिरिराज किशोर का यह कथन यथार्थपूर्ण ठहरता है। दलित समाज के सामने जाति एक ऐसा प्रश्नचिन्ह है जहाँ वह हमेशा से अपने साथ छलाव महसूस करता रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस प्रश्न से अच्छी तरह परिचित थे। वे दलित समुदाय के साथ होने वाले एक–एक षड्यंत्रसे समाज में जागृति पैदा करना चाहते थे। उन्होंने यह महसूस किया की इत व्यवस्था से लड़ने के लिए शिक्षा व जागरुकता दोनों का होना आवश्यक है यही कारण है कि उन्होंने अपनी सभी कहानियों में वर्णवादी व्यवस्था व ब्राह्मणवादी विचारधारा की साजिशों का पर्दाफाश किया है। साथ ही साथ उस व्यवस्था के खिलाफ प्रतिरोध भी व्यक्त किया है। अपने दुश्मनों को पहचानने के साथ ही वह उनके विविध षडयंत्रों से भी परिचित थे इसीलिए उनसे लड़ने के लिए वे सर्वप्रथम अपनी कमजोरियों को दूर करना अपना पहला कदम मानतें हैं। जिसके लिए शिक्षित होने के साथ–साथ एकजुटता भी जरूरी है। उन्होंने इन कहानियों के माध्यम सेदलित समाज को सुधारने एवं जागरूक करने का प्रयास किया है।

सन्दर्भ सूची:–

1. सलाम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.स.–16
2. वही पृ.स.–33
3. स. राजेन्द्र यादव, ओमप्रकाश वाल्मीकि, हंस, 1998, पृ.स.–49
4. सलाम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.स.–52
5. वही पृ.स.–55
6. वही पृ.स.–59
7. दलित साहित्य की अवधारणा, कँवल भारती, पृ.स.–105
8. घुसपैठिये,ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.स.–27
9. वही पृ.स.–28

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

"हिन्दी कथा-साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्रियाँ दशा एवं दिशा"

शहजादी खातून

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड

भारतीय समाज व्यवस्था में केन्द्रीय वर्चस्ववाद को चुनौती देते सदियों से हाशिये पर धकेले गए लोगों ने अपने अस्तित्व की खोज करते हुए चिंतन प्रक्रिया जब साहित्य के माध्यम से शुरु हुई तो दलित-विमर्श, किन्नर-विमर्श, किसान-विमर्श, मुस्लिम-विमर्श, घुमंतु-विमर्श, वृद्धावस्था-विमर्श आदि कई प्रकार के विमर्शों ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व साहित्य के क्षेत्र में चिंतन के नए प्रवाहों की दस्तक दी है।

आज स्त्री-विमर्श चर्चा के केन्द्र में है। जब कहा जाता है कि कि स्त्री-विमर्श स्त्री मुक्ति का विमर्श है तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि स्त्री की मुक्ति किससे? पुरुष से या स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंधों से जिसका निर्वाह स्त्री सदियों से करती आ रही है, किन्तु यहां नारी विमर्श से तात्पर्य है नारी को अपने स्वयं की पहचान उसकी स्वतंत्रता, उसकी अस्मिता और अस्तित्व की स्थापना है। स्त्री-विमर्श का आरंभ अमेरिका और यूरोपीय जनवादी क्रांतियों के आरंभिक दौर में ही शुरु हुआ है। उन आन्दोलनों में सक्रिय स्त्रियों ने मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों तथा स्वतंत्रता, समानता की घोषणाओं को स्त्रियों के लिए भी लागू करने की मांग साहित्य के माध्यम से भी शुरु की। वर्तमान में शिक्षा तथा विभिन्न सामाजिक आंदोलनों और अन्य कानूनी प्रावधानों, मानवाधिकारों के आ जाने से स्त्री में चेतना जागृह हुई। इस सिलसिले में हिन्दी की महिला कथाकारों में मन्नु भंडारी, कृष्णा सोबली, उषा प्रियंवदा, शिवानी, ममता कालिया, प्रभा चेतान, मृदुला गर्ग, नमिता सेठ, मंजूल भगत, शशि प्रभा, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णा अग्निहोत्री, दीप्ति, खंडेलवाल, सुनीता जैन, मृणाल पांडेय, नासिरा शर्मा, सूर्यबाला, मेहरुन्निसा परवेज, टाकभौरे, रमणिका गुप्ता, सुधा अरोड़ा, चित्रा मुदगुल, चन्द्रकिरण सौनरैक्सा आदि प्रमुख रचनाकार हैं।

मध्यवर्ग के नारी चरित्र मूलतः शिक्षित, पारंपरिक और विद्रोही तो है ही, पर इसमें अशिक्षित नारी चरित्र भी है। यद्यपि मध्यवर्ग में चेतना का रुप सबसे कम लक्षित होता है। इस वर्ग में व्यवसायिक मित्रता, आर्थिक स्थिति और भूमिका में भिन्नता भी द्रष्टव्य है।

प्रत्येक जीवित प्राणी में चेतना का स्तर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप में विद्यमान होता है चाहे वह नर हो या नारी। नारी चेतना भी पुरुष के समान ही कार्य करती है किंतु चेतना का स्तर सभी में भिन्न-भिन्न हो सकता है। चेतना जागृति स्तर और परिवेश के आधार पर अस्तित्व ग्रहण करती है। अतः संस्कारों से पोषित होकर नारी और पुरुष चेतना भी भिन्न-भिन्न रुपों में अभिव्यक्त होती है। पुरुष दृढ़ता, कठोरता और पौरुष साहस का हामी होता है। तो नारी कोमलता, ममता, दया और त्याग को प्रश्रय देती है।

नारी के रहन-सहन, खान-पान, जीवनयापन, चिंतन-मनन, संकल्प-संवेदना, अनुभूति, निष्ठा आदि में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। सुधारवादी आंदोलनों, वैज्ञानिक युग की उपलब्धियां, औद्योगिक प्रगति तथा पश्चिम के प्रभाव के कारण आज की भारतीय नारी पुरातन मान्यताओं के घेरे को तोड़कर नूतन मूल्य, परिवेश में आई है। शिक्षा प्रसार, नगर-संपर्क एवं राजनीतिक परिवर्तनों के फलस्वरुप नारी का दृष्टिकोण भी परिवर्तित हुआ है। पुरातन रुढ़ियों और मान्यताओं की पकड़ ढीली हुई है और आधुनिक नारी नूतन मूल्यों और बदलते युग बोध की अकुलाहट का अनुभव कर सकी है। नारी चेतना के परिवर्तित आयाम, संगति एवं विसंगति उसकी मानसिक एवं संवेगात्मक चिंतनशीलता नवोन्मेश कर्त्ती क्रिया विधि भी नारी चेतना के ही विविध आयाम है जिनकी विकृति सामाजिक, सौंदर्यमूलक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में ध्वनित है। समाजवादी समाज संरचना के फलस्वरुप स्वीकृति कार्य विधि का विस्तार शहर नहीं बल्कि ग्राम और आंचलिक नारी जीवन को भी प्रभावित कर रहा है। परिणामस्वरुप नारी के जीवन, मान, और चिंतन अनुक्रम में एक विचित्र प्रकार की उथल-पुथल और नवीन बोधजन्य मानसिकता प्रादूर्भूत हुई है।

नारी के आत्मबोध, आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के आधुनिक उपन्यासों में जो नारी चरित्र उभर कर आए हैं उन्हें तीन वर्गों में विभाजित करके देखा जा सकता है- (1) उच्च वर्ग (2) मध्य वर्ग और (3) निम्न वर्ग। नारी इनमें से किसी भी वर्ग चरित्र में हो वह अपनी पहचान बनाती है। पहले वर्ग में यदि वह डॉक्टर, प्राध्यापक, अधिकारी, नेता है तो वह विद्रोह और रुढ़ियों को चुनौती देती हुई महत्वकांक्षिणी के रुप में चित्रित है। मध्यवर्गीय चरित्र के रुप में नारी दोहरे मानदंडों से जुझते हुए झूठी इज्जत के कारण अनेक कष्ट भोगने के लिए बाध्य है। यद्यपि वह शिक्षित है परंतु समाज की झूठी इज्जत रुढ़ियों में फंसकर अपनी वास्तविकता से दूर रहकर समाज के अनुरुप खुद को ढालने के लिए विवश है। लेकिन तीसरे वर्ग की नारी चरित्र आज सर्वाधिक सशक्त है, वह विद्रोह और रुढ़ियों को खुलकर चुनौती दे रही है तथा समाज के बंधनों और मर्यादा की परवाह न करके अपनी आत्मा और स्वाभिमान की रक्षा करती है। मध्यवर्गीय चरित्रों में घरेलू, कामकाजी, वैयक्तिकता, सामाजिकता का अंतःसंघर्ष उभरता है। मध्यवर्गीय ये नारी चरित्र प्रायः कामकाजी है, जो उनके जीवन के लिए मजबूरी है। अतः घर और बाहर दोनों ही क्षेत्रों में काम संभालते-संभालते थक जाती है। 'बेघर' की नायिका मानसिक परेशानियों से बचने के लिए घर से निकलकर भागा-दौड़ी के कारण जीवन का सर्वस्व समाप्त कर लेती है। 'पतझड़ की आवाजें' की नायिका शिक्षित होने के साथ-साथ अपनी विशिष्ट भावनाओं और महत्वकांक्षाओं के रुप में ब्वॉयफ्रेंड की रेस्पेक्ट भी मेंटेन नहीं

कर पाती जिससे उसकी मध्यवर्गीय नैतिक चेतना चरमराने लगती है।

नारी सम्मान और पारस्परिक संबंधों के जटिल अंतर्विरोध, प्रेम के अंतरंग स्वरुप तथा नारी महत्वकांक्षाओं ने नारी चरित्र में दोहरे व्यक्तित्व का निरुपण करने के लिए उपन्यासकार को बाध्य किया है। मध्यवर्गीय नारी चरित्र में एक प्रकार के अंर्तमुखी चेतना का विकास र्द्रष्टव्य होता है। अतिशिक्षित एवं बौद्धिक होती नारी अपने सम्मान के प्रति अधिक सजग हो उठी है। परिणामतः समाज में पारस्परिक संबंधों में अंर्तविरोध की स्थितियां बढ़ गई है। यही नहीं बढ़ती हुई नारी चरित्रों की अंर्तमुखता समाज विरोधी स्थिति बनाती है। समाज एवं सामाजिकता को गौण करते हुए व्यक्ति की अधिक प्रतिष्ठा चित्रित की गई है। 'अग्निगभा' की नायिका अपना सम्मान बनाए रखने में पग-पग पर अंतर्विरोध से गुजरती है। वह अपने पसंद का जीवन साथी चाहती है तथा परम्परागत मूल्यों, मान्यताओं और बंधनों को नकारती है। मध्य आधुनिक काल में नारी के प्रति पुरुष के भाव बदल गये हैं और नारी में भी अपने स्वतंत्रता की घोषणा की है। वास्तव में आज भारी बढ़ते अजनबीपन, विवाह संबंधों में शिथिलता, परिवार एवं समाज में नारी की स्थिति एवं चेतना का किंचित विकास दिखाई देता है।

1. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्गीय स्त्रियां :-प्रेमचन्द्र ने अपना जीवन मध्यवर्गीय समाज में यापन किया तथा उसकी समस्याओं को अनुभूत भी किया है। इसी वजह से 'सेवासदन' (1918) से लेकर 'गोदान' (1936) तक के श्रेष्ठ उपन्यासों में भारतीय समाज के सभी वर्गों का यथार्थ चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द के साहित्य में मध्यवर्गीय समाज चित्रण की प्रमुखता है-

वैसे तो प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रत्येक वर्ग के पत्रों को प्रतिनिधित्व मिलता है-''पर जब हम उसके समस्त व्यक्तित्व का अध्ययन करते हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका मन जितना मध्यवर्गीय और निम्नवर्ग की समस्याओं में रंगा है उतनना उच्च वर्ग की समस्याओं एवं प्रश्नों में नहीं है।''[1]

इन तथ्यों के मूल में मात्र यही कारण है कि 'प्रेमचन्द स्वयं उसी वर्ग से आते थे और उसकी चेतना, आशा, आकांक्षा को अभिव्यक्ति देने वाले सषक्त कलाकार थे। उसके पात्र मुख्यतः इसी वर्ग से निकल कर आये हैं।''[2]

समाज में सदैव मध्यवर्ग ही अधिक समस्याग्रस्त रहा है। उसमें न तो उच्च वर्ग जैसी संपन्नता है और न ही निम्न वर्ग के सदृश्य फांका कशी, साथ ही- ''मध्यवर्ग की एक बड़ी लाचारी यह है कि गरीब होने पर भी वह नहीं चाहता है कि उसे लोग गरीब समझे। तभी तो उसे मुलम्मेबाजी का सहारा लेना पड़ता है।[3]

मध्यवर्गीय नारी की समस्या भी एक जटिल समस्या है। आर्थिक पराधीनता तो उसके साथ है ही सामाजिक और नैतिक नियमों से भी पूरी तरह से वह बंधी हुई है। निम्नवर्ग की नारी एक पति को छोड़कर दूसरे पति कर सकती है। इसी प्रकार उच्च वर्ग की नारी में भी यौन पवित्रता को इतना महत्व नहीं दिया जाता पर मध्यवर्ग की नारी लक्ष्मी मानी जाती है। उस पर घर की प्रतिष्ठा आधारित रहती है।[4]

चूंकि वह मानव मूल्यों के प्रति सर्वाधिक जागरुक है। इसलिए वह न तो यंत्र बन सकता है, न तंत्र। प्रेमचन्द के उपन्यासों में मध्यगर्व के अंतर्गत गिने-जाने वाले सभी उपवर्गों का समायोजन हो सकता है। मध्यवर्ग की 'मनीषा' उसके व्यवहार दिखावे और उनकी विडम्बना की सबसे सफल अभिव्यक्ति प्रेमचन्द के जिस उपन्यास में हुई है वह है- 'गबन'। गबन की नायिका बाबू वर्ग की पत्नियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। 'जालपा' का परिचय देते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- ''जालपा'' भारत का उगता हुआ नारीत्व है। वह भविष्य के तूफानों की अग्र सूचना है। उसने वर्तमान की राह पर मजबूती से पांव रखा है और भविश्य की तरफ वह निःशंकु दृष्टि से देखती है। वह एक नया भाग है जो संपूर्ण संस्कृति के कागजी फूलों को अर्पण कर देती है। वह सदियों से लांछना और अपमान को पहचानने वाली नई शूरता है जिनके आगे कोई बाधा ठहर नहीं सकती। वह हिन्दुस्तान के नये आने वाले इतिहास की भूमिका है- वह इतिहास जिसमें लांछों जालपा एक साथ आगे बढ़ेगी और ऐसे नारीत्व का चित्र आंकेंगी जिसके सामने अतीत के सभी चित्र फींके लगेंगे।''[5]

आभूषणों से प्रेम जालपा के व्यक्तित्व का प्रमुख अंग है और यही उसकी विपतियों का मूल स्त्रोत भी है।

''रंगीली बाई'' भी निर्मला उपन्यास की एक खाते-पीते महिला के रुप में चित्रित की गई है जो किसी से कठोर शब्द कह भले दे, किंतु किसी के प्रति अन्याय न सहन कर सकती है, न देख सकती है। निर्मला के पिता की मृत्यु के बाद जब पंडित मोटे राम विधवा कल्याणी का दुख भरा पत्र लेकर बाबू भालचंद के पास पहुंचे तो उन्होंने ने तो संबंध के लिए साफ इंकार कर दिया, किंतु रंगीली बाई ने जब वह पत्र देखा तो-

''पहली ही पंक्ति पढ़कर उनकी आंखे सजल हो गयी और पत्र समाप्त किया तो उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे- एक-एक शब्द करुणा के रस से डुबो हुआ था। एक अक्षर से दीनता टपक रही थी। रंगीली बाई की कठोरता पत्थर की नहीं लाज की थी जो एक ही आंच में पिघल जाती है। कल्याणी के करुणोत्पादक शब्दों ने उनके स्वार्थमंडित हृदय को पिघला दिया। रुठे हुए कंठ से बोली- ''अभी ब्राह्मण बैठा है न।''[6]

अपने इसी छोटे से भेंट में वह पाठकों के हृदय पर अपनी उदारता तथा उच्चाशयता की अमिट छाप छोड़ देती है।

''रंगभूमि'' की कुलसुम एक मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की नारी है जो पारिवारिक अंतःकलह तथा अपने पति के अत्यंत सीधेपन के बीच भाग्य के हथौड़ों को सहती हुई जीवन बिताती है। कुलसुम की प्रमुख समस्या है- उसकी दो सौतेली सांसों द्वारा आर्थिक तथा मानसिक रुप से उसका शोषण। धैर्य तथा सहनशीलता कुलसुम के प्रमुख गुण है। सूरदारों की जमीन के प्रकरण को लेकर क्षुब्ध पांडेपुर के लड़कों और ताहिर परिवार के बालकों के बीच हुए संघर्ष की चपेट में आ जाने से ताहिर अली के घायल व अचेत हो जाने पर जैनब और रकिया कुलसुम सभी कुछ शांत चित्त से सुनती और सहती है। स्थिति शांत होने पर वह अपने परिवार को यह नौकरी छोड़ने की भी सलाह देती है। वह एक दूरदर्शी महिला है।

भीष्म साहनी का उपन्यास ''तमसः'' में स्त्री पात्र बहुत कम है, लेकिन जितने भी पात्र हैं वे मानवीय और संवेदनशील है। 'तमसः' में सभी महिलाएं एक-दूसरे की बहादुरी को जगाती है। 'नत्थू की पत्नी' के चरित्र में सहज ही एक भारतीय नारी का चरित्र उभरकर आता है। वह अपने पति को सुखी देखना चाहती है और इसके लिए वह सबकुछ करने को तैयार है। उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य उसके पति की खुषी है। दूसरी ओर बन्तो एक सुषील और पात अनुगामिनी पत्नी है। बन्तो दोज इलाही बख्श के हरनामा सिंह की पत्नी है। उसका परिचय भी पाठक को 'तमसः' के दूसरे खण्ड में होता है। वह एक सुशील पत्नी, वात्सल्यमयी माता, सच्चे अर्थों में जीवन संगिनी आधार मानने वाली नारी एवं धार्मिक प्रवृत्ति वाली नारी है।

''राजो'' दया की साक्षात् मूर्ति है। राजो सहनशीलता की पत्नी है। मजहबी जूनून के उस वातावरण में एक सिक्ख परिवार को आश्रय देकर

राजो ने एक ओर तो अद्भूत साहस का परिचय दिया दूसरी ओर वह दया से परिपूर्ण अपने हृदय का भी भरपूर परिचय देती है। जब उसके द्वार को हसाब सिंह और उसकी पत्नी बन्तो ने उसके द्वार खोलने को कहा तो पहले तो वह डर गई किन्तु बन्तो ने उन्हें द्वार खोलने को कहा तो उसने तत्काल द्वार खोल दिये। मेहरुन्निसा परवेज के उपन्यास- 'आंधी की दहलीज'' में पौत्र प्राप्ति की लालसा में उचित-अनुचित की सीमा लांघती ''तालिया की मां'' से तालिया का विद्रोह करना, ''उसका घर'' उपन्यास में रेशमा का देव के लिए अपनी मां से विद्रोह करना रेशमा की मांग की मृत्यु पर ऐलया का अपने भैया से विद्रोह करना।

'कोरजा' उपन्यास में योमा पैतीस साल की होने पर भी अविवाहित है, क्योंकि जिससे वह प्यार करती थी, उसका निधन हो गया। अब वह अपने घर पर ही चलकर समाज में एक मिसाल कायम करती है।

'पासंग' उपन्यास में कनी की दादी हमेशा अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहकर अकेले ही अपने परिवार की रक्षा करती है, वह कहती है-

''औरत को कभी अपनी हैसियत नहीं भूलनी चाहिए औरत जिन्दगी से लाचार-बेजार होकर हालत की कठपुतली बनकर रह जाती है। उसे ही दलदल से बाहर आने का रास्ता ढूँढ़ना चाहिए।''[7]

''अकेला पलाश'' उपन्यास की तहसीना पति की उदासीनता से दुखी होकर सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहती है। अधिकारी के रुप में वह कर्मठ और ईमानार है। अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर रोब गांठ के बजाय दिशा-निर्देश देती है। उत्पीड़ित महिलाओं की समस्याओं को सहानुभूतिपूर्वक सुलझाती है। अपने अस्तित्व को बचाने के लिए सामाजिक एवं घरेूल कार्यों का निर्वहन एक समान करती है।

''सात नदियां एक समंदर'' की पात्रा तैयबा एक क्रांतिकारी महिला है। उसका चरित्र अत्यंत प्राणवान है। अपने मूल्यों को बचाने के क्रम में उसे बिजली के झटके, केबिल तार की मार, तिरस्कार, अपमान और बलात्कार का शिकार होना पड़ता है। अपने सिद्धांतों और मूल्यों से उसने कभी समझौता नहीं किया। अंततः उसे गोली मार दी जाती है।

''आधा गांव'' उपन्यास में झंगोटिया को एक ऐसी ही नारी पात्र है जो चमाईन है। सुलैमान चा ने उसे अपनी रखैल बनाकर घर में रखा। जब झंगोटिया बो का विवाह हुआ था तो वह अठारह वर्ष की थी और उसका पति चालीस साल का। पति की मृत्यु के बाद वह सुलेमान की रखैल बनी, उसके तीन बच्चों की मां बनी। लेकिन, विडम्बना देखिए कि वह घर बीवियों के साथ फर्श रप नहीं बैठ सकती वह न ही मुसलमान बन सकी और न ही उसे कभी सुलेमान चा ने मुसलमान बनाने की कोशिश की। कुंठित और हतोत्साहित झंगोटिया वो अंत में अपनी जिन्दगी से हार मानकर कुएं में गिरकर जान दे देती है। 'धरी धन न अपना' उपन्यास की प्रमुख की प्रमुख स्त्री पात्र 'ज्ञानी' के चरित्र में ढृढ़ता उसका बहुत बड़ा गुण है। कई अर्थों में वह काली से भी अधिक ढृढ़ चरित्र है। किसी चौधरी की मजाल नहीं कि वह उसे छेड़े या तंग करें हालांकि चमार की लड़कियों को चौधरी अपना चारा ही समझते हैं।

वह काली से प्रेम करती है और बिना विवाह के ही गर्भवती हो जाती है लोक और लाज के भय से उसकी मां सैखिया (जहर) खिलाकर उसकी हत्या कर देती है।

हिन्दी कहानियों में मध्यवर्गीय स्त्रियां:-प्रेमचन्द का कथा-साहित्य भारतीय जनमानस की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलूओं पर एक व्यापक दृष्टिकोण लेकर रचा गया है। प्रेमचन्द अपनी कहानियों में समाज की मूक जनता के साथ-साथ हाशिए पर खड़ी नारी समस्याओं पर केवल चर्चा नहीं करते अपितु नारी मुक्ति की भी बात करते हैं। प्रेमचन्द नारी अस्मिता के लिए नारियों को स्वयं जागृत होने की सलाह देते हैं। प्रेमचन्द नारी जागरण की आलस्य जगाने के लिए घर-घर की नारियों का आहवान् करते हैं। जिसके कोई सामाजिक विभेद नहीं दिखाई पड़ता। वर्षों पहले अपने साहित्य द्वारा प्रेमचन्द ने नारी अस्मिता के लिए जो संघर्ष किया वह नवजागरण इतिहास मं बहुत बड़ा योगदान है यही कारण है कि आज भी प्रेमचन्द का स्त्री विमर्श प्रासंगिक बना हुआ है।

प्रेमचन्द जिस उपन्यास में स्त्रियों को उभारते हैं वे प्रायः मध्यवर्ग होने के साथ-साथ पतिव्रत्य के गुणों से लैस पत्नी होती है। 'सती कहानी' इसक अच्छा उदाहरण है। इस कहानी में 'मूलिया' जिसका शक्की पति 'कल्लू' उसकी सुंदरता के कारण उसे विश्वास पात्र नहीं मानता। अंततः उसकी एकनिष्ठ सेवा भावना से द्रवित हो जाता है।

भारतीय समाज में दहेज प्रथा आज भी नारी शोषण का कारण है। प्रेमचन्द युगीन समाज में भी यह प्रथा विराजमान थी । यही कारण है कि लोग पुत्री के जनम पर शोक मनाते थे। नैराष्य लीला कहानी में इस कड़वी सच्चाई का वर्णन प्रेमचन्द ने किया है।

आदमी अपने स्त्री से इसलिए नाराज होते हैं कि उसके लड़कियां क्यों होती है? लड़के क्यों नहीं होता?

'निरुपमा' की केवल बेटियां होने के कारण उसे पति द्वारा प्रताड़ित होना पड़ता है। अंततः अत्यधिक शोक के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है।

'उद्धार' कहानी में लेखक ने दिखलाया है कि दहेज की चिंता से कोई भी मां-बाप मुक्त नहीं हो सकते, इसी कारण एक परिवार में सात पत्री के बाद भी एक कन्या का का जन्म परिवार के लिए बोझ लगती है।

'दहेज के अभाव में कोई बूढ़े के गले कन्या को मढ़कर अपना गला छुड़ाता है।''

प्रेमचन्द जी ने विधवा की वास्तविक स्थिति किो बेटों वाली विधवा कहानी के माध्यम से समाज के सामने रखा है। जहां 'फूलमति' पति की मृत्यु के बाद अपने बेटों, बहुओं के द्वारा सतायी जाती है। जायदाद की बात करने पर वे कहते हैं-

''कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है।''

'बूढ़ी काकी' कहानी की विधवा अपनी जायदाद भतीजे बुद्धिराम के नाम लिख जाती है लेकिन जायदाद पाकर बुद्धिराम और उसकी पत्नी उसके साथ दुर्व्यवहार करने लगते हैं।

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की बहुचर्चित रचनाकार चित्रा मृदुगल की कहानी 'शून्य' में पारिवारिक रिष्ते की टूटने, बिखरने, नारी जीवन की त्रासदी, संघर्ष आदि समस्याओं का चित्रण किया गया है कि एक मध्यवर्गीय स्त्री किस तरह कुंठित होकर अपने सारा जीवन व्यतीत करती है।

'भूख' नामक शीर्षक कहानी मुंबई की झुग्गी-झोपड़ियों में पलता जीवन संघर्ष और भूख को खत्म करने की लालसा में खत्म होती जिंदगी की बेबषी के साथ वर्णन किया है। इस कहानी में लक्ष्मा का पति मिस्त्री का काम करता था जो मजदूरी करते वक्त दुर्घटनावश मर जाता है। ठेकेदार हजार रुपया की आर्थिक सहायता देकर अपना पीछा छुड़ा लेता है। लेकिन लक्ष्मा का भूख से लड़ने का संघर्ष और मुसीबतें यहीं से आरंभ हो जाती है। वह दो

बच्चों की मां है तथा पेट में सात माह का बच्चा है। वह बेबस और लाचारी में अपने बेटे जग्गूबाई को दे देती है अंततः उसका बच्चा भूख से मर जाता है। अपने बच्चे की मौत का सदमा वह बर्दाश्त नहीं कर पाती है जिसके कारण लक्ष्मा भी अचेत हो जाती है। भूख कितनी बेरहम और निर्दय होती है यह इस कहानी में देखा जा सकता है।

'प्रेतयोनि' कहानी भी एक मध्यगर्वीय स्त्री को आधार बनाकर लिखा गया है। यह कहानी दकियानूसी परिवार की कहानी है जो बलात्कार पीड़िता लड़की का परिचय छिपाना चाहती है, इसकी नायिका 'अनीता' दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा है वह सफ़र के दौरान एक टैक्सी ड्राईवर की हवस का शिकार हो गई, किन्तु अपने साहस और बहादुरी से वह टैक्सी ड्राईवर के चंगुल से भाग निकलती है। उसकी बहादुरी और साहस की पशंसा अखबारों में छप गई किन्तु उसके पिता सभी से कह देते हैं कि वह मेरी 'अनीता' नहीं है कोई और 'अनीता' नाम की लड़की है। अतः अनीता कुंठित होकर रह जाती है। ''शोभना'' ''ताजमहल'' कहानी की प्रमुख स्त्री पात्र है। शोभना दिवाकर से प्रेम करती थी, बच्चू दिवाकर और शोभना की संतान है। बच्चू के जन्म के पहले ही दिवाकर शोभना से दूर हो जाता है। निशीथ बच्चू को ठीक से नहीं अपना पाता है हमेशा उसमें दिवाकर की सूरत देखता है। एक दिन बच्चू को टायफ़ाईड हो जाता है। शोभना की छुट्टी खत्म हो गई। निशीथ उसकी देखभाल करने के लिए तैयार नहीं है। जब शोभना उसे घर रुकने के लिए कहती है तक निशीथ की कुंठा और जीस भलिभांति देखी जा सकती है।

'टायफ़ाईड है, कैंसर नहीं, मर नहीं जाएगा बच्चू सुबह से घर का सिर पर उठा रखा है। ऊपर से ये डॉक्टर है साले जेबकतरे हैं जेबकतरें।'

चित्रा मुद्रगल की कहानियां मध्यवर्गीय स्त्रियों की संवेदनाओं को प्रकट करती है।

चित्रा मुद्रगल जी की कहानी 'त्रिशंकु' महिलाओं पर घर में पुरुषों द्वारा किये जाने वाले अत्याचार की मार्मिक दास्तान है।

''मन्नू भंडारी'' जी की रचना- ''तीन निगाहों की एक तस्वीर'' की नारी पात्र 'दर्शना' अपने रुग्ण पति के प्रति पूर्ण रुप से समर्पित है। अपने रुग्न पति का समर्पण भाव से सेवा करती है। वह पति की सेवा पूरे तन-मन से करती है तब भी पति का प्रषंसामय एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार प्राप्त नहीं होता है। 'एक कमजोर लड़की की कहानी' नामक कहानी में एक ऐसी लड़की है जो अनिच्छा से हुए विवाह विवाह के दांपत्य संबंधों के प्रति भी ईमानदार है। 'हार' कहानी में पति-पत्नी संबंध आधुनिक एवं प्रगतिशील चेतना के संतृप्त विदाई देते हैं। शेखर और दीपा आधुनिक विचारों के सुशिक्षित तथा प्रतिद्वंदी राजनीतिक पार्टियों के कार्यकर्त्ता हैं परंतु इसे कभी भी इन दोनों ने अपने बीच की दरार बनने नहीं दिया।

नाटक में चित्रित मध्यवर्गीय स्त्री:-मोहन राकेश का नाटक 'आधे-अधूरे' एक मध्यवर्गीय परिवार की आंतरिक कलह और उलझते रिष्तों के साथ-साथ समाज में स्त्री-पुरुष के बीच बदलते परिवेश तथा एक दूसरे से दोनों की अपेक्षाओं को चित्रित करता है।

महेन्द्र नाथ बहुत समय से व्यापार में असफ़ल होकर घर पर बेकार बैठा है और उसकी पत्नी सावित्री नौकरी कर के घर चलाती है। कई तरह की परिस्थितियों और अपने अपने स्वभाव के कारण एक-दूसरे से नफ़रत करते हैं। मगर फ़िर भी सामाजिक, पारिवारिक और रुढ़िगत ढांचों में लगे रहने के कारण साथ रहने को मजबूर है। 'सावित्री' इस नाटक की महत्वपूर्ण नारी पात्र है। इसके साथ ही इसकी बेटी बिन्नी और किन्नी के अतिरिक्त पुत्र अशोक भी महत्वपूर्ण पात्र है।

साहित्य में स्त्री सदैव से केन्द्र बिन्दु रही है। साहित्य की अन्य विधाओं में कहानी, नाटक, उपन्यास पर भी स्त्री के विविध पहलूओं को दर्शाया गया है। हिन्दी नाटककारों ने स्त्री जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं का नाट्य रचनाओं में उतारकर समाज की विसंगति को मुखरित किया है। जी जैसी आपकी मर्जी नाटक में पुत्री के जन्म के बारे में लोगों की सोच को समझा जा सकता है।

'मिठाई, मिठाई किस बात की? करम जली पैदा हुई है। हमारी तो किस्मत ही फ़ूट गई''।

मध्यवर्ग में अधिकांशतः स्त्री को बोझ माना जाता रहा है। उसके साथ लिंग भेद, शोषण, अत्याचार की घटनाएं आम हैं।

एम0जी0 सचिन का नाटक 'कन्या' भूण हत्या पर आधारित है। उन्होंने नाटक के माध्यम से 'कन्या भूण' के द्वारा मर्मस्पर्शी शब्दों में-

''मेरी मां के लाख मना करने के बावजूद मेरे पिता और उसकी मां ने वो काम कर दिया जिसके लिए हमारे देश की सरकार मना करती आ रही है। भ्रूण लिंग परीक्षण और वही हुआ जिसका अंदेशा था। इस बार भी मां की कोख में एक लड़की बस फ़िर क्या था..... तक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी बिना डरे सारा परिवार भ्रूण हत्या करता जा रहा था।''

परिवार में पुत्री को जन्म से ही बोझ समझे जाने के कारण उन्हें समस्त पारिवारिक दायित्वों से वंचित कर दिया जाता है।

'सकुबाई' नाटक में आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण जब 'सकु' अपनी आई तथा भाई के साथ नानी के घर में रहती है तब 'सकु' का छोटा मामा उसका बलात्कार कर देता है। आई को जब यह बात पता चलता है तो आई ने कह दिया-

''रवि इस घर में रहेगा या हम..... लेकिन नानी और बड़े मामा रवि को क्यों निकालने लगे? वो तो उनका ही बेटा था न ..... आखिर हमलोगों को जाना पड़ा।''

बलात्कार ऐसी घृणित कृत्य करने पर भी 'सकु' की नानी तथा बड़े मामा छोटे मामा का ही साथ देते हैं और अपनी बेटी तथा नातिन 'सकु' को घर से निकाल देते हैं।

सदियों से स्त्रियों को मारना, उसे प्रताड़ित करना, उसके साथ बलात्कार करना आदि स्त्री को पुरुष के अधीनस्थ रखने के लिए ऐसे तरीके हैं जो आज के सुशिक्षित कहे जाने वाले आधुनिक समाज में भी ज्यों के त्यों विद्यमान है।

हां-हां मुझे पता है मेरे प्रति तुम्हारी सोच तुम्हारी सोच स्त्री देह तक ही सीमित है। तुम्हारी पुरुषवादी सोच में जो तुम्हारी मानसिकता है, उसमें एक हैवान सा दानव है। बिना स्वार्थ के तुम सहायता नहीं कर सकते। मुझे पता है तुम्हारा स्वार्थ क्या है? इस सहायता केक पीछे क्या रहस्य पता है हमें। मैं शिद्दत से जानती हूं, मीठे वचन के पीछे इन घिनौने पुरुषों की हैवानियत का रहस्य तुम्हें पता नहीं शायद कि तुम खुद को जितना ढंकने की कोषिष करते हैं, उतने ही बार तुम बेनकाब हुए हो।

स्त्री की खामोशी को उसका मौन न समझो। स्त्री की इसी खामोशी में, उसके मौन में भीतर ही भीतर सुलग रही है, आक्रोश की ज्वाला उसी आक्रोश की ज्वाला में तुम्हारे बेनकाब चेहरे को दुनिया के सामने तुम्हारा हैवानरुपी दानवरुप दिखाना चाहती हूं।

तुम याद करो कि तुम्हारी गंदी मानसिकता की अंधेरे रास्ते से मैं

तुम्हें ढूंढ़ रही हूं कि क्या है आखिर तुम्हारे पुरुषत्व के पीछे का राज।

मैं सेरआम तुम्हारे पुरुषत्व के अहंकार को चकनाचूर करना चाहती हूं। तुम मुझे वो बत समझो जो मैं हूं मैं वो हूं जो तुम्हें शायद पता नहीं।

शहजादी खातून (स्वयं) की कविता।

निष्कर्ष:-निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ''हिन्दी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्रियों की दशा एवं दिशा'' में प्रारंभ से अब तक जितने रचनाकार आए चाहे वह कहानी-उपन्यास या नाटक हो, उन्होंने अपनी रचनाओं में पात्रों के माध्यम से विशेषकर स्त्री पात्रों के द्वारा नारी जीवन से संबंधित विभिन्न मुद्दों को विभिन्न कोणों से उभारा है। जिससे स्पष्ट होता है कि स्त्री को अपना सर्वस्व किस प्रकार बिताना पड़ता है। जिसमें उसे यातनाओं, पीड़ाओं, कुंठाओं, संग्रामों और वेदनाओं के बीच आज भी संघर्ष करते हुए जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। जिसमें मुख्य रुप से प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, चित्रा मुद्रगल, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, राही मासूम रजा आदि रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में मध्यवर्गीय स्त्रियों की जीवन त्रासदी का यथार्थ एवं मार्मिक अंकन किया है।

संदर्भ सूची:-

1. प्रेमचन्द की कहानियों में नारी जीवन की समस्याएं और नवजागरण (शोध कॉलेज) डॉ0 अनीता मिंज
2. रामस्वरुप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ सं0- 94
3. हिन्दी कथा-साहित्य में नारी राजनीतिक-सामाजिक स्तर पर नारी अस्मिता की स्थापना और.....www.mpgkpdf.com
4. मन्नू भंडारी के कथा-साहित्य में नारी चित्रण एक अध्ययन- ignited minds journals
5. चित्रा मुद्रगल की कहानियों में चित्रित महिलाओं का जीवन संघर्ष- डॉ0 हरिराम झालड़िया अक्षर वार्त्ता- अंतर्राष्ट्रीय नासिक शोध पत्रिका, पृष्ठ सं0- 39
6. आलोकमालाः हिन्दी नाटकों के केन्द्र में स्त्री स्वर- सामाजिक संदर्भ में- 'अपनी माटी' सोनम कनौजिया।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

यात्रा के कलेवर में प्राकृतिक छटा

कु. चाँदनी गोले

शोधार्थी, माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इंदौर मप्र. व सहायक प्रध्यापक, हिंदी, शा. महाविद्यालय, निवाली, बड़वानी

शोध सार:-प्रकृति और मनुष्य का गहरा नाता रहा है। प्रकृति की गोद में पले-बढ़े मनुष्य का प्राकृतिक उपादानों से अटूट प्रेम रहा है। धर्म, दर्शन, शिक्षा, स्वास्थ्य,साहित्य, कला, संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में प्रकृति का स्थान सर्वोपरि है। साहित्य और साहित्यकार भी प्रकृति से ही अभिप्रेरित है। प्रत्येक साहित्यकार प्रकृति रूपी आँगन में बैठकर ही अपनी रचना में रंग भरकर उसे मनमोहक रूप प्रदान करता है। प्रकृति के बिना काव्य की कल्पना करना महज़ कोरी कल्पना ही हो सकती है। पर्वत, पहाड़,नदी, झरने, खेत-खलिहान, पुष्प-प्रसून, सूर्य-चंद्र,ग्रह-नक्षत्र, बादल-बिजली, संध्या, आदि सभी प्राकृतिक उपादान ही हैं, जो कवियों और साहित्यकारों को काव्य सृजन हेतु निरंतर प्रेरित करते रहते हैं। प्राकृतिक उपादान मनुष्य द्वारा की जा रही यात्राओं में रंग भरकर उन्हें आकर्षक और जीवंत बना देते हैं। ऐसे में हिंदी यात्रा वृत्तान्त प्रकृति की परिधि से बाहर कैसे हो सकता है भला? क्योंकि प्राकृतिक सौंदर्य के बिना यात्रा की कल्पना संभव ही नहीं है। इक्कीसवीं शताब्दी के यात्रा वृत्तान्तों में प्राकृतिक सौंदर्य की सुंदर झाँकी स्पष्टतः परिलक्षित होती है। प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत प्राकृतिक सौन्दर्य के विविध पहलुओं को परत-दर-परत खोलने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द:-प्रकृति, यात्रा वृत्तान्त, साहित्य, प्राकृतिक सौंदर्य, इक्कीसवीं सदी।

यात्राओं का मानव जीवन से गहरा नाता रहा है। हो भी क्यों न? आख़िरकार मानव जीवन भी तो एक यात्रा ही है, जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा। यात्रा के लिए घूमना- फिरना, विचरण, भ्रमण, प्रयाण, पर्यटन, प्रवास, देशाटन, तीर्थाटन, यायावरी जैसे कई शब्द प्रयोग में ले जाते हैं। अंग्रेजी में Travel (ट्रेवल), Journey (जर्नी) एवं Tourism (टूरिज्म) जैसे शब्द प्रचलित हैं। वहीं उर्दू में सफ़र शब्द प्रयुक्त होता है।

यात्राएँ मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा रही हैं। इसका अनुभव न केवल हमारी सोच और दृष्टिकोण को विस्तार प्रदान करता है अपितु हमें विश्व की विविधताओं और समृद्धि को समझने का अवसर भी देता है। यात्रा करना, नया दर्शन प्राप्त करने और नये अनुभवों को खोजने का एक अद्भुत माध्यम है। वैदिक काल हो, चाहे पौराणिक युग, रामायण, महाभारत युग से होते हुए यात्राओं का क्रम निरंतर चलता रहा है। निश्चित तौर पर इन यात्राओं के उद्देश्य बदलते रहे हों। आदिकाल से प्रारंभ हुई यायावरी की प्रवृत्ति कालांतर में मानो मानव की आवश्यकता बन पड़ी। इन यात्राओं में ज्ञानार्जन, तीर्थाटन, शिक्षा-दीक्षा, धर्म व संस्कृति के प्रचार-प्रसार, व्यापार-व्यवसाय, युद्ध, अनुभव संचयन, साहसिकता, औत्सुक्य आदि उद्देश्य समाहित रहे हैं। यात्रा वृत्तांत को कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है...'यात्रा वृत्तांत, साहित्य की वह विधा है, जिसमें लेखक किसी स्थान की यात्रा का वर्णन करता है और यह वर्णन रोचकता से परिपूर्ण होता है। वर्णन के दौरान लेखक यात्रा स्थान के इतिहास, भूगोल, संस्कृति, सभ्यता, अर्थव्यवस्था एवं समाजिक परिवेश आदि से भी पाठक को परिचित कराता है।

हिंदी साहित्य जगत के कवियों एवं लेखकों ने अपने साहित्य में प्रकृति को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। आदिकालीन काव्य से लेकर आधुनिक कालीन काव्य में प्रकृति चित्रण की झलक स्पष्टतः देखी जा सकती है। प्रकृति का मानवीकरण साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में उभरा है। मनुष्य के साथ प्रकृति भी हँसती है और मनुष्य जब दुःखी होता है तो प्रकृति भी दुखी दिखाई देती है।' सारे मानवीय क्रिया-कलापों, भूख-प्यास की पूर्ति के साधनों, हर्ष-विषाद की मनोदशाओं तथा संयोग वियोग की परिस्थितियों में प्रकृति कहीं सहायक तो कहीं साक्षी की भूमिका में सदैव उपस्थिति रहती है। सौंदर्य प्रियता के निर्माण, संवेगों एवं संवेदनाओं के संवर्धन में भी प्रकृति सदैव मनुष्य की सहयोगी रही है। चाँद का निकलना प्रियतम की निकटता का बोध कराता, तो अरुणोदय विरहनी नायिका के लिए प्रिय मिलन की आशा का संदेश बनकर आता है। हरे-भरे वन खिलते फूल, चहचहाते पक्षी मिलन के आनंद को दुगुणित कर देते हैं। कौवे की काँव-काँव भी प्यारी लगती है क्योंकि उसमें किसी के आने का संदेश छिपा होता है। पहाड़, नदी और समुद्र तट अनेक प्रकार से भावनाओं को उद्वेलित करते हैं। पवन का स्पर्श तन-मन में रोमांच उत्पन्न कर देता है...। प्रकृति प्रेम के कारण हमारे ऋषि-मुनियों ने जंगलों को अपना निवास बनाया।'[1]

यात्राएँ करती है बातें आज की, कल की, जीवन के हर एक पल की। यात्राओं की परिधि से कुछ भी अछूता नहीं रहता। प्राकृतिक सौंदर्य यात्राओं को खुशनुमा बनाता है। हिंदी यात्रावृत्तान्तों की यात्रा पर अगर दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि इनमें प्रकृति की विविधता पूर्ण मनोहरी छटा चित्रित हुई है। यात्रा के दौरान प्रकृति के विविध आयाम यथा पेड़-पौधे, पर्वत-पहाड़, नदी-झरने, खेत- खलिहान, उगते हुए सूरज की लालिमा से लेकर, चंद्रमा कीशीतल चाँदनी मानव की यात्रा में विविध रंग भर देते हैं। डॉ. रामचंद्र तिवारी के शब्दों में 'यात्रावृत्तान्तों में देश-विदेश के प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर-नारी के विभिन्न जीवन संदर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौंदर्य चेतना कीप्रतीक कलावृत्तियों की भव्यता तथामानवीय सभ्यता के विकास के देवदत्त अनेक वस्तु, चित्र, यायावर, लेखक-मानस में रुपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिंवविधायिनी कल्पना-शक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासावृत्ति को तुष्ट कर देता है।'[2]

इक्कीसवीं सदी बदलावों की सदी है और ये समस्त बदलाव

साहित्य जगत में भी देखे जा सकते हैं। बात की जाये अगर यात्रा साहित्य की तो इस विधा की विधिवत शुरुआत तो भारतेंदु युग से मानी जाती है किंतु इक्कीसवीं सदी में यात्रा वृत्तान्त में आमूल-चूल परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान सदी में यात्रा वृत्तान्त मनोरंजन या घूमने फिरने तक नहीं अपितु सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक,सांस्कृतिक बदलावों से सीधा सरोकार रखते हुए पाठक जगत का इन समस्त परिस्थितियों एवं परिवर्तनों से साक्षात्कार कराते हैं। आज के यात्रा वृत्तान्तकार जीवन से जुड़े प्रत्येक सत्य को अपने यात्रा वृत्तान्तों में उद्घाटित कर रहे हैं। भूमंडलीकरण के इस दौर में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और उससे उपजने वाली समस्याओं ने मानव जाति को कई सारे संकटों से घेर लिया है और इसका कारण है प्रकृति पर मनुष्य ने एकाधिकार करना चाहा, प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन एवं प्राकृतिक उपादानों के प्रति अनुराग के भाव में कमी आदि आदि।

इक्कीसवीं सदी के यात्रा वृत्तान्तकारों का प्रकृति के प्रति अद्भुत लगाव देखते ही बनता है। उन्होंने अपनी यात्राओं में प्रकृति को सहयात्री के रूप में चित्रित किया है। इन यात्रा वृत्तान्तों में प्राकृतिक सौंदर्य की अनूठी छटा परिलक्षित होती है, जो इन्हें पाठक हृदय के और अधिक समीप लाती है। कृष्णा सोबती द्वारा रचित बुद्ध का कमंडल लद्दाख नामक यात्रा वृत्त में प्रकृति के मनमोहक रूप के दर्शन करते ही पाठक प्रफुल्लित हो जाता है, खुशी से उसका मन मयूर की तरह नृत्य करने लगता है। चाहे वह बर्फीले पहाड़ हों,सजीला आकाश हो, चमचमाते बादलों के झुंड हो, चाहे बर्फीली वादियाँ आदि आदि । सोबती जी की कलम से प्रकृति की मनमोहक छटा हृदयस्पर्शी ढँग से चित्रित हुई है। प्राकृतिक सौंदर्य के अद्भुत चित्रण को पढ़ने से पाठक को लगता है मानो वह लद्दाख की खूबसूरत वादियों में विचरण कर रहा हो।' हिमालय की ऊँचाइयों में स्थित लद्दाख दूसरे पर्वतीय स्थानों से कितना अलग। दूर-दूर तक बिछा चट्टानों का विपुल भंडार। कठोर शुष्क दृश्यावली के विस्तार ही विस्तार। प्रकृति द्वारा कम से कम रंगों का चुनाव । ऊपर निर्मल नीला आकाश, श्वेत फेनिल बादलों से सजा और नीचे पीले रेतीले, मटमैले में स्लेटी ऊंचे बर्फीले शिखरों को लुभाती ग्रे काली तांबई और दालचीनी रंग की चट्टानें। कुदरत के कठोर वैभव का अनूठा लैंडस्केप।'[3] लद्दाख में प्राकृतिक सौंदर्य, शांति और आध्यात्मिकता का वातावरण मिलता है। बफ़ीले पर्वत, झीलें, गाँव, बौद्ध विहार और ऐतिहासिक धरोहर इसे एक अनोखा स्थान बनाते हैं। बर्फीले पर्वत, झीलें, गांव, बौद्ध विहार और ऐतिहासिक धरोहर इसे एक अनोखा स्थान बनाते हैं। प्राकृतिक शान्ति और प्राकृतिक स्थलों काअनुभव करने के लिए, यह स्थान यात्रियों के बीच बहुत लोकप्रिय है। यात्री जब यात्रा के लिए निकलता है, तो भले ही उसका यात्रा प्रयोजन जो भी हो प्रकृति के समीप के बिना उसकी यात्रा अधूरी ही रहती है हो भी क्यों न? प्रकृति के सामीप्य से ही तो यात्री को आत्मिक शांति एवं मन को तृप्त कर देने वाले आनंद की प्राप्ति होती है। पेशे से डॉक्टर किंतु रमण में जिनका मन रमता है, ऐसे डॉ. अजय सोडानी द्वारा रचित दर्रा-दर्रा हिमालय नामक यात्रा वृत्तान्त में प्राकृतिक सौंदर्य की अनुपम छटा देखने को मिलती है।जब वे हिमालय की यात्रा पर निकलते हैं, तो हिमालय के अभूतपूर्व सौंदर्य में उनका मन ऐसे रम जाता है, मानो वे हिमालय की बर्फ की तरलता के साथ बहते चले जा रहे हो। हिमालय की सर्द सर्द मनोहारी छटा, बर्फ से ढके हुए विशालकाय पहाड़ों का अद्भुत सौंदर्य, बर्फ की ऊँची-ऊँची चोटियाँ, खूबसूरत वादियाँ प्रकृति के अप्रतिम सौंदर्य से उनका सरोकार कराती है। प्रकृति हमें अनगिनत रूपों में प्रेरित करती है। प्राकृतिक विविधता, खूबसूरती, और संतुलन जीवन में निरंतर आगे बढ़ने हेतु हमें प्रेरित करता है। प्रकृति हमें धैर्य, त्याग, समर्पणऔर सहनशीलता की सीख देती है, जो हमारे जीवन को संपूर्ण बनाती है। साथ ही प्रकृति के संपर्क में रहने से मानसिक स्वास्थ्य, चिंतन, और ऊर्जा में सुधार होता है। इससे हमारा मन प्रसन्न और प्रेरित रहता है जो हमें जीवन के प्रत्येक क्षण का आनंद लेने के लिए प्रोत्साहित करता है। दर्रा-दर्रा हिमालय में एक स्थान पर जब सोडानी जी वासुकी ताल से बड़ा पत्थर और सुराले भमक की यात्रा के लिए निकलते हैं और निरंतर बर्फबारी के चलते निराशा के बादल मन में छाने लगते हैं और आगे क्या होगा? का सवाल मन को अंदर ही अंदर खाये जा रहा होता है, तब थोड़े समय बाद जब आसपास फैली हुई धुंध और बर्फ की बौछारें रुक जाती है तो वे कहते हैं 'शायद मन की धुंध ही फैलकर हमारे जीवन को धूमिल कर देती है - शायद मन की हलचल ही जीवन में जलजले लाती है - मन शान्त होते ही कैसे सब शान्त हो जाता है - यह मैंने उस क्षण प्रत्यक्ष महसूस किया। प्रकृति ने मंत्र फूँका कान में मन के हारे हार है,मन के जीते जीत ! आज से प्रकृति तू ही मेरी गुरु हुई। तू भले मुझे अपना माने या नहीं किन्तु ए हिमालय ! तू मुझे एकलव्य होने से तो रोक नहीं पाएगा।'[4]

हिंदी के प्रतिष्ठित पत्रकार कहानीकार, उपन्यासकार, समालोचक एवं संपादक पंकज बिष्ट द्वारा रचित यात्रा आधारित कृति ख़रामा-ख़रामा अंतर्गत जब वे देश के धुर पश्चिमी छोर पर, समुद्र तट पर होते हैं उस समय प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर उन्हें जो अनुभूति होती है, उसे वे बड़े ही सुंदर ढँग से चित्रित करते हैं । प्रकृति के प्रति उनका गहन अनुराग उनके इस चित्रण में देखते ही बनता है 'साँझ कुछ वैसे ही उत्तर रही थी। शांत अरब सागर पर इंच इंच उतरते सूरज का तेज़ और प्रतापबेआवाज़ तरीके से ठंडा पड़ता कालिख में बदल पृथ्वी को ढकता जा रहा था। कृष्ण पक्ष के आकाश में टोलों की तरह तारे धीरे-धीरे नज़र आने लगे थे। हवा पछवा थी, इसलिए मछली प्रसंस्करण के कारखाने की गंध इतनी दूरी पर भी बेचैन करने वाली थी। लहरें किसी दक्ष स्केटर की तरह तट से छुप्पम-छुपाई खेलने लगी थीं। अंततः पूरी सागर में समाने से पहले महाबली सूरज ने अलविदा के अंदाज़ में आँख भर कर देखा था। द्वारकाधीश के मंदिर को, बस्ती को, दूर दराज से आये श्रद्धालुओं को और शायद मुझे भी। मैंने हाथ के इशारे से रुकने को कहा और विदा होते सूर्य का एक चित्र खेंच लिया। रोशनी अभी उतनी कम नहीं हुई थी। शायद यकायक अंधेरे की हिम्मत नहीं हो रही थी कि प्रकाश के सम्राट के सिंहासन पर जा बैठे।'[5] भारत में नदियों की परंपरा अत्यंत निराली है। यहाँ नदियों को प्राण दाहिनी, जीवन दायिनी और मोक्षदायिनी की संज्ञा दी गई है। सिंधु, ब्रह्मपुत्र, गंगा, जमुना,कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, नर्मदा, ताप्ती आदिनदियों की कल कल की ध्वनि देश के प्रत्येक हिस्से को गुंजायमान कर रही हैं। यात्रा साहित्य में नदियों का सौंदर्य बहुत ही सुंदर ढँग से चित्रित हुआ है। लोकप्रिय नर्मदा प्रेमी, गुजराती एवं हिंदी भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं चित्रकार अमृतलाल वेगड़ ने नर्मदा नदी के अभूतपूर्व सौंदर्य को तीरे-तीरे नर्मदानामक कृति में अत्यंत जीवंत एवं हृदय स्पर्शी ढँगसे लिपिबद्ध किया है। वेगड़ जी नेनदी के किनारे बसे वन्य जीवन, स्थानीय जन जीवन की झाँकी, प्राकृतिक सौंदर्य, विविधता,पवित्रता और नदी के तीर पर विकसित संस्कृति के अनोखेपन को अपने अनुभवों और अनुभूतियों के माध्यम से बहुत ही मनमोहक ढँग से चित्रित किया है। यह वृत्तांत पाठकों को नर्मदा की प्राकृतिक शक्ति और महत्ता के साथ साथ उसके प्राकृतिक अनुभवों को जीवंत करने का अनुभव कराता है। वेगड़ जी ने नर्मदा नदी के अनुपम सौंदर्य को कुछ इस

तरह से अभिव्यक्ति प्रदान की है कि यात्रा वृत्तांत को पढ़ते समय लगता है मानो पाठक स्वयं नर्मदा परिक्रमा कर रहा हो। वेगड़ जी की कलम की ही ताकत कही जा सकती है, जो पाठकों को यह अनुभूति हो जाती है कि वे स्वयं नर्मदा की यात्रा करके कई सारे मधुर अनुभवों के साथ घर लौटे हैं। अमरकंटक से ग्वारीघाट (जबलपुर) की यात्रा के दौरान हुए प्राकृतिक सौंदर्य से हुए साक्षात्कार को वेगड़ जी कुछ इस तरह से अभिव्यक्त करते हैं कि 'दिन पर दिन रास्ता मुश्किल होता जा रहा था। ऊँची-नीची पहाड़ियों और सूखे नालों को पार करते हुए हम आगे बढ़ रहे थे। सकरीघाट से एक ग्रामीण का साथ हो गया। आगे चलकर ऊँचीक गार पर से नर्मदा का जो भव्य रूप देखा तो बस देखते ही रह गये। हमारी ओर का खड़ा, ऊँचा और चट्टानी किनारा किसी किले की दीवार-सा बहुत दूर तक चला गया था। सामने का किनारा नीचा और सपाट है। शिलाओं से मंडित और झाड़ियों से आच्छादित इस विशाल किनारे से सटकर बहती नर्मदा ऐसी लग रही थी मानो शिव की गोद में पार्वती सो रही हों। एक साध है कि जीवन में एक बार फिर यहाँ आऊँ और इस अनुपम दृश्य को जी भरकर देखूँ।'[6] पेशे से चिकित्सक किंतु अत्यंत जिज्ञासु प्रवृत्ति एवं यात्रा प्रेमी डॉ. रश्मि झा द्वारा रचित चीन के दिन नामक यात्रा वृत्तान्त में चीन में रहने के दौरान हुए अपने विविध अनुभवों को इस कृति में लिपिबद्ध किया है । स्थान-स्थान पर प्राकृतिक सौंदर्य की झाँकी से उन्होंने पाठकों को रूबरू कराने का सुंदर प्रयास किया है। नदियों की उपयोगिता और महत्ता का एक सुंदर चित्रण यहाँ दृष्टव्य है 'शाम के चार बजे हैं। थियन शयुई पार किया है। इसके बाद यलो रिवर पार की है। एक नदी जमीन को कितनी उपजाऊ बना देती है। चारों ओर हरियाली, खुशहाली है, हरे भरे पेड़ हैं, खेत भी हरे-भरे हैं। चारों ओर पीली मिट्टी के बड़े-बड़े पहाड़ हैं। सीढ़ीदार खेत हैं, लेकिन बारिश में सब मिट्टी बह जाती है, खेतों के निशान दिख रहे हैं। मिट्टी एकदम पीली है, इसलिए पानी भी पीला दिख रहा है, रंग के अनुकूल नाम है यलो रिवर।'[7] वहीं घूमने और लिखने में सहज रुचि रखने वाले साहित्यकार राकेश तिवारी द्वारा रचित सफर एक डोंगी में डगमग नामक यात्रा वृत्तांत में वे डोंगी (नाव) को अपना सहयात्री बनाते हैं और दिल्ली की छोटी-सी नहर ओखला हेड से शुरू होकर यमुना में हिलोरे मारती हुए कई शहरों से होती हुई डोंगी कलकत्ता की हुगली नदी में जाकर विराम पाती है। इस पूरी यात्रा के दौरान हुए अपने अनुभवों एवं प्रकृति के मनोहारी दृश्यों से वे पाठकों का सरोकार कराते हैं, तो लगता है मानो पाठक वर्ग भी डोंगी में सवार हो, यात्रा का आनंद ले रहा हो।' रात जहां लंगर डाला, अंदाजन राजस्थान-मध्य प्रदेश की सीमा पर उत्तर प्रदेश की सीमा से कुछ पहले ही होना चाहिए। उजाला होने से पहले ही नींद खुल गई। बीहड़ों में उदय होते सुंदर सूरज का सुनहरा सौंदर्य बिखर गया, धीरे-धीरे पूरा इलाका आलोकित हो उठा, चिड़ियाँ बसेरों से निकल पड़ीं। पानी फिर भी शांत रहा। बादलों की सुखद छाया से मौसम सुहाना हो गया। ठंडी हवा के झोंके हौले-हौले लहराकर नीले जल तल पर खेलने लगे। इस हलकी छेड़छाड़ से ही धारा की सतह पर ऐसा कंपन उठा मानो चंबल सिहर उठी हो। श्यामल, धुंआँरे, दूधिए बादलों के समूह गगन में छितराकर निर्द्वंद्व विचरने लगे।'[8]

हिंदी के सशक्त हस्ताक्षर, विचारक, आलोचक, साहित्य अकादमी के अध्यक्ष पद पर रहे, दस्तावेज़ जैसी लोकप्रिय पत्रिका के संपादक एवं हाल ही में पद्मश्री सम्मान से सम्मानित तथा अत्यंत सहज सरल व्यक्तित्व के धनी आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी विदेशी धरती पर होते हुए भी प्रकृति के प्रति अपार प्रेम भाव सेतनिक भी दूर नहीं होते। अपने आसपास के वातावरण में प्राकृतिक सौन्दर्य की मनभावन छटा को देखते ही उनका देसी मन विदेशी धरती पर भी आनंद की अनुभूति से भर उठता है। अमेरिका और यूरप में एक भारतीय मनमें प्राकृतिक सौंदर्य कोवे कुछ इस तरह शब्दबद्ध करते हैं 'लंदन से ऑक्सफोर्ड,काट्सवल्स और स्ट्रेटफोर्ड का रास्ता मनोरम है। खेतों के बड़े-बड़े मैदान। टीलों और ढलानों वाले। सरसों की पीली फसलें और हरी घास। पीले और हरे रंग से अच्छादित भूमि। मोटे वृक्ष नहीं। पतली छरहरी वनस्पतियाँ। मैदानों में चरते भेड़ों के झुंड। विस्तृत मैदानों के बीच एक भी आदमी नहीं दिखता। कहीं भी जनसंख्या का दबाव नहीं...न शहरों में, न सड़कों पर, न खेतों में। फिर इस देश में खुशहाली क्यों न होगी? सड़के इतनी स्वच्छ जैसे धुली हुई हों। गंदगी न तो सड़कों पर न खेतों में। कस्बेनुमा छोटे-छोटे गाँवों में दो से तीन मंजिल तक के ही भवन। बिना पलस्टर बिना सजावट के, लेकिन साफ सुथरे। सादगी का सौंदर्य।'[9]

समग्रत: कहा जा सकता है कि प्रकृति, मनुष्य और यात्रा के मध्य अत्यंत गहन संबंध है। बिना प्रकृति के सामीप्य से मनुष्य को सुखद अनुभूति नहीं हो सकती। न ही प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण के बिना यात्रा साहित्य के सृजनकी कल्पना हीकी जा सकती है। वैदिक कालीन साहित्य से लेकर वर्तमान युगीन साहित्य में प्रकृति को प्रमुखता के साथ चित्रित किया गया है। वहीं इक्कीसवीं सदी के यात्रावृत्तान्तों में यात्रा वृत्तान्तकारों ने प्राकृतिक सौंदर्य को विविधतापूर्ण तरीके से चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। कृष्णा सोबती कृत बुद्ध का कमंडल लद्दाख हो, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा रचित अमेरिका और यूरप मे एक भारतीय मन, अमृतलाल वेगड़ कृत तीरे-तीरे नर्मदा, राकेश तिवारी कृत सफर एक डोंगी मे डगमग, डॉ. अजय सोडानी द्वारा रचित दर्रा-दर्रा हिमालय हो, चाहे पंकज बिष्ट कृत ख़रामा-ख़रामा इन सभी यात्राआधारित कृतियों में प्राकृतिक सौन्दर्य की मनमोहक छटा बखूबी देखी जा सकती है।

सन्दर्भ सूची:-

1. प्रधान संपादक-श्रीवास्तव, डॉ. स्नेहलता, संस्कृति, समरसता और भारतीय साहित्य, शिवा प्रकाशन, इंदौर, पृष्ठ संख्या 10
2. तिवारी, डॉ. रामचंद्र,हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,ग्यारहवाँ संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या 296
3. सोबती, कृष्णा, बुद्ध का कमंडल लद्दाख, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 2012,पृष्ठ संख्या 16
4. सोडानी, डॉ. अजय,दर्रा दर्रा हिमालय,पहला संस्करण 2012,पृष्ठ संख्या 45
5. बिष्ट, पंकज, ख़रामा ख़रामा,अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पहला सजिल्द संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या 40
6. वेगड़, अमृतलाल, तीरेतीरे नर्मदा, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 2018, पृष्ठसंख्या 45
7. झा, डॉ.रश्मि,चीन के दिन, सामयिक बुक्स, नयी दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 85
8. तिवारी, राकेश,सफ़र एक डोंगी में डगमग, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण 2014,पृष्ठ 49
9. तिवारी,विश्वानाथ प्रसाद,अमेरिका और यूरप में एक भारतीय मन, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पहला संस्करण2012, पृष्ठ संख्या 44

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

"महादेवी वर्मा के साहित्य में स्त्री विमर्श"

श्रीमती प्रेमलता पाटिल

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय, डोलरिया, मप्र.

सारांश :–महादेवी वर्मा जी की काव्य रचनाओं के केन्द्र में तो स्त्री के अंतर्मन की अभिव्यक्ति है ही, अपनी गद्य रचनाओं में भी उन्होंने स्त्री जीवन की विविध छवियों का अंकन किया है। उनकी काव्य रचनाओं पर सामाजिक एंव आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा था। कविताएँ तो रचनाकार की भाव संपदा से सृजित होती हैं, परन्तु विचार के क्षणों में रचनाकार अपने आस–पास के जीवन और समाज को जिन अभावों से ग्रस्त पाता हैं, उन विषम परिस्थितियों पर विमर्श की मन:स्थिति में निबंधादि की भी रचना करता है। नारी की आन्तरिक एंव बाह्य शक्ति पर बल देते हुए महादेवी इस तथ्य को स्वीकार करती हैं कि अब नारी ने सभी क्षेत्रों में अपना सम्मानजनक स्थान बना लिया है परन्तु अपनी कुछ स्वभावगत कमजोरियों के कारण वे पुरूषों से पीछे रह जाती हैं, नारी में परिस्थितियों के अनुसार अपने बाह्य जीवन को ढाल लेने की जितनी सहज प्रवृति है, अपने स्वभावगत गुण न छोड़ने की आन्तरिक प्रेरणा उससे कम नहीं। इसी से भारतीय नारी, भारतीय पुरूष से अधिक सतर्कता के साथ अपनी विशेषताओं की रक्षा कर सकी है। पुरूष के समान अपनी व्यथा भूलने के लिए वह कादम्बिनी नहीं माँगती, उल्लास के स्पन्दन के लिए लालसा का ताण्डव नहीं चाहती क्योंकि दु:ख को वह जीवन की शक्ति परीक्षा के रूप में ग्रहण कर सकती है और सुख को कर्तव्य में प्राप्त कर लेने की क्षमता रखती है। कोई ऐसा त्याग, कोई ऐसा बलिदान और कोई ऐसी साधना नहीं जिसे वह अपने साध्य तक पहुँचने के लिए सहज भाव से नहीं स्वीकार करती रही। हमारी राष्ट्रीय जागृति इसे प्रमाणित कर चुकी है कि अवसर मिलने पर गृह के कोने की दुर्बल बन्दिनी स्वच्छन्द वातावरण में बल प्राप्त पुरूष से शक्ति में कम नहीं। महादेवी वर्मा अपनी काव्य रचनाओं में स्त्री चेतना लिए वह पाठ रचती हैं जिसमें स्त्री–चेतना के बंद कपाट को खोलने का आह्वान है। इसलिए वर्तमान स्त्री विमर्श के सूत्र, उनकी रचनाओं में व्यक्त स्त्री चेतना से किसी न किसी रूप में अवश्य जुड़ जाते हैं।

मुख्य शब्द :– स्पन्दन, रूक्षता, रमणीत्व, अलौकिक, संख्यातीत, चिरंतन, अभिशप्त।

प्रस्तावना :–साहित्य जगत में महादेवी वर्मा की मुख्य पहचान छायावादी कवयित्री के रूप में ही है। उन्होंने काव्य जगत को सात काव्य ग्रंथ–नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्य गीत, दीपशिखा, सप्तपर्णा और हिमालय दिए हैं, लेकिन उनकी गद्य रचनाओं की संख्या एक दर्जन से अधिक है– अतीत के चलचित्र (1941), श्रृंखला की कड़ियाँ (1942), स्मृति की रेखाएँ (1943), पथ के साथी (1956), क्षणदा (1956), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध (1960), दृष्टिबोध (भूमिकाओं का संग्रह)(1962),संकल्पिता (1969), मेरा परिवार (1971), मेरे प्रिय सम्भाषण (1975), मेरे प्रिय निबन्ध (1986 द्वि सं.), साहित्यकार की आस्था (1986), महादेवी: प्रतिनिधि गद्य रचनाएँ (1983),। इन गद्य रचनाओं पर भी उनका नारी विमर्श भारी पड़ता है। महादेवी के रेखाचित्र– बिंदा, सबिया, बिट्टो, अनाहूत की माँ, भक्तिन, मुन्नू की माई, बिबिया/बरेठिन, गुंगिया–नारी जीवन की धारावाहिक त्रासदियों का आग के अक्षरों में आँसू भरकर लिखा गया सिलसिला हैं। महादेवी ने बालिका से लेकर वृद्धा तक, निम्न से लेकर उच्चवर्ग तक, विधवा से लेकर सधवा तक, अशिक्षिता से लेकर साहित्यकर्मी तक, घरेलू स्त्री से लेकर स्वतंत्रता सेनानी तक, सब पर अपनी लेखनी चलाई हैं। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में उनके नारी विषयक सामान्य निबन्ध हैं।

'युद्ध और नारी' में महादेवी वैश्विक फ़लक पर बात शुरू करती है। युद्ध के मूल में पुरूष में छिपा हिंसक जन्तु एवं बबर्रता मानती हुई, तथ्यों को मनोवैज्ञानिक आधार देती कहती हैं, ''इन पवित्र गृहों की नींव स्त्री की बुद्धि पर रखी गई है, पुरूष की षक्ति पर नहीं। अपनी सहज बुद्धि के कारण ही स्त्री ने पुरूष के साथ अपना संघर्ष नहीं होने दिया। यदि होने दिया होता तो आज मानव जाति की कहानी ही दूसरी होती।' वे मानती है कि स्त्री शारीरिक और मानसिक दृष्टि से ही युद्ध के उपयुक्त नहीं है। युद्ध उसके विकास में बाधक रहा है। युद्ध ने ही द्रोपदी को न महिमामय जननी बनने दिया, न गौरवान्वित पत्नी। पुरूष और स्त्री के स्वभाव में कुछ मूलभूत अंतर हैं। स्त्री के स्वभाव और गृह के आकर्षण ने पुरूष को युद्ध से कुछ विरत भले ही किया हो, लेकिन युद्ध, कर्म और संघर्ष उसकी मूल वृति है, उसके लिए गर्व के कारण है। इसी नशे में उसने स्त्री को दुर्बल घोषित कर दिया और इस चुनौती को स्वीकार करते स्त्री भी पुरूष का ही दूसरा रूप बनने का संकल्प कर लिया। यानि अनजाने में पुरूष ने स्त्रियों की एक ऐसी सेना तैयार कर ली है, जो पाश्रविक पुरूषीय बल में विष्वास रखती है, जो समय आने पर उसके हाथों से अस्त्र लेकर संहारक की भूमिका भी अदा कर सकती हैं। पुरूष मनोविज्ञान पर आगे लिखती हैं, ''यदि स्त्री पग–पग पर अपने आँसुओं से उसका मार्ग गीला करती चले, तो यह पुरूष के साहस का उपहास होगा, यदि वह पल–पल उसे कर्तव्य–अकर्तव्य सुझाया करे तो यह उसकी बुद्धि को चुनौती होगी, और यदि वह उसका साहचर्य छोड़ दे तो यह उसके जीवन की रूक्षता के लिए दुर्वह होगा।'' इतना स्पष्ट है कि स्त्री और गृह पुरूष के जीवन की आवश्यकताओं में से एक है, जबकि पुरूष और गृह स्त्री का जीवन हैं।

महादेवी वर्मा ने अपने निबंध 'आधुनिक नारी' उसकी स्थिति पर एक दृष्टि में पश्चिम में स्त्री के जीवन में हो रहे परिवर्तनों को परखते हुए कहा है– ''आधुनिकता की वायु में पली स्त्री का यदि स्वार्थ में केन्द्रित

विकसित रूप देखना हो तो हम उसे पश्चिम में देख सकेंगे। स्त्री वहाँ आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो चुकी है, अतः सारे सामाजिक बंधनों पर उसका अपेक्षाकृत अधिक प्रभुत्व कहा जा सकता है। उसे पुरूष के मनोविनोद की वस्तु बने रहने की आवश्यकता नहीं है, अतः वह चाहे तो परम्परागत रमणीत्व को तिलांजलि देकर सुखी हो सकती है, परन्तु उसकी स्थिति क्या प्रमाणित कर सकेगी कि वह आदिम नारी की दुर्बलता से रहित है? संभवतः नहीं। श्रृंगार के इतने संख्यातीत उपकरण, रूप को स्थिर रखने के इतने कृत्रिम साधन, आकर्षित करने के उपहास योग्य प्रयास आदि क्या इस विषय में कोई संदेह का स्थान रहने देते हैं? महादेवी वर्मा की दृष्टि में स्त्री चेतना का जो रूप है, वह निश्चित रूप से पश्चिम से आयातित स्त्री विमर्श से सर्वथा भिन्न है, वह विद्रोहिणी होकर भी समाज से विमुख नहीं है। वह मनुष्य के रूप में अपनी उपस्थित की आग्रही है, उसकी आकांक्षा बस इतनी सी है कि उसे बन्दिनी नहीं अपने प्रियतम की सहचरी का स्थान मिले, सामाजिक रूप से एक ईकाई के रूप में देखा जाए न कि किसी पुरूष की छाया बनकर अपना सम्पूर्ण जीवन गुजारने के लिए अभिशप्त हो। 'घर और बाहर' शीर्षक निबंध में उन्होंने एक स्त्री की घर की देहरी से लेकर समाज में उसकी सक्रिय भूमिका को स्पष्ट किया है। अपनी इस भूमिका को प्राप्त करने के लिए वह संघर्ष कर रही है और इसमें वह सफल भी हो रही है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ही नहीं जीवन के अन्य क्षेत्रों में उनकी संख्या बढ़ रही है। वास्तव में स्त्री भी अब केवल रमणी या भार्या नहीं रही, वरन् घर के बाहर भी समाज का एक विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक है, अतः उसका कर्तव्य भी अनेकानेक हो गया है, जिसके पालन में कभी-कभी ऐसे संघर्ष के अवसर आ पड़ते हैं, जिसमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना पड़ता है। वह क्या करे और क्या न करे, उसका कार्य क्षेत्र केवल घर है या बाहर या दोनो ही, इस समस्या का अब तक कोई समाधान नही हो सका है। स्त्री जीवन की समस्याएँ क्या है? उसकी वेदना, पीड़ा और व्यथा के मूल कारण क्या है? एक स्त्री पुरूष और समाज से क्या चाहती हैं? इन प्रश्नों का उत्तर बस यही है कि वह एक मनुष्य के रूप में अपनी उपस्थिति की स्वीकृति चाहती है। उसकी पीड़ा और व्यथा का मूल कारण यही हैं। वह जननी, माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री आदि किसी रूप से विरक्त होकर अपनी आजादी नहीं चाहती, परन्तु अपनी इन भूमिकाओं तक ही सीमित जीवन को अपना संपूर्ण जीवन नहीं मानना चाहती। पुरूष के समान स्त्री भी कुटुम्ब, समाज, नगर तथा राष्ट्र की विशिष्ट सदस्य है तथा उसकी प्रत्येक क्रिया सबके विकास में बाधा भी डाल सकती है और उनके मार्ग को प्रषस्त भी कर सकता है। प्रायः पुरूष का जीवन अधिक स्वच्छन्द वातावरण में विशिष्ट व्यक्तियों के संसर्ग द्वारा बनता है और स्त्री का संकीर्ण सीमा में परम्परागत रूढियों से जिससे न उसे अपने कुटुम्ब से बाहर किसी वस्तु का अनुभव होता है, न अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान। कहीं यह विषमता और कहीं इसकी प्रतिक्रिया जीवन को एक निरर्थक रणक्षेत्र बनाकर उसकी सारी उर्वरता को नष्ट तथा सरसता को शुष्क किये दें रही है। महादेवी वर्मा के उक्त कथन में ही उनकी स्त्री चेतना का मूल भाव व्याप्त है।

महादेवी अपने काव्य में संपूर्ण सृष्टि के तेज को भांप रही थी। यही ताप और उसकी चमक वह नारी मात्रा में चाहती है-

''जो ज्वाला नभ में बिजली है
जिसमें रवि-शशि ज्योति जली है
तारों में बन जाती है जो
शीतलदायक उजियाला।'' (यामा)

अपने काव्य लेखन के आरम्भिक प्रयासों को महादेवी 'दूधमुंहां प्रयास' कहती है। इनमें सपनों की भरमार है। स्वयं कवयित्री का अनुरोध है कि -

''इन सपनों के पखं न काटो
इन सपनों की गति मत बांधें।'' (रश्मि)

लेकिन इन कोमल सपनों को तो टूटना ही था। स्त्री को निजी सश्रा के साथ आकांक्षित जीवन कहाँ मिल पाता है। नामवर सिंह ने इसे रेखांकित किया है कि ''निजी आँसुओं के नीहार में बंदिनी रहने वाली महादेवी ने 'रश्मि' के आलोक में जीवन की व्याप्ति का दर्शन किया और प्रखर ताप को झेलते हुए सांध्य क्षणों तक जाते-जाते समाजव्यापी दुःख की अनुभूति करने लगी।

महादेवी ने निजी दुःख को स्त्री की चिरंतन की वेदना से और अंततः विश्व वेदना से जोड़ा है-

''मेरे हँसते अधर नहीं जग,
की आँसू लड़ियाँ देखो
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुरझाई कलियाँ देखो।'' (नीरजा)

महादेवी 'स्त्री-मुक्ति' में बाधक बनी समकालीन सामाजिक व्यवस्थात्मक विद्रुपताओं से पूर्णतः अवगत थी। इसकी चिंता उनके काव्य में देखी जा सकती है-

''घोर तम छाया चारों ओर
घटाएँ घिर आई घनघोर
वेग मारूत का है प्रतिकूल
हिले जाते है पर्वत मूल
कौन पहुँचा देगा उस पार?''(यामा)

यह एक स्त्री के द्वारा महसूस की गई स्त्री जीवन की असुरक्षा, भय और पारंपरिक उत्पीड़न की प्रतिर्क्रिया है। यहाँ एक संकेत स्त्री-मुक्ति संघर्ष की राह के चयन का भी लगाया जा सकता है।

मैनेजर पाण्डेय ने महादेवी की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए लिखा है कि उन्होंने दीप-ष्शिखा के दो ष्ज्ञब्द में लिखा है-''आलोक मुझे प्रिय है पर दिन से अधिक रात का। दिन में तो अंधकार से उसके संघर्ष का पता ही नहीं चलता, परंतु रात में झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका में अवतरित होती है।'' क्या इससे यह स्पष्ट नहीं है कि महादेवी को अंधकार से अधिक प्रकाश प्रिय है और पलायन से अधिक संघर्ष। उनकी कविता में अंधकार से आलोक का जो संघर्ष है, वह भारतीय स्त्री के जीवन की पराधीनता के अंधकार से स्वाधीनता की आकांक्षा का संघर्ष है।

महादेवी वर्मा भारतीय स्त्री की प्रतिनिध के रूप में उसकी पराधीनता की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कहती है-

''रात-सी नीरव व्यथा
तम-सी अगम मेरी कहानी'।''

महादेवी के काव्य में नारी अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हैं, वह अपने अस्तित्व को कहीं भी कम करके नहीं आंकती और बराबरी का दावा करती है-

''उनसे कैसे छोटा है, मेरा यह भिक्षुक जीवन।'' (यामा)

महादेवी की कविता का मूल स्वर 'प्रेम' है। महादेवी प्रेम की उस मध्यकालीन व्याख्या का निषेध करती हैं कि प्रेम में अस्मिताएँ मिट जाती हैं। सुधा सिंह लिखती है कि ''महादेवी जानती थी कि प्रेम में बराबरी वाली

अवधारणा को सामाजिक तौर पर घटित होने में अभी बहुत देर है इसलिए महादेवी वेदना को चिरंतन भाव से अपना लेती है, बजाय मिलन के सुख के।' महादेवी लिखती हैं–

''सजनि मधुर निजत्व ले
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।''(यामा)

महादेवी का सबसे अधिक जोर इस बात पर है कि स्त्रियों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, जिसके साथ उन्हें कभी समझौता नहीं करना चाहिए। महादेवी मिलन की शर्त पर भी अपने अस्तित्व को विलीन नहीं होने देना चाहती –

''मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ।''

महादेवी से पूर्व किसी भी साहित्यकार के यहाँ हमें विरह की आराधना देखने को नहीं मिलती है। विरह वर्णन तो आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के अनेक साहित्यकारों ने किया है परंतु मिलन से अधिक विरह की चाहत किसी और के यहाँ मौजूद नहीं हैं। फिर क्यों अकेली महादेवी ही विरह में चिर है।

यहाँ यह ख्याल रखना चाहिए कि 'इच्छा' को इसलिए नहीं मारा क्योंकि परम्परा से स्त्री ऐसा करती आई हैं बल्कि इसलिए मारा क्योंकि इसके बिना, किसी तरह से अपनी सत्ता बचाने का दूसरा उपाय नहीं था। यही से प्रखर होता है उनका स्त्री–विमर्श और स्त्री–अस्तित्व की पहचान।

भारतीय स्त्री की मुक्ति के संघर्ष को बिंबो में बांधते हुए महादेवी लिखती है–

''बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुन–गुन?
क्या डूबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस–गीले?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना
जाग तुझ को दूर जाना।'' (सांध्यगीत)

जैसे–जैसे महादेवी के काव्य की विकास यात्रा आगे बढ़ती है, स्त्री संबंधी उनके विचारों में और प्रखरता आती जाती है। उनकी प्रारंभिक व्यक्तिगत पीड़ा का संघर्ष आगे चलकर समष्टि में विलीन हो जाता है और नारी मात्रा की मुक्ति के आह्वान का काव्य बन जाता है। 'सांध्यगीत' में वह लिखती है–

''विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होगा,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल मिट आज चली।'' (सांध्यगीत)

यहाँ महादेवी भारतीय स्त्री के जीवन की उस विडम्बना को उजागर कर रही है जिसमें समाज का एक महत्वपूर्ण अंग होते हुए भी समाज की एक छोटी सी इकाई 'घर' को भी स्त्री अपना नहीं कह सकती। कहीं वह पिता का घर है तो कहीं पति का और कहीं भाई या बेटों का। स्त्री के संबंध में उनके यही विचार 'श्रृखला की कड़ियाँ में भी देखने को मिलते है। महादेवी अपने साहित्य में यह आह्वान करती है कि स्त्री अपनी मुक्ति की लड़ाई स्वयं लड़े। मार्ग में आने वाली बाधाओं की परवाह किए बिना उनका डटकर सामना करे। महादेवी स्त्री में आत्मविश्वास और स्वतंत्र चेतना पैदा करती हैं। कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं ''द्विवेदी युगीन नारी का 'अबला' बिंब महादेवी तोड़कर चूर कर देती है और ऐसी नारी जागरण की षक्ति का विस्फोट करती है कि जिसमें ध्वनित है–

'पंथ रहने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला''।

महादेवी भारतीय स्त्री के अतीत को तो अंधकारपूर्ण मानती ही है और उसके वर्तमान को उन्होंने करूण व्यथा कहा है। साथ ही वह भारतीय समाज में स्त्री के भविष्य की अस्पष्टता को लेकर भी चिंतित है–

''कुहरे का धुंधला भविष्य है
है अतीत तम घोर
कौन बता देगा जाता यह
किस असीम की ओर? (यामा)

महादेवी की कविता में 'दीपक' संघर्ष का प्रतीक है वह लिखती हैं–

''किरण–पथ पर क्यों अकेला दीप मेरा हैं?
यह व्यथा की रात का कैसा सवेरा है? (अग्निरेखा)

स्त्री की दुनिया में अब भी असली सबेरा नहीं आया, इसलिए महादेवी का दीप अकेला अभी तक जलता हैं। जहाँ दीपक है, वहाँ प्रकाश और अंधकार दोनों एक साथ हमेशा रहते हैं। यह स्थिति एक चित्रा सी हमारे सामने आती है। जब कोई संघर्ष के लिए संकल्प करता है, तब बाध रूपी अंधकार चारों और फैलने लगता है और जिससे दु:ख या पीड़ा भी उत्पन्न हो जाती है। पीड़ा का यह संसार विकल्पों के बीच से चुना हुआ महादेवी का इच्छित संसार नहीं है, जैसा कि आलोचकों ने प्राय: जतलाने की कोशिश की है बल्कि उनके काव्य में भारतीय स्त्री के त्रासद जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है।

निष्कर्ष:–हिन्दी साहित्य के छायावादी युग की प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कवयित्री महादेवी वर्मा की गद्य एवं पद्य की रचनाओं से उनके व्यक्तित्व के दो पहलू देखने को मिलते हैं। उनकी कविता में रहस्यवादी प्रवृत्ति और दुखवाद की अधिकता है, भावुकता है। लेकिन गद्य में विचारक के रूप में उनका बौद्धिक पक्ष प्रखर हैं। 'अतीत के चलचित्र','स्मृति की रेखाएं','श्रृंखला की कड़ियाँ' जैसी रचनाओं के जरिए महादेवीजी ने भारतीय स्त्री जीवन के अनदेखे पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इसी कारण स्त्री विमर्श के संदर्भ में उनकी गद्य रचनाओं का मूल्यांकन आवश्यक हो जाता है। महादेवी नारी चेतना की भारतीय परम्परा पर विचार करने वाली अद्वितीय विचारक रही हैं। उनके विचार रेखाचित्रों से होकर श्रृंखला की कड़ियाँ बनकर हमारे सामने उभर आते हैं। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' भारतीय नारी की समस्याओं का जीवंत विवेचन ही है। महादेवी की कविताओं को कभी लौकिक और निजी जीवन से जोड़कर देखा गया तो कभी अलौकिक और रहस्यमय कह दिया गया। यह सच है कि महादेवी की कविता में वेदना, अश्रु, पीड़ा की शब्दावली का आधिक्य है, लेकिन उनकी कविता सिर्फ पीड़ा और वेदना की कविता नहीं है बल्कि इससे भी आगे जीवन के उल्लास की, जीवन के उत्सव की कविता है। उनके यहाँ अंधेरा जितना गहन है अंधेरे से निकलने की चाह भी उतनी ही तीव्र है। आपने लक्ष्य किया है कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना नारी स्वतंत्र नहीं हो सकती। अपनी वर्तमान स्थिति के विरूद्ध जब तक वह स्वयं विद्रोही तेवर के साथ खड़ी नहीं होती तब तक उसका उद्धार सम्भव नहीं हैं। इसके पीछे महादेवी जी का मानना हैं कि भारत में ही नहीं सम्पूर्ण दुनिया में नारी आदिम काल से शोषित और उत्पीड़ित रही है। महादेवी जी ने नारी की वेदना उसकी आकुल छटपटाहट, उसकी पराधीनता को शब्दबद्ध करते हुये उसकी गरिमा को रेखांकित किया है। महादेवी जी ने न केवल नारी विद्रोह का समर्थन किया बल्कि स्वयं भी बाल विवाह के बंधन को उस जमाने में तोड़ा था जब किसी

भी लड़की का ऐसा निर्णय लेना एक अद्भुत साहस की बात थी। महादेवी जब स्त्री स्वतंत्रता की बात करती हैं तब सवाल यह उठता है कि वे कैसी स्वतंत्रता चाहती हैं? स्त्री की स्वतंत्रता की चाह परिवार को तोड़ने की चाह नहीं हो सकती, उसे जोड़ने की होनी चाहिये। जोड़ने के इस कार्य में पुरूष की भागीदारी उतनी ही है जितनी स्त्री की है। संवैधानिक रूप में स्त्री बिल्कुल पुरूष के बराबर है। लेकिन वास्तविक जीवन में प्रश्न चिन्ह् लगा हुआ है। स्त्री मुक्ति पर बात करने का, स्त्री की मुक्ति कामना करने का मतलब परिवार से अलग होना या पति से अलग होना नहीं है। विवाह संस्था को बनाये रखने में स्त्री एवं पुरूष दोनों का समान दायित्व है। जीवन की सार्थकता तभी सम्भव है, जहाँ स्त्री और पुरूष एक दूसरे के साथ मिलकर सहयोग दें, परस्पर आत्म सम्मान के साथ जीवन व्यतीत करें। वर्तमान परिवेश में ऐसा सहयोग कहीं-कहीं धूमिल सा हो गया है। उनका सम्पूर्ण साहित्य नारी जागरण से घनिष्ठ रूप में संबद्ध है। उनकी रचनाओं में स्त्री जीवन पर नारी, सहानुभूति मात्र ही नहीं है वरन एक गम्भीर समाजशास्त्रीय विष्लेषण भी है। महादेवी वर्मा जी का स्त्री चिंतन व लेखन स्त्री की वेदना और आत्म पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ स्त्री स्वातंर्त्य पर भी जोर देता है।

संदर्भ सूची:-

1. शर्मा, राजनाथ : महादेवी वर्मा और स्मृति की रेखाएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1964
2. पाण्डेय, गंगाप्रसाद : ''आज के लोकप्रिय हिंदी कवि-महादेवी वर्मा'' राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1968
3. गौतम, लक्ष्मणदत्त: महादेवी वर्मा, कवि और गद्यकार, कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली, 1972
4. चौधरी, पद्मसिंह: 'महादेवी साहित्य-एक नया दृष्टिकोण' अपोलो प्रकाशन, जयपुर, 1974
5. मधुपुरी, असीम: महोदवी साहित्य का अभिनव मूल्यांकन, जनार्दन प्रकाशन, लखनऊ, 1985
6. सिंह, गोवर्धन: 'महादेवी का गद्य साहित्य-विश्लेषण और स्वरूप, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, 1988
7. देवी, शिला: महादेवी की काव्य चेतना, सूर्य भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1993
8. शर्मा, मनोरमा: महोदवी के काव्य में लालित्य विधान, साहित्य संस्थान, कानपुर, 1996
9. तिवारी, विश्वनाथ प्रताप: महादेवी रचना संचयन,साहित्य अकादमी, रविन्द्र भवन, नई दिल्ली, 1998

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

औपनिवेशिक भारत में प्रेस का विकास

शीतल यादव
डॉ. पंकज शर्मा

1. शोधार्थी, के. आर. (पी.जी.) कॉलेज, मथुरा, डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा, उप्र.
2. शोध निर्देशक व विभागाध्यक्ष, इतिहास, के. आर. (पी.जी.) कॉलेज, मथुरा, उप्र.

किसी भी समाज के विकास में प्रेस का अहम योगदान होता है। समाचार पत्र, पत्रिकाओं के माध्यम से सरकार की नीतियों को जानने व मूल्यांकन करने का अवसर आम जनमानस को प्राप्त होता है। प्रेस आम जनमानस को जागरूक करती है। प्रेस सरकार की अच्छी और भ्रष्ट दोनों तरह की नीतियों की सूचना जनता को देती है। भारत में अगर हम प्रेस के विकास की बात करें तो इसकी शुरुआत पुर्तगालियों के आगमन से होती हैं। पुर्तगालियों ने प्रथम प्रेस की स्थापना गोवा में 1550 ई. में की थी।[1] इस प्रेस में पहली पुस्तक 1557 में छपी थी जो गोवा के ईसाइयों की धर्म पुस्तक थी।[2] यद्यपि भारतीय पत्रकारिता कोश में इस पुस्तक की तिथि 1556 बताई जाती है।3 इसके बाद 1684 में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बम्बई में एक प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की। इसके स्थापित होने के बाद लगभग 100 वर्षों तक कोई भी समाचार पत्र नहीं छापा गया क्योंकि ब्रिटिश कंपनी नहीं चाहती थी कि उसकी काली करतूतों व उसके कर्मचारियों के निजी व्यापार की सूचना लंदन पहुँचे।

कंपनी के असन्तुष्ट कर्मचारियों द्वारा ही कंपनी के दुष्कर्मों का भण्डाफोड़ हो सकता था। उसमें पहला व्यक्ति था विलियम बोल्ट्स जिसने 1776 में यह कोशिश की जिसका कारण था कोर्ट ऑफडायरेक्टर्स ने उसके निजी व्यापार को पकड़ा और उसकी निंदा करते हुये उसे कंपनी की नौकरी से निकाल दिया। विलियम बोल्ट्स ने धमकी दी कि ''वह समाचार पत्र निकालेगा और कंपनी की काली करतूतों को उजागर करेगा उसके पास हस्तलिखित रूप में बहुत से तथ्य है जो सभी व्यक्तियो से गहरा संबंध रखते है।''[4] बोल्ट्स की इस धमकी की कंपनी के आला अफसरों में तुरन्त प्रतिक्रिया हुई और बोल्ट्स की योजना को गर्भ में दबाते हुये उसे तत्काल इंग्लैण्ड भेज दिया गया। परन्तु विलियम बोल्ट्स की जगह यह कार्य 29 जनवरी 1780 को जेम्स आगस्ट्स हिक्की ने अपने पहले समाचार पत्र के माध्यम से किया।[5] हिक्की के इस समाचार पत्र का नाम था 'द बंगाल गजट' अथवा 'द कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' जिसके द्वारा कंपनी के कई अधिकारियों की आलोचना की। सरकारी अधिकारी, गवर्नर जनरल तथा मुख्य न्यायाधीश की आलोचना के कारण वारेन हेस्टिग्स ने 23 मार्च, 1782 को हिक्की का मुद्रणालय जब्त कर लिया गया और हिक्की की आवाज को दबा दिया गया।[6] 1780 में ही एक और समाचार पत्र निकला था, जिसका नाम था इंडिया गजट।[7] उसके बाद कई और समाचार पत्र निकले जैसे – 1784 में कलकत्ता गजट, 1785 में बंगाल जनरल, 1785 में ही द ओरियन्टल मैगजीन ऑफ कलकत्ता या द कलकत्ता एम्यूजमेन्ट, 1786 कलकत्ता क्रॉनिकल, 1788 में मद्रास कूरियर, 1789 बम्बई हेराल्ड आदि समाचार पत्रो ने कंपनी का भण्डाफोड करने की कोशिश की। कंपनी के अधिकारियों को यह डर था कि कहीं ये समाचार पत्र लंदन न पहुँच जायें जिससे लंदन की सरकार को कंपनी के अपकर्मों का पता चले। इसलिये कंपनी ने इन समाचार पत्रों के विनियमन के लिये कानून बनाने की शुरूआत की।

समाचार पत्रों पर पहला सेंसरशिप एक्ट 1799 में लगाया गया जिसके तहत समाचार पत्र को संपादक, मुद्रक और स्वामी का नाम स्पष्ट रूप से छापना पड़ता था। प्रकाशक को प्रकाशित किये जाने वाले सभी तत्वों को सरकार के सचिव के सम्मुख प्री–सेन्सरशिप के लिये भेजना पड़ता था। यह सब कार्य लार्ड वेलेजली ने किया था। वह नहीं चाहता था कि फ्रांस के आक्रमण के कारण कोई समाचार पत्र ऐसा तथ्य प्रकाशित करें जिससे फ्रांस के सामने या किसी भारतीय राज्य के सामने उसकी दुर्बलता प्रकट हो। 1799 के इस अधिनियम के दायरे को बढ़ाकर 1807 में पत्रिकाओं, पैम्फलेट तथा पुस्तकों पर भी लागू कर दिया गया।

1799 से लेकर 1823 के बीच कई समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ। जिसमें किसी भारतीय द्वारा अंग्रेजी भाषा में निकाला हुआ पहला समाचार पत्र भी था। जिसे गंगाधर भट्टाचार्य ने 1818 में ''द बंगाल गजट'' के नाम से निकाला।[8] यह धार्मिक विषयों को व्यक्त करता था। 1818 में ही भारतीय भाषा में पहला समाचार पत्र निकाला गया। जिसे मार्शमन ने बंगाली में ''दिग्दर्शन'' नाम से निकाला जो एक मासिक पत्रिका थी।

1818 में ही मार्शमैन ने अपना दूसरा साप्ताहिक पत्र समाचार ''दर्पण'' का प्रकाशन किया। 4 दिसम्बर, 1821 को राजा राममोहन राय ने ''संवाद कौमुदी'' का प्रकाशन किया।[9] ब्रिटिश व्यापारी जेम्स सिल्क बर्किंघम ने पत्रकारिता को नई पहचान दी। उन्होंने प्रेस को आधुनिक रूप प्रदान किया। प्रेस को जनता का प्रतिबिम्ब बनाया और स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाया। 1818 में बर्किंघम ने ''कलकत्ता जर्नल'' का सम्पादन करके लार्ड हेस्टिंग्स तथा कार्यवाहक गवर्नर जनरल जॉन एडम्स को संकट में डाल दिया।[10] इन्होंने प्रेस को नियंत्रित करने के लिये बर्किंघम पर प्रतिबंध लगाकर 1823 में उसे इंग्लैण्ड वापस भेज दिया। जबकि 1818 में लार्ड हेस्टिंग्स ने ही प्रेस के प्रति उदार रवैया अपनाते हुये प्री–सेंसरशिप को खत्म कर दिया था। राजा राममोहन राय ने 1822 में ''मिरातुल'' अखबार का फारसी में तथा 1827 में ''ब्रह्मनिकल'' का अंग्रेजी में प्रकाशन किया। राजा राममोहन राय के सामाजिक तथा धार्मिक विचारों के विरोध में 1822 में रूढ़िवादी मानसिकता के व्यक्ति भवानीचरण बन्द्योपाध्याय ने ''समाचार

चंद्रिका'' का प्रकाशन कलकत्ता से किया। बम्बई से 1822 में गुजराती भाषा में बॉम्बे समाचार पत्र फर्दूनजी ने प्रकाशित किया। राजा राम मोहन राय को राष्ट्रीय प्रेस की स्थापना का श्रेय दिया जाता है।[11]

इसके बाद 1823 में कार्यवाहक गवर्नर जनरल जॉन एडम्स ने बनाया अनुज्ञप्ति (स्पबमदेपदह) का नियम 1823 जिसके तहत बिना लाइसेंस लिए कोई प्रेस स्थापित नहीं करेगा और ऐसा करना दण्डनीय अपराध होगा।[12] बिना लाइसेंस के प्रेस चलाने पर 400/- रूपये जुर्माना अथवा कारावास होगा और प्रेस जब्त कर ली जायेगी। गर्वनर जनरल कभी भी किसी का भी लाइसेंस निरस्त कर सकता है। एडम्स की यह आज्ञा विशेषकर भारतीय भाषा के समाचार पत्र तथा भारतीयों द्वारा प्रकाशित समाचार पत्रों के लिए थी। इसी नियम के तहत राजा राम मोहन राय को ''मिरातुल'' अखबार का प्रकाशन बंद करना पड़ा। परन्तु राजा राम मोहन राय ने इसका विरोध भी किया और उन्होनें इस रेगुलेशन के खिलाफसुप्रीम कोर्ट को ज्ञापन भेजा था।[13] 1823 के अधिनियम के बाद भी कुछ समाचार पत्र प्रकाशित होते रहे, जिनमें प्रमुख हैं - 1826 में जुगल किशोर का ''उदण्ड मार्तण्ड'' हिन्दी भाषा में, 1830 में द्वारकानाथ टैगोर का ''बंगदत्त'' बंगला भाषा में, 1831 में बम्बई से गुजराती भाषा में प्रकाशित पी.एम. मोतीवाला का ''जामे जमशेद'' आदि।

इसके बाद आता है। लार्ड विलियम बैंटिक का कार्यकाल। उसने प्रेस के प्रति उदारवादी रूख अपनाया परन्तु इसका अधिक श्रेय कार्यवाहक गवर्नर जनरल चार्ल्स मेटकाफ को जाता है उसे ही प्रेस का मुक्तिदाता कहा जाता है। उसने 1823 के अधिनियम को रद्द करके 1835 का लिबरेशन ऑफ द इंडियन प्रेस अधिनियम लागू किया। इस अधिनियम के तहत एकमात्र शर्त यह थी कि मुद्रक तथा प्रकाशक अपने प्रकाशन के स्थान की सूचना अवश्य देंगे। यह अधिनियम 1856 तक चलता रहा है। इसके तहत 1851 में दादाभाई नौरोजी ने ''रफ्त गोफ्तार'' तथा ''अखबारे सौदागर'' का प्रकाशन गुजराती भाषा में किया, दूसरा प्रमुख अखबार था 1853 में हरिश्चन्द्र मुखर्जी द्वारा प्रकाशित ''हिन्दू पैट्रियाट'' जो अंग्रेजी में कलकत्ता से छपता था। 1835 से लेकर 1856 तक समाचार पत्रों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

इसके बाद आता है 1857 का वर्ष जब भारत में अंग्रेजों के खिलाफ एक विद्रोह हुआ। इस विद्रोह से उभरी जनभावनाओं तथा जनाक्रोश को सीमित करने के लिए सरकार पुनः प्रेस पर प्रतिबन्ध आरोपित करती है और बिना लाइसेंस के प्रेस चलाना अवैध घोषित कर दिया। 1857 के इस प्रेस अधिनियम की अवधि केवल एक वर्ष थी। इसके बाद मैटकॉफ का अधिनियम चलता रहा। 1867 में लाइसेंस प्रणाली को प्रेस पर अनिवार्य कर दिया गया। 1867 के अधिनियम का मुख्य उद्देश्य प्रेस को नियमित (Regulate) करना था। 1857 के बाद कई प्रमुख समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ जिनमें एंग्लो इण्डियन थे - टाइम्स ऑफइण्डिया (1862), स्टेट्समैन (1878), प्रेण्ड ऑफ इण्डिया, इंग्लिशमैन आदि यह सभी कलकत्ता से प्रकाशित होते थे। मद्रास से 'मद्रास मेल', इलाहाबाद से 'पायनियर' (1865), 'सिविल एण्ड मिलिट्री गजट' आदि। उपर्युक्त सभी समाचार पत्र सरकार के समर्थक थे। यह सभी अंग्रेजों की प्रशंसा करते थे तथा इन सभी समाचार पत्रों में जातीय श्रेष्ठता तथा भारतीयों के प्रति घृणा का भाव भरा होता था। इनके विरोध में कुछ राष्ट्रवादी समाचार पत्र भी निकले जिनमें ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का 'सोम प्रकाश' (1858), क्रिस्टोफर दास पाल का 'हिन्दू पैट्रियाट' (1861 से), देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा मनमोहन घोष का दैनिक पत्र 'इण्डियन मिरर' (1861) आदि प्रमुख थे। केशवचन्द्र सेन ने 'सुलभ समाचार पत्र', शिशिर कुमार घोष एवं मोतीलाल घोष ने 'अमृत बाजार पत्रिका' (1868) का प्रकाशन किया था।

1878 में लिटन ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लाकर देशी भाषा समाचार पत्रों पर कड़ा प्रतिबंध लागू कर दिया, क्योंकि 1876-1878 के बीच भारत में भयंकर अकाल पड़ा था और अकाल से हुई मौतों के लिए लिटन को ही जिम्मेदार ठहराया जा रहा था और उस पर लिटन का 1877 का दिल्ली दरबार आयोजित करना, भारतीय प्रेस ने लिटन की जमकर आलोचना की। इससे कुपित होकर लार्ड लिटन ने यह अधिनियम लागू किया इसके तहत (1) मजिस्ट्रेट को यह अधिकार था कि वह भारतीय भाषा के सम्पादक से बन्धन पत्र (Bond Paper) पर हस्ताक्षर करवा सकता था। (2) इस बंधन पत्र में यह प्रावधान था कि प्रकाशक ऐसी कोई भी सामग्री नहीं छापेंगे जिससे ब्रिटिश सरकार का अहितकर हो और सरकार के प्रति जनता में वैमनस्य जागे। (3) मजिस्ट्रेट का निर्णय अन्तिम होगा और प्रकाशक को निश्चित सुरक्षा राशि जमा करनी होगी।[14]

1878 के इस अधिनियम से बचने के लिए शिशिर कुमार घोष ने अपनी 'अमृत बाजार पत्रिका' को रातों-रात अंग्रेजी भाषा में बदल लिया जो पहले बंगाली में थी।[15] ऐसा कहा जाता है 1878 में बम्बई के प्रान्त में 62 देशी भाषा, अवध और मध्य प्रान्त में 60, बंगाल में 28 और मद्रास में 191 समाचार पत्र थे और इनके पाठकों की संख्या एक लाख से अधिक थी।

इसके बाद भी भारतीय भाषा के समाचार पत्रों का दमन चक्र जारी रहा। 1908 में ब्रिटिश सरकार ने समाचार पत्र अधिनियम लागू किया। जिसके तहत कोई ऐसा समाचार प्रकाशित नहीं करेगा जिससे हिंसा को प्रोत्साहन मिले और अगर ऐसा करता पाया गया तो मजिस्ट्रेट उस प्रेस को जब्त कर सकता है और उसकी सम्पत्ति जब्त कर सकता है, स्थानीय सरकार को भी समाचार पत्र के प्रकाशन पर रोक का अधिकार दिया गया। प्रेस का स्वामी कार्यवाही के विरूद्ध 15 दिन के अन्दर अपील कर सकता है। इस अधिनियम के तहत 7 समाचार पत्रों की समाप्ति तथा 9 के विरूद्ध मुकद्मे चलाये गये।[16] परन्तु उसके बाद भी प्रेस बन्द नहीं हुए न ही वह डरे। फिरोजशाह मेहता का बाम्बे क्रानिकल (1913), गणेश शंकर विद्यार्थी का प्रताप (1910), मौलाना आजाद का अलहिलाल (1912), एनीबेसेंट का न्यू इण्डिया (1916), मदन मोहन मालवीय का द लीडर (1918), मोतीलाल नेहरू का इण्डिपेंडेंस (1919) लगातार प्रकाशित होते रहे।

इसके बाद ब्रिटिश सरकार 1910 का भारतीय समाचार पत्र अधिनियम लेकर आयी जिसके तहत पत्र के स्वामी को स्थानीय सरकार के पास 500/- रूपये से 2000/- रूपये तक का पंजीकरण कराना पड़ता था, स्थानीय सरकार को यह असीमित अधिकार था कि वह पंजीकरण कभी भी रद्द कर सकती थी। पुनः पंजीकरण के लिए 1000/- रूपये से लेकर 10,000/- रूपये तक जमानत के तौर पर ले सकती थी। यदि समाचार पत्र में कोई हिंसा वाली जानकारी मिली तो प्रेस जब्त हो सकता था, साथ ही जमानत राशि भी। प्रकाशक को प्रत्येक समाचार पत्र की दो प्रतिलिपि सरकार के पास सदैव जमा करनी होंगी। पत्र स्वामी कार्यवाही के विरूद्ध उच्च न्यायालय में 2 माह के भीतर विशेष खण्डपीठ के समक्ष अपील कर सकता था। इस अधिनियम के तहत 991 प्रिंटिंग प्रेस व समाचार पत्रों के विरूद्ध कार्यवाही हुई, 286 पत्रों को कड़ी चेतावनी व 705 मामलों में बड़ी जमानत राशि ली गई।[17] इसके तहत बाहर से समाचार पत्रों का आना बन्द कर दिया

गया। समाचार पत्रों के कानून की समीक्षा करने के लिए 1921 में सर तेजबहादुर सप्रु की अध्यक्षता में प्रेस कमेटी नियुक्त की गई इसकी सिफारिशों पर 1908 व 1910 के अधिनियम रद्द कर दिये गये। इसके बाद 1931 में ब्रिटिश सरकार ने एक और नया प्रेस अधिनियम बनाया जिसे संकटकालीन भारतीय समाचार पत्र एक्ट 1931 कहा जाता है। इसके तहत 1910 के प्रेस अधिनियम के नियम पुनः लागू हो गये। साथ ही उस वक्त देश में चल रहे सविनय अवज्ञा आंदोलन को दबाने के लिए प्रांतीय सरकारों को अनेक शक्तियाँ दी गईं। इस अधिनियम धारा 4(1) के तहत शब्द संकेत या आकृति के माध्यम से किसी की हत्या या हत्या की प्रशंसा करना दण्डनीय अपराध होगा। इसकी धारा- 4 को व्यापक रूप प्रदान करते हुए सरकार की प्रभुसत्ता को हानि पहुँचाने वाले सभी कृत्य दण्डनीय अपराध होंगे। 1910 से 1931 के बीच प्रमुख समाचार पत्र भी छपे जिनमें गांधी जी का 'यंग इण्डिया' तथा 'नवजीवन' (1919), शिव प्रसाद गुप्त का 'आज' (1923) तथा के.एम. पणिक्कर का 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (1923) आदि प्रमुख थे।

इसके बाद स्वतंत्र भारत का एक प्रेस अधिनियम था 1951 का समाचार पत्र अधिनियम, इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य था नागरिक हितों की सुरक्षा हेतु प्रेस पर प्रतिबंध। जिसके तहत सरकार जमानत राशि को जब्त करने व प्रेस को पूर्णतः बन्द करने का अधिकार रखती है। इस तरह इस लेख में हमने भारतीय प्रेस की विकास यात्रा को देखा कि वह किन-किन दौर से गुजरी थी।

ब्रिटिश भारत के दौरान भारत के लोगों में राष्ट्रीय भावना का प्रचार-प्रसार प्रेस ने बखूबी किया। इसी प्रेस के माध्यम से बुद्धिजीवियों ने अपने विचारों को आम-जनमानस तक पहुँचाया। प्रेस के विकास को अंग्रेजों की नीतियों ने भी बल दिया। अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे शोषण को पत्रिकाओं और प्रेस के माध्यम से वैश्विक पटल पर उजागर किया। प्रेस ने राष्ट्रवाद की भावना को और तेजी से बढ़ाया जब 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ और लगभग पूरे देश को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ जोड़ दिया। उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रिकाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जनमत का निर्माण कर जनता की आकांक्षाओं को उजागर करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान अदा किया। जिससे राष्ट्रवाद की भावना को बल मिला। इन पत्रिकाओं ने एक जागरूक सैनिक की भूमिका का निर्वहन किया था। प्रेस ने उत्तर प्रदेश की जनता को दिशानिर्देश के साथ-साथ जनचेतना को जाग्रत करने में अपनी अहम भूमिका अदा की क्योंकि बुद्धिजीवी वर्ग इन्हीं पत्रिकाओं के माध्यम से लोगों को समझाते थे किस वक्त किस जगह आंदोलन से जुड़ना है कि नहीं। उत्तर प्रदेश से प्रकाशित पहला हिन्दी समाचार पत्र 'बनारस अखबार' था, जो साप्ताहिक अखबार था। यह समाचार पत्र जनवरी, 1845 में काशी से प्रकाशित हुआ। इसकी शुरूआत राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद द्वारा कराई गयी थी। राजा शिवप्रसाद उर्दू भाषा को बहुत प्रेम करते थे तो उन्होनें 'बनारस अखबार' नामक हिन्दी समाचार पत्र को हिन्दी के साथ-साथ अरबी, फारसी व उर्दू भाषा में भी प्रकाशित कराया था। इसके माध्यम से जनचेतना को जाग्रत कराने का काम किया। असहयोग आंदोलन का जन-प्रसार करने में प्रेस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्हीं पत्रिकाओं ने गांधीवादी आंदोलनों के साथ-साथ क्रांतिकारी आंदोलनों और घटनाओं को भी आम जन-मानस तक उनकी भाषा में पहुँचाया, जिससे ब्रिटिश विरोधी जनभावना को लगातार बल मिला। शिक्षा के प्रचार प्रसार फलस्वरूप 1857 की क्रांति के समय हिन्दी पत्रकारिता के विकास की जो अपेक्षा की गई वह उस पर खरी नहीं उतरी। इसी समय ब्रिटिश सरकार ने प्रेस सम्बन्धी कानून बनाया जो 13 जून, 1857 को लागू हुआ, जिसे 'गैगिंग एक्ट' कहा गया। इसके तहत ब्रिटिश सरकार ने कहा, आप सरकार विरोधी कोई बात नहीं छापेंगे अन्यथा आपका प्रेस कार्यालय पर प्रतिबंध लगाकर जब्त लिया जाएगा। इस कानून ने राष्ट्रीय भावना को और मजबूत किया क्योंकि लोगों को पता चला कि सरकार प्रेस में छपी बातों से परेशान है और राष्ट्रवाद को कुचलना चाहती है। हिन्दी भाषा में छपा पहला समाचार पत्र 'उदंत मार्तंड' था जो बंगाल से प्रकाशित हुआ। जिसका संपादन उत्तर प्रदेश के कानपुर के रहने वाले पंडित युगल किशोर शुक्ल ने किया था।

'सूरज प्रकाश' समाचार पत्र आगरा से प्रकाशित होता था, क्योंकि 1861 में उत्तर प्रदेश से कई पत्र प्रकाशित होना प्रारम्भ हुए। यह भी हिन्दी समाचार पत्र था। कुछ समय बाद इसका उर्दू संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसका नाम 'आफताब-ए-आलमताब' था। इस हिन्दी और उर्दू समाचार पत्र के संपादक गणेशीलाल थे। 'सर्वोपकारक' नामक अखबार भी आगरा से प्रकाशित होता था, जिसका संपादन शिवनारायण करते थे।

'तत्वबोधिनी पत्रिका' तत्वबोधिनी सभा से सम्बन्धित थी और उसका प्रकाशन 1865 में बरेली से किया गया, जिसका संपादन गुलाब शंकर ने किया था। यह पत्रिका ब्रह्म समाज के सिद्धान्तों पर चलकर राष्ट्रवाद का प्रचार-प्रसार करती थी। 'अभ्युदय' समाचार पत्र को साप्ताहिक तौर पर मदन मोहन मालवीय ने 1907 में इलाहाबाद से शुरू किया। पहले यह समाचार पत्र प्रदेश में उदार विचारों का प्रमुख पत्र था, परन्तु कालांतर में स्वतंत्रता आंदोलन के प्रवाह में प्रवाहित होकर क्रांतिकारियों का पक्षधर हो गया। मालवीय जी के अतिरिक्त इसका संपादन पुरूषोत्तम दास टंडन, सत्यानन्द जोशी, कृष्णकान्त मालवीय और पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी किया। इस समाचार पत्र ने अनेक राष्ट्रभक्त पत्रकारों को प्रशिक्षण प्रदान किया। 1907 में ही 'अभ्युदय' के अतिरिक्त साप्ताहिक पत्र 'आनंद' का प्रकाशन लखनऊ से सम्पादक पंडित शिवनाथ शर्मा ने किया।

'कविवचन सुधा' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने काशी से शुरू किया। इसके प्रकाशन के साथ हिन्दी पत्रकारिता ने नए युग में प्रवेश किया। ब्रजवासी पत्रिका का प्रकाशन स्वदेशी और असहयोग आंदोलन के समर्थन में हुआ। यह उदारवादी होते हुए भी उग्र भाषा का इस्तेमाल करती थी।

'स्वदेश पत्रिका' का प्रकाशन 6 अप्रैल, 1919 को गोरखपुर से शुरू हुआ। इसने राष्ट्रीय आंदोलन की आवाज को और तेज बनाया। इस पत्रिका को उग्र विचारों एवं स्वतंत्रता के प्रति समर्पण की भावना के कारण सरकारी कोप दृष्टि का शिकार होना पड़ा।

'देशभक्त' साप्ताहिक समाचार पत्र प्रयागराज से प्रकाशित होता था। इसके सम्पादक श्रीनाथ सिंह थे। इसका कार्य राष्ट्रीय आंदोलन की सभी घटनाओं को प्रमुखता से छापना ताकि आम जनमानस जाग्रत हो सके। इसमें संसार के विभिन्न समाचार पत्रों का सार होता था साथ ही भारत के राष्ट्रीय एवं प्रगतिशील जीवन की झांकी भी होती थी। ब्रिटिश सरकार ने 1930 में प्रेस आर्डिनेंस के माध्यम से सभी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन स्थगित कर दिया था। इसी समय प्रदेश में भूमिगत पत्रकारिता शुरू हुई, जो लोगों को देश-दशा से अवगत कराने में सफल रही।

'विप्लव' पत्रिका को क्रांतिकारी यशपाल के संपादन में लखनऊ से प्रकाशित कराया जाता था। यह पत्रिका अति उग्र विचारों की राजनीतिक

पत्रिका थी। इसके मुख्य पृष्ठ पर 'तुम करो शान्ति–समता का प्रसार, विप्लव का अपना अनल गान' नीति वाक्य छपता था। इस पत्रिका का एक अंक 'चन्द्रशेखर आजाद' था, जो क्रांति गाथाओं से परिपूर्ण रहता था। इसका प्रकाशन अप्रैल, 1940 तक हुआ।

'भविष्य' समाचार पत्र का प्रकाशन इलाहाबाद से 'रामरख सिंह सहगल' करते थे। इसका उद्देश्य स्वतंत्रता के यज्ञ में जरूरत पड़ने पर अपनी आहुति देने के लिए जनता को जागरूक करना था। 'प्रताप' एक तेजस्वी पत्र था, जिसका सम्पादन बाबू गणेश शंकर विद्यार्थी नामक जोशीले नवयुवक ने किया। 'प्रताप' का कार्यालय क्रांतिकारियों का अड्डा हुआ करता था। अपने उग्र विचारों और उद्देश्यों के कारण 'प्रताप' ने आगे चलकर ब्रिटिश सरकार को पग–पग पर चुनौती दी।

निष्कर्ष:–इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय प्रिंटिंग प्रेस की शुरूआत पुर्तगालियों ने की थी। लेकिन ब्रिटिश कंपनी के अधीन खासकर भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों को काफी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ा। उन पर कड़े प्रतिबंध लगाये गये फिर भी उन्होनें राष्ट्रवाद व राष्ट्र की आवाज को हमेशा बुलंद किया और अंग्रेजों के खिलाफ आम जनमानस को जागरूक करके राष्ट्र की आजादी में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सन्दर्भ सूची:-

1. विपिन चन्द्रा: फ्रीडम स्ट्रगल।
2. उपरोक्त
3. हिस्ट्री ऑफमॉडर्न इंडिया – बिपिन चन्द्रा; ओरिएंट ब्लैकस्वान।
4. बार्क्स, मार्गरीटा: द इंडियन प्रेस (1940)
5. एल.पी.शर्मा: मध्यकालीन भारत व आधुनिक भारत का इतिहास।
6. उपरोक्त
7. बार्क्स, मार्गरीटा: द इंडियन प्रेस (1940)
8. बी.एल.ग्रोवर और यशपाल: आधुनिक भारतीय इतिहास।
9. विपिन चन्द्रा: फ्रीडम स्ट्रगल।
10. ए न्यू लुक एट मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री – बी.एल. ग्रोवर एवं अल्का मेहरा: एस. चंद
11. बी.एल.ग्रोवर और यशपाल: आधुनिक भारतीय इतिहास।
12. बार्क्स, मार्गरीटा: द इंडियन प्रेस (1940)
13. हिस्ट्री ऑफमॉडर्न इंडिया – बिपिन चन्द्रा; ओरिएंट ब्लैकस्वान।
14. गेट्स – रीड: द इंडियन प्रेस ईयर बुक (वार्षिक)
15. उपरोक्त
16. मॉडर्न इंडिया (1885–1947) – सुमित सरकार; पेलग्रेव मैकमिलन।
17. फ्रॉम प्लासी टू पार्टिशन एंड आफ्टर – शेखर बंद्योपाध्याय; ओरिएंट ब्लैकस्वान।
18. मौलाना अबुल कलाम आजाद: इण्डिया विन्स फ्रीडम।
19. अयोध्या सिंह: भारत का मुक्ति संग्राम।
20. ताराचंद: हिस्ट्री ऑफफ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

पितृ भक्त परशुराम "एक विवेचनात्मक अध्ययन"

आशीष पाठक

शोधार्थी, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, मप्र.

संसार में आवश्यकता के अनुसार आविष्कार होते हैं। ठीक इसी प्रकार समाज में जब कोई अव्यवस्था फैलती है तो उसे ठीक करने के लिए किसी अवतारी पुरूष का जन्म होता है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस के बालकाण्ड में लिखा है कि जब जब होय धर्म की हानि। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।। तब-तब प्रभु धरि, विविध शरीरा। हरहि कृपा निधि सज्जन पीरा।। अर्थात संसार मे जब धर्म की हानि होती है अहंकारी और नीच राक्षस बढ़ जाते हैं तब प्रभु अनेक प्रकार के शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा को दूर करते हैं। श्रीमद् भागवत गीता के अध्याय 4 के 7 और 8वें श्लोक में भी इसी बात का उल्लेख श्री कृष्ण अपने श्रीमुख से करते हैं। यथा- यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानम्धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्टकृताम। धर्म संस्थापनार्थय संभवामि युगे-युगे-अर्थात् हे भारत जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप में लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधु पुरूषों का उद्धार करने के लिए, पाप कर्म करने वाले का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह संस्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतार लेता हूँ।

प्रभु ने इसी क्रम में जब हैदृय वंश के राजा अर्जुन सहस्त्रवाहु ने सनातन धर्म के विपरीत चलना प्रारम्भ किया ऋषियों का अपमान किया और वेदों के नियमों का उल्लंघन कर ईश्वरीय सत्ता को चुनौती दी तथा अपने आपको श्रेष्ठमाना और अनीतिपूर्वक राज्य चलाने का प्रयास किया तब प्रभु ने माँ रेणुका के उदर से ऋषि जमदग्नि के आश्रम में जन्म लिया। भगवान परशुराम इस बुराई को दूर करने हेतु इस पृथ्वी पर अवतरित हुए।

इस संबंध में राजा परीक्षत ने शुकदेव से पूछा कि तदं हो भगवते। राजन्ये रजितात्ममि। कृत येनकुलं नष्टम क्षत्रियाणान्यमीक्षणशः।। अर्थात क्षत्रियों ने भगवान परसुराम का कौन सा अपराध किया था जिसके कारण उन्होंने क्षत्रियों को कई बार नष्ट किया। राजा परीक्षत के इसके उत्तर में श्री शुकदेव जी ने कहा कि हे राजन तुम मुझसे भगवान परशुराम की पूरी कथा सुनो उस कथा श्रवण से उनका अर्थात् क्षत्रियों को नष्ट करने का कारण स्वतः ज्ञात हो जायेगा।

उर्वशी के गर्भ से पुरूरवा द्वारा आयु श्रतायु, सत्यायु, रज, विजय और जय छै पुत्र हुए विजय से भीम, भीम से काचन, कांचन से होत्र, होत्र से जन्हू, जन्हू का पुत्र पुरू, पुरू से बलाक, बलाक से अजक और अजक का पुत्र कुश। राजा कुश के चार पुत्र हुए कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाथ, कुशनाथ के पुत्र गाधि हुए। गाधि की एक कन्या सत्यवती थी। ऋचीक मुनि ने गाधि से सत्यवती को माँगा। कुश ने शर्त रखी की आप एक हजार ऐसे घोड़े लाकर दीजिए जिनका पूरा शरीर श्वेत हो एक-एक कान श्यामवर्ण का हो। ऋचीक मुनी ने वरूण के पास जाकर घोड़े देकर सत्यवती को प्राप्त कर लिया। सत्यवती और उसकी माता ने ऋचीक मुनि से पुत्र प्राप्त करने की प्रार्थना की। मुनि ने दोनों के नाम चरू पकाया और स्नान करने चले गये। सत्यवती के माँ ने सोचा कि ऋचीक जी ने अपनी पत्नी के लिए श्रेष्ठ चरू पकाया होगा। उससे वह चरू मांग लिया। सत्यवती ने अपना चरू माँ को दे दिया और माँ का चरू स्वयं खा लिया। इस बात का पता जब ऋचीक को चला तो उन्होंने सत्यवती से कहा कि तुमने यह अनर्थ किया है। क्योंकि तुम्हारा पुत्र लोगो को दण्ड देने वाला और तुम्हारा भाई ब्रम्हवेत्ता होगा। सत्यवती ने मुनि से कहा ऐसा नहीं होना चाहिए। तब मुनि कहा पुत्र के बदले तुम्हारा पौत्र वैसा होगा। जिससे सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि का जन्म हुआ। इसके बाद सत्यवती कौशिकी नदी बन गई।

जमदग्नि ने रेणु ऋषि की कन्या रेणुका का पाणिग्रहण किया रेणुका के गर्भ से कई पुत्र हुए उसमें सबसे छोटे परशुराम थे। परशुराम अपने पिता जमदग्नि की सेवा में लगे रहते थे। उसी समय हैहय वंश का अधिपति अर्जुन दत्रात्रेय को प्रसन्न कर एक हजार भुजाएं प्राप्त कर अहंकारी हो गया था। एक बारनर्मदा का प्रवाह अपनी भुजाओं से रोक दिया उससे नर्मदा की धारा उल्टी हो गई और रावण का शिविर डूबने लगा। जब रावण ने उससे कहा तब उसने रावण को पकड़कर महिष्मती में कैदकर लिया, पुलस्त के कहने से उसे छोड़ दिया।

एक बार शिकार खेलते हुए अर्जुन दैव वश जमदग्नि के आश्रम में पहुँच गया। परमतपस्वी जमदग्नि ने उसका और उसके साथ आये सभी का स्वागत सत्कार किया। उसका मूल कारण कामधेनु गाय थी। अर्जुन ने देखा कि यह गाय तो महत्वपूर्ण है इसे मेरे पास रहना चाहिए और मुनी से माँगा भी नहीं उसको पकड़कर बलपूर्वक माहिष्मती ले गये।

उस समय परशुराम वन में समिधा लेने गये थे जब वे आश्रम में आये और यह समाचार सुना तो चोट खाये हुए साँप की तरह क्रोध से तिलमिला उठे और भयंकर फरसा तरकस ढाल एवं धनुष लकर बड़े वेग से उसके पीछे दौड़े। सहस्त्रवाहु के नगर में प्रवेश क पहले ही उसके पास पहुँच गये। उसने देखा कि परशुराम मेरी ओर झपट रहे हैं तो उसने सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी लेकिन भगवान परशुराम ने बात ही बात में अकेले ही उस सेना को नष्ट कर दिया। सहस्त्रावाहु ने यह देखकर परशुराम जी पर शस्त्र चलाये लेकिन परशुराम जी ने सबको नष्ट कर दिया और उसके हजार भुजाओं और सिर को काट डाला। और अपनी कामधेनु वापिस लाकर पिता जी को दे दी तथा पूरा समाचार सुना दिया परशुराम जी ने कहा कि हम

ब्राम्हण है हमें क्षमा करना चाहिए लेकिन तुमने सार्वभौम राजा का वध किया है अतः तीर्थो में घूमकर पापों को धो लो। उन्होंने पिता की आज्ञा मानकर एक वर्ष तीर्थ घूमकर आश्रम में वापिस आ गये।

एक दिन रेणुका जल लने के लिए गंगा तट पर गईं वहां चित्ररथ नाम का गन्धर्व अप्सराओं के साथ विहार कर रहा थावे उसे देखने लगी। उनका मन चित्ररथ में लग गया ऐसा करते उन्हें बिलम्ब हो गया। मुनि के भय से वे शीघ्र आश्रम में आयीं और जल का ाड़ा रखकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गई जमदग्नि मुनि ने उनका मानसिक व्यभिचार जान लिया था। इसलिए उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि इस पापिनी को मार डालो। परन्तु किसी भी पुत्र ने उन्हें नहीं मारा। पिता की आज्ञा से परशुराम ने अपनी माता और भाईयों को मार डाला। इस पर उनके पिता जमदग्नि ने परशुराम से कहा बेटा तुम्हारे इस कृत्य से मैं प्रसन्न हूँ वरदान माँग लो तब परशुराम ने कहा कि मेरी माता और मेरे भाई जीवित हो जायें तथा उन्हें इस बात का पता न रहे कि मैंने उन्हें मार डाला था मुनि ने एवमस्तु कहा वे सब जीवित हो गये जैसे सोकर उठे हो।

सहस्त्रवाहु के लड़को में वैरभाव था इसलिए वे एक दिन मुनि के आश्रम में आये। उस समय जमदग्नि अग्निशाला में बैठे थे। वे परमात्मा के ध्यान मे मग्न थे। उन्होंने बलपूर्वक रेणुका के प्रार्थना करने पर भी उनका सिर काट कर ले गये।

माता रेणुका ने अपनी छाती और सिर पीट-पीट कर जोर-जोर से आवाज लगाई बेटा परसुराम शीघ्र आओ। माता की आवाज सुनकर शीघ्र आश्रम आकर देखा कि पिता जी मार डाले गये। उन्होंने विलाप किया फ्रि माहिष्मती नगरी में जाकर उनके सिर काटकर नगरी के बीच मे ढेर लगा दिया जब उन्होंने देखा कि वर्तमान क्षत्रिय अत्याचारी हो गये हैं तो उन्होंने पिता वध के निमित्त इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन किया और कुरूक्षेत्र के समन्त पंचक में पाँच तालाब बनाये जो रक्त से भरे थे। परशुराम जी अपने पिता के सिर को लाकर धड़ से जोड़ दिया और यज्ञों द्वारा सर्व देवमय आत्म स्वरूप भगवान का यजन किया और यज्ञों में पूर्व दिशा हाता को, दक्षिण दिशा ब्रम्हा को, पश्चिम दिशा अध्वर्युक, उत्तर दिशा साम गान करने वाले उग्दाता को दी। अग्नि कोण आदि दिशाएं ऋत्विजों को दी कश्यप जी को मध्य भूमि दी। उपद्रष्म को आर्यावर्त दिया तथा अन्य दिशा,यें दूसरे सदस्यों को प्रदान करके बाद यजान्त स्नान करके वे समस्त पापों से मुक्त हो गये और ब्रह्म नदी सरस्वती के पट पर मेघ रहित सूर्य के समान शोभायमान हुए ।महर्षि जमदग्नि को मास्मृतिरूप संकल्प मय शरीर की प्राप्ति हो गई।

त्रेता में भगवानराम का अवतार हो जाने से वे महेन्द्र गिरि पर्वत पर शान्त चित्त से निवास करते हैं। उन्होंने अपने शस्त्र त्याग कर दिये थे। किन्तु द्वापर में अम्बा के कहने पर अपने शिष्य भीष्म पितामह से युद्ध किया और उसमें अपनी हार स्वीकार की क्योंकि अपने भक्त का मान रखना उनके जीवन में है।

हे परीक्षित अब तुम्हारी समझ में आ गया होगा कि भगवान परशुराम का क्षत्रियों ने क्या अपराध किया। भगवान परशुराम प्रतिशोध की भावना से ओतप्रोत थे तथा पितृभक्त थे। वे जानते थे कि हमारे पिता का इतना तपोबल है कि वे सबकी चेतना वापिस कर देते हैं इसलिए उन्होंने अपनी माता और भाईयों का वध कर दिया था।

पितृभक्ति तो उनके रोम-रोम में भरी है लेकिन वर्तमान परिपेक्ष में ऐसी पितृ भक्ति कहीं भी देखने को नहीं मिलती। इसलिए वर्तमान के ब्राम्हण समुदाय को भगवान परशुराम के आदर्शों पर चलकर ब्राम्हण में ब्रह्मत्व को वापिस लौटाना है। मन में प्रश्न बन सकता है कि भगवान परशुराम ने माता और भाईयों का वध कर दिया था तो हमें भी ऐसा करना चाहिए। इसका उत्तर है उनके पिता में तपोवल था इसलिए उन्होंने ऐसा किया। प्रत्येक कार्य देश काल और परिस्थितियों के अनुसार होता है आज कल ऐसा तपोवल नहीं रह गया है। इसलिए पिता की आज्ञा तो मानना है किन्तु विवेक के अनुसार भगवान परशुराम अगले मन्मन्तर में वेदों का विस्तार करेंगें। यह चिरंजीवी होकर महेन्द्र गिरि पर शान्त भाव से निवास करते हैं।

संदर्भ सूची:-

1. श्री मद्भागवत कथा नवम् स्कन्द 15,16 अध्याय, गीताप्रेस गोरखपुर
2. श्री मद्वालमीकी रामायण बालकाण्ड चतुरू सप्ततितम् सर्ग, गीताप्रेस गोरखपुर
3. श्री रामचरित मानस बालकाण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर
4. कालजयी, श्री परशुराम लेखक-श्री श्यामसुन्दर भट्ट
5. परशुराम, लेखक-श्री श्यामनारायण पाण्डेय
6. पुरोषोत्तम् परशुराम (नाट्य), लेखक-पं0 विजयशंकर मेहता
7. श्री परशुराम चरितामृत, भार्गव पुराण
8. शौर्यमूर्ति भगवान परशुराम, भुवनवाणी प्रकाशन लखनऊ-20

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ग्रामीण पर्यटन की क्षमताएँ एवं संभावनाएँ : एक भौगोलिक अध्ययन

अजय कुमार यादव

शोधार्थी, भूगोल, स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मप्र.

ग्रामीण पर्यटन या ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यटन, पर्यटन गतिविधि का एक नया रूप है। यहग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक विकास उपकरण के रूप में उभरा है, जिसका उद्देश्य स्थानीय संसाधनों द्वारा, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देकर समुदायों का विकास करना है। भारत में ग्रामीण पर्यटन की अपार संभावनाएं हैं। ग्रामीण पर्यटन को विकसित करने के लिए हमें उस स्थान के ग्रामीण परिवेश, जनसांख्यिकी, सामाजिक-संस्कृति, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि को समझना होगा।

बुन्देलखण्ड भारत के सबसे गरीब और पिछड़े क्षेत्रों में से एक होने के बावजूद विरासत, परंपरा और संस्कृति का एक विशाल खजाना है। यहाँ किले, महल, बाबड़ियाँ, मेले व त्यौहार, एतिहासिक अतीत एवं शौर्य, पराक्रम व वीरता, हस्तकलाएँ, लोक-संस्कृति, धार्मिक पर्यटन, लोकगीत एवं स्थापत्य कला व नृत्य, नाटक, स्थानीय व्यंजन और खेल आदि पर्यटकों को आकर्षित कर सकते हैं। बुन्देलखण्ड के लोक-संस्कृति, लोक कला, लोक गीत आदि प्राचीन परम्परा एवं संस्कृति की वास्तविक झलक इस के ग्रामीण क्षेत्रों में ही देखने को मिलती है। ग्रामीण पर्यटन के द्वारा अध्ययन क्षेत्र में नये रोजगार एवं आजीविका के साधनों के विकास के परिणाम स्वरुप, क्षेत्र से आजीविका, रोजगार की कमी आदि के कारण होने वाले वाले दबाबजन्य प्रवासके शमन में सहायता मिलेगी।

शब्द कुंजी:- ग्रामीण पर्यटन, प्रवास, आजीविका, लोक-संस्कृति, विरासत।

प्रस्तावना:-दुनियाभर में पर्यटन को गरीबी कम करने के साधन के रूप में देखा जा रहा है और विकासशील देशो में इसका आर्थिक महत्व है (NWTO & UNCTAD 2001)। 2003 में संयुक्तराष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन द्वारा गरीबी उन्मूलन के लिए सतत पर्यटन कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य अविकसित और विकासशील देशों में विकास और गरीबी उन्मूलन के लिए स्थायी सामाजिक-आर्थिक और पर्यावरणीय पर्यटन को बढ़ावा देना है (Zhao & Ritchie, 2008)।

ग्रामीण क्षेत्र की संस्कृति, परंपरा और भौगोलिक क्षेत्र की विशिष्टता, पर्यटकों को आकर्षित करती है और इसके द्वारा रोजगार के नए अवसर भी पैदा कर सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण पर्यटन आय और रोजगार का एक नया स्रोत बन सकता है और साथ ही साथ सामाजिक अलगाव को समाप्त करने में एक महत्वपूर्ण कारक बनकर सकता है (Dimitrovski et al., 2012)।

भारत की जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत भाग गांवों में निवास करता है, साथ ही शहरी आबादी का एक बड़ा भाग किसी न किसी रूप से गांवों से जुड़ा हुआ है। वर्तमान में भारत के सामाजिक आर्थिक विकास एवं तीव्र वृद्धि के लिए आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर तलाशे जाएं। ग्रामीण भारत के जीवन में हमें वास्तविक भारत के दर्शन होते हैं। भारत के,प्रत्येक राज्य प्रत्येक क्षेत्र एवंगांव की एकअपनी एक विशिष्टता एवं अनूठापन है। गांवों की यह विशिष्टता एवं अनूठापन, भारत को एक विविधता पूर्ण संस्कृति वाला देश बनाता है। गांवों के इस अनूठेपन का प्रयोग कर, ग्रामीण पर्यटन के द्वारा सामाजिक आर्थिक विकास में सहयोग लिया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन, वर्तमान में वैश्विक अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ा क्षेत्र है। विविध संस्कृति, अद्वितीय स्थापत्य विरासत, मूर्त एवं अमूर्त ऐतिहासिक धरोहरों की खान होने के बाद भी भारत अंतरराष्ट्रीय पर्यटन बाजार में सिर्फ 2 प्रतिशत की हिस्सेदारी के साथ 13वेंस्थान पर है।साथ ही भारत में होने वाले पर्यटन में कुछ विश्व प्रसिद्ध धरोहरों व शहरी केंद्रों का योगदान अधिक है। अंतर्राष्ट्रीय पर्यटकों के साथ भारत में स्वदेशी पर्यटकों द्वारा भी पर्यटन गतिविधियां बड़े पैमाने पर की जाती है। कई बार कुछ पारंपरिक पर्यटक स्थलों पर (जैसे- हिमाचल, उत्तराखंड के धार्मिक स्थल) पर्यटन दबाव से पारिस्थितिकी समस्याएं भी उत्पन्न होती है।इस सब के बीच यदि इन पर्यटकों को पारंपरिक स्थलों से इतर भारत के ग्रामीण अंचल में, नए पर्यटन अनुभव हेतु आकर्षित किया जाए, तो इसके लाभ ग्रामीण अंचलों में प्राप्त होंगे।

ग्रामीण पर्यटन, पर्यटन का वह रूप है, जिसमें ग्रामीण जीवन, कला-संस्कृति, विरासत आदि के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यटकों को आकर्षित किया जाता है। यह पर्यटकों और स्थानीय लोगों के बीच अधिक समृद्ध पर्यटन अनुभव को सक्षम बनाता है, साथ ही स्थानीय समुदाय को आर्थिक-सामाजिक लाभ प्राप्त होते हैं।

भारत में बुन्देलखण्ड क्षेत्र कम औद्योगीकरण और नगरीकरण के साथ भारत के सबसे पिछड़े हिस्सों में से एक है, जहां अधिकांश आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है। यहां बड़े पैमाने पर गरीबी, बंधुआ मजदूरी, कम आर्थिक उत्पादकता आदि जैसी विभिन्न समस्याएं व्याप्त हैं। क्षेत्र की लगभग 60 प्रतिशत आबादी कृषिकार्य में, कृषक एवं कृषि मजदूरो के रूप में लगी हुई है। जिनकी घरेलू आय बहुत कम है। अत:क्षेत्र में आय के एक वैकल्पिक स्रोत की आवश्यकता है, जिससे लोगों की प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हो सके एवं साथ ही क्षेत्र के लोगों के जीवनस्तर में सुधार हो सकेगा।

बुन्देलखण्ड भारत के सबसे गरीब और पिछड़े क्षेत्रों में से एक होने के बावजूद विरासत, परंपरा और संस्कृति का एक विशाल खजाना है। यहाँ किले, महल, बाबड़ियाँ, मेले व त्यौहार, एतिहासिक अतीत एवं शौर्य, पराक्रम

व वीरता, हस्तकलाएँ, लोक-संस्कृति, धार्मिक पर्यटन, लोकगीत एवं स्थापत्य कला व नृत्य, नाटक, स्थानीय व्यंजन और खेल आदि पर्यटकों को आकर्षित कर सकते हैं। बुंदेलखंड के लोक-संस्कृति, लोक कला, लोक गीत आदि प्राचीन परम्परा एवं संस्कृति की वास्तविक झलक इसके ग्रामीण क्षेत्रों में ही देखने को मिलती है। जिससे निश्चित रूप से रोजगार एवं राजस्व में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से वृद्धि होती है। अतः क्षेत्र में ग्रामीण पर्यटन, सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए एक विकास उपकरण साबित हो सकता है।

अध्ययन क्षेत्र:-बुन्देलखण्ड एक भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्र है, जो उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों के बीच विभाजित है। इसका प्राचीन नाम 'जेजाकभुक्ति' था।यह क्षेत्र 23°20'से26°20' उत्तरी अक्षांश और 78°20'से81°40'पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। (NGSI, 1989)
बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा यमुना नदी, दक्षिणी एवं दक्षिण- पूर्वी सीमा विंध्यन पर्वत क्षरेणी द्वारा निर्धारित होती है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र को मोटे तौर पर चार उपक्षेत्रों में-उत्तर में बुन्देलखण्ड मैदान (उत्तर में), बुन्देलखण्ड उच्चभूमि (मध्य और दक्षिण में), सागर कापठार और दमोह पठार (दोनों दक्षिण में। भौगोलिक रूप से सागर का पठार, मालवा का भाग है जबकि दमोह का पठार, विंध्यांचल का भाग है। बुन्देलखण्ड का उत्तरी और मध्य भाग (कुल क्षेत्र का लगभग 67 प्रतिशत भाग) एक लहरदार मैदान है, जो लगभग 300 मीटर ऊँचा है। क्षेत्र का शेष 23 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र मुख्य रूप से 300 से 450 मीटर के बीच है, जिसका पश्चिमी और दक्षिण भाग (विन्ध्यन पर्वतीय क्षेत्र लगभग 600 मीटर उंचा है (सिंह, 1993)। इस का ढाल दक्षिण से उत्तर एवं उत्तर-पूर्व की ओर है। यहाँ बहने वाली प्रमुख नदियाँ यमुना, बेतवा, केन, पहुज, धसान, चम्बल, कालीसिंध, टोंस, सोन आदि नदी प्रमुख हैं।

बुन्देलखण्ड काक्षेत्रफल लगभग 65857वर्ग किलोमीटर है, जो उत्तर प्रदेश के 7 जिलों चित्रकूट, बाँदा, झांसी, जालौन, हमीरपुर, महोबा और ललितपुर तथा मध्य प्रदेश के 7 जिलों छतरपुर, टीकमगढ़, दमोह, सागर, दतिया और पन्ना में फैला हुआ है। झांसी और सागर जिले, बुन्देलखण्ड के क्रमशःसबसे बडे शहर हैं। बुन्देलखण्ड की लगभग 77.58 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। जो राष्ट्रीय औसत से अधिक है। बुंदेलखंड में कुल जनसंख्या कालगभग 23.50 प्रतिशत भाग अनुसूचित जाति और लगभग 4.33 प्रतिशत भाग अनुसूचित जनजातिका है। सर्वाधिक अनुसूचित जनजाति जनसंख्या बुंदेलखंड के दक्षिण भाग में स्थिति जिलों-सागर, पन्ना और दमोह में निवास करती है। क्षेत्र का औसत जनघनत्व लगभग 278 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

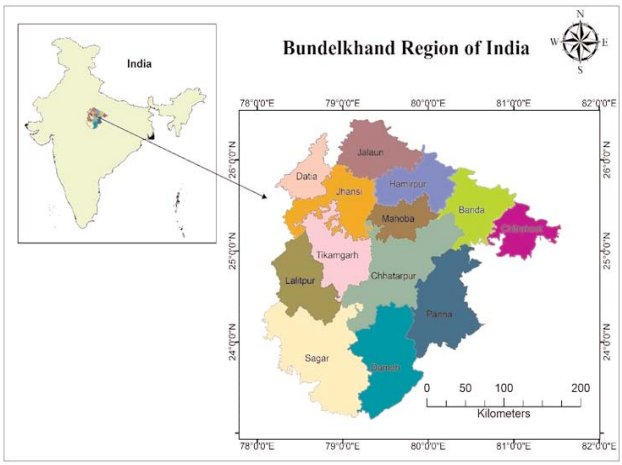

अध्ययन का उद्देश्य:-यह अध्ययन अनुभाविकशोध पद्धति पर आधारित है। इस अध्ययन का उद्देश्य-अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण पर्यटन की क्षमताओं एवं सम्भावनाओं का अध्ययन करनाहै।

बुन्देलखण्ड में ग्रामीण पर्यटन की क्षमताएं एवं सम्भावनायें:-बुन्देलखण्ड भारत के सबसे गरीब और पिछड़े क्षेत्रों में से एक होने के बावजूद विरासत, परंपरा और संस्कृति का एक विशाल खजाना है।यहाँ किले, महल, बाबड़ियाँ, मेले व त्यौहार, एतिहासिक अतीत एवं शौर्य, पराक्रम व वीरता, हस्तकलाएँ, लोक-संस्कृति, धार्मिक पर्यटन, लोकगीत एवं स्थापत्य कला व नृत्य, नाटक, स्थानीय व्यंजन और खेल आदि पर्यटकों को आकर्षित कर सकते हैं। पर्यटन मंत्रालय (2011) के अनुसार, 'पर्यटन का कोई भी रूप जो ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण जीवन, कला, संस्कृति और विरासत को प्रदर्शित करता है, जिससे स्थानीय समुदाय को आर्थिक और सामाजिक रूप से लाभ होता है और साथ ही पर्यटकों और स्थानीय लोगों के बीच बातचीत और अधिक समृद्ध होती है। इसे पर्यटन अनुभव को ग्रामीण पर्यटन कहा जाता है।'
बुन्देलखण्ड में 77 प्रतिशत (जनगणना-2011 के अनुसार) से अधिक क्षेत्र ग्रामीण है, जो ग्रामीण पर्यटन के लिए एक बेहतरीन अवसर प्रदान कर सकता है।यह क्षेत्र प्राचीन स्मारकों और स्थलों, असंख्य सांस्कृतिक संसाधनों और इतिहास और दंतकथाओं, बहादुरी और शहादत, युद्ध और धर्म से भरपूर भूमि का एक विशाल खजाना है।

सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र घटनापूर्ण ऐतिहासिक की विरासतों से गूंजता है। बुन्देलखण्ड में कई ऐतिहासिक इमारतें हैं, जो विश्वपटल पर आने के लिए खोज की प्रतीक्षा में हैं।

मूर्त विरासत:-विरासत भवनों की सघनता के मामले में बुन्देलखण्ड में राजस्थान की तुलना में अधिक सघनता है। झाँसी 'बुंदेलखंड के प्रवेश द्वार' के रूप में है। कलिंगर, खजुराहो, टीकमगढ़, पन्ना और ललितपुर प्रमुख ऐतिहासिक विरासत स्थल हैं, जबकि ओरछा, चित्रकूट, दतिया, महोबा, सागर आदि ऐतिहासिक स्थल के साथ साथ धार्मिक स्थल के रूप में प्रसिद्ध हैं।

क्षेत्रीय व्यंजन:-सांस्कृतिक पर्यटन में व्यंजन एक प्रमुख घटक है। बुन्देलखण्डी व्यंजन बहुत विशिष्ट है। कुछ व्यंजनों में 'जैन' सादगी होती है। यहाँ के कुछ व्यंजन बेहद सादा होता है अर्थात उनमें तेल का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। यहां कढ़ी, बरा, कोंच, कचरिया, मगौरा, देवलन की दार, भात, बूरों, पपइया व घी समेत समूदी रोटी का महत्व है। साथ ही कई प्रकार की शाक भाजी जो खासतौर पर सेहत के लिए लाभदायक होती है, यहां के व्यंजन में शामिल हैं। इसके अलावा, यहां स्थानीय स्तर पर पाए जाने वाले अंकुरित अनाज, बैंगन और दाल भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग कर व्यंजन बनाये जाते हैं। मिठाई में यहां सबसे प्रसिद्ध जलेबी, मालपुआ और कलाकंद है।'रसखीर' यहां एक लोकप्रिय मिठाई है जो दूध और बाजरा के साथ महुआ के फूलों के अर्क से बनती है। कोपरा पाक,बुंदेलखंड का दूसरा मशहूर डेजर्ट है ये, जिसे नारियल बर्फी के नाम से भी जाना जाता है। ताजे नारियल, मावा, दूध और चीनी से मिलकर तैयार होने वाला कोपरा पाक बहुत ही स्वादिष्ट होता है। अन्य मशहूर व्यंजनों में पूरी के लड्डू, करौंदे का पकवान, अनवरिया, थोपा बफौरी, महेरी (एक ज्वार आधारित पकवान), आंवले की सब्जी, मिर्ची का सालन, ड्राई फ्रुट्स लड्डू, दाल बाफले आदि है।

लोक कला और नृत्य:-सदियों से पूरे क्षेत्र में गीत और नृत्य की एक समृद्ध और विविध परंपरा विकसित हुई है। ऋतुएँ या जीवन की घटनाएँ

विशेष रूपों से जुड़ी होती हैं-

होरी-ये होली के त्योहार के दौरान गाए जाने वाले गीत हैं। यह गीत आमतौर पर कृष्ण और राधा की शरारतों पर आधारित होते हैं। कजरी- इन गानों में एक प्रेमी की चाहत की भावनाएं शामिल हैं, जो सुनने वाले को भावुक कर देता है। भाद्र के दूसरे पक्ष के तीसरे दिन महिलाएं अर्धवृत्ताकार नृत्य करते हुए पूरी रात कजरी गीत गाती हैं।

सोहर- जब किसी परिवार में बेटे का जन्म होता है तो सोहर गीत गाने की परंपरा होती है।

राई नृत्य- राई नृत्य बुन्देलखण्ड के लोकप्रिय लोक नृत्यों में से एक है, जिसे पुरुषों द्वारा महिलाओं के वेश में ढोलक और नगाड़ा संगीत वाद्ययंत्रों के साथ प्रस्तुत किया जाता है। यह मध्यप्रदेश का राजकीय नृत्य है।

नौरता नृत्य- बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अविवाहित लड़कियों के लिए इस नृत्य का विशेष महत्व है। यह भावी दुल्हनों के लिए एक सफल जीवनसाथी और वैवाहिक आनंद पाने के लिए भगवान का आह्वान करने के लिए किया जाता है

दिवारी- यह नृत्य दिवाली के दौरान चमकीले रंग के कपड़े, घुंघरू, अलंकृत बेल्ट पहने पुरुष नर्तकों द्वारा लाठियों से युद्ध का अनुकरण करते हुए किया जाता है।

अचरी- देवी मां के सम्मान में नवरात्रि के दौरान प्रस्तुत किया जाने वाला लोक गीत है।

आल्ह- महोबा के राजा परमाल के लिए लड़ने वाले दो भाइयों आल्हा और उदल के निडर कार्यों का वर्णन पारंपरिक बुन्देलखण्ड गाथा आल्हा में किया गया है। आल्हा सामंती शूरवीरता की कहानियों से भरा हुआ है जो आम लोगों की जरूरतों को पूरा करती है। उस काल में प्रचलित नैतिकता, शिष्टता और अभिजात वर्ग के उच्च मानकों पर प्रकाश डाला गया है।

लमटेरा- लमटेरा (भगवान की पुकार), बुंदेली तीर्थयात्रियों द्वारा रबी की फसल के बाद जनवरी से मार्च में गाया जाता है।

पहुनाई -मेहमानों के स्वागत में पहुनाई गीत और नृत्य प्रस्तुत किया गया।

गोट-गांव में मवेशियों के अच्छे स्वास्थ्य का आह्वान करने के लिए रात के दौरान एक अजीब लय के साथ गाया जाने वाला एक प्रकार का लोक गीत।

कचियाही- कुशवाह समुदाय के पुरुष और महिलाएं मंजीरा, सारंगी और अलगोजा संगीत वाद्ययंत्र का उपयोग करके गीत और नृत्य करते हैं।

कहरी- बारिश के स्वागत में गायी जाने वाली कहरी।

ख्याल- ख्याल दो गायन समूहों द्वारा प्रस्तुत गायन की एक प्रतिस्पर्धी शैली है।

तंबूरा भजन- तंबूरा भजन आमतौर पर निर्गुणी (निराकार) ईश्वर की पूजा के लिए कबीर के गीतों पर गाए जाने वाले गीत हैं।

कोल्हाई- कोल्हाई गीत और नृत्य अथा क्षेत्र की कोल जनजातियों द्वारा किया जाता है।

कई अन्य प्रकार के नृत्य और लोकगीत हैं जो व्यावसायिक जातियों के कुछ वर्गों के लिए अद्वितीय हैं और काम के दौरान गाए जाते हैं, जैसे कि जब कुएं से पानी निकाला जाता है या जब आटे को हाथ से गोल किया जाता है और कुछ अन्य प्रकार के लोक गीत और नृत्य बुंदेलखण्ड में दिखाई देते हैं। यह कठोर सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुआ है क्योंकि अधिकांश लोक कलाकार हाशिये पर पड़े अनुसूचित जाति वर्गों से हैं।

पारंपरिक शिल्पकला35

मिट्टी की मूर्तियाँ और खिलौने- देवी-देवताओं की पूजा से जुड़ी मूर्तियाँ जैसे- भगवान गणेश और लक्ष्मी, भगवान शिव और पार्वती आदिआमतौर पर काली मिट्टी से बनाई जाती हैं। तोते, हाथी, बच्चों के लिए गुड़िया जैसे खिलौने भी मिट्टी से बनाए जाते हैं।

हस्तशिल्प-बुंदेलखंड के गांवों में आमतौर पर कपड़ों से बनी गुड़ियाएं पाई जाती हैं जिन्हें 'पुत्र पुत्रिया' के नाम से जाना जाता है। दूल्हा-दुल्हन के सिर पर खजूर के पत्तों से बना मुकुट लगाया जाता है, जिसे पारंपरिक रूप से 'मौर' के नाम से जाना जाता है। घरेलू उत्पाद , जैसे बेंत की टोकरी, बेंत की ट्रे, बेंत का पेन स्टैंड, पर्स, रस्सियाँ और बिज्जना (हाथ का पंखा) आदि घास, लंबी खरपतवार, बांस से बने होते हैं।

लकड़ी शिल्प-लकड़ी से विभिन्न वस्तुएं जैसे- दरवाजा, चौखट, लकड़ी की चक्की, फर्नीचर, बक्से, खिलौने,बनाई जाती हैं।

ये वस्तुएं अपनी सादगी और सुंदर कला के लिए प्रसिद्ध हैं।ये भारत के अन्य हिस्सों से अलग हैं।

धातु कला - बुन्देलखण्ड में कृषि, आय का मुख्य स्रोत और जीवन का हिस्सा है।जहाँ खेती के उपकरण ठोस लोहे से बने होते हैं। प्राचीन काल से ही युद्ध के लिए हथियार भी ढाले जाते रहे हैं, जिन्हें अब निजी और स्थानीय दोनों संग्रहालयों में जनता के देखने के लिए रखा गया है। सोने और चांदी के आभूषण आम तौर पर बनाए जाते हैं और अन्य क्षेत्रों से इनके बहुत विशिष्ट नाम होते हैं। झाँसी, महोबा, बांदा, दतिया और ग्वालियर अपने धातुकर्म के लिए बुन्देलखण्ड क्षेत्र में लोकप्रिय हैं।

निष्कर्ष और सुझाव:-अध्ययन से पता चलता है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए मूर्त और अमूर्त दोनों तरह के संसाधन मौजूद हैं। इन संसाधनों का उपयोग सामाजिक आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ के लिए ग्रामीण पर्यटन के विकास के लिए किया जा सकता है।मूर्त और अमूर्त संसाधन गंतव्य छवि को बढ़ाने और पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए जिम्मेदार हैं। इस क्षेत्र में ऐतिहासिक स्थल, सांस्कृतिक सम्पदा, ऐतिहासिक स्थान, प्राकृतिक आकर्षण, अद्वितीय परिदृश्य, सड़कों और आवास के रूप में बुनियादी ढांचे जैसे आवश्यक मूर्त संसाधन हैं।बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अमूर्त संसाधनों में लोक गीत, संगीत, नाटक, नृत्य, नाटक, व्यंजन, कौशल, शिल्प और त्योहार शामिल हैं।ये संसाधन ग्रामीण क्षेत्र में पर्यटन के विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये संसाधन पर्यटकों को गंतव्य पर जाने के लिए प्रेरित करते हैं, जिससे स्थानीय लोगों के लिए रोजगार के अवसर पैदा होते हैं, जिससे गरीबी उन्मूलन में योगदान मिलता है। निर्वाह कृषि के अलावा आय के वैकल्पिक स्रोत में पर्यटन विकास जो क्षेत्र की आबादी में कुछ हद तक स्थिरता प्रदान करता है और प्रवासन को धीमा करता है।ग्रामीण पर्यटन विकास से ऐतिहासिक रूप से ख़राब भूमि के संरक्षण और विरासत की सुरक्षा और सराहना में मदद मिलेगी।बुन्देलखण्ड में अनेक लोक परम्पराएँ हैं, किसी भी राज्य के समर्थन के बिना कला रूपों की लोकप्रियता में भारी कमी आने से कम होती कला और कौशल को संरक्षण और समर्थन मिलेगा।साथ ही, बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ग्रामीण पर्यटन के विकास से पर्यटकों से बातचीत और विचारों के आदान-प्रदान के कारण जाति, लिंग और अन्य प्रकार की असमानताओं के बीच की खाई कम होगी,

पर्यटकों के आगमन से शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता जैसे मुद्दों का भी समाधान होगा।

इसलिए, बुन्देलखण्ड को मुख्यधारा के पर्यटन मानचित्र पर लाने और भव्य विरासत और विशाल कृषि भूमि का उपयोग करने के लिए भारत सरकार, थीम–आधारित पर्यटन सर्किट के एकीकृत विकास के लिए स्वदेश दर्शन योजना,थीम आधारित पर्यटन सर्किट से इतर गंतव्य पर्यटन को पूर्व रूप में लाने पर केंद्रितस्वदेश दर्शन योजना 2.0, देखो अपना देश कार्यक्रम, प्रसाद योजनाआदि को बढ़ावा देरही है।'वोकल फॉर लोकल' के मंत्र के साथ स्वदेश दर्शन 2.0नामक नई योजना का उद्देश्य पर्यटन गंतव्य के रूप में भारत की पूरी क्षमता को साकार कर 'आत्मनिर्भर भारत' के लक्ष्य को प्राप्त करना है। इन योजनाओं और कार्यक्रमों से बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पर्यटन की क्षमता को पहचानने में मदद मिलेगी।

सन्दर्भ सूची:-

1. Dimitrovski, D. D., Todorovi?, A. T., &Valjarevic, A. D. (2012). Rural Tourism and Regional Development: Case Study of Development of Rural Tourism in the Region of Gruca, Serbia. Procedia Environmental Sciences, 14, 288-297.
2. Mthembu, M. B. J. (2012). Rural tourism development: A viable formula for poverty alleviation in Bergville. SocSci, 12.
3. Pernecky, T. (2006). Co-creating with the uni verse: A phenomenological study of New Age tourists. 54(2), 17.
4. Zhao, W., & Ritchie, J. R. B. (2008). Tourism and Poverty Alleviation: An Integrative Research Framework. Current Issues in Tourism.
5. Zou, T., & Ding, P. (2012). Toward A Community-driven Development Model of Rural Tourism: The Chinese Experience.
6. Truong, V.D. (2014). 'Pro-poor tourism: look ing backward as we move forward', Tourism Planning & Development, Vol. 11, No. 2, pp.228-242.
7. यादव, ए. के. (2023), 'बुन्देलखण्ड कृषि जलवायु प्रदेश में जलवायु परिवर्तन सुभेद्यता एवं ग्रामीण आजीविका पर प्रभाव' शोधप्रबंध, स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर.
8. Akyeampong, O.A. (2011) 'Pro-poor tourism: residents' expectations, experiences and per ceptions in the Kakum National Park Area of Ghana', Journal of Sustainable Tourism, Vol. 19, No. 2, pp.197-213.
9. Hall, C.M., 2005. The role of government in the management of tourism: the public sector and tourism policies. In: Pender, L., Sharpley, R. (Eds.), The Management of Tourism. Sage Publications, Thousand Oaks, CA.
10. Nunkoo, R., Smith, S.L., 2013. Political econ omy of tourism: trust in government actors, political support, and their determinants. Tourism Manag. 36, 120-132.
11. Simpson MC. 2009. Community benefit tourism initiatives-a conceptual oxymoron? Tourism Management 29(1): 1-18.
12. Komppula, R. 2004. Tourism in the New Europe: Developing Rural Tourism in Finland through Entrepreneurship. London: Elsevier.
13. Luvanga, N. &Shitundu, J. 2003. The Role of Tourism in Poverty Alleviation in Tanzania. Dar-es-Salaam: University of Dar-es-Salaam Press.
14. Scheyvens, R. (2009) 'Pro-poor tourism: is there value beyond the rhetoric?', Tourism Recreation Research, Vol. 34, No. 2, pp.191-196.
15. Gibson, D. (2014) 'Green tourism alleviating poverty community-based ecotourism in Fiji', in DeLacy, T., Jiang, M., Lipman, G. and Vorster, S. (Eds.): Green Growth and Travelism: Concept, Policy and Practice for Sustainable Tourism, pp.159-173, Routledge.
16. Muganda, M., Sahli, M. and Smith, K. (2010) 'Tourism's contribution to poverty alleviation: a community perspective from Tanzania', Development Southern Africa, Vol. 27, No. 5, pp.629-646.
17. Bramwell, B. (2017). Rural tourism and sus tainable rural tourism. Journal of Sustainable Tourism, 2(1-2), pp. 1-6.
18. Barbu, I. (2013). Approach to the concept of rural tourism. Management Agricol, 15 (4), 125.
19. Butler, R. W. (2015). The concept of a tourist area cycle of evolution: implications for man agement of resources. The Canadian Geographer/Le Géographecanadien, 24(1), pp. 5-12.
20. Roberts, L., & Hall, D. R. (Eds.). (2001). Rural tourism and recreation: Principles to practice. CABI Pub.
21. Yang, L. (2015). Rural tourism and poverty alleviation: The case of Nujiang, Yunnan, China. International Journal of Tourism Anthropology, 4(4), 343.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

वेदांङ्ग ज्योतिष : एक अध्ययन

नर्वदेश्वर पाण्डेय
डॉ. प्रभाकर पाण्डेय

1. शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, सैम ग्लोबल विश्वविद्यालय, रायसेन, मप्र.
2. सहायक प्राध्यापक, वैकल्पिक शिक्षा एवं समग्र विकास विभाग, साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, मप्र.

वेद को सम्पूर्ण विश्व का आदि एवं प्राचीनतम् ग्रंथ होने का गौरव प्राप्त है। यहीं सेभारतीय ज्ञान परम्परा की अजस्र धारा सतत प्रवाहमान है। महाभारतकार नें वेद को नित्य, अनादि, ईश्वर द्वारा उत्सृष्ट दिव्या वाक् है, जिससे जगत् की समस्त प्रवृत्तियाँ होती है। अखिल ब्रह्माण्ड में 'वेद' चिर प्रदीप्त ज्ञान-विज्ञान का दीपक है।वेदों के शाश्वत, सनातन एवं सार्वभौम रूप ने विश्व के सभी मनीषियों एवं चिंतको को सदैव प्रभावित किया है। भारतीय धर्म, सम्प्रदाय, आचार-विचार तथा रहन-सहन को व्यवस्थित ढंग से समझने के लिये वेदों का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। 'वेद संसार की सम्पूर्ण सत्य विद्याओं, ज्ञान, विज्ञान तथा तकनीकी आदि का मूल है। भारतीय ऋषियों के द्वारा अपने दिव्य नेत्रों से अनुभूत आध्यात्म शास्त्र एवं सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान के तत्त्वों की विशाल निर्मल शब्द राशि का नाम ही 'वेद' है। वेदों के गहन ज्ञान को ऋषियों ने मन्त्र दृष्टा बनकर प्रकाशित किया है।'

'वेद'शब्द 'विद्' धातु से 'करण' एवं 'अधिकरण' कारकों में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से बना है। 'सिद्धान्त कौमुदी' में'विद्' धातु चार अर्थों में पाई जाती है- विद् ज्ञाने (अदादि गण), विद् सत्तायाम् (दिवादि गण), विद्लृ लाभे (तुदादि गण), विद् विचारणे (रुधादि गण)। अतः वेद के अर्थ हैं- ज्ञान, सत्ता, लाभ एवं विचार। धातु अर्थ के आधार पर महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वेद की परिभाषा इस प्रकार लिखते हैं-'जिनके पढ़ने से यथार्थ विद्या का ज्ञान होता है, जिनको पढ़ के विद्वान होते हैं, जिनके द्वारा सब सुखों का लाभ होता है और जिनसे मनुष्यों को सत्य-असत्य का विचार होता है, वे 'वेद' कहलाते हैं।

'ऋक् प्रातिशाख्य' के वृत्तिकार विष्णुमित्र ने वेद शब्द का अर्थ 'विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते एभिधर्मादि पुरुषार्था इति वेदाः' अर्थात् वेदों के द्वारा धर्म आदि पुरुषार्थ का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति का परम लक्ष्य रूप धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों का ज्ञान और प्राप्ति का मार्ग वेद से ही सम्भव है। वेद भाष्यकार आचार्य सायण के अनुसार वेद इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार के अलौकिक उपाय को बताने वाले ग्रन्थ हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि जो उन्नति और प्रगति का मार्ग बताता है तथा पाप कर्मों से होने वाले कुपरिणामों से बचने का उपाय बताता है, उसे 'वेद' कहते है। प्राचीन ऋषियों द्वारा अर्जित किए गए समस्त ज्ञान के संग्रहभूत ग्रंथों को वेद कहते हैं। अतः वेद शब्द वैदिक ग्रंथों में प्रतिपादित ज्ञान का वाचक होने के साथ ही सम्पूर्ण वैदिक वांग्मय का भी बोधक है।

वेदों के अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया को सर्वसाधरण के लिए बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से कालान्तर में जिन छोटे-छोटे ग्रन्थों की रचना की गई उन्हें वेदाङ्ग के नाम से अभिहित किया जाता है। इस संदर्भ में बलदेव उपाध्याय लिखते हैं कि 'विषयवस्तु के अत्यन्त दुरूह होने के कारण परवर्ती काल में वेदों के पठन-पाठन में कठिनाईयाँ उत्पन्न होने लगी। इन समस्याओं के निराकरण हेतु परवर्ती काल में अनेक ऋषियों के द्वारा वेदाङ्गों की रचना की गई। इस प्रकार वैदिक ज्ञान की निगूढ़ता को स्पष्ट करने के लिए वेदाङ्गों की रचना हुई। 'वेदाङ्ग'शब्द की व्युत्पत्ति 'वेद' तथा 'अङ्ग' इन दो शब्दों के मिलने से हुई है। 'अङ्ग' शब्द का अर्थ है 'जिनके द्वारा किसी वस्तु के स्वरूप को जानने में सहायता प्राप्तहो, उन्हें अङ्ग कहते हैं।' स्पष्ट है कि वेद को समझने में सहायक ग्रन्थ वेदाङ्ग कहे गए। इन वेदाङ्गों की संख्या छः कही गई है' - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष।' सर्वप्रथम मुण्डकोपनिषद् में इन छः वेदाङ्गों के नाम का उल्लेख मिलता है।' यद्यपि गोपथ ब्राह्मण में भी इसका संकेत प्राप्त होता है' इन वेदाङ्गों का मूल उद्देश्य वेदों का सही उच्चारण, वेदार्थ निर्णय तथा वेदों के याज्ञिक प्रयोग हैं। अर्थबोध के लिए व्याकरण तथा निरुक्त वेदाङ्ग अस्तित्व में आए। जबकि सही उच्चारण के लिए शिक्षा तथा छन्द वेदाङ्गों की रचना हुई। जबकि वेदों के याज्ञिक प्रयोग की शुद्धि को सुनिश्चित करने के लिए कल्प तथा ज्योतिष वेदाङ्ग का आविर्भाव हुआ। वेदाङ्गों के उद्देश्य का निर्धारण करने के क्रम में आचार्य बलदेव उपाध्याय का विचार महत्वपूर्ण है। इनके अनुसार-'मन्त्रों के उचित उच्चारण के लिए शिक्षा का, कर्मकाण्ड और यज्ञीय अनुष्ठान के लिए कल्प का, शब्दों के रूप ज्ञान के लिए व्याकरण का, अर्थज्ञान तथा शब्दों के निर्वचन के निमित्त निरुक्त का, वैदिक छन्दों की जानकारी के लिए छन्द का तथा अनुष्ठानों के उचित काल निर्णय के लिए ज्योतिष का उपयोग है और इनकी उपयोगिता के कारण ये छः वेदाङ्ग माने जाते हैं। इन वेदाङ्गों को वेद पुरुष के विभिन्न अवयवों के रूप मेंबताया गया है इस सन्दर्भ में पाणिनीय शिक्षा का वचन इस प्रकार है- वेद पुरुष के पैर के रूप में छन्द, हाथ के रूप में कल्प, कान के रूप में निरुक्त, ज्योतिष को नेत्र के रूप में, शिक्षा को नाक के रूप में तथा व्याकरण को मुख के रूप में वेदाङ्ग की कल्पना की गई है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि शब्द के श्रवण मात्र से वेदार्थ बोध सम्भव नहीं होता, इसलिए वेदों के अध्ययन के लिए वेदाङ्गों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है, जैसे कि विभिन्न अङ्गों में निहित विषय की मीमांसा से स्पष्ट हो जाता है।

वेद की परिभाषा का विवेचन करते हुए आचार्य सायण ने इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार के उपायों का विवेचन करने वाले शास्त्र के रूप में वेद को बताया है किन्तु षडङ्गों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त और छन्दये पाँच

अङ्ग मानव मात्र के इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहारों का प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट रूप से प्रतिपादन नहीं कर पाते; केवल ज्योतिष शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है, जो मानव जीवन में इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट के परिहारों का सांगोपाङ्ग विवेचन करता है। इसलिए इस शास्त्र का वेदाङ्ग शास्त्रों में सर्वोपरि स्थान माना जाता है। आचार्य लगध भी ज्योतिषशास्त्र की प्रशंसा करते हुए इस शास्त्र को सभी वेदाङ्ग शास्त्रों में मूर्धन्य कहते हैं। ज्योतिषां ग्रहनक्षत्राणां गतिमधिकृत्य कृतं शास्त्रम् इस व्युत्पत्ति के अनुसार आकाशस्थ ग्रहों की गतिविधियों पर आधारित शास्त्र को ज्योतिष शास्त्र कहते हैं। ज्योतिष् वेदाङ्ग को वेदपुरुष का नेत्र कहा गया हैं-ज्योतिषामयनं चक्षुः। वेदों के लिए ज्योतिष वेदाङ्ग का महत्त्वपूर्ण है। ज्योतिष काल गणना का विधायक शास्त्र है। वेद में यज्ञ का महत्त्व है और यज्ञ-सम्पादन के लिए विशिष्ट समय की अपेक्षा होती है। ज्योतिष् का अर्थ है ज्योतिर्विज्ञान। सूर्यादि आकाशीय पिण्डों की गणना ज्योतिर्मय पदार्थों में होती है और इनसे संबंधित विज्ञान ही ज्योतिष या ज्योतिर्विज्ञान है। महर्षि लगध के अनुसार यह शास्त्र ज्योतिषामयनम् अर्थात् नक्षत्र आदि की गति का अध्ययन करने वाला शास्त्र है। सम्प्रति ज्योतिषविषयक केवल एक ही प्राचीन ग्रंथ महर्षि लगध कृत वेदाङ्ग ज्योतिष प्राप्य है। यह ग्रंथ दो भागों में विभक्त है-ऋक् या आर्च ज्योतिष एवं याजुष ज्योतिष। ऋक् ज्योतिष ऋग्वेद संबंधी ज्योतिष है जिसमें 36 श्लोक हैं। याजुष ज्योतिष यजुर्वेद संबंधी ज्योतिष है जिसमें 43 श्लोक हैं। बहुत से श्लोक दोनों भागों में समान हैं। इस ग्रंथ की भाषा अत्यन्त कठिन है और इसमें कुछ अंश अभी भी अर्थ की दृष्टि से दुरूह समझे जाते हैं। इस पर एक प्राचीन टीका सोमाकर की प्राप्त होती है। वेदाङ्गों की रचना सूत्र शैली में हुई है और ज्योतिष वेदाङ्ग भी इससे अलग नहीं है। विस्तृत विषयों तथा सिद्धान्तों को संक्षेप में प्रस्तुत करना ही इस शैली की विशेषता रही है। आचार्य बलदेव उपाध्याय का इस सन्दर्भ में कथन उल्लेखनीय है - 'उस युग की बातें इतनी अज्ञात है कि वेदाङ्ग ज्योतिष के श्लोकों का रहस्य बतलाना आज भी विद्वानों के लिए एक विषम समस्या है।

ऋक् ज्योतिष में प्राचीन ज्योतिष शास्त्रीय सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। ये सिद्धान्त अत्यन्त विस्तृत तथा गूढ़ हैं। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में युग का मानबताते हुए इसे पाँच संवत्सर वाला कहा गया है। ज्योतिष वेदाङ्ग का उद्देश्य,युग संबंधी अवधारणा,पर्व, अयन विचार, नक्षत्रों के नाम तथा उनके देवता, दिनमान, तिथि व नक्षत्र आदि का आनयन, दिनरात्रिमान, युग में ऋतु, ऋतुमान, त्रैराशिक नियम, नाक्षत्र दिन युग तथा ऋतु में संशोधन व उससेसंबंधित गणना, काल के विभिन्न अवयव आदि विषय का समावेश इस ग्रन्थ में प्राप्तहोता है। इस ग्रन्थ में सूर्य के धनिष्ठा नक्षत्र से उत्तरायण होने के साथ-साथ उत्तरायण और दक्षिणायन में दिन तथा रात्रि के घटने तथा बढ़ने का सन्दर्भ प्राप्त होता है। वेदाङ्ग ज्योतिष में 27 नक्षत्रों के नाम सांकेतिक अक्षरों में उल्लेखित है किन्तु यहाँ कहीं भी अभिजित नक्षत्र का उल्लेख नहीं दिया गया है। चूँकिचन्द्रमा द्वारा नक्षत्र मंडल की परिक्रमा में 27 दिन लगते हैं इसीलिएनक्षत्र 27 या 28 माने गये हैं। अभिजित नक्षत्र की स्थिति उत्तराषाड़ा के चतुर्थ पाद तथा श्रवण नक्षत्र के प्रथम पाद पर है इसीलिए यह नक्षत्र क्रान्ति प्रदेश के बाहर होने से भी अभिजित का नक्षत्र के रूप में उल्लेख नही प्राप्त होता है। नक्षत्र गणना के प्रसंग में नक्षत्र के देवताओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है। नक्षत्र उदय के साथ लग्न की संकल्पना वेदांग ज्योतिष का महत्वपूर्ण देन है। समय की विभिन्न सूक्ष्म ईकाइयों के रूप में कला, नाडिका, मुहूर्त्त तथा भूदिन का निर्देश प्राप्त होता है। इस तरह समय का सूक्ष्म विभाग द्वारा वेदाङ्ग ज्योतिष मानव जीवन में समय के प्रभाव को स्थापित करता है। इसी तरह आढक, कुम्भिका, द्रोण तथा कुडव संज्ञक काल की ईकाईयों का भी यहाँ उल्लेख किया गया है। ग्रन्थ में आगे नक्षत्र देवताओं का तथा उनके प्रयोजन का उल्लेख किया गया है इनका क्रम अग्नि देवता से प्रारम्भ है। ग्रन्थान्त में ग्रन्थ के अध्ययन के महात्म्य को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि इस ग्रन्थ के अध्ययन के कारण व्यक्ति इस लोक में पुत्र-पौत्रादिक को तथा मरणोपरान्त चन्द्र सूर्य तथा नक्षत्र लोक को प्राप्त करता है।

ऋक् ज्योतिष के समान ही याजुष् ज्योतिष ग्रन्थ में काल के निर्धारण हेतु विभिन्न नियमों का प्रस्तुतीकरण ही प्रमुख है। वेदाङ्ग ज्योतिष के इस संस्करण के प्रथम श्लोक में युगाध्यक्ष प्रजापति की वन्दना की गई है। प्रजापति के अङ्गों के रूप में दिन, ऋतु, अयन तथा मास की कल्पना की गई है। नक्षत्र और उसके स्वामियों का वर्णन ऋक् ज्योतिष के अनुरूप है। गणित से सम्बन्धित त्रैराशिक विधि का वर्णनयाजुष् ज्योतिष की विशिष्टता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि तीन राशियाँ ज्ञात हो तो चौथी अज्ञात राशि का मान निकाला जा सकता है। ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है कि अयन का प्रारम्भ कब होता है? ऋषि कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा जब धनिष्ठा नक्षत्र के प्रथमांश में होते हैं तब उत्तरायण होता है तथा श्लेषा के मध्य में दक्षिणायन होता है।इस अयनका सम्बन्ध ऋतुओं के साथ स्थापित करते हुए ग्रन्थ में कहा गया है कि उत्तरायण सर्वदा माघ मास में तथा दक्षिणायन श्रावण मास में होता है।शास्त्रकार की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति यहां दृष्टिगत होती है। उत्तरायण तथा दक्षिणायन होने पर दिन तथा रात्रि के मान में होने वाले अंतर अर्थात् वृद्धि तथा ह्रास पर भी ऋषि ने विचार किया है और कहा है कि उत्तरायण में दिन बड़ा और रात्रि छोटी होती है जबकि दक्षिणायन में दिन छोटा और रातें बड़ी होती है। इस ग्रन्थ में भी एक ऋतुसाढ़े चार नक्षत्र के बराबर बताया गया हैं। ऋतु के विषय में ठीक यही विचार ऋक् ज्योतिष में भी प्राप्त होते हैं।'विषुवत' का उल्लेख इस ग्रन्थ को ऋक् ज्योतिष की अपेक्षा विशेष महत्त्व कासिद्ध करता है। पञ्चसम्वत्सरात्मक युगमान का बड़ा ही सुन्दर प्रस्तुतीकरण ऋषि ने किया है, उन्होंने एक ही श्लोक द्वारा बता दिया है कि एक पञ्चसम्वत्सरात्मक युग के वर्षमान में 366 सूर्य सावन दिन, छः ऋतुएँ, दो अयन (उत्तरायण तथा दक्षिणायन) तथा बारह सौर मास होते हैं। ग्रन्थ के अन्त में महर्षि लगध को ही मास, वर्ष, मुहूर्त्त, चन्द्रादिका उदय, सावन दिन पर्व, दिन ऋतु तथा मास आदि विषयों को प्रस्तुत करने वाले इस ग्रन्थ के वक्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है साथ ही साथ चन्द्र सूर्य तथा नक्षत्र के चरित्र अर्थात् नक्षत्र विद्या की महत्ता को स्थापित करते हुए कहा गया है कि इस विद्या का अध्येता इस लोक में पुत्र पौत्रादिकों की प्राप्ति करता है तथा मरणोपरांत ऋषियों द्वारा इच्छित चन्द्र सूर्य लोक तथा नक्षत्रलोक को प्राप्त करता है।

इस प्रकार वेदाङ्ग ज्योतिष के दोनों ग्रन्थ भारतीय वैज्ञानिक, दार्शनिक, ज्योतिषीय तथा गणित शास्त्रीय दृष्टिकोण से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। ऋक् ज्योतिष तथा याजुष् ज्योतिष भारतीय प्राचीन ज्ञान परम्परा का दर्शन कराने वाले है। इन ज्योतिष वेदाङ्गीय ग्रन्थ में विभिन्न कालमानों के शुभाशुभत्व पर इतना विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है जिसे आधार मानकर परवर्त्ती शास्त्रकारों ने विभिन्न ग्रन्थों की रचना की तथा संस्कृत शास्त्र परम्परा को समृद्ध बनाने की दिशा में प्रयास किया। ग्रन्थ में वर्णित काल विषयक चिन्तनदेश सापेक्षकैलेण्डर से इतर समस्त विश्व के लिए कैलेण्डर निर्माण के आधार प्रदान करते हैं। गणित के विभिन्न सिद्धान्त, आकाशीय पिण्डों का अवलोकन व विश्लेषण फलित ज्योतिष के विकास सूत्र आदि अनेक ऐसे विषय है जो इन ज्योतिष वेदाङ्ग के ग्रन्थों को कालजयी होने के साथ-साथ

विशिष्ट महत्त्व का सिद्ध करते है।

संदर्भ सूची :-

1. अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्य स्वयंभुवा । आदौ वेदमयी दिव्या ततः सर्वा प्रवृत्तयः ।।
महाभारत शान्तिपर्व (मोक्षधर्मपर्व), अध्याय 244.55
2. एवमुच्चावचैरभिप्रायैर्ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो भवन्ति; यास्क – निरूक्त, दैवत काण्ड 7.1
3. सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे ।विन्दति विन्दते प्राप्तौ श्यन्लुकश्नम्शेष्विदं क्रमात् ।। सिद्धान्त कौमुदी, चुरादिगण
4. विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते, विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते 'वेदाः'। दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दिल्ली, 2003, पृ0 15
5. द्विवेदीकपिलदेव,वैदिक साहित्य और संस्कृति;, पृष्ठ संख्या 1
6. इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः। तैतरीय संहिता सायण भाष्य भूमिका, पृ0 4
7. उपाध्याय बलदेव- वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 2003 पृष्ठ 285
8. अंग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति अङ्गानि। शब्दकल्पद्रुम; भाग-1, पृ0 14
9. उपाध्याय बलदेव- वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2003, पृष्ठ 283
10. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते । ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते । शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। पाणिनीय शिक्षा; 41-42
11. मिश्र भास्कर-वैदिक शिक्षा पद्धति, महर्षि सांदीपनि राष्ट्रीय वेद – विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन 2003 पृष्ठ 11
12. यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्।। ऋक्0 ज्यो0 (ऋक्-ज्योतिष) 35; यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा । तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।। यजु0 ज्यो0 (याजुष-ज्योतिष) 5
13. प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्। कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।। ऋक् ज्यो0; 2
14. पाण्डेय ओम प्रकाश (सम्पादक) – भारत वैभव, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली, 2020, पृष्ठ 31
15. उपाध्याय, बलदेव – वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006, पृ0 375
16. पञ्चसंवत्सरमय युगाध्यक्षं प्रजापतिम् । दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शचिः।। ऋक् ज्यो0; 1
17. भाटी सुनयना – वेदाङ्ग ज्योतिष का समीक्षात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध) संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2012, पृष्ठ संख्या 36-37
18. ऋक् ज्यो0; 7
19. जौ द्रा घः खे श्वे ही रो षा चिन् मू ष ण्यः सो मा धा नः । रे मृ ध्राः श्वा ओ जस् त्रि ष्वो हर्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिंगैः।। ऋक्. ज्यो. 14
20. धीर अपर्णा- यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में ज्योतिष के तत्त्व, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या 83
21. कला दश च विंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके। तत्रिंशद् द्यु कलानां तु षट्शती र्त्याधिका भवेत्।। ऋक् ज्यो.; 16
22. ऋक्. ज्यो. 28
23. पंचसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम् । दिनर्त्वयनमासांगं प्रणम्य शिरसा शुचिः। – याजुष् ज्यो0; 1
24. जौ द्रा गः खा श्वे ही रो षा चि मू ष ण्यः सूमा धा णः । रे मृघाः स्वा पो जः कृ ष्यो ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः ।। यजु. ज्यो. 18
25. इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येवं प्रकल्पयेत् । ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना ।। वही; 42
26. भाटी सुनयना ङ्क वेदाङ्ग ज्योतिष का समीक्षात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध) संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2012, पृष्ठ संख्या 39-40
27. धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाहास उदग्गतौ। दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु।। याजुष् ज्यो0;8
28. विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रूपोनं षङ्गुणीकृतम्। पक्षा यदर्थं पक्षाणां तिथिः स विषुवान स्मृतः ।। याजुष् ज्यो0; 23
29. भाटी सुनयना ङ्क वेदाङ्ग ज्योतिष का समीक्षात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध) संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2012, पृष्ठ संख्या 41
30. इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्तोदयपर्वणाम्। दिनर्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।। याजुष् ज्यो0; 43

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

"राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत व्यवसायिक शिक्षा में किए गए प्रावधानों का एक अध्ययन"

किरन गुप्ता
डॉ. रतन सिंह

1. शोधार्थी, शहीद मंगल पाण्डे राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ, उप्र.
2. असिस्टेंट प्रोफेसर, शहीद मंगल पाण्डे राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ, उप्र.

सारांश :-हम सभी यह जानते है कि शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया हैं और यह निरन्तर विकसित होती जा रही है इसका प्रसार क्षेत्र भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है सर्वप्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में लागू की गई थी। उस समय केन्द्र में राजीव गांधी की सत्ता थी। इस शिक्षा नीति के अन्तर्गत सभी को शिक्षा के समान अवसर देने की बात कही गई। पहली बार देश में एक शिक्षा प्रणाली को अपनाया गया। (10+2+3)। इस शिक्षा नीति के अन्तर्गत ही 'ऑपरेशन ब्लैक बॉर्ड' शुरू किया गया था जिसका उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा को बेहतर बनाना था। इस नीति में ओपन यूनिवर्सिटी प्रणाली को भी विकसित किया गया था बुनियादी शिक्षा एवं निशुल्क शिक्षा का प्रावधान भी इसी नीति के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया था। 1986 की शिक्षा नीति में माध्यमिक स्तर पर व्यवसायिक शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया गया तथा ऐसी शिक्षा व्यवस्था को तैयार किया गया जिससे छात्रों की शिक्षा पूरी होने के बाद वे आत्मनिर्भर बन सकें। व्यवसायिक शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964-66 के सुझावों पर तैयार किय गया था तथा 1986 की शिक्षा नीति ने अपनी मंजूरी प्रदान की। राष्ट्रीय शिक्षा नीति को 12 भागों में बांधा गया था। शिक्षा नीति 1986 के अन्तर्गत खण्ड छः में तकनीकी तथा प्रबन्ध शिक्षा का गठन किया गया। तकनीकी शिक्षा को ग्रामीण महिलाओं में कौशल विकास को बढ़ावा देना है। 1986 की शिक्षा नीति में व्यवसायिक शिक्षा को प्रथम स्थान दिया गया तथा व्यवसायिक शिक्षा देने के कुछ नियम बनाए गए। फ़रवरी 1988 में केन्द्र सरकार द्वारा शिक्षा का व्यवसायीकरण किया गया जिसके अन्तर्गत व्यवसायिक शिक्षा प्रदान करने वाले स्कूलों को वित्तीय सहायता दी जाती थी।

मुख्य शब्द :-राष्ट्रीय शिक्षा नीति, व्यवसायिक शिक्षा, प्रावधान।

प्रस्तावना :-शिक्षा देश के आर्थिक विकास की कुँजी है शिक्षा वह माध्यम है जिससे देश में संसाधनों का सर्वोत्तम विकास संभव है। वर्तमान समय में हम देखते है कि वैश्विक परिस्थितिकी में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है, जिससे यह आवश्यक हो गया है कि बच्चे समस्या समाधान एवं रचनात्मक रूप से सोचना सीखें। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति जिसे 1992 में संशोधित किया गया था उसके अधूरे काम को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में पूरा करने का प्रयास किया गया है। 1986 की नीति के बद अधिनियम 2009 में एक बड़ा कदम अनिवार्य एवं निशुल्क शिक्षा रहा है। किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए वहाँ की शिक्षा व्यवस्था का सुदृढ़ होना अत्यन्त आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 21वीं सदी की पहली ऐसी शिक्षा नीति है जिसका उद्देश्य देश के विकास की सभी आवश्यकताओं को पूरा करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य भारतीय मूल्यों को विकसित करना है तथा छात्रों में भारतीय होने का अभिमान सिर्फविचारों में ही नहीं अपितु उनकी सोच में भी होना चाहिए। नई शिक्षा नीति में यह परिकल्पना की गई कि 5 साल की आयु से पहले प्रत्येक बच्चा प्रारंभिक करना या बालवाटिका में पढ़ाया जाएगा जिसमें ई.सी.सी.ई. (Early Childhood Care and Education) योग्य शिक्षक होंगे।

जो बच्चों को खेल आधारित शिक्षा से सीखने को तत्पर करेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत यह लक्ष्य रखा गया कि डॉपआउट बच्चों की संख्या कम होनी चाहिए। सर्वशिक्षा अभियान तक शिक्षा का अधिकार अधिनियम के द्वारा भारत सरकार ने अभी के वर्षों में प्राथमिक शिक्षा में ज्यादा से ज्यादा नामांकन होता है। अगर आंकड़े देखे जाए तो कक्षा छठी से आठवीं का जी.ई.आर. (GER) प्रतिशत 90.9 प्रतिशत है एवं कक्षा 9-10 तथा 11-12 का केवल 79.3 प्रतिशत और 56.5 प्रतिशत है, जिससे ज्ञात होता है कि कक्षा 5 और विशेष रूप से कक्षा 8 के बाद छात्रों का अनुपात शिक्षा प्रणाली से बाहर हो जाता है।

व्यवसायिक शिक्षा :-किसी भी व्यवसाय को करने के लिए उनका ज्ञान होना आवश्यक है इसके लिए शैक्षिक पाठ्यक्रम में सार्वजनिक उद्देश्य के महत्व का समाध्या होना साथ ही विषय विशेष की शिक्षा को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। व्यवसायिक विकास की शिक्षा के लिए तकनीकी विश्वविद्यालयों, विधि विश्वविद्यालयों, स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालयों का उद्देश्य स्वयं को बहु-विषयक संस्थान के रूप में विकसित किया जाए। कृषि् एवं इससे संबंधित विषयों को पुर्नजीवित कर कृषि शिक्षा की प्रक्रिया को बढ़ावा मिलना चाहिए जिससे स्थानीय ज्ञान और उभरती हुई तकनीकों को समझकर उसका उपयोग किया जा सके। जिससे कृषि शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों से स्थानीय समुदाय से सीधे-सीधे लाभान्वित हो सकें।

स्वास्थ्य शिक्षा को पुनर्कल्पित किया जाए शैक्षिक कार्यक्रमों की संरचना और डिजाइन स्नातकों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका के अनुकूल हो। स्वास्थ्य सेवा में लोग कई विकल्पों का प्रयोग करते हैं।

प्रावधान :-राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत व्यवसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ प्रावधानों को सम्मलित किया गया है।

1. पाठ्यक्रम में सार्वजनिक उद्देश्य के साथ-साथ नैतिकता तथा व्यवहारिक ज्ञान को सम्मिलित करना।

2. शिक्षा नीति 2020 में नये विचार विमर्श, चर्चा, तार्किक अनुसंधान को शामिल किया जाना चाहिए जिससे व्यवसायिक शिक्षा अन्य विषयों से अलग न रहे।

3. स्टैंड-अलोन विश्वविद्यालयों को बहु-विषयक संस्थान के रूप में परिवर्तित करना जिससे इन विश्वविद्यालयों में सभी विषयों की शिक्षा का अध्ययन कराया जा सकें।

4. व्यवसायिक विकास से जुड़ी शिक्षा अन्य विषयों से अलग-थलग न हो।

5. सामान्य एवं व्यवसायिक शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थान वर्ष 2030 तक संयुक्त रूप से दोनों तरह की शिक्षा प्रदान कराऐंगे।

6. नई शिक्षा नीति में ये भी प्रावधान दिया गया कि कृषि और उससे सम्बंधित विषयों की समता और गुणवत्ता दोनों को ही बेहतर किया जाये। तथा उभरती हुई तकनीकों की समझ एवं उसका उपयोग व्यक्ति के विकास के लिए किया जाए। उत्पादन शक्ति, जलवायु परिवर्तन तथा बढ़ती हुई आबादी के लिए भोजन आदि को लिए व्यक्ति जागरूक हो जिससे स्थानीय समुदाय लाभान्वित हो सकें।

7. स्वास्थ्य शिक्षा की नवीनीकरण किया जाये की जरूरत है जिससे अस्पतालों में काम करने वाले छात्रों का नियमित मूल्यांकन किया जाए। हमारी स्वास्थ्य प्रणाली को एकीकृत होना चाहिए जिससे चिकित्सा के क्षेत्र से जुड़े लोगों को एलोपैथिक चिकित्सा, आयुर्वेद, योग, यूनानी और होम्योपैथी की बुनियादी समझ होनी चाहिए।

8. कानूनी शिक्षा को भी व्यवसायिक शिक्षा में सम्मिलित कर वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने की आवश्यकता है कानून के शासन, लोकतन्त्र और मानवाधिकारों के माध्यम से राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण की दिशा निर्देशित की जानी चाहिए। कानून शिक्षा के पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक, सामाजिक विषयों के साथ-साथ साक्ष्य पर निर्धारित तरीके से विधिक विचार प्रक्रिया के इतिहास, न्याय के सिद्धान्तों और अन्य विषयों का उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो। कानूनी शिक्षा में दो भाषा शिक्षा पर विचार करना चाहिए जिसमें एक भाषा के अंग्रेजी तथा दूसरी राज्य भाषा हो।

9. व्यवसायिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य कौशल और ज्ञान का एक वांछित स्तर विकसित करना है इसके लिए तकनीकी शिक्षा में प्रौद्योगिकी, फार्मेसी, होटल प्रबंधन कैटरिंग जैसे कार्यक्रम को शामिल किया जाना चाहिए इसके अलावा अत्याधुनिक महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे जैव प्रौद्योगिकी, नैनो प्रौद्योगिकी, न्यूरोसाइंस, आर्टिफिशियल, इंटेलिजेंस (A.I.) 3-डी मशीनिंग बडे डेटा विश्लेषण और मशीन लर्निंग क्षेत्रों में पेशेवरों को तैयार करने में भी भूमिका निभानी चाहिए।

निष्कर्ष:-नई शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत व्यवसायिक शिक्षा में जो भी प्रावधान किए गए है उनसे देश के छात्रों का भविष्य निर्माण हो सकता है तथा यह देश के विकास के लिए भी उपयोगी साबित होंगे। इन प्रावधानों के माध्यम से छात्रों में विभिन्न कौशलों का विकास होगा जिससे उनके आत्मविश्वास को जाग्रत किया जा सकेगा। छात्र अपनी समता के अनुसार विषयों का चुनाव कर अपने भविष्य का निर्माण स्वयं कर सकेंगे तथा देश की प्रगति में भी अपना योगदान देंगे। इन प्रावधानों के द्वारा छात्रों को आत्मनिर्भर बनाया जा सकेगा जिससे वह स्वयं जीविकोपार्जन करने में सक्षम होंगे।

संदर्भ सूची:-

1. https://bpspbedcollege.in
2. https://sadbekho.in
3. https://mpbou.edu.in
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020
5. https://sstmaster.com/vocational-education-hindi
6. https://immodiyojana.in/national-education-policy
7. https://testbook.com
8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986
9. https://dristrictias.com
10. www.bandanaclasses.com

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

'अगम बहै दरियाव' उपन्यास में चित्रित लोक-संस्कृति

अखिलेश कुमार मौर्य

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, एम. एम. एच. कॉलेज, गाजियावाद, उप्र.

शोध सार:- लोक-संस्कृति जन समुदाय की अमूल्य धरोहर है। इनमें लोक मानस के उल्लास, हर्ष, विषाद और अन्य भाव समाये रहते हैं। भारत में इसकी प्राचीन परंपरा रही है।शिवमूर्ति ग्रामीण समाज के उपन्यासकार हैं। उनके लेखन में गाँव, समाज और संस्कृति प्रमुखता से विद्यमान रही है। गाँव का भरा पूरा संसार है उनके पास। 'अगम बहै दरियाव' उपन्यास उनके अनुभव संपदा और कथा कौशल का शिखर है। कल्याणी नदी के किनारे बसे बनकट गाँव की कथा को समेटे हुए है यह उपन्यास। जिंदगी के विभिन्न रंगों, छवियों और गीत- संगीत से समृद्ध इस उपन्यास में लोक संस्कृति की छटा कदम- कदम पर दृश्यमान है। यह अगम दरियाव उसी भारतीय किसानों के दुखों का है, जो राष्ट्रीय उपेक्षा के आखिरी सिरे पर पड़े रहने के बावजूद अपनी संस्कृति और मनुष्यता को बचाये हुए है। इसी उपन्यास को आधार बनाकर प्रस्तुत शोध पत्र में लोक- संस्कृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है

बीज शब्द:- समाज, संस्कृति, लोक, परंपरा, लोक- गीत, लोकोक्ति, गाँव, प्रेम।

मूल आलेख:- भारतीय साहित्य में 'लोक' शब्द बहुत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आ रहा है। 'लोक' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'लोकृदर्शन' धातु में 'धत्र' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। 'लोकृदर्शने' धातु का अर्थ है देखना। अतः 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ देखने वाला'। परन्तु व्यवहार में 'लोक' शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण जनमानस' के लिए होता है। ऋग्वेद में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'जन' के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया गया है। हिंदी साहित्य में भी परंपरागत रूप में, सामान्य जनता के अर्थ में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया गया है।

लोक शब्द को विभिन्न विद्वानों ने अपने तरीके से परिभाषित किया है। डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में-'लोक' शब्द का अर्थ 'जन-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई यह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों का समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुयें आवश्यक होता है उनको उत्पन्न करते हैं।'[1]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के मत के अनुसार 'लोक' की परिभाषा निम्नलिखित है-'आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली, तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को 'लोक' कहते हैं जिनका आचार-विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।'[2]

प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि प्राचीन समय से ही देश में संस्कृति की दो धाराएं थी।

1. शिष्ट संस्कृति, 2. लोक संस्कृति

शिष्ट संस्कृति का तात्पर्य उस अभिजात संस्कृति से है जो की बौद्धिक विकास में आगे था और जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद और शास्त्र थे। लोक संस्कृति से तात्पर्य उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से लेते हैं। प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय के शब्दों में-'लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया-कलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक है। यह दोनों संहिताएं दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचायिकाएँ है। अथर्ववेद लोक संस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जनजीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जनजीवन है।'[3] शिवमूर्ति के सृजनात्मक व्यक्तित्व का विकास ग्रामीण परिवेश में हुआ। वास्तव में शिवमूर्ति ग्रामीण परिवेश में पले-बढ़े एवं उसी में रचे-बसे कथाकार हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार-'शिवमूर्ति ग्रामीण जीवन के विश्वसनीय कथाकार हैं। किसान जीवन को अपनी रचना का विषय उन्होंने किसी साहित्यिक प्रवृत्ति या साहित्यिक आकांक्षा के तहत नहीं अपनाया है। वे ग्रामीण एवं किसान जीवन के सहज रचनाकार हैं। उनका व्यक्तित्व, रहन-सहन, बोली-बानी सब कुछ ग्रामीण और किसानी है। एक आंतरिक ठसक के साथ। वे जितने विनम्र हैं उतने ही दृढ़! यह भी लगता है कि उन्हें अपने लेखन के प्रति आत्मविश्वास भी है। इस आत्मविश्वास का आधार रचित वस्तु की गहरी सूक्ष्म और व्यापक जानकारी है निजी फर्स्ट हैंड जानकारी।'[4]

'अगम बहै दरियाव' शिवमूर्ति का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें लोक- संस्कृति की झलक दिखाई पड़ती है। इस उपन्यास में लोक- गीत, लोक- कथा, लोकोक्ति, मुहावरे, पहेली आदि का खूब प्रयोग किया गया है । लोक- गीतों में जो श्रृंगार का वर्णन उपलब्ध होता है वह पवित्र, संयत और शुद्ध होता है। हिंदी के रीतिकालीन कवियों ने श्रृंगार रस का जो अश्लील प्रदर्शन अपनी कविताओं में किया था उसका यहां नितांत अभाव है। इस उपन्यास में प्रेम के दोनों पक्षों संयोग और वियोग को दिखाया गया है। प्रेमी किस तरह प्रेमिका को रिझाने के लिए गीत के माध्यम से अपनी बात कहता है-

'घमवा औ सिथिया परै न देबै देहियाँ
अरे जोगइ के राखब ना
अपनी पुतरी की छहियाँ
तोहैं जोगइ के राखब ना।'[5]

यानी– मैं तुम्हारी देह पर धूप और शीत नहीं पड़ने दूँगा। तुम्हें अपनी पुतलियों की छाया में सँभालकर रखूँगा। पान के पत्ते की तरह फेरूँगा। रोज सबेरे महोबिया पान खिलाऊँगा।'

प्रेमी के प्रश्न पर प्रेमिका भी उसी तरह जवाब देती है

'चार दिना ले राजा पनवा खिअउब्या
फिर उतारि देब्या ना
जैसे गोड़वा की पनहिया
राजा उतारि देब्या ना।'[6]

अर्थात चार दिन तक पान खिलाओगे फिर जैसे लोग पैर से पनही(जूता) उतार देते हैं उसी तरह तुम मुझे अपने दिल से उतार दोगे।

भारतीय साहित्य में संयोग का जितना महत्व है उतना ही वियोग को भी महत्व दिया गया है। प्रियतम के परदेश चले जाने पर पत्नी के लिए सारा संसार सूना लगता है। घर काटने को दौ?ता है। प्रियतम के प्रवास के समय समस्त प्रकृति में एक अनोखी विषमता का साम्राज्य छाया हुआ रहता है। जब बोधा परदेश जाने की बात करते हैं तो उनकी पत्नी परेशान हो जाती है और अपना दु:ख गीत के माध्यम से बताती हैं–

'जेठवा न सामी छाया बखरिया
अदरा न बोया धान
चढ़त जवनिया भग्या परदेसवा
तीनों तरक गई मारि।'[7]

यानी– हे स्वामी अगर आपने बरसात आने के पहले जेठ के महीने में अपना घर नहीं छा लिया, आद्रा नक्षत्र में धान नहीं बो दिया और चढ़ती जवानी में परदेश भाग गए तो समझिए कि आपने तीनों मौके खो दिए यह तीनों अवसर खोने वाले दुनिया के सबसे बड़े अभागे माने जाते हैं। विवाह हमारा सबसे प्राचीन और प्रधान संस्कार है। संसार की सभी जातियों में विवाह बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। वेदों में लिखा है कि जो मनुष्य अविवाहित है उसका जीवन अधूरा है। वह किसी यज्ञ का विधान नहीं कर सकता अत: भारतीय समाज में विवाह हमारे धार्मिक जीवन का आवश्यक अंग है। विवाह के गीत वर और कन्या दोनों के घर में गाए जाते हैं। इस उपन्यास में भी पहलवान के शादी के अवसर पर महिलाएं गीत गा रही हैं–

'सुनु सुनु कारे भँवरवा
नेवता लइ जाउ
होय मोरे पूत के वियहवा
नेवता दई आउ।'[8]

यानी– हेकाली भंवरे, सुनो! मेरे बेटे का विवाह हो रहा है। जाकर सबको नेवता दे आओ। इस गीत को पहली बार तेल–पूजन के मौके पर गया जाता है और उसी दिन से रिश्तेदारी में नेवता भेजने की शुरुआत होती है।

विवाह में गारी गीत गाने की एक परंपरा रही है। खेलावन के बेटे की बारात में महिलाएँ माठा बाबा को गारी गीत न्योछावर करती हैं–

'कहाँ जाबे भेड़वा अकेलवा रे
तोरी मुली मुली अखियां
जाबे त जाबे माठा बाबा की
बहिनी की सेजरिया
खाइ का दुइ पूड़ी पउबे
चौदे का मजूरी पउबे
देहरी पर से लांड़ देखइबै
चला अइबै अपनी बखरिया रे
तोरी मुली मुली अखियाँ।'[9]

फागुन मास के होली के सार्वजनिक उत्सव पर जो गीत गाए जाते हैं उसे 'होली' कहते हैं। फाल्गुन में गाए जाने के कारण भोजपुरी प्रदेश में इसे फगुआ या फाग के नाम से भी जाना जाता है। होली आनंद और उत्सव का त्यौहार है। ऐसी मंगल अवसर पर गीतों में हर्ष का होना स्वाभाविक है। इन गीतों में कहीं राधा और कृष्ण होली खेलते हुए दिखाई देते हैं, तो कहीं शिवजी भी होली का आनंद लेते नजर आते हैं। कहीं राम और सीता सोने के पिचकारी से एक दूसरे पर रंग डाल रहे हैं, तो कहीं हनुमान लंका में 'होरी मचाते' हुए पाए जाते हैं। 'अगम बहै दरियाव' उपन्यास में होली का चित्रण लेखक ने बखूबी किया है। बसंत का आगमन हो रहा है उस समय बनकट गाँव कुछ ऐसा दिखाई दे रहा है–'नदीपार पहाड़ी का जंगल पलाश के फूलों से लाल हो गया है। नदी की धारा पतली और पानी पारदर्शी हो गया है। नीम, महुआ और पीपल अपने पुराने पत्ते झाड़ चुके हैं। नीम फूल रहा है। महुआ कूच रहा है और आम के बौर की खुशबू पूरे इलाके में फैल रही है।'[10]

बनकट गाँव में भी होली पर फगुआ गाने की परंपरा रही है यह त्यौहार वहां बहुत हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाता है। करिया सिंह के दुआर पर टीड़ी सिंह की मंडली फगुआ गा रही है। ढोल की तड़तड़ाहट और झाँझ की सैंयक–सैंयक माइक से कई गुनी होकर पूरे गाँव में विस्तारित हो रही है। आधा गाँव करिया सिंह के दुआर पर उमड़ आया है।

'रहिया कै चलना जुलुम होइगा दइया
नारि नीक देखि राह रोकैं कन्हड़्या
डारें गलियवा मा डाऽकाऽ
अरे, डारें गलियवा मा डाका कन्हड़्या
डारें गलियवा मा डाऽकाऽ।'[11]

लोक साहित्य में जनता के सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ ही आर्थिक पक्ष का भी चित्रण होता है। एक तरफ ग्रामीण जीवन में जहां सुख और समृद्धि पाई जाती है वहीं दूसरी तरफ घोर निर्धनता दिखाई है। जहाँ गीतों में सोने की थाली में भोजन करने की बात होती है लेकिन हकीकत में बरसात में टपकते हुए छप्पर दिखाई पड़ते हैं। 'अगम बहै दरियाव' उपन्यास में भी गाँव की गरीबी का बखूबी वर्णन किया गया है। बनकट गांव में रहने वाले मजदूरों की स्थिति काफी दयनीय है। मजदूरों से ज्यादा काम कराकर उन्हें कम मजदूरी दिया जाता है, जिससे उनका घर भी चलाना मुश्किल हो जाता है। खेतिहर मजदूरों का दर्द उनके गीतों में दिखाई पड़ता है–

'बाबू कै बखार भरी कइके हलवाही
बिटिया बहिन मिली करैं लगवाही
कइसे गुजारा होये दुइ अँजुरी माड़
दलित सतावा जाए एहि नगरी मा।'[12]

गरीब जब भी सताया जाता है और उसको कहीं से न्याय नहीं मिलता तो वह भगवान से गुहार लगाता है। उसे लगता है एक दिन उसके उपर जिसने भी जुल्म किया है उसको भगवान सजा जरूर देंगे। संतोखी के जमीन पर गाँव के ठाकुर छत्रधारी ने कब्जा कर लिया है। संतोखी छत्रधारी के खिलाफ मुकदमा दायर करता है मुकदमे काफी समय तक चलता है, लेकिन छत्रधारी के पैसे और पावर के आगे संतोखी को अपने ही जमीन पर कब्जा नहीं मिल नहीं पा रहा है। कोर्ट से आदेश आने के बाद भी छत्रधारी कभी कोर्ट से स्टे, कभी झूठ गवाहों के दम पर मुकदमे को खींचते रहते हैं। संतोखी को

अब ये लगने लगा है कि अब उनकी जमीन मिलने से रही। वह सूनी सड़क की पटरी पकड़े उदास मन थाने की ओर चले जा रहे हैं और और अपना दु:ख व्यक्त कर रहे हैं–

'तोहरे पाप से धरती हाली
हंकार से आसमान
बहुत दिना ले बाबू हमका सताया
अबै सुनत नाही ना भगवान
कभौ बिलाइ जाब्या ना
राम का अइहें जौ दरेगवा
बाबू बिलाइ जाब्या ना।'[13]

यानी– तुम्हारे पाप से धरती और अहंकार से आसमान हिलने लगा है। बहुत दिनों से मुझे सता रहे हो। अभी भगवान सुन नहीं रहे हैं, लेकिन जिस दिन राम को दरेग आ गया, तुम मिट जाओगे। लोक साहित्य के अध्ययन में लोक कथाओं का स्थान महत्वपूर्ण है। व्यापकता और प्रचुरता की दृष्टि से इनका मूल्य अत्यधिक है। भारतीय लोक साहित्य में लोक कथाओं की संख्या अनंत है। व्यक्ति जब परेशान होता है तो अपने को सहारा देने के लिए वह लोग कथाओं का सहारा लेता है। वह स्मरण करता है कि हमारे पूर्वज किस तरह दु:ख में अपना जीवन व्यतीत करते थे। इस उपन्यास में पांडे के जीवन में जब दु:ख आता है तो इसी कथा से अपने मन को बहलाते है– 'यह किस्सा तो सुना ही होगा कि राजा हरिश्चन्द्र जब बिकने के लिए काशी जा रहे थे तो कई दिन भूखे रहने से पेट कलकला रहा था। नहीं सहा गया तो एक तालाब में मछली मारने उतरे। राजा थे। मछली मारने की आदत तो थी नहीं। बड़ी मेहनत से एक मछली पकड़ पाए। उसे सूखी पत्तियों की आग में भूना और जब भोग लगाने बैठे तो मछली उछलकर पानी में कूद गई।'[14]

ग्रामीण जनता अपने दैनिक जीवन में अनेक लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों का प्रयोग करती है। लोकोक्ति का प्रयोग करने से बात का वजन बढ़ जाता है और सामने वाले पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में नयापन आ जाता है और उसका स्वरूप सुंदर बन जाता है। पहेलियों को पूछ कर लोग एक दूसरे का बुद्धि परीक्षण करते हैं। लोक साहित्य में लोकोक्तियों का स्थान महत्वपूर्ण है। लोकोक्तियां पुरखों के अनुभवसिद्ध ज्ञान का धन है। इसकी परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वेदों में भी इनकी सत्ता का पता चलता है।

'अगम बहै दरियाव' उपन्यास में शिवमूर्ति ने लोकोक्तियों, मुहावरों का सुंदर प्रयोग किया है। छत्रधारी सिंह फर्जी डॉक्यूमेंट बनाकर गांव के लोगों की जमीन हड़प लेते हैं। उनके लिए नीति–नियम कोई मायने नहीं रखता है। छत्रधारी सिंह का मानना है कि नियम कमजोरों के लिए होता है। कमजोर हमेशा बलवानों का आहार बनता है। उनका मानना है 'सिंह' नाम में लगाने का क्या मतलब? इसका मतलब है कि हम शिकार करके खाने में विश्वास करते हैं। कहते हैं–

'ठग, ठाकुर औ बीग, सोनार
धाए धूप करैं अहार।'[15]

अर्थात ठग, ठाकुर, भेड़िया और सोनार दौड़ धूप करें अपना आहार प्राप्त करते हैं। इन चारों की सफलता में चल का योगदान होता है। इसमें धर्म– अधर्म विचारणीय नहीं होता। उद्देश्य होता है लक्ष्य की प्राप्ति। मनुष्य का मन स्वभाव से ही रहस्यात्मक है। जब वह चाहता है कि उसके कहे गए बात को सामान्य लोग ना समझ सके तो ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो बोलचाल में प्रचलित नहीं होती है और यही पहेली का रूप धारण कर लेती है। मनुष्य की गोपनीय प्रवृत्ति है पहेलियों की उत्पत्ति का कारण है।पहेलियों की उत्पत्ति का एक और कारण मनोरंजन है। किसान दिन भर खेतों में कठिन परिश्रम करता है और परिश्रम से उसका शरीर थक जाता है। शाम को इन पहेलियों के द्वारा वह मनोरंजन करता है और अपने दिमाग को मानसिक शांति प्रदान करता है। गाँव में मनोरंजन का दूसरा साधन न होने के कारण पहेलियां इन कृषको के लिए एक मनोरंजन का साधन भी है। इस उपन्यास में भी लेखक ने पहेलियों का यथा स्थान उपयोग किया है। खेलावन के बेटे के बारात में वर पक्ष और कन्या पक्ष पहेलियों के माध्यम से एक दूसरे का ज्ञान परख रहे हैं। कन्या पक्ष के एक बुजुर्ग वर्ग पक्ष से एक पहेली पूछ रहे हैं–

'हर जुवाठ खेत मा, बरदा गाय के पेट मा
हलवाहे कै जनमै नांय, कलेवा धरा खेत मा।'[16]

अत: निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि 'अगम बहै दरियाव' उपन्यास बनकट गाँव के लोक संस्कृति को बखूबी दर्शाती है। लेखक ने लोक– संस्कृति के विभिन्न पक्षों को इस उपन्यास में समाहित किया है। लोक– गीत, लोक– कथा, लोकोक्ति, पहेली इत्यादि के माध्यम से लेखक ने गाँव की जीवन को दिखाया है। बनकट गाँव के किसान अपने दु:ख और व्यथा की बावजूद अपनी संस्कृति से प्यार करते हैं। जब किसान अपने गरीबी और अत्याचार से टूटा है तो वह अपने को लोक– गीत और लोक– कथा के माध्यम से सम्बल देता है। वह जिंदगी के विभिन्न रंगों, छवियों और गीत संगीत से समृद्ध जीवन जीते हैं और उसे बचाने का प्रयास करते हैं।

संदर्भ सूची:–

1. डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी, जनपद, वर्ष 1, अंक 1, पृष्ठ सं 65
2. डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, लोक– साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2019, पृष्ठ सं 11
3. समाज (काशी विद्यापीठ) वर्ष 4, अंक 3 पृष्ठ सं 446
4. संपादक मयंक खरे,अतिथि संपादक संजीव, मंच, जनवरी–मार्च, 2011 पृष्ठ सं–32
5. शिवमूर्ति, अगम बहै दरियाव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2023, पृष्ठ सं–228
6. वही, पृष्ठ सं– 228
7. वही, पृष्ठ सं– 40
8. वही, पृष्ठ सं– 130
9. वही, पृष्ठ सं– 463
10. वही, पृष्ठ सं– 339
11. वही, पृष्ठ सं– 339
12. वही, पृष्ठ सं– 48
13. वही, पृष्ठ सं– 190
14. वही, पृष्ठ सं– 447
15. वही, पृष्ठ सं– 21
16. वही, पृष्ठ सं– 455

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

इतिहास बोध ओर निर्मल वर्मा

डॉ. आशुतोष कुमार मिश्रा

एम. ए. हिन्दी, जे. आर. एफ, यू. जी. सी. नेट, हंकारपुर, गोपालगंज, बिहार

अतीत का वर्तमानत्व और वर्तमान का अतीतत्व ही इतिहास-बोध है। कोश- गत अर्थ की बात की जाए तो, इतिहास-बोध दो शब्दों से मिलकर बना है- इतिहास और बोध। 'इतिहास' का अर्थ है-''1. किसी व्यक्ति, समाज या देश की महत्त्वपूर्ण, विशिष्ट या सार्वजनिक क्षेत्र की घटनाओं, तथ्यों आदि का काल-क्रम से लिखा हुआ विवरण। 2. किसी वस्तु या विषय की उत्पत्ति, विकास आदि का कालक्रम के अनुसार होने वाला विवेचन''[1] और 'बोध' का अर्थ है-''किसी के अस्तित्त्व, प्रकार, स्वरूप आदि का होने वाला मानसिक भान।''[2] समग्र रूप से देखा जाए तो, अतीत की ऐसी विशिष्ट घटनाओं के सम्बन्ध में सजगता, जो समाज अथवा राष्ट्र के लिए प्रासंगिक हैं, जिन्हें एक काल-क्रम में रखकर देखा जाता है और जिनकी अभिव्यक्ति समाज एवं राष्ट्र के कल्याण एवं उसके जरूरतों की पूर्ति हेतु हो, वह इतिहास-बोध है। जैसा कि ऊपर की पंक्तियों में कोशगत अध्ययन से स्पष्ट है कि 'इतिहासबोध' शब्द व्यक्ति एवं समाज तथा राष्ट्र में इतिहास का बोध कराता है, जो उसके मानसिक एवं भौतिक विकास में सहायक है।

इतिहास के बिना समाज अथवा राष्ट्र सम्भव नहीं है तथा भविष्य के बिना समाज एवं राष्ट्र का इतिहास भी। हम वर्तमान की परिधि में खड़े होकर अतीत में पीछे की ओर देखते हैं, यही पीछे देखना हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। वर्तमान संकल्पना मात्र है-वास्तव में वह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, इसमें कई घटनाएँ होती हैं और शीघ्र ही वह पीछे छूट जाती हैय वर्तमान अपने प्रकृति के अनुसार आगे बढ़ जाता है। वे घटनाएँ जब पन्नों पर दर्ज होती हैं, तो इतिहास कहलाती हैं और जब हमारे अंतःकरण में संचरित होती हैं तो इतिहास-बोध। 'इतिहास-बोध', अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों को एक सूत्र में पिरोता है। इतिहास-बोध के माध्यम से भूत एवं वर्तमान का स्पष्टीकरण तथा भविष्य के मूल्यों एवं उच्चादर्शों की स्थापना की जाती है। आधुनिकता (पाश्चात्य बोध) के प्रसार के साथ इतिहास के प्रति जिस बोध की व्युत्पत्ति हुई, उसने इतिहास को एक तरफ बिता हुआ मान कर एक स्वायत्त विषय के रूप में अध्ययन की परम्परा विकसित की। परिणामतः इतिहास को एक नयी दृष्टि से देखने का चलन प्रचलित हो गया। ''बीते हुए समय को इतिहास मानने और समय बीतता कहाँ है?'', के बीच के तनाव से निर्मल वर्मा का इतिहास-बोध सृजित है। अतीत की ऐसी विशिष्ट घटनाओं के संबंध में सजगता, जो समाज अथवा राष्ट्र के लिए प्रासंगिक हैं, जिन्हें एक काल-क्रम में रखकर देखा जाता है और जिनकी अभिव्यक्ति समाज एवं राष्ट्र के कल्याण एवं उसकी जरूरतों के पूर्ति हेतु हो। इसी सन्दर्भ में निर्मल वर्मा का मत है कि ''इतिहास, जो विस्मृति के विरोध में मनुष्य के कर्मों को अमरत्व प्रदान करता है।''[3] उन्होंने इतिहास को कोई बाहरी चीज नहीं माना है, बल्कि आन्तरिक दस्तावेज माना है, जो समय-समय पर व्यक्ति के लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है और सदियों से निभाता आ रहा है। 'इतिहास-बोध' समय की तीनों अवधारणाओं- भूत, भविष्य और वर्तमान (मूलतः यूरोपीय अवधारणा) को एक साथ रखकर उनका मूल्यांकन करता है। जिसके माध्यम से भूत और वर्तमान का स्पष्टीकरण संभव होता है तथा भावी भविष्य के लिए मूल्यों, आदर्शों एवं सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों का निर्धारण भी किया जाता है। इतिहास-बोध के माध्यम से अतीत के विकास एवं ह्रास के बारे में जानकारी प्राप्त होता है, साथ ही उसको मूल्यांकित भी किया जा सकता है। इतिहास-बोध के द्वारा आज के भी अन्तर्विरोधों एवं विसंगतियों के साथ-साथ उपस्थित संकटों को भी समझने के साथ-साथ दूर किया जा सकता है। लेकिन इतिहास-बोध की भी अपनी सीमा है या दूसरे शब्दों में इतिहास की भी अपनी सीमा है। निर्मल वर्मा के शब्दों में कहें तो ''इतिहास उन प्रहारों का तो उल्लेख करता है, जो मनुष्य पर होते हैं, उन घावों का नहीं जो वे उसकी आत्मा पर छोड़ जाते हैं।''[4] ''इतिहास का आरंभ ही मानव जाति के आरंभ से जुड़ा है, किन्तु यह ऐसा इतिहास नहीं, जो मनुष्य से ऊपर और परे है, जो अन्त में मनुष्य को ही नकारने लगता है।''[5] इतिहास खुद को ही सर्वस्व घोषित करने लगता है, इसका अप्रतिम उदाहरण यूरोपीय इतिहास एवं उसकी अवधारणाओं में देखा जा सकता है। जिसकी बात निर्मल वर्मा भी करते हैं कि यूरोप कहीं न कहीं अपने इतिहास से ही संत्रस्त है। हालांकि ये बात भी सच है कि ''मनुष्य अपना इतिहास खुद बनाता है, किन्तु वह 'कच्चा माल' जिससे इतिहास बनता है, वह अनुभव-राशि जिसकी मिट्टी से वह अपना भविष्य गढ़ता है, कहीं और नहीं, उसके अतीत-बोध में सन्निहित है।''[6] अर्थात् इतिहास-बोध में निहित है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि निर्मल वर्मा ने यूरोपीय इतिहास-बोध के बजाय भारतीय इतिहास-बोध (सनातन परम्परा का) को प्राथमिकता दी है, जिसमें भारतीय मनुष्य इतिहास के अवैज्ञानिक विभाजनों में नहीं बंटा है, वह एक साथ धारा को बैठ कर देखता भी है और उसमें प्रवाहित भी होता है। यही हमारे भारतीय परम्परागत इतिहास-बोध की विशिष्टता है।

निर्मल वर्मा ने आधुनिक मनुष्य को 'ऐतिहासिक मनुष्य' की संज्ञा प्रदान की है-''आज के आधुनिक मनुष्य को इतिहास और समय के नियमों-कानूनों का जितना ज्ञान है, उतना शायद पहले किसी युग में प्राप्त नहीं था। असली अर्थ में वह ऐतिहासिक 'मनुष्य' है।''[7] लेकिन ये बात भी उतना ही सही है कि आज की पीढ़ी या मनुष्य जितना इतिहास एवं उसके नियमों-कानूनों से आक्रांत है उतना पूर्व में नहीं था या यों कहें कि यूरोपीय इतिहास-बोध के हावी होने से पहले मनुष्य इतिहास से आक्रांत नहीं था। वह इतिहास को भोगता था, उसका अभिन्न अंग था। ''आज के आधुनिक मनुष्य ने इतिहास-बोध से उत्प्रेरित होकर भविष्य के बारे में जो परिकल्पनाएँ और संभावनाएँ आविष्कृत की हैं, उनके आधार पर 'भविष्यशास्त्र' की पूरी एक रसायनशाला निर्मित की

जा सकती है। किन्तु इस भविष्य का वर्तमान की विभीषिका से कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि यूँ कहें, वर्तमान की विभीषिका से बचने के लिए ही इस 'ऐतिहासिक भविष्य' का निर्माण किया गया है- वह चाहे वर्ग- हीन समाज का स्वप्न हो या कम्प्यूटर निर्धारित 'रोबो' का यन्त्रलोक इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।''[8] और यही 'ऐतिहासिक भविष्य' ही मानव जाति को सबसे ज्यादा आक्रांत कर रहा है, जिसके उदाहरण हर रोज हमारे समाज एवं देश या सम्पूर्ण मानव-जाति में दृष्टिगत होता रहता है और इतिहास के विभाजन (भूत, वर्तमान व भविष्य) एवं भविष्य के प्रति अंधी दौड़ के फलस्वरूप असफलता के बाद भविष्य की अनिश्चितता के कारण आत्महत्या जैसी अप्रिय घटनाएँ भी देखने को मिलती हैं। अगर अपनी दृष्टि को थोड़ा और विस्तारित करें तो तानाशाही, फांसीवाद, यहूदियों का कत्लेआम, विभाजन-विभीषिका आदि भी इसी के उदाहरण हैं। एक तरह से इतिहास-बोध ही आधुनिकता का पर्याय मान लिया जाता है। मध्यकाल में जो धर्म का केन्द्रीय स्थान हुआ करता था, उसने धीरे-धीरे पीछे हटते हुए अपने स्थान को इतिहास को सौंप दिया। आज मनुष्य प्रकृति के आवेश-परिवेश में नहीं, बल्कि इतिहास के संदर्भ में जीता है-फलतः हर घटना पिछली घटना से नूतन है, जो अब हो रहा है, वह पूर्व में कभी नहीं हुआ। इसी संदर्भ में निर्मल वर्मा ने एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा है कि ''क्या यह इतिहास का एक शाश्वत रहस्य है कि हम परिवर्तन का परिणाम तभी देख पाते, जब उसकी प्रतिक्रिया समाप्त हो जाती है?''[9] इतिहास-बोध जब तक अतीत-बोध का पर्याय है, तब तक वह लाभकारी एवं मार्गदर्शन प्रदान करने का अमूल्य साधन एवं साध्य है, लेकिन जब ''हम इतिहास को साक्षी बनाकर भविष्य का 'आदर्श' गढ़ते हैं, फिर दूसरों को इस आदर्श में फिट करने की कोशिश करते हैं, हम जो हैं उसे नकारकर हमें जो होना चाहिए, उसके अनुरूप अपने को तोड़ने-मरोडने की कोशिश करते हैं और इस समूची प्रक्रिया में-जिसे हम क्रांति का नाम देते हैं-खुद अपनी अस्मिता, अपनी सांस्कृतिक मनीषा, अपनी जीवनधारा को इतना विकृत कर देते हैं कि हम न तो वह रह पाते हैं जो हम हैं, न उसे उपलब्ध कर पाते हैं जिसकी खातिर हमने अपने को विकृत किया है।''[10] तब वह अपनी स्पष्ट भूमिका का निर्वहन नहीं कर पाता है। यदि यह तथ्य सत्य है कि आज हमारे जीवन में जो प्रभुत्व इतिहास का है, वह पहले कभी नहीं रहा, तो वहाँ यह बात भी उतना ही सत्य एवं सोचनीय है कि ''मनुष्य आज जितना समय और इतिहास से त्रस्त है, उतना पहले इतिहास किसी युग में नहीं था। उन्नीसवीं शती में सार्वभौमिक सत्ता से सम्पन्न जो मदमाता इतिहास-बोध मनुष्य की प्रगति और मुक्ति का संदेश लाया था, वह हमारे समय तक आते-आते अपनी ही क्रूर पैरॉडी में प्रतिध्वनित सा होता है।''[11]

इतिहास-बोध, जो पूर्व में मनुष्य के स्मृति एवं अतीत को उसकी नियति से जोड़ने का माध्यम था-जिसके आलोक में यहूदी मसीहाओं और चर्चों ने मानव एवं जीवन की नैतिक मान्यताएँ एवं मर्यादाएँ निर्धारित की थीं-जिसके मर्म को जानने हेतु मार्क्स ने भी अतीत की कड़ियों को जोड़ने का प्रयास किया था, वह एक ऐसी आक्रामक स्वायत्त सत्ता में बदल गया-जो एक ईर्ष्यालु देवता के समान प्रतीत होता है- मनुष्य की नियति और नैतिकता से भी ऊपर उस ईर्ष्यालु देवता के असीम भूख को शांत करने के लिए मनुष्य ने एक के बाद एक न जाने कितनी क्रांतियाँ की हैं, किन्तु हर क्रांति मनुष्य को मुक्त करने के बजाय अपने लौह-पाश में और भी अधिक जकड़ लेती है। विडंबना तो यह है कि जिस भविष्य-निर्माण के लिए वह क्रांति करता है, वह उसके वर्तमान को और भी अधिक कुत्सित, विकृत और दयनीय बना देता है। ऐसे क्रान्तियों के उदाहरणों से विश्व एवं भारत का इतिहास भरा पड़ा है। इसी प्रकार के इतिहास एवं उसके बोध के सन्दर्भ में निर्मल वर्मा ने अपना एक सारगर्भित एवं विचारणीय मंतव्य व्यक्त किया है कि ''जिस तरह नदी में डूबता आदमी पानी से रिश्ता नहीं जोड़ पाता, उसी तरह इतिहास में डूबा मनुष्य समय का मर्म नहीं जान सकता। वह इतिहास से सन्त्रस्त हो सकता है, किन्तु उसे अपने जीवन और मृत्यु का साक्षी नहीं बना सकता; वह इतिहास जो इस धरती पर मनुष्य का साक्षी न बन सके, उसका क्या अर्थ रह जाता है? यही कारण है कि आज इतिहास-बोध आधुनिक मनुष्य का ठूँठा अन्ध-विश्वास बनकर रह गया है, जिसके पास वह भविष्य का अर्थ टटोलने नहीं, वर्तमान से छुटकारा पाने जाता है।''[12] ध्यान देने योग्य बात ये है कि मनुष्य ने जिस दिन 'ऐतिहासिक अनिवार्यता' को अपनी नियति के साथ सम्पृक्त कर दिया, उसी दिन से ये विश्वास भी झूठा पड़ता गया कि मनुष्य अपना इतिहास खुद बनाता है। उलटे आज के दौर में इतिहास को यह अमानुषिक स्वायत्त शक्ति प्राप्त हो गई है कि वह स्वयं मानव-जाति की नियति एवं वर्तमान सह भविष्य को नियंत्रित एवं अनुशासित करने लगा है या कर रहा है। ''भविष्य हमें कुछ नहीं देता, खुद हमें उसका निर्माण करने के लिए अपना सर्वस्व, अपना जीवन तक देना पड़ता है। किन्तु हम कुछ दे सकें, इसके लिए जरूरी है कि हमारे पास कुछ हो और हमारे पास कोई दूसरा जीवन, कोई सृजन रस नहीं है।''[13] सिवा अतीत के उन अमूल्य धरोहरों, खण्डहरों, स्मृतियों आदि के जिन्हें हम भारतीयों ने अपने भीतर परिवर्तित रूप में धारण किया है। उसी इतिहास-बोध के माध्यम से हम अपने भविष्य को उचित आदर्शों एवं मूल्यों से भरे हुए रूप में प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन हम भविष्य की ओर ऐसे भी न भागते रहे कि अपने वर्तमान को ही गंवा बैठें। निर्मल जी ने भी इसी संदर्भ में अपना मत प्रगट किया है कि ''भविष्य की इस मरीचिका के पीछे भागता हुआ मनुष्य स्वतंत्रता के उस कस्तूरी-सौरभ को भी खो देता है, जो उसके वर्तमान की नाभि में मौजूद है, और जिसे वह नहीं देख पाता।''[14] अर्थात् अति भविष्योन्मुखी मनुष्य अपने वर्तमान को भूलकर इतिहास का अघोषित गुलाम बनने लगता है। भविष्य के प्रति यह अवधारणा यहूदी-ईसाई परम्परा में ही अधिक प्रमुखता से स्थापित रहा है और उसी काल्पनिक भविष्य के अनुरूप यूरोप ने अपने जीवन को ढाला है। चाहे मसीहा की आने की आशा हो, या 'अन्तिम निर्णय' की परिकल्पना, इसी काल्पनिक भविष्य के उदाहरण हैं।

''भविष्य को निर्धारित करने वाले नियम, कानून, फार्मूले अब भी हैं किन्तु उन पर बीसवीं शताब्दी के रक्त और भावना और मोहभंग की इतनी गहरी काई जम चुकी है कि वे भविष्य के बन्द तालों में कहीं फिट नहीं हो पाते। कैसा है यह वैज्ञानिक, तर्कशील गौरव-पूर्ण इतिहास-बोध, जिसने आज मनुष्य को स्वयं अपने ही भविष्य के प्रति इतना अरक्षित, आतंकित और अनाश्वस्त बनाकर छोड़ दिया है?''[15] वास्तव में भविष्य के प्रति इस प्रकार की दासता की प्रवृत्ति ही है, जो किसी भी प्रकार की मानवता-विरोधी व्यवस्थाओं को उपयुक्त एवं न्यायोचित ठहरा सकती है। इतिहास की शपथ दिलाकर मानव जाति को एक काल्पनिक भविष्य का गुलाम बनाया जाता रहा है, उसके वर्तमान को बुरी तरह विकृत किया जाता रहा है। साथ ही इस प्रकार की अवधारणाएँ (भविष्यगत) बौद्धिक आलस्यता और कुंठा के उदाहरण है। गाँधीजी एकमात्र ऐसे अपवाद थे, जिन्होंने हमारे इस बौद्धिक आलस्य की कड़ी आलोचना की थी। उन्होंने हर बार इस शाश्वत सत्य को दुहराया था कि ''हमारा भविष्य हमारे अतीत से जुड़ा है-और भविष्य और अतीत दोनों ही हमारी वर्तमान जीवनधारा के अंग हैं।''[16] इसी संदर्भ में टी.एस. इलियट का मत भी उपयुक्त प्रतीत होता है कि 'केवल अतीत ही वर्तमान को प्रभावित नहीं करता, वर्तमान भी अतीत को प्रभावित करता है।'

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर यह आरोप लगता रहा है कि

इसमें इतिहास-बोध का अभाव है, लेकिन ये तर्क सही नहीं है। निर्मल वर्मा ने इसका खण्डन इन शब्दों में किया है-''हमारी मनीषा में यदि इतिहास के बोध का अभाव है तो इसलिए नहीं कि हम अतीत और वर्तमान में होने वाले परिवर्तनों के प्रति कम सजग या सम्वेदनशील थे, बल्कि इसलिए भी कि हम एक ऐसी सभ्यता में जीवित रहते हैं, जहाँ अतीत और वर्तमान अलग-अलग स्वायत्त खंडों में विभाजित नहीं है, जैसा कि एक यूरोपीय निवासी अपने भीतर महसूस करता है।''[17] हम इतिहास के प्रति सचेत नहीं थे, यह सही नहीं है। सत्य यह है कि हम जिस सभ्यता के अन्दर रहते हैं, उसमें हम इतिहास के प्रति सचेत होते हुए भी उनके बिम्बों का निर्माण निरर्थक समझते थे। ''दरअसल भारतीय 'चरित्र' का निर्माण इन दो पाटों के बीच हुआ है, व्यावहारिक स्तर पर इतिहास को स्वीकार करना और मनीषा के स्तर पर उसके दबाव की नितान्त उपेक्षा करना।''[18] इस द्वंद्वात्मक प्रक्रिया के मध्य हम असाधारण संतुलन बनाने में सफल भी रहे हैं। जिसके कारण हमने अपने मौलिक अस्मिता को औपनिवेशिक सत्ता के हावी होने से पूर्व सुरक्षित रखा था। इतिहास अपने अन्दर काल की अंधी, अन्त-हीन गतिशीलता को बाँधने की कोशिश है, ताकि उसे किसी प्रकार की क्रम-शीलता, प्रयोजन, अर्थवत्ता प्रदान की जा सके। यह आरम्भ है, यह अंत है, उसे इस तरह से वर्गीकृत किया जा सके। लेकिन भारतीय परम्परा में इतिहास-बोध शुरू और अंत के मध्य नहीं, उसके परे भी है। इस इतिहास-बोध का एक उदाहरण हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पेश किया है- ''हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इतिहास-बोध प्रकृति के नैसर्गिक लय से प्राप्त किया था-पश्चिम के इतिहास-आतंक से नहीं, इसीलिए वह व्यक्ति की मृत्यु को झरा हुआ पत्ता मानते थे, जो खुद मिट्टी में मिल नए वृक्ष में अंकुरित होता है। क्या पत्ते का भविष्य वृक्ष नहीं है जो स्वयं पत्ते की मरी हुई स्मृति से विकसित हुआ है?''[19] अर्थात् द्विवेदी जी ने जिस इतिहास-बोध की बात की है वह हमारी मनीषा में शाश्वत रूप से विराजमान है। हमारी सभ्यता में इतिहास-बोध प्रकृति के नैसर्गिक लय से अनुगूथित है, जिसे जानने के लिए हमें भारतीय बौद्धिक परम्परा एवं मनीषा का गहरे स्तर पर अनुशीलन आवश्यक है। ''इतिहास का हर परिवर्तन मनुष्य की इस इच्छा, इस प्रलोभन में निहित है कि वह अपने वर्तमान को अपने भविष्य में बदल सके, जो वह नहीं है।''[20] लेकिन हम भूल जाते हैं कि इतिहास की परिधि में मानव-जाति की आकृति कुछ वैसी ही अपूर्ण और असंगठित दिखाई देती है, जिसके कुछ रंग समय ने धुंधला कर दिए हैं, कुछ रेखाएँ अब भी कहीं जाने के इंतजार में बीच रास्ते में रुकी सी रह गई हैं। मनुष्य भविष्य में जो होगा, उसकी प्रत्याशा इस पर आधारित है कि वह अतीत में क्या था? फलतः ''इतिहास की हर क्रांति मनुष्य का वह स्वप्न है, जहाँ वह अपने खोये हुए अतीत को अपने भविष्य में पुनर्जीवित कर सके, भविष्य को किसी प्रकार अपने अतीत में परिणत होने का प्रलोभन दे सके।''[21]

निष्कर्षतः निर्मल वर्मा का इतिहास-बोध भारतीय सांस्कृतिक विरासत के मूल्यों से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है। पाश्चात्य-जनित आधुनिकता से वे आक्रांत कभी नहीं हुए। इसी कारण वे इतिहास को शुष्क और मृत नहीं मानते। उनके लिए इतिहास केवल बिता हुआ मृत अतीत न होकर जीवित अतीत है, जो विस्मृति के विरोध में मनुष्य के कर्मों को अमरत्व प्रदान करता है। उनका इतिहास-बोध इतिहास को मात्र पुस्तकीय विवरण और अकादमिक विषय के रूप में नहीं स्वीकारता, अपितु संस्कृति, कला, भाषादि में रची-बसी अंतर्निहित जीवंत शाश्वत संचित अनुभूति की धारा के रूप में स्थापित करने की वकालत करता है। वे इसी संवेदनात्मक पृष्ठभूमि से इतिहास को मृत खण्डों में विभाजित करने वाली पाश्चात्य मूल्य आधृत लोकप्रिय आधुनिक इतिहास-बोध का विरोध करते हैं। कभी भी मनुष्य तटस्थ भाव से इतिहास का केवल द्रष्टा नहीं हो सकता। वह इतिहास को केवल देखता ही नहीं है, अपितु उसी समय इतिहास को जीता भी है। भारतीय मानस इसी दोहरी प्रक्रिया के अंतर्गत निर्मित होता रहा है। इसीलिए वे इतिहास को खाँचों में बांटकर देखने वाले इतिहास-बोध से असहमति व्यक्त करते हुए खुद को उस बोध से अलग करते हैं। वर्तमान समय के संकट के कारणों की तह तक पहुँचने की कोशिश करते हैं। जब हम दूसरों के इतिहास के तथ्यों और घटनाओं पर आधृत निष्कर्षों की पृष्ठभूमि में भविष्य का 'मॉडल' गढ़कर और फिर अपनी संस्कृति को इस 'मॉडल' में जबर्दस्ती फिट करेंगे तो संकट उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। आज के संकट का कारण यही है। जिन ऐतिहासिक सांस्कृतिक मूल्यों के कारण हम जो हैं और उन्हीं मूल्यों के आधार पर हम जो हो सकते हैं- उस स्वाभाविक परिणति को नकार दूसरी सभ्यता और संस्कृति के मूल्यों पर आधृत' 'मॉडलों' में फिट करने का प्रयास ही आज के भारतीय मानस के संकटों का कारण है। इस फिट करने की सायास प्रक्रिया में हम अपनी अस्मिता, अपनी सांस्कृतिक मनीषा और अपनी जीवन-धारा को इतना विकृत कर उसके मूल स्वरूप को भी खो देते हैं और विडम्बना ये है कि हम नये 'मॉडल' में भी पूर्णतः फिट नहीं हो पाते। हमारे मानस के विभाजित और आत्म-खंडित होने का कारण यही है। इनका निष्कर्ष है कि हमारा सांस्कृतिक मानस एक साथ ही दो काल प्रदेशों में जीने को अभ्यस्त हैं, ये दोनों प्रदेश एक-दूसरे से अलग और एक दूसरे के समांतर भी न होकर एक-दूसरे से उलझे हुए हैं। इसी उलझाव में ही भारतीय संस्कृति की आत्मा है। पश्चिम से आक्रांत इतिहास-बोध ने इसी उलझाव को नकारा, जिसका दुष्परिणाम हम सब के सामने है।

संदर्भ सूची:-

1. मानक हिन्दी कोश, खण्ड पहला, सम्पादक-रामचन्द्र वर्मा, पृ0सं0-307
2. वही, खण्ड चौथा, पृ0सं0-174
3. भारत और यूरोपः प्रतिश्रुति के क्षेत्र-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-100
4. इतिहास स्मृति आकांक्षा-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-21
5. कला का जोखिम-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-25
6. कला का जोखिम-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-37-38
7. वही, पृ0सं0-33
8. वही, पृ0सं0-33-35
9. आदि, अन्त और आरम्भ-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-19-20
10. शब्द और स्मृति-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-96
11. कला का जोखिम-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-34
12. वही, पृ0सं0-36
13. वही, पृ0सं0-38
14. शब्द और स्मृति-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-96
15. कला का जोखिम-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-34
16. शब्द और स्मृति-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-97
17. ढलान से उतरते हुए-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-101
18. शब्द और स्मृति-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-88
19. कला को जोखिम-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-37
20. इतिहास स्मृति आकांक्षा-निर्मल वर्मा, पृ0सं0-25
21. वही, पृ0सं0-26

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

भारतीय साहित्य में प्रकृति-चित्रण की प्रासंगिकता

विश्राम कुमार
डॉ. विनय कुमार दूबे

1. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पी. जी. कॉलेज, गाजीपुर, उप्र.
2. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पी. जी. कॉलेज, गाजीपुर, उप्र.

शोध सार:–जितेन्द्रनाथ पाठक जी का काव्य में पर्याप्त परिमाण में प्रकृति–चित्रण हुआ है। उसमें प्रकृति का नानात्व तो मिलता ही है। ऋतुओं का वर्णन, दिन और रात का आवागमन, षडऋतु तथा प्रकृति की अन्य अनेक भंगिमाएँ प्रभूत परिमाण में चित्रित हुई है। आचार्य शुक्ल के मत के आधार पर जितेन्द्रनाथ पाठक जी प्रकृति के सभी रूपों के कवि हैं। बेडौल उठान को स्पष्ट करने में कवि अपनी प्रकृति सम्बन्धी सौन्दर्य–दृष्टि को स्पष्ट कर देता है।

बेडौल उठान/
जिसे कोई कैचा काट नहीं सका/
जिसका थाला कोई बना नहीं सका/
जिसे किसी
हजारे का पानी सींच नहीं पाया/
जिसे पालतू
निगाहों ने कभी कैद नहीं किया।

उसी बेडौल उठान पर जितेन्द्रनाथ पाठक जी मुग्ध हैं। जितेन्द्रनाथ पाठक जी प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता आलम्बन रूप में उसकी प्रतिष्ठा के पक्षधर तो हैं ही साथ ही उसके विकृत रूप में भी सौन्दर्य देखते है।

रूप की धूप/
जब खिलती है/
कुरूपता भी धूप स्नान कर/
ओस की बूदों की बिन्दी लगाकर/
सुन्दर हो उठती है।

जितेन्द्रनाथ पाठक ने समकालीन कविता साधारण और कुरूपता के बहुत निकट पहुँच गयी है और समस्या जटिल साधारण और उपेक्षित कुरूप की दशा को बेहतर बनाने में समकालीन कविता जुटी हुई है। प्रकृति में भी वह साधारण और कुरूप को भी बड़ी सहानुभूति से चित्रित करता है और उसकी सहभागिता को अपने जीवन में अधिक से अधिक बढ़ाना चाहता है। जितेन्द्रनाथ पाठक ने प्रकृति के महत्व को बताया है। उनके विचारों में प्रकृति को मनुश्य का सहयोगी बताया है।

मुख्य बिन्दु:– आवागमन, षडऋतु, सौन्दर्य–दृष्टि, आलम्बन, सहानुभूति, सहभागिता।

शोध प्रपत्र:–जितेनद्रनाथ पाठक की काव्ययात्रा अतीत–वर्तमान से होती हुई भविष्य की ओर जाने वाली मानव मूल्यों की अन्वेषण–यात्रा है। जितेन्द्रनाथ पाठक ने सर्जनात्मक गद्य की कई विधाओं यथा गद्य काव्यात्मक लघु कथा, कहानी, निबंध, यात्रावर्णन, संस्मरण, रेखाचित्र आदि विधाओं में रचनाएँ की हैं। इनमें से काफी कुछ पत्र पत्रिकाओं तक सीमित रह गई, जो कुछ प्रकाशित हुई हैं उनमें दो पुस्तकें 1. संवेदना की शिराएँ और 2. समय के पदचिह्न– गद्य काव्यात्मक ऐसी लघु प्रकृति कथाएँ हैं जिनकी नव्यता स्वीकार करते हुए प्रख्यात कवि और आलोचक डॉ. जगदीश गुप्त ने इनके द्वारा एक नयी विधा का प्रवर्तन माना है। समकालीन कवि ज्ञानेन्द्र पति ने इनके भीतर प्रकृति की लिप–रीडिंग' देखी है, तथा उनके गद्य में तरल काव्यात्मकता। संवेदनशील मन को भिगो देने वाली उनके आँखे प्रकृति के लीला चित्र अर्थपूर्ण है, बहुअर्थपूर्ण इन रचनाओं की नवीनता यह है कि इनमें मनुष्य का प्रकृतिकरण हुआ है और मानव जीवन के दार्शनिक, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रश्नों को प्रकृति के विभिन्न घटकों और घटनाओं में आरोपित करके विभिन्न घटकों द्वारा कहलाया गया है और उनका उत्तर भी इन्हीं घटकों और घटनाओं के द्वारा संकेतित किया गया है। इनमें कथात्मकता, कवित्व, नाटकीयता और दार्शनिकता के चरम बिन्दु प्रायः हर रचना में मिल जाते हैं। कुछ शीर्षक ही इनके स्वरूप पर प्रकाश डालने में सक्षम होंगे, लहरों के भगीरथ, दूब की पताका, तरी और लहर, बूढ़ा कगार और लहर बालिकाएँ, मोड काका और नदिया बेटी, नक्षत्रों की बहस आदि।

जितेन्द्रनाथ पाठक मूलतः कवि और आलोचक हैं। वह इस अर्थ में संपूर्ण साहित्यकार है क्योंकि उनमें भावपित्री और कारयित्री दोनों प्रतिमाएँ पूर्णतः सजग अवस्था में प्राप्त होती है। जब वे समीक्षा लिखते हैं तब विवेचन धर्म का पूर्णतः पालन करते हैं। जहाँ वह कृतिकार के साथ अन्याय न हो जाने की सजगता रखते हैं वहाँ कृति की शक्ति और सीमा की ओर मजबूती से इंगित करते है। उन्होंने काशी हिन्दू विष्वविद्यालय पत्रिका में ध्रुवस्वामिनी में प्रसाद का अभिनव नाट्य प्रयोग आज में, प्रेमचन्द की उपन्यास कला, नयी कविता, 5.6 (संयुक्तांक में नयी कविता की ऐतिहासिक अनिवार्यता (1956), हिन्दी रूपक के कथात्मक नाट्य परम्परा (आलोचना का नाटक विशेषांक, 1959), अज्ञेय का काव्य (आलोचना का काव्यालोचन विशेषांक, 1959) (हिन्दी नीति काव्यालोचना 1960 ई॰) प्रकाशित कराए। इसके बाद तो हिन्दी की सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में आपके आलेख निरन्तर छपने लगे। उनकी चार कृतियों 1. प्रेमचन्द और गबन एक पुनर्मूल्यांकन, 2. गोदान एक पुनर्पाठ 3. प्रसाद की नार्ट्कला और ध्रुवस्वामिनी तथा 4. ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा और मृगनयनी छठे दशक में प्रकाशित हो चुके थे। इधर वह अनेक नए आलोचना–ग्रन्थों का प्रकाशन भी करा रहे हैं और आधे अधूरे कई आलोचना–ग्रन्थ प्रकाशन की प्रतिक्षा में है।

जितेन्द्रनाथ पाठक की रचनाऐं प्रकृति एवं मानवीय सरोकारों से

संबंधित है। उनकी रचनाऐं अधिकतर प्रकृति के ऊपर निर्भर है। अधिकतर उनकी कविताओं में मानव समाज की बहुत से जीवन मूल्य है। जितेन्द्र नाथ पाठक के काव्य विधा में कविताओं को आत्म संशर्घ व्यक्त किया है, जिसमें स्वाभिमान की संघर्ष गाथा है। उनकी रचनाओं में आदिकाल से लेकर वर्तमानकाल तक सभी साहित्यिक विधाऐं प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर है। जितेन्द्रनाथ पाठक के युग प्रवर्तक के रूप में जाने जाते है वे एक युग द्रष्टा, युग चेता एवं युग दिशा बोधक है। जिन्होंने अपनी कविताओं के द्वारा समाज में परिवर्तन आने का प्रयास किया है उनमें बौद्धिक प्रखरता है। जो सामाजिक, प्राकृतिक दृष्टि से पूरे मानव समाज को एक व्यवहारिक रूप प्रदत्त करता है। जितेन्द्रनाथ पाठक की महत्वकांक्षाएँ स्वतंत्र चेतना युक्त एवं अस्तित्वमयी है। उनमें टूटन, विघटन, विखण्डन एवं वर्ग संघर्श की चेतना का अभाव है। उनकी कविता की भारतीय संस्कृति की गरिमा अति विषाल है, जो पूरे समाज और राष्ट्र के लिए एक दिग्दर्शक का कार्य करती है। कवि ने अपनी कविताओं के द्वारा असीम संवेदनाएँ व्यक्त की है। आज का मानव प्रकृति से दूर होता जा रहा है। जिस कारण से उसे कई प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ एवं कष्ट सहन करना पड़ रहा है। प्रकृति प्रत्येक क्षण हमे ऊर्जा और षक्ति देती है जिससे जीवन गतिशील रहता है।

सच तो यह है
जब-जब हवा की आँच में
पकने लगते हैं फल
आनाज के दाने
पेड़ों की पत्तियाँ
जब-जब हरियाली
लौटती है सुनहली पीताभा की ओर
तब-तब गंध पगलाने लगती है।

जितेन्द्रनाथ पाठक ने अपने काव्य-पाण्डित्य के माध्यम से पूरे मानव जाति की मनोदिषा को परिवर्तन करने का प्रयास किया। जिससे पूरी मानव जाति प्रकृति से जुड़े, प्रकृति से प्रेम करें, प्रकृति के महत्त्व को समझे और भविश्य के लिए प्रकृति को बचाने के लिए नये आयाम तैयार करें। आज हमारे समक्ष बहुत सी परिवर्तनीय चुनौतियाँ है। उनसे कैसे बचे, जिससे हमारी प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा हो सकें। संस्कृत के कवि सौन्दर्य तथा माधुर्य के उपासक होते हैं। उनका हृदय सौम्य भाव में विशेष रमता है। माधुर्य के उत्पादक दृश्यों के ऊपर दृष्टि विशेष रीझती है। वे मानव-हृदय के भावों को समझने तथा विश्लेषण में जितने कार्य है उतने ही वे वाह्य प्रकृति के भी रहस्यों के परखने तथा उद्घाटन में समर्थ हैं। बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण संस्कृत काव्यों में, विशेषतः प्राचीन काव्यों में, प्राप्त होता है। प्रकृति के दृश्यों को कवियों ने अपने तीव्र अवलोकन का विषय बनाया है तथा यथार्थता से मण्डित वर्णनों का चमत्कार सरसहृदयों के हृदय को बलात् अपनी ओर खींचता है। प्रकृति संस्कृत काव्यों में उभयरूपेण चित्रित की गई है आलम्बन रूप से तथा उद्दीपन रूप से। आलम्बन रूप वाले वर्णनों में प्रकृति ही स्वयं वर्ण्य रहती है तथा उद्दीपन रूप में उसका मानव प्रकृति के ऊपर उत्पन्न प्रभाव ही वर्णन का विषय रहता है। कालिदास और भवभूति ने वर्षा के आगमन का वर्णन किस सीधी-सादी यथार्थता से नीचे लिखी पंक्तियों में रख दिया है

''आषाढ़ महीने के पहले दिन बादलों ने ढलानों को गले लगा लिया।
श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाहः ।''[1]

भवभूति की पंक्ति कालिदास की पंक्ति की स्मृति से उत्पन्न हुई है, किन्तु इस पंक्ति के अनुकरण में कितनी नूतनता है यह तोयवाह जुड़े हुए नूतन विशेषण से द्योतित होती है। ऊपर के दृष्टान्त में चित्र की रेखा बादलों के अनुरूप सरल और स्वच्छ है, किन्तु चित्रण की यथार्थता से सुचारु और अधिक गहरी रेखा से सुसज्जित चित्र यदि देखना हो और उसे भी एक पंक्ति में, तो कालिदास को इस पंक्ति को याद कीजिये- देखो तो पम्पा सरोवर के तट पर नरकुल का कितना घना वन है। उसने मानव के प्रभूत जल को आलिङ्गित सा कर लिया है। उसके भीतर लता के झुण्ड में बैठे हुए चंचल सारस पक्षी इस पूर्व चित्र में कितना उत्पन्न कर रहे हैं। अपने नेत्रपुटों से आप भी इस चित्रगत सरोवर का जल अच्छी तरह से पीजिये। किन्तु यदि इन पूर्वोक्त सारसों को आकाश में उड़ते देखना हो तो-इस चित्र को देखें -

''अमूर्तिमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम्।
प्रत्युद्वजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसप वतयस्त्वाम्।।''[2]

दूर आकाश में एक विमान की कल्पना करो और उसमें सुवर्ण के धुंध लगाओ, किन्तु यह बतलाओ कि उस चित्र से घुंघुरुओं का शब्द आप कैसे सुन सकते हैं? यह तो काव्य की ही विशेषता है कि इसमें चित्र और सङ्गीत दोनों का ही संमिश्रण हो सकता है। पास बहनेवाली गोदावरी के तट अथवा उसके जल-पट पर आकाश में उड़ती हुई ष्वेत सारसों की पंक्ति देखिये। इन सारसों को उड़ते देखने में ही खूबी है, अत एव उस खूबी को प्रत्यक्ष करने के लिये स्थिर चित्र नहीं, बल्कि सिनेमा के चित्र की कल्पना कीजिये। इससे भी यदि अधिक चाहिये तो वह भवभूति के निम्नलिखित वर्णन में है- यहाँ ग्यारह हाथियों से ग्रसित नदियाँ स्वच्छ जल ले जाती हैं, जो प्रसव की सुगन्ध से युक्त होता है। जम्बू उद्यानों के फलों से भरे बाग अनेक धाराओं के साथ बह रहे हैं। इस श्लोक में कोई अलंकार नहीं, भाव नहीं, किन्तु सारा चमत्कार वर्णन की यथार्थता में समा रहा है। वानीर की बेल पर बैठे हुए पक्षी के चित्र से और उसे समद कह कर सूचित की हुई उसके स्वर की ध्वनि से, यह वर्णन अतीव हृदयङ्गम बन गया है। चित्रकार की तूलिका की अपेक्षा कवि की वाणी में अधिक सामर्थ होती है। प्राकृत या पालि (प्रथम प्राकृत) प्राचीन प्राकृत में इनका समावेश है- तृतीय शताब्दी ईण् पूण् से प्रथम शती ईण् तक के शिलालेख, पालि बौद्धग्रन्थ- महावंश, जातक आदि, प्राचीन जैनसूत्रों की भाषा, प्रारम्भिक नाटकों की भाषा, जैसे-अष्वघोष के नाटकों की प्राकृत, जिसके अवशेष मध्य एशिया में पाए गए हैं इसको प्रथम प्राकृत भी कहते हैं। प्राकृत का अर्थ प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर तीन मत प्रस्तुत किए गए हैं। ''प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से प्राकृत भाषा के सभी प्राचीन वैयाकरणों ने प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से मानी है। संस्कृत भाषा को ही आधार मानकर उन्होंने ध्वनि-भेद आदि का विवरण दिया है। प्रकृति का अर्थ है- मूलभाषा संस्कृत, उससे उत्पन्न भाषा प्राकृत है। हेमचन्द्र आदि का यही विचार है''[3]

अपभ्रंश को अधिकांश आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी होने का श्रेय प्राप्त है। अपभ्रंश की कुंजी से उत्पन्न होने के कारण हिन्दी का उससे अत्यन्त आन्तरिक और गहरा सम्बन्ध है। अतः राष्ट्र भाषा हिन्दी की मूल प्रकृति और प्रवृत्ति से परिचित होने के लिए अपभ्रंश भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की अनिवार्यता सुधी अध्येताओं और अनुसंधानकर्ता के लिए हमेशा बनी रहेगी। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार हिन्दी साहित्य में अपभ्रंश की प्रायः पूरी परम्पराएं ज्यों की त्यों सुरक्षित हैं। कहना नहीं होगा कि अपभ्रंश के कालजयी कवियों ने अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं के द्वारा अपभ्रंश के यशस्वी साहित्य और उसके महत्त्व को शताब्दियों के बाद भी अक्षुण्ण रखने में पूर्ण सफलता अर्जित की है।

भाषा विशेष के अर्थ में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग प्रायः छठी शती ई. के आसपास मिलता है। प्राकृत वैयाकरणों में चण्ड और संस्कृत के आलंकारिकों

में भामह को अपभ्रंश के प्रथम नामोल्लेख का श्रेय प्राप्त है- उस तरह की कविता, गद्य और पद्य शब्दों के अर्थ के साथ हैं। भाषाएँ तीन प्रकार की होती हैं संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश।

अपभ्रंश साहित्य में महाकाव्य का प्रथम रचयिता महाकवि स्वयंभू की विलक्षणता से कोई भी साहित्यविद् अपरिचित नहीं होगा। कवि की तीव्र एवं तीक्ष्ण बुद्धिरूपी लेखनी ने प्रस्तुत महाकाव्य में मूर्त-अमूर्त, प्रस्तुत अप्रस्तुत, रस, गुण, रीति, शब्द-शक्ति, छन्द, शेष अन्य अलंकार आदि को उत्प्रेक्षा अलंकार का वाहक बनाकर काव्य के शिल्प-विधान में एक नया मोड़ दे दिया है। इस कृति में कवि ने वर्ण अलंकार, छन्द, रस, दिवा-रात्रि, संध्या-प्रभात, नगर, ऋतु, ज्योतिष, पराक्रम एवं शौर्य-युद्ध से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के कारक तथा जीवनोपयोगी समग्र वस्तुओं के कारकों की महत्ता उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा दिखाते हुए काव्य कलेवर एवं सुन्दरता में अभिवृद्धि कर दी है। वह किसी एक उपमान से संतुष्टि नहीं पाता है क्योंकि उसके ज्ञान की पिपासा अनन्त है। इसलिए वह उपमानों की लड़ी पर लड़ी पिरोता चलता है। कभी भी थकता हुआ प्रतीत नहीं होता है। ''अपभ्रंश साहित्य की धारा हमें विक्रम की आठवीं सदी से सोलहवीं सदी तक प्राप्त होती है। अपभ्रंश साहित्य सभी दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। धर्मप्रधान काव्य होते हुए भी इनमें चारित्रों को अतिमानवीय रूप नहीं दिया गया है। जगत और जीवन के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण अत्यन्त स्वस्थ और सन्तुलित रहा है।''[4]अपभ्रंश की चरित्र कविताओं में नयाकुमारचारियू का स्थान है। महान कवि पुष्पदंत यह चरित्र कविता, विकसित कलात्मक चेतना के साथ, न केवल साहित्य की दृष्टि से, बल्कि सौंदर्यशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से भी प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करती है। रमणीय कल्पना, हृदयस्पर्शी चित्र, रमणीय और रोचक प्रतीक आदि प्रमुख रूप, शैली और अभिव्यक्ति कला-चेतना की इन तीन प्रतिवर्ती विशेषताओं से सुशोभित हैं। 'करकंडचरिउ' में कथा-काव्यों की जितनी कथा-रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है, उतनी अन्य किसी में नहीं। फिर, इसके कथा-विन्यास एवं संघटन में मूलकथा के साथ अवान्तर कथाओं के संयोजन में, लोक भाषा अपभ्रंश के सहज ग्राह्य, सरल एवं लाक्षणिक प्रयोग में, रस और परिस्थिति के अनुरूप छन्द-विधान में एवं अभिव्यंजना की विविध नूतन पुरातन शैलियों के शिल्प की दृष्टि से इन प्रबन्ध काव्यों में खण्डकाव्य और महाकाव्य दोनों मिलते हैं। कड़वकबद्ध शैली का प्रयोग लगभग सभी रचनाओं में किया गया है। अलंकार-परम्परा के पालन के साथ ही इन्होंने तत्कालीन जीवन से नये उपमान भी लिये हैं। तत्कालीन इतिहास के अध्ययन और अनुसंधान की दृष्टि से भी जैन अपभ्रंश साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दी काव्य का विषय ही नहीं उसकी रचनाशैली और छन्दों पर भी अपभ्रंश साहित्य का स्पष्ट प्रभाव है। अलंकारों के लिए भी हिन्दी अपभ्रंश की ऋणी है। ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग भी हिन्दी में अपभ्रंश से आया। अपभ्रंश की अनेक लोकोक्तियों, मुहावरों और कथानक रूढ़ियों को भी हिन्दी ने सहर्ष अपना लिया है। इस तरह, भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी साहित्य अपभ्रंश साहित्य से प्रभावित है। यही कारण है कि अपभ्रंश की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है और अध्येता आज भी अपभ्रंश भाषा और साहित्य के अध्ययन की अनिवार्यता को शिद्दत के साथ महसूस करते हैं। महाकवि स्वयंभू के परम्पराबद्ध प्रकृति-चित्रण में अलंकारों का खुलकर प्रयोग हुआ है। महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने महापुराण में प्राकृतिक दृश्यों की झड़ी लगा दी है। प्राकृतिक दृश्य चित्रण में प्रकृति का आलंबनरूप में मनोमुग्धकारी चित्र प्रस्तुत करना महापुराण की विशेषता है। इस परम्परा में भविसयत्तकहा, हरिवंशपुराण, जसहरचरिउ, जम्बूसामिचरिउ, करकण्डचरिउ, पउमसिरिचरिउ आदि अनेक अपभ्रंश काव्यों को देखा जा सकता है। अपभ्रंश काव्यों की परम्परा में लौकिक खण्ड काव्य संदेश-रासक का प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से कई अर्थों में विशेष महत्व है। यह रचना एक प्रकार से प्रकृतिपरक जनभावना की सहज अभिव्यक्ति है। प्राकृतिक सौन्दर्य ने भौगोलिक सीमाओं को भी सजीव कर दिया है। संदेशरासक का पाठक पथिक और रमण के दृश्य-चित्रण में खो जाता है। यह तादात्म्य स्थापित कर ऐसा अनुभव करता है जैसे वह स्वयं खुली प्रकृति के आँगन में आ खड़ा हुआ हो। यही संदेश रासक के प्रकृति-चित्रण की विशेषता है। अध्यात्मवेत्ता कवि ऋषि जोंदु को अपभ्रंश साहित्य का कुंडकुंड माना जाता है। वह एक आत्मसाधक योगी थे। उन्होंने जीवनभर आत्माराधना की और आत्मा को ही अपनी रचनाओं का केन्द्र-बिन्दु बनाकर अध्यात्म-क्षेत्र को नया आयाम दिया। मोक्ष पुरुषार्थ से अनुप्राणित जोइन्दु की कृतियों का कथ्य आत्मोद्धारक है। इनमें आत्मा के विभिन्न रूपों की विवेचना है। बहिरात्मा को अन्तरात्मा/आत्मज्ञानी बनने का सन्देश दिया गया है। जितेन्द्रनाथ पाठक ने अपनी कविताओं में संस्कृत, प्राकृत एवं विभिन्न प्रकार के अपभ्रंश साहित्य को दर्षाया है। अधिकतर उनकी कविताओं में संस्कृत के कई षब्द है। जो विभिन्न प्रकार के संस्कृत साहित्य जैसे नाटक एवं कविताओं के लिए है। चंदबरदाई का चित्र हिन्दी साहित्यकार चित्रावली के सौजन्य से चंदबरदाई (जन्म संवत 1205 तदनुसार 1148 ईण् लाहौर वर्तमान में पाकिस्तान में मृत्यु संवत1249 तदनुसार1192 ईण् गज़नी) हिन्दी साहित्य के वीर गाथा कालीन कवि तथा पृथ्वीराज चौहान के मित्र थे। उन्होंने अपने मित्र का अन्तिम क्षण तक साथ दिया। ''चंदबरदाई द्वारा लिखित पृथ्वीराज रासों में प्रकृति की महिमा का वर्णन किया है मनुश्य का धर्म है प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा करना। तभी मानव जीवन सार्थक बन सकता है।''[5] हिंदी के ब्रजभाषा काव्य के अंतर्गत देव को महाकवि का गौरव प्राप्त है। उनका पूरा नाम देवदत्त था। उनका आविर्भाव हिन्दी के रीतिकाल में हुआ था। यद्यपि ये प्रतिभा में बिहारी, भूषण, मतिराम आदि समकालीन कवियों से कम नहीं वरन् कुछ बढ़कर ही सिद्ध होते हैं, फिर भी इनका किसी एक विशिष्ट राजदरबार से संबंध न होने के कारण इनकी वैसी ख्याति और प्रसिद्धि नहीं हुई। जितेन्द्रनाथ पाठक ने अपनी कविताओं के माध्यम से जीवन के यथार्थ से परिचय कराया है। इसका प्रभाव उचित ही हताशा, निरूपायता, उदासी, अजनबियत की अनुभूति के रूप में पड़ी। एक लम्बे समय तक कुशासन से ग्रस्त और त्रस्त रचनाकारों ने अपनी विशिष्ट मुद्रा के लिए अस्तित्ववादी दर्शन को स्वीकार कर लिया जो मनुष्य की शक्ति को नितान्त सीमित कर देती है। नयी कविता में यथार्थ विरोध अनास्था और व्यंग्य की प्रवृत्ति तो पहले से थी ही क्षणवाद, व्यक्ति लघुमानव आदि की प्रवृत्तियाँ भी उसके दर्शन के रूप में सामने आई।

संदर्भ सूची:-

1. उपाध्याय बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन वारणासी, संस्करण 2001, पृ. 111
2. वहीं, पृ. 112
3. द्विवेदी कपिल देव, भाशा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणासी, संस्करण 2019, पृ. 424
4. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृ. 172
5. श्रीवास्तव एस.के., हिन्दी साहित्य का विकास, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, संस्करण 2003, पृ. 186

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

श्रीवामनपुराणस्य अर्वाचीनसाहित्ये प्रभावः

राहुल सिंह सोलंकी

शोधार्थी, संस्कृत साहित्य, महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

प्रस्तावना:-प्रत्येकस्मिन् साहित्ये नां कवीनां लेखन्या प्रसूतानि कतिपयेतादृशमर्मस्पर्शीणि काव्यानि भवन्ति, येभ्यः स्फूर्ति प्रेरणामादायावान्तर-कालीनाः कवयः स्वकाव्यानि सज्जीकुर्वन्ति। एतादृशानि काव्यानि व्यापकप्रभावसम्पन्नत्वात् 'उपजीव्यकाव्यम्'
इति नाम्ना आहूयन्ते ।

संस्कृतसाहित्येऽपि एतादृशोपजीव्यकाव्यानि विद्यमानानि सन्ति, यस्मात् संस्कृतभाषायाः अर्वाचीनप्रान्तयभाषाणां च कवयः स्वविषयस्य निर्देशाय काव्यशैल्याः विमलविधानाय च सततोत्साहमश्नान्तस्फूर्ति चागृह्णन्, अद्यापि गृह्णन्ति।
एतादृशकाव्येषु रामायणं महाभारतं श्रीमद्भागवादिपुराणानि च गण्यन्ते ।

अर्वाचीन साहित्ये प्रभाव:- रामायणं महाभारतं चेते द्वे काव्यरत्ने तु कविजनेभ्य उपजीव्ये मन्येत एवं श्रीमद्भागवादिपुराणान्यपि एतादृशोपादेयाः विस्तृताः प्रभावशालिनः ग्रन्थाः सन्ति, यान् प्रति काव्यालोचकानां दृष्टिः न गताः । भारतीयधर्मस्य विकासे पुराणानां व्यापकः प्रभावः केनापि विज्ञेनालाचकेन गुप्तं नास्ति । परन्तु भारतीय - काव्यस्य कोमलविलासे प्रचुरप्रसारे चापि पुराणानां नितान्तम् महनीयः प्रभावः आलोचकानां दृष्ट्या गुप्तं न भवितुं शक्नोति । इदं तु निर्विवादं सत्यमस्ति यत् भारतीयसाहित्ये या मधुरिमा सरसता, हृदयावर्जकता चास्ति, सा वैष्णवधर्मस्य दायोऽस्ति । 'सो वैः सः'

इत्यस्य प्रत्यक्षनिदर्शनभूतस्य रसिकशिरोमणेः श्यामसुन्दरस्य ललितलीलायाः लावण्यमयविग्रहस्य च भव्यस्वरूपस्य प्रस्तोता श्रीमद्भागवतमहापुराणं भारतीयसाहित्यस्य गीतिकाव्यानां प्रगीतमुक्तानामक्षय - स्रोतोऽस्ति। यस्य माधुर्यभावनां प्रगृह्य कृष्णभक्तकवयः स्वकाव्ये लालितस्य, सरसतायाः हृदयानुरञ्जकतायाः पुटं प्रदाय शोभनं हृदयावर्जकं चाकुर्वन्। विविधावताराणां वर्णने विविधावतारप्रतिपादकपुराणानां आश्रयमगृह्णन्। संस्कृतस्य वैष्णवकवीनां मधुरसूक्तिषु वैष्णवपुराणानां मधुरिमा अवलोक्यते। जयदेवस्य कोमलकान्तपदावल्याः विन्यासः भागवतादिपुराणानां सरसतया ओतप्रोतोऽस्ति ।

मध्ययुगीनवैष्णवपदकाराणां पदेषु लालित्यस्य रसनिर्भरतायाः विधानं वैष्णवपुराणानां गहनानुशीलनस्य परिणतफलमस्ति । वल्लभसम्प्रदायस्यानुयायिषु हिन्दी-गुजरातीकविषु वैष्णवपुराणानामेतावान् - निष्यन्दोऽस्ति यावद् गौडीयवैष्णवानां बङ्गकवितासु ।

यद्यपि वामनपुराणं वैष्णपुराणे गण्यते, परन्तु तत्र शैवशाक्तितादिदेवानां वर्णनं प्राधान्येन प्राप्यते। अत्र शिवपार्वत्योः चरित्रं विस्तृतरूपेण वर्णितमस्ति।

पार्वत्याः गहनतपश्चर्या, वटुरूपधारिणा शिवेन सह वार्तालापः, शिवेन सह विवाहादिविषयाः अलङ्कृतशैल्यां वर्णिताः सन्ति। वामनपुराणं स्ववर्णनेषु आलङ्कारिकचमत्कृत्या मण्डितमस्ति । वामनपुराणस्य कालिदासे, विशेषतः विषयसाम्यात् कुमारसम्भवे प्रभावो विशदरूपेणाभिव्यक्तो भवति । यद्यपि कालिदासं वामनपुराणस्य पूर्ववर्ती मन्यते पाश्चात्त्यमतसमर्थकैः समालोचकैः। परन्तु इयं भ्रान्तधारणा न समीचीना यतः पुराणानि प्राचीनानि ब्रह्मणा स्मृतानि सन्ति।

कालिदासस्य कुमारसम्भवोपरि वामनपुराणस्य प्रभावः विस्तृतः गम्भीरः मौलिकश्चास्ति। पार्वत्याः वटोश्च संवादः वामनपुराणे कुमारसम्भवे चोपस्थितसंवादेन अक्षरशः समानतां भजते। अर्थे एव न, अपितु शब्देऽपि । अनेकत्र छन्दोऽपि समानमेव प्रयुक्तमस्ति। अस्मिन् एक-द्वे दृष्टान्ते पर्याप्तं भविष्यतः ।
वामनपुराणे -
कथं करः पल्वकोमलस्ते
समेष्यते सार्वकरं ससर्पम् ।[1]
कुमारसम्भवे-
अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते
करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः ।
करेण शम्भोर्वलयीकृताहिना
सहिष्यते तत् प्रथमावलम्बनम् ।।[2]

अन्यच्च वामने-
पुरन्ध्रो हि पुरन्ध्रीणां
गतिः धर्मस्य वै विदुः ।।[3]

कुमारसम्भवे-
प्रायेणैवं विधे कार्ये
पुरन्ध्रीणा प्रगल्भता ।।[4]

अपरं च वामने-
जामित्रगुणयुक्ता तिथिं पुण्यां सुमङ्गलाम्।[5]
कुमारसम्भवे-

तिथौ हि जामित्रगुणान्वितायाम्।[6]

स एव राजा, यः प्रकृति रञ्जयति । कालिदासस्य 'राजा

प्रकृतिरञ्जना'
इत्यस्यैव भावं स्थापयति–
ततो राजेति शब्दोऽस्य पृथिव्यां रञ्जनादभूत्।[7]
तुलयन्तु रघुवंशात्–
राजा प्रकृतिरञ्जनात्।[8]
राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः
परन्तपो नाम यथार्थनामा।[9]

उमेति नामकरणमत एवाभवत् यतः तस्याः माता तां तपस्यया न्यषेधयत्।
यथोक्तं वामनपुराणे–
तपसो वारयामास उमेत्येवाब्रवीच्च सा।[10]
तुलयन्तु कुमारसम्भवस्य श्लोकेन–
उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम।[11]

एतेन वक्तुं शक्यते यत् विविधपुराणेभ्यः विषयवस्तु, आदाय कवयः स्वकाव्यं सज्जीकृतवन्तः।

निष्कर्षः–पुराणवाङमयमनन्तज्ञानराशेः भण्डारमस्ति। अस्य साहित्यमत्यन्तं मत्यन्त विशालमस्ति। लौकिकस्य पारलौकिकस्य ज्ञानविज्ञानस्य सर्वे विषयाऽस्मिन् पूरिताः सन्ति। महर्षिव्यासस्येदं वैशिष्ट्यमस्ति यत् सः वेदादिशास्त्रेषु प्रतिपादितान् जटिलतमान् विषयानपि आख्यानोपाख्यानस्य माध्यमेन सर्वसाधारणायापि बोधगम्यमकरोत्।
द्वापरस्यान्ते पुराणस्याध्ययनपरम्परायां विश्रृङ्खलता आगता। अस्यैकं कारणमिदमप्यासीत् यत् ब्रह्मणा स्मृतं पुराणमतिविशालमासीत्।
मत्स्यपुराणानुसारमस्मिन् शतकोटिश्लोकाः आसन्।
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्।।[12]

एषां शतकोटिश्लोकानां पठनं तदातिकठिनमभवत्। अतो भगवतः ज्ञानराशेरवतारभूतः वेदव्यासः चतुर्लक्षश्लोकेषु ब्रह्मणा स्मृतं पुराणस्य सङ्क्षेपमकरोत्। तेन निर्णीयते यत् पुराणं वस्तुत एकमेवासीत्।
अस्याष्टादशप्रकरणानि अष्टादशावयवरूपे सन्ति।

सन्दर्भ सूची:-

1. वामन0 51.63 ।
2. कुमार0 5.66 ।
3. वामन0 52.13 ।
4. कुमार0 6.32।
5. वामन0 52.60।
6. कुमार0 7.1 ।
7. वामन0 47.24 ।
8. रघु0 4.1।
9. रघु0 6.21 ।
10. वामन0 47.24 ।
11. कुमार0 1.26
12. म.पु0 3.2 0 3 ।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

लेखक के दृष्टिकोण में आत्मकथा लेखन के प्रयोजन

उर्मिला कुमारी
डॉ. धर्मेन्द्र कुमार शुक्ल

1. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उप्र.
2. शोध निर्देशक एवं प्राचार्य, आचार्य नरेन्द्र किसान पी.जी. कॉलेज, बभनान, गोण्डा, उप्र.

कोई भी कृति/विधा प्रयोजन रहित नहीं होती है। उसके लिखने का कोई न कोई प्रयोजन जरूर होता है और देखा जाय तो साहित्य लिखने का मूल प्रयोजन मानव संवेदना का विस्तार, संस्कार और परिष्कार करना ही होता है। इसी अर्थ में सृजन को सांस्कृतिक प्रक्रिया भी कहा जातात है और यह प्रक्रिया मानव की भावनात्मक एवं ज्ञानात्मक संवेदना को संशोधित करती हुई वृहद मानवीय संवेदना और सामाजिकता में खूबसूरती लाती है। सृजन का श्रेय कार्य है- आनन्द और प्रेय है-लोकमंगल। भारतीय काव्यशास्त्रों के आचार्यों ने अपने दृष्टिकोण से अलग-अलग प्रकार के काव्य-प्रयोजन माने हैं किन्तु सर्वश्रेष्ठ काव्य-प्रयोजन मम्मट का काव्यप्रकाश माना जाता है-

''काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।।''

मम्मट ने छः प्रकार के काव्य प्रयोजन बताये हैं-(1) यश की प्राप्ति (2) अर्थ की प्राप्ति (3) व्यवहार ज्ञान (4) लोकमंगल (5) आत्मशांति (6) कान्तासम्मित।

काव्य ये यश की प्राप्ति होती है, अर्थ मिलता है, व्यवहार-ज्ञान होता है, अमंगल का नाश होता है। तुरन्त लोकातीत आननद काव्य द्वारा मिलता है और कान्ता के समान मधुर, प्रिय लगने वाला उपदेश भी मिलता है। काव्य के माध्यम से आयी हुई शिक्षा हृदय पर प्रभाव डालती है एवं भुलाई नहीं जा सकती। इस प्रकार वैयक्तिक और सामाजिक, लौकिक आध्यात्मिक सभी प्रयोजनों का संकेत इसमें मिल जाता है। इसी की पुष्टि करते हुए आ0 भिखारीदास ने लिखा है-

एक लहैं तपपुजन के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गुसाई।
एक लहैं बहु सम्पति केशव भूषण ज्यों बरबीर बड़ाई।।
एकन को जस ही सो प्रयोजन है रसखान, रहीम की नाई।
दास कवित्तन की चरचा बुधिवत्तन को सुखदै सब ढाई।।

1. यश की प्राप्ति:-लेखक समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने के लिए विशिष्ट साहित्य का सृजन करता है। लेखन के दौरान वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ही सही लेकिन यश की कामना जरूर चाहता है। आत्मकथा में आत्मकथाकार स्वयं का जीवन चित्रित करता है। साथ में पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पक्षों को भी शामिल किये हुए रहता है एवं सभी पक्षों को लेखक बड़े तटसथ भाव से लिखता है ताकि उसकी आत्मकथा आलोचना का विषय न बने और पाठक वर्ग भी उसकी आत्मकथा को पढ़कर सराहना, प्रशंसा करें साथ में कुछ सीखे भी। इस प्रकार कह सकते हैं कि आत्मकथाकार का प्रयोजन विशिष्ट साहित्य का सृजन करके यश प्राप्त करना ताकि उसके संसार में न रहने पर उसकी कृति की सराहना हो, सब पढ़े और उससे ज्ञान प्राप्त करें।

मलिक मोहम्मद जायसी ने काव्य लेखन का उद्देश्य मनुष्य प्रेम माना है-'मानुष प्रेम भयउ बैकुंठी।'

प्रेम ही जीवन को उदात्त बनाता है, वैर नहीं। जायी ने यश की कामना को काव्य का प्रयोजन माना है।

रीतिकालीन कवि 'भिखारीदास जी' ने यश की प्राप्ति, फल की प्राप्ति और आनन्द की प्राप्ति को काव्य का उद्देश्य माना है।

2. अर्थ की प्राप्ति:-साहित्य सृजन करते समय लेखक यश की कामना के साथ-साथ अर्थ की प्राप्ति भी करना चाहता है। मनुष्य विवेकशील प्राणी है फिर भी प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ न कुछ घटना जरूर घटित होती है और फिर वह लेखक के रूप में अपने जीवन को समाज के सामने अपने को खोलता है और वहीं आत्मकथा जब किसी रूप में लोकप्रिय हो जाती है, तो उससे लेखक को यश की प्राप्ति होती है। समाज में लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठा प्राप्त होने से लेखक के मन में कहीं न कहीं आर्थिक लाभ उठाने के विचार भी आते हैं और आर्थिक लाभ प्राप्त भी करते हैं, लोकप्रियता जितनी बढ़ेगी, आत्मकथा की, उससे उतना ही ज्यादा लाभ प्राप्त होगा और मानव जीवन के निर्वाह के लिए धन भी जरूरी है किन्तु गलत तरीके से धनोपार्जन करना मानव जाति के लिए ही नहीं अपितु लेखक वर्ग के लिए भी घातक सिद्ध होता है। जयपुर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह अपनी नई रानी के प्रेम में इतना डूब गये थे कि राजकाज सब भूल बैठे थे और सब इस बात से बड़े चिंतित थे, लेकिन राजा से कहने की किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी। रीतिकाल के कवि बिहारीलाल ने यह कार्य अपने लेखनी के माध्यम से किया। बिहारीलाल के एक दोहे ने राजा की आँख खोल दी-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।।

यह दोहा राजा को उनके कार्य की तरफउन्मुख कर दिया और राज-काज संभाल लिया। राजा जयसिंह बिहारी की कुशलता से बहुत प्रभावित हुये। बिहारी से और दोहे लिखने को कहा और उनके प्रत्येक दोहे पर स्वर्ण मुद्रा देने का वचन दिया। इससे बिहारीलाल को पर्याप्त धन और यश प्राप्त हुआ।

3. व्यवहार ज्ञान:-मानव एक संवेदनशील प्राणी है और अपने जीवनकाल में कई तरह के लोगों से मिलता है, उससे उसे कई प्रकार के खट्टे-मीठे अनुभव भी प्राप्त होते हैं और इसी जीवन अनुभव को लेखक बनकर

दूसरों तक अपने जीवन अनुभव को पहुँचाता है ओर दूसरे के अनुभवों से भी परिचित होता है, सीखता भी है। लेखक का अनुभव उसके परिचितों और समाज के लिए आईना का काम करता है और उसके आचार-व्यवहार संस्कार सभी कुछ समाज पर एक अमिट छाप छोड़ता है।

4. लोकमंगल की भावना:-कोई भी कृति अगर रची जाती है, तो उसमें लोकमंगल की भावना निहित रहती है और काव्य से अमंगल का नाश भी करता है, चाहे वह कोई शाप, रोग या व्याधि हो। महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य की रचना कुष्ठ रोग की मुक्ति के लिए लिखी थी और ऐसा माना जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी को हनुमान बाहुक की रचना से शारीरिक पीड़ा से आराम मिला था। आत्मकथा विधा मानव जीवन के सबसे निकट की विधा मानी जाती है। जिसमें लोककल्याण, लोकमंगल, समाजसेवा, साहित्यसेवा सभी भाव निहित होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने काव्य का प्रयोजन स्वान्तः सुख और लोकमंगल की भावना माना है- 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा।'

5. सद्यः परिनिर्वृतये (आत्मशांति):-आत्मकथा लेखन का मुख्य उद्देश्य आत्मशांति है। लेखक समाज का अभिन्न अंग है। समाज के लिए लेखक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है और लेखक भी एक इंसान है एवं समाज में रहते हुए कभी-कभी उससे गलत अथवा अनुचित कार्य हो जाते हैं। जिसे उसे दुःख या ग्लानि होता है। यह दुःख वह दूसरों से व्यक्त करके आत्मसंतोष करता है। जिससे उसका मन हल्का हो जाता है, फिर वह चाहे व्यक्ति हो या समाज, जिससे उसे आत्मशांति मिलती है, अगर ऐसा न करे तो वह आजीवन अन्दर ही अन्दर घूटता रहे या ठीक ढंग से जीवन जी न पायें। इस प्रकार का आत्मशांति या पश्चाताप करने के लिए आत्मकथा लिखता है क्योंकि वह समाज के सामने पश्चाताप नहीं कर सकता, जो आत्मकथा लिखकर पूरा करता है। जिससे लेखक को आत्मशांति और मानसिक सुख मिलता है।

6. कान्तासम्मित:-जिस प्रकार कान्ता (पत्नी) प्रेमी या प्रेयसी से मधुर एवं प्रिय लगने वाला उपदेश मिलता है या प्रेयसी द्वारा कल्याणकारी मधुर वचन से वास्तविक कर्तव्य या कल्याण का ज्ञान कराया जाता है और प्रेयसी अपने मान-मनुहार एवं हर तरह से आत्मीयता से उपदेश देती है, उसी तरह आत्मकथा भी गुरु की भाँति या प्रेयसी के समान हमारे अवगुणों को हमसे दूर करके सही मार्ग पर चलने का रास्ता दिखाती है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में आत्मकथा के प्रयोजन को इस प्रकार से परिभाषित किया है। साहित्य के समस्त प्रकारों में आत्मकथा ही एक ऐसा प्रकार है, जो निरुद्देश्य या निष्प्रयोजन नहीं लिखा जा सकता। 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के लेखक ने आत्मकथा लेखन में निम्नलिखित प्रयोजन बतलाये हैं-

1. आत्मोन्नति के लिए आत्म परीक्षण।
2. अतीत की स्मृतियों से चिपकने का मोह।
3. स्वानुभूतियों को प्रेषित करने का मोह।
4. अस्मिता को प्रेषित करने का मोह।
5. कलात्मक अभिव्यक्ति की इच्छा।
6. उच्च पद अथवा ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यवसायिक इच्छा।

हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार-हिन्दी साहित्यकोश में आत्मकथा लिखने के सात उद्देश्य बताये गये हैं, किन्तु यहाँ भिन्न दृष्टिकोणों पर विचार किया गया है-

1. आत्मनिर्माण, आत्मपरीक्षण या आत्मसमर्थन।
2. अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करने का मोह।
3. जटिल विश्व के उलझावों में अपने आपको अन्वेषित करने का सात्विक प्रयास।

श्याम सुन्दरदास की आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' में कुछ इस प्रकार से देखते हैं कि-'वह आत्मप्रचार चाहता है, अपने को समाज के सम्मुख ला देना चाहता है। वह अपने व्यक्तित्व का उभार सबके सम्मुख ला देना चाहता है। वह अपने व्यक्तित्व का उभार चाहता है और अपने विचारों, मनोभावों के प्रति समाज की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता है। आत्मकथा आधुनिक युग की सर्वाधिक प्रिय विधा है। पाठकवर्ग विशेष रूप से आत्मकथा पढ़ने के लिए उत्सुक होता है। उसके उत्सुकता का एक कारण यह भी है कि वह किसी दूसरे अपरिचित व्यक्ति के बारे में जानने, पहचानने और उससे कुछ सीख लेने की प्रेरणा पाता है। आत्मकथा के माध्यम से आत्मकथाकार स्वयं के जीवन में घटने वाली घटनाओं के माध्यम से दूसरों को एक प्रकार से शिक्षा देता है। आत्मकथा का एक प्रयोजन यह भी है कि आत्मकथाकार आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्ति को अपनाकर लिखने के लिए अग्रसर होता है। लेखक आत्मकथा के बहाने अतीत की स्मृतियों को पुनर्स्मरण करता है। अतीत की कटु एवं सुखद सभी प्रकार की स्मृतियों के मध्य फिर एक बार जीने में भी सुखद अनुभव प्राप्त करता है। कभी-कभी तो दुःखद स्मृतियों के द्वारा भी एक प्रकार के आनन्द की प्राप्ति होती है और आत्मकथा लिखने का प्रयोजन पश्चाताप की भावना भी होती है। आत्मकथा लिखने के केन्द्र में मुख्य लेखक होता है जो आत्मांकन के द्वारा आत्मपरिष्कार और आत्मोन्नति चाहता है। पाठकवर्ग भी लेखक के अनुभवों से कहीं न कहीं लाभान्वित होता है। आत्मकथा लिखने का उद्देश्य व्यक्तिगत ज्यादा होता है, लेकिन आत्मकथाएँ कभी भी निरुद्देश्य नहीं होती हैं। आत्मकथा आत्मकथाकार की दृष्टि से निरुद्देश्य होते हुए भी पाठक की दृष्टि में सोद्देश्य हो जाती है। अनेक बार हमें दूसरों के जीवन के अनुभव से भी कोई सूत्र मिल जाता है। जो हमारे जीवन के गुत्थियों को सुलझाने में बड़ी सहायता करता है। ऐसा माना जाता है कि इंसान अपनी गलतियों से सीखता है, किन्तु बुद्धिमान इंसान दूसरों की गलतियों को देखता है और स्वयं वह उस गलती को करने से बचता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि आत्मकथा भी पाठक की जिन्दगी में कहीं न कहीं सहायता पहुँचाती है और इसका मुख्य प्रयोजन है आत्मकथाकार का स्वयं की प्रंशा, आत्मस्वीकृति, पश्चाताप, अमरता की आकांक्षा, सहानुभूति के लिए, अपने अहं की तुष्टि के लिए, आर्थिक लाभ प्राप्त के लिए, प्रतिशोध की भावना, यश प्राप्ति करने की भावना से, सामाजिक प्रतिष्ठा हेतु, मानसिक तनाव से मुक्ति के लिए, अतीत की स्मृतियों का पुनरावलोकन, सामाजिक शोषण की अभिव्यक्ति, आत्मपरीक्षण एवं आत्मविश्लेषण के लिए।

इस प्रकार आत्मकथाकारों की आत्मकथाओं का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि आत्मकथा में लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं, सुख-दुःख, अनुभव को बहुत मूल्यवान समझता है जो लेखक व्यक्त करता है, ताकि समाज या पाठकवर्ग पढ़कर लेखक के जीवन से रूबरू हो सकें और कुछ उसके जीवन के अनुभवों, संघर्षों से सीख सके। यह विधा निरुद्देश्य नहीं होती बल्कि किसी विशेष उद्देश्य के लिए लिखी जाती है। लेखक अपने जीवन के तमाम घटनाओं का जिक्र करता है, जिससे वह स्वयं, परिवार, समाज, उकसे विचार सुख-दुःख को शामिल करता है।

सन्दर्भ सूची:-

1. काव्यशास्त्र, डॉ0 भागीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 31
2. हिन्दी का आत्मकथात्मक साहित्य, डॉ0 चम्पा श्रीवास्तव, वाराणसी, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 211
3. हिन्दी का आत्मकथात्मक साहित्य, डॉ0 चम्पा श्रीवास्तव, वाराणसी, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 212
4. हिन्दी का आत्मकथात्मक साहित्य, डॉ0 चम्पा श्रीवास्तव, वाराणसी, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 206
5. हिन्दी का आत्मकथात्मक साहित्य, डॉ0 चम्पा श्रीवास्तव, वाराणसी, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 210
6. हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श, (स्त्री आत्मकथाओं के सन्दर्भ में) डॉ0 सुमन सिंह, मनीष प्रकाशन, रोहित नगर कालोनी, बी0एच0यू0, वाराणसी-5, पृ0 156
7. हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श, (स्त्री आत्मकथाओं के सन्दर्भ में) डॉ0 सुमन सिंह, मनीष प्रकाशन, रोहित नगर कालोनी, बी0एच0यू0, वाराणसी-5, पृ0 157
8. हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श, (स्त्री आत्मकथाओं के सन्दर्भ में) डॉ0 सुमन सिंह, मनीष प्रकाशन, रोहित नगर कालोनी, बी0एच0यू0, वाराणसी-5, पृ0 159
9. हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श, (स्त्री आत्मकथाओं के सन्दर्भ में) डॉ0 सुमन सिंह, मनीष प्रकाशन, रोहित नगर कालोनी, बी0एच0यू0, वाराणसी-5, पृ0 161

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

छायावादी काव्य : राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना

डॉ. अमित कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल पी. जी. कॉलेज, बाराबंकी, उप्र.

छायावाद (1918–1936) आधुनिक हिन्दी नवजागरण और स्वाधीन चेतना की एक सशक्त काव्य धारा है। यह वह समय है जब देशभर में स्वाधीनता संघर्ष की शुरुआत हो चुकी थी और देश की स्वाधीनता के साथ-साथ वैयक्तिक स्वाधीनता की तीव्र इच्छा का भाव जन्म ले चुका था, हर तरह की रूढ़ियों और बन्धनों से देश को व खुद को मुक्त करने की बेचैनी, और व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। यही 'स्वाधीन चेतना' छायावादी काव्य में भी दिखाई देती है। कथ्य (विषयवस्तु) और शिल्प (रूप) दोनों ही रूपों में। विषय-वस्तु और अभिव्यक्ति, शैली की विविधता छायावादी काव्य में खूब दिखाई देता है. – ''इस युग के काव्य में द्विवेदी युगीन नैतिकता और स्थूलता की प्रतिक्रिया दिखाई देती है और दूसरी ओर विदेशी दासता के प्रति विद्रोह का स्वर सुनाई देता है। उदाहरणार्थ, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के कवियों ने विदेशी शासन का विरोध किया और जनता में आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न की। यह विद्रोह छायावादी कवियों में भी व्यापक रूप में दिखाई देता है। उन्होने विषय, भाव, भाषा, छंद आदि सभी क्षेत्रों में नये मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया ..... इस विद्रोह को केवल द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया में नहीं देखा जा सकता। इसके मूल में तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक कारण भी है।''[1] छायावादी कविता में अभिव्यक्त स्वाधीन चेतना को वैयक्तिक स्वाधीन चेतना के रूप में देखा गया और यह कहा भी जाता है कि हर तरह की स्वाधीनता की शुरुआत वैयक्तिक स्वाधीनता की चेतना/बोध से होती है। और इसी बोध के कारण छायावादी कवि अपनी निजी अनुभूतियों को साहस के साथ अभिव्यक्त करते हैं। उन्होंने खुलकर अपने जीवन के सुख-दु:ख, संघर्ष, प्रेम आदि भावनाओं को व्यक्त किया। लेकिन उनकी वैयक्तिक चेतना समाज की सामूहिक चेतना से भी जुड़ती है। इस सम्बन्ध में शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं ''कवि का मै प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का मैं था, इस कारण कवि ने विषयगत दृष्टि से अपनी सुक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत रचना शैली अपनाई उसके संकेत और प्रतीक हर व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके। वैयक्तिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति समाज की अनुभूतियों से कटी हुई या निरपेक्ष नहीं थी, हाँ लेकिन इन व्यैक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का स्वर या ताना-बाना भावनात्मक ज्यादा था। और यही भावानात्मक स्वर देश की राष्ट्रीय स्वाधीनता और सांस्कृतिक जागरण से सम्बन्धित उनकी कविताओं में भी दिखाई देती है। छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक जागरण की अभिव्यक्ति सबसे ज्यादा मिलती है। भारत की आजादी के लिए जरूरी था कि भारतवासियों के मन में जो हीनताबोध, पराजयबोध की भावना जड़ जमा चुकी थी, उसको झकझोरा जाए और उन्हें अपने प्राचीन देश की सभ्यता और संस्कृति की महानता व गौरवशाली अतीत की याद दिलाई जाए। जयशंकर प्रसाद के नाटकों चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त को श्रेष्ठ उदाहरण के रूप देखा जा सकता है। स्कन्दगुप्त का प्रसिद्ध गीत- 'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणो का दे उपहार' इस दृष्टि से अप्रतिम है। डॉ0 नामवर सिंह के अनुसार – ''आत्म-गौरव का जैसा ओजस्वी उद्बोधन इस गीत में है, वैसा उस युग के शायद ही किसी गीत में मिले। इस गीत में प्रसाद कहते हैं कि संस्कृति का जन्म सबसे पहले भारत में ही हुआ। राम की दक्षिण विजय, बुद्ध की अहिंसा और अशोक की करुणा संसार को भारत की देन है। संसृति में संस्कृति का प्रसार भारत से ही हुआ है। अनेक जातियों के उत्थान-पतन और आक्रमण के बावजूद भारत अपनी संस्कृति की रक्षा करते हुए आगे बढ़ता आ रहा है। अंत में वे कहते हैं:''[2]

वही है रक्त, वही है देह, वही साहस है, वैसा ज्ञान।
वही है शांति, वही है शक्ति वही हम दिव्य आर्य संतान।
जिएँ तो सदा, उसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारत वर्ष।

इसी तरह के भाव जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक 'चन्द्रगुप्त' में व्यक्त किए हैं जब वह 'कार्नेलिया' के मुख से अपने प्यारे भारत वर्ष की संस्कृति, सहिष्णुता, करुणा, प्राकृतिक सुंदरता का गान कराते हैं:

''अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर-मंगल कुंकुम सारा।''[3]

राष्ट्रीय चेतना से सम्बन्धित 'आह्वान गीतों', जागरण गीतों और स्वतन्त्रता की भावना को जगाने हेतु अनेक गीतों की अभिव्यक्ति छायावादी कवियों ने की है जैसे – 'जाग तुझको दूर जाना' 'जागो फिर एक बार' और 'बीती-विभावरी' आदि। दरअसल अपना देश लम्बे समय तक पराधीन रहा ऐसे में उस पराधीनता से मुक्ति के लिए लोगों को जगाना, सुप्त पड़ी चेतना को झिंझोड़ना बहुत जरूरी था क्यों कि लम्बे समय से चली आ रही दासता ने लोगों के आत्म-गौरव, स्वाभिमान, देश के स्वर्णिम अतीत और गौरवशाली इतिहास और भारतीय संस्कृति को भूला दिया था। इस सम्बन्ध में डॉ0 नामवर सिंह अपनी पुस्तक छायावाद में लिखते हैं कि – ''हर पराधीन देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय 'पुनरुत्थान भावना' से होता है। इसकी वजह है। विजेता जाति प्राय: विजित जाति को दबाने के लिए उसमें से सभी प्रकार की शक्तियों का अपहरण करने का प्रयत्न करती है। भारतवर्ष पर अपनी साम्राज्यवादी छाया डालने के बाद अंग्रेजो ने भी यही किया। उन्होंने भारतीयों के आत्मगौरव को कुचलने के लिए हर तरह की कोशिश की। उन्होंने बर्बर और असभ्य कहा, उनकी सांस्कृतिक परंपरा को तुच्छ ठहराया....भारतीयों के मन में यह भाव भरने की कोशिश की कि ..... सदा से ही भारतवासी अकर्मण्य, परलोक की चिंता करने वाले तथा सैनिक भाव से हीन रहे हैं।''[4] ऐसी परिस्थिति में भारतवासियों के मन से हीनता और पराजयबोध की भावना को दूर करने के लिए जरूरी था कि उन्हें अपने अतीत के गौरवशाली, भारतीय सभ्यता और संस्कृति की पहचान करायी जाए। और इस गौरवशाली अतीत के बहाने भारतवासियों के भीतर स्वतंत्रता की भावना को भरने या जगाने का काम जयशंकर प्रसाद ने बखूबी किया। जोश और आहवान से भरी जयशंकर प्रसाद की यह कविता देखी जा सकती है। –

''हिमाद्री तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्वला
स्वतंत्रता पुकाराती –
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पथ है – बढ़े चलो, बढ़े चलो।''

इसी तरह जयशंकर प्रसाद ने अपनी कविता 'पेशोला की प्रति–ध्वनि और शेर सिंह का शस्त्र समर्पण में पराजय की पीड़ा और इस पीड़ा बोध से विजय की आकांक्षा प्रकट की है। नामवर सिंह के अनुसार – ''मेवाड़ की पेशोला झील में 'निर्धूम भस्म रहित ज्वलन पिण्ड' का जो अरुथ अरूण बिंब है, वह वस्तुतः जातीय सूर्य के अस्तमित गौरव का प्रतिबिंब है।..... यह पुकार केवल पेशोला की नहीं, बल्कि संपूर्ण अतीत की है और केवल अतीत की ही नही, बल्कि पराधीन वर्तमान की है, क्योंकि उस अतीत की व्यंजना में व्यंग्य तो वर्तमान ही है:
कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
साधना पिशाचों की बिखर–चूर चूर होके
धूलि–सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से ?

इस कविता में जिस–'पिशाच' की ओर संकेत किया गया है वह कौन है, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। जिनमे साहित्य का थोड़ा सा भी संस्कार है वह जानते हैं कि यह पिशाच अतीत का नहीं बल्कि वर्तमान का है।''5 इनकी दूसरी कविता 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' तो अंग्रेजो के समय की ही घटना है, जिसमें अंग्रेजों से लड़ते समय शेरसिंह पराजित होते हुए भी भविष्य में अपने विजय की आकांक्षा को पूरे भारत के जनमानस की आकांक्षा से जोड़ता है। जब वह कहता है। –
''आज विजयी हो तुम
और हैं पराजित हम
तुम तो कहोगे, इतिहास भी कहेगा यही
किंतु यह विजय प्रशंसा भरी मन की –
एक छलना है।''

जयशंकर प्रसाद के बाद 'सूर्यकान्त त्रिपाठी' निराला की कविताओं में सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय चेतना का स्वर सुनाई देता है जिसमें निराला की 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' कविता में भले ही मुगल औरगंजेब के समय का जिक्र हो लेकिन वह वर्तमान अंग्रेजी साम्राज्य की दासता और उससे आजाद होने की आकांक्षा को उद्घाटित करती है।
''एकीभूत शक्तियों से एक हो परिवार,
फैले समवेदना
व्यक्ति का खिंचाव यदि जातिगत हो जाए,
देखो परिणाम फिर
स्थिर न रहेंगे पैर
पस्त होगा हौसला,
ध्वस्त होगा साम्राज्य।
जितने विचार आज
मारते तरंग हैं
साम्राज्यवादियों के भोगवासनाओं में
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से
दासता के पाश कट जाएँगे।

''इस कविता का बाहरी रूप हिन्दू–पुनरुत्थान का भले ही हो, परन्तु इसमें अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह तथा जातीय एकता का भाव स्पष्ट है। इस कविता तथा ऐसी ही अन्य कविताओं का जो रूप–विन्यास हिन्दू–पुनरुत्थान से सीमित हो गया है उसके मूल कारण भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में हैं।''6 इसी प्रकार 'निराला' की जागो फिर एक बार कविता में सांस्कृतिक पुनर्जागरण के तहत अपने गौरवशाली अतीत के प्रति अभिमान और गौरव का भाव जगाने की कोशिश के रूप में देखा जा सकता है।
'शेरो की माँद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार

निराला की 'तुलसीदास' कविता में अतीत के पुनरुत्थान के बहाने वर्तमान अंग्रेजी दासता और पश्चिमी संस्कृति से भारतीय संस्कृति की टकराहट और संघर्ष को दिखाया गया है। और अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को सुरक्षित रखने का आहवान किया है। ऐसे ही 'राम की शक्ति पूजा' कविता में निराला रावण को परास्त करने के लिए और शक्ति को अपने पक्ष में करने के लिए शक्ति की मौलिक कल्पना करने का मंत्र देते है। यहाँ भी अतीत के पौराणिक कथानक के बहाने 'रावण' रूपी अंग्रेजी साम्राज्य तथा राम और उनकी वानर सेना को भारतीय जनता के रूप में देखा जा सकता है। ''छायावादी कवियों ने कहीं भी अतीत के स्वर्ण–युग मैं लौटने की चर्चा नहीं की, उन्होंने अतीत को प्रायः प्रेरणा स्रोत के रूप में ही स्वीकार किया है। ..... कभी–कभी भावावेग में यह आकांक्षा प्रकट की है कि किसी प्रकार वह बीता हुआ स्वर्ण–युग लौट आए, परन्तु इन सबका अर्थ अतीत का यथावत पुनरूत्थान नही है।''7 अतीत के प्रति सबसे ज्यादा लगाव जयशंकर प्रसाद के साहिल में दिखाई देता है। लेकिन वह अतीतजीवी न होकर अतीत की प्रेरणा के रूप में वर्तमान को बेहतर बनाने के लिए करते हैं। इसी अतीत के स्वर्णिम युग को याद करते हुए सुमित्रानन्दन पंत कहते है।
''कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगंत छवि जाल
ज्योति चुम्बित जगती का भाल ?

स्पष्ट है कि अपने देश के गौरवशाली अतीत और देश प्रेम का भाव पैदा करके जो स्वाधीनता की चेतना छायावादी कविता में विकसित होती है, वह आगे चलकर सिर्फ देश की स्वतंत्रता तक सीमित न होकर भारतीय जनमानस या प्रत्येक भारतवासियों की स्वतंत्रता की जनआकांक्षा में अभिव्यक्त होती हुई दिखाई देती है। छायावादी कवियों में 'निराला' इस जन आकांक्षा को सबसे ज्यादा अपनी कविताओं में जगह देते हैं, और इसीलिए उन्हें प्रगतिशील कवि भी कहा जाता है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 हरदयाल (संपादक) हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2021 पृ0सं0, 518
2. नामवर सिंह छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 25वां संस्करण 2023, पृ0सं0 73
3. जयशंकर प्रसाद, चंद्रगुप्त (नाटक), राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1994, पृं0 सं0 73
4. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 25वां संस्करण पृ0 सं0 72
5. वही ,, ,, ,, पृष्ठ सं0 74।
6. वही ,, ,, ,, पृष्ठ सं0 75।
7. वही ,, ,, ,, पृष्ठ सं0 76।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

बिहारी सतसई में आभरण, अलंकरण एवं अंगराग-सौन्दर्य

डॉ. ममता शर्मा

सह आचार्य, राजकीय राजशेष महाविद्यालय, असनावर, झालावाड़, राजस्थान

सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में वस्तुनिष्ठ दृष्टि से आभरण, आभूषण एवं अंगरागों का चित्रण सतसई में देह एवं अंग-सज्जा के लिए किया गया। ये उपादान एक ओर तत्कालीन सभ्यता, शालीनता एवं संस्कृति के परिचायक हैं दूसरी ओर आलम्बन के आकर्षण का कारण। रीतिकालीन नागर अभिरुचि के अनुकूल मूल्यवान वस्त्राभूषणों का समृद्ध वर्ग-सापेक्ष वर्णन बिहारी ने अपने काव्य में किया है। यहाँ ये कृत्रिम उपादान उपयोग या आवश्यकता से ऊपर सौन्दर्याभिरुचि को व्यक्त करने वाले हैं। डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी भी इस आशय की पुष्टि करते हैं। ''वस्त्र निर्माण आदि में उसकी (मनुष्य की) दृष्टि आवश्यकता से सौन्दर्य की ओर अधिकाधिक उन्मुख हुई।''[1] रूप-सौन्दर्य के ऐसे बाह्य उपादान जो देह.सौन्दर्य की शोभा का संवर्द्धन करते हैं। वे सभ्यता, शालीनता, संस्कृति के परिचायक होते हैं साथ ही आलम्बन के लिए आकर्षण का कारण भी बनते हैं, उन्हें आधुनिक युग के सन्दर्भ में सौन्दर्य.प्रसाधन और शास्त्रीय भाषा में आभरण.अलंकरण और अंग.राग कहते हैं। इस कृत्रिम वेशभूषा का सम्बन्ध विच्छति से है। एस.टी. नरसिंहाचारी ने ''विच्छति को अंगों के प्रसाधनों को प्रकट करने वाला शब्द कहा है।''[2]

आभरण-सौन्दर्य:-नील और श्वेत साड़ी बिहारी का बहुवर्णित परिधान है। सतसई में वर्णित नायिकाओं की वेशभूषा बिहारी की सुरुचिपूर्ण मनोवृत्ति का संकेत करती है। बिहारी के काव्य में लिबास शालीनता एवं अभिजात्य उच्चवर्गीय संस्कृति.सभ्यता का परिचायक है। उसका प्रयोग उद्दीपन एवं आहार्य दोनों रूपों में हुआ है। बिहारी ने अपनी सौन्दर्याभिरुचि के अनुकूल पारदर्शी, फबीले वस्त्र ही नायिकाओं को पहनाए हैं, ताकि उनके नैसर्गिक रूप.सौन्दर्य की झलक में वस्त्र व्यवधान न बनें। बिहारी का उद्देश्य साड़ी की अपेक्षा 'चमचमात चंचल नयन' को दिखाना रहा है। कनकवर्णी गोरी देह 'जल चादर के पीछे जगमगाते दीपक के समान तभी देखी जा सकेगी, जब नायिका ने 'सेत पचतोरिया' पहनी हो।

''चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीन
मानहुँ सुर सरिता बिमल, जल उछरत जुग मीन।''[3]

''सहज सेत पचतोरिया, पहिरत अति छबि होति
जलचादर के दीप लौं, जगमगाति तन जोति।''[4]

''लसत सेत सारी ढप्यौ, तरल तर्यौना कान
मानहुँ सुर सरिता बिमल, रवि प्रतिबिम्ब बिहान।''[5]

''दुरत न कुच बिच कंचुकी, चुपरी सारी सेत
कवि आँकनु के अरथ लौं, प्रगट दिखाई देत।''[6]

''सोहत धोती सेत में, कनक बरन तन बाल
सारद बारद बीजुरी, भारद कीजति लाल।''[7]

इन सभी दोहों में श्वेत झीनी साड़ी का चित्रण हुआ है। ऐसे वस्त्र सम्पन्न नागर ही पहन सकते हैं। ये परिधान एक ओर बिहारी के नागरता.प्रेम को और दूसरी ओर नैसर्गिक अंग.सौन्दर्य को महत्त्व देने की सौन्दर्याभिरुचि को प्रमाणित करते हैं। अंग-सौन्दर्य और शारीरिक आकर्षण आलम्बन में प्रेमोदय के लिए आवश्यक भी है। नायिका के नैनों का चांचल्य, तन.ज्योति की झलक, रागित मन की बैचेनी में हिलते डुलते तर्यौना, पुष्ट उरोजों की मांसलता आदि दिखाने के लिए पारदर्शी श्वेत साड़ी और उसके घूँघट का चित्रण कवि की सौन्दर्य चेतना का मानदण्ड है। श्वेत साड़ी के बाद बिहारी ने नील साड़ी, नील पटु, नील चूनर आदि का वर्णन कृष्णाभिसारिका के लिए और कहीं उद्दीपन के रूप में किया है। कवि ने सौन्दर्याभिरुचि के अनुकूल ही नायिकाओं को वस्त्र धारण कराए हैं। ''रीतिकाल की नायिकाओं के वस्त्र उनके रंगों के प्रतिकूल, अनुकूल, मूल्यवान और पारदर्शी हैं।''[8]

''चुनरी स्याम सतार नभ, मुँह ससि की उनहारि
नेहु दबावत नींद लौं, निरखि निसा.सी नारि।''[9]

शशिमुखी नीलाम्बरा निशा के समान बनकर नींद के प्रभात के समान नेह से दबा लेती हैं। यहाँ संश्लिष्ट रूप में नील चुनरी को उद्दीपन रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार ऐसी संदली अँगिया जो तन के रंग से एकाकार हो जाती है उससे ढके उरोज भी बिना ढके लगते हैं। ऐसी अँगिया का वर्णन भी आलम्बन नायक के लिए उद्दीपन रूप में ही हुआ है।''[10] श्याम वस्त्रों के बाद अँगिया और कंचुकि के चित्रण में भी सौन्दर्य शास्त्रीय विदग्धता उद्घाटित होती है। दोहा सं. 12, 16, 50, 106, 154, 188, 189, 190, 198, 207, 304, 326, 340, 607, 626, 646, 667, 687, 689 आदि में श्वेत, नील वस्त्रों के अतिरिक्त चटख रंगों के आकर्षक वस्त्रों का वर्णन भी हुआ है। संदली अंगिया, कंचुकि, कुसुम्भी, कंचुकी साड़ी की सलवट, भीगे वस्त्र, चीर चिनौटिया, भीजेचीर, जरीदार साड़ी, श्याम चुनरी, तथा चोलरंग चीर से, बिहारी ने नायिका का अंगाकर्षण कम न होने पाये इस दृष्टि से अंगों को ढका है। नायक के परिधान में मुख्य वर्णन कृष्ण का है जो पीताम्बरधारी रूप में रूढ़ हैं। अतः बिहारी ने भी 'सोहत ओढ़े पीत पट' या 'कटि काछनी' ही कृष्ण को पहनाए हैं। अन्य नायक चित्रण में झीन झगा, श्वेत झगा का चित्रण भी मिलता है। श्रृंगार रस की प्रधानता, परिवेश के दबाव, स्वयं कवि का नागरता प्रेम आदि कारणों से नायिका के परिधानों का जितनी सूक्ष्मता, विविधता, रुचिरता के

साथ प्रभावी वर्णन हुआ है उतना नायक के लिबास का नहीं।

आभूषण-सौन्दर्य :- ''न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्' '[11] आचार्य भामह ने आभूषणों को वनिता के सौन्दर्य के लिए आवश्यक माना है। प्रत्येक युग के कवियों ने नारी रूप मण्डन के लिए कमोवेश आभूषणों का प्रयोग किया है। आभूषणों की अतिशयता में सौन्दर्य दब जाता है। अतः कवियों ने अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार देश-काल-परिस्थिति, सभ्यता-संस्कृति-सापेक्ष आभूषणों का चित्रण किया है। अकृत्रिम रूप-छवि का कृत्रिम आभूषणों के द्वारा संवर्द्धन सतसई में भी हुआ है। उद्दीपन और आहार्य के रूप में प्रयुक्त ये आभूषण अधिकांशतः तत्कालीन नागर संस्कृति के अनुकूल हैं, पर कही-कहीं सस्ते आभूषणों से भी नैसर्गिक रूप-मण्डन के चित्र बिहारी के काव्य में मिलते हैं। जिन आभूषणों का चित्रण बिहारी ने रूप-मण्डन के लिए किया है उनमें से कई ऐसे हैं, जिनका प्रयोग अब नहीं होता अध्येताओं की सुविधा के लिए डॉ. रामसागर त्रिपाठी ने वर्णित आभूषणों की एक तालिका दी है।

अंग	आभूषण	विशेष
1 ललाट	टीका	यह कई रंगों के नगों से जड़ा जाता था।
2 कान	तर्यौना	लाल रंग से जड़ा हुआ।
3. नाक	मुरासा, बेसरि	मोतियों से जड़े इस आभूषण की छाया होठों पर पड़ती थी।
4. कंठ	गुलोबंद	कंठ से चिपका हुआ पहना जाता था।
	उरबसी	स्वर्ण निर्मित माणिक्य, रत्न जड़ित यह गले में पहना जाता था पर वक्ष से चिपका रहता था।
5. कमर	किंकिणी	बजने वाले घुँघरू लगे रहते थे।
6. हाथ	छल्ला	छिंगनी तथा दूसरी उँगली में पहना जाता था।
7. पैर	मंजीर	इसमें बजने वाले घुँघरू डाले जाते थे।
8. पैर का अँगूठा	अनवट	यह जड़ाऊ होता था।''[12]

सतसई का समग्र अध्ययन करने पर इन आभूषणों के अतिरिक्त बिहारी ने नागरी रमणियों के आभूषणों में अनेक प्रकार की बिन्दियों, हीरा जड़ी बेंदी, जड़ाऊ बिन्दी, पचरंग बिन्दी, लाल बिन्दी का चित्रण किया है। इस बिन्दी को चमत्कारिक रूप में नायिका की शोभा संवर्द्धन का हेतु माना है।

''कहत सबै बेंदी दिये, आँक दसगुनो होतु
तिय.लिलार बेंदी लसे, अनगिन होतु उदोतु।' '[13]

बिन्दियों के अतिरिक्त कान में पहने जाने वाली झुलमुली, कान के तरिवन, गले का हार, पैर में पहने जाने वाले चूड़े, पायल, हाथ में चूड़ी, उँगलियों में मुदरी, नाक में दो मोतियों वाली नथ तथा लोंग आदि का चमत्कारिक एवं शोभा संवर्द्धन हेतु वर्णन किया है। रीतिकाल के सन्दर्भ में डॉ. जनेश्वर प्रसाद का भी मानना है कि ''इस काल की नायिकाएँ स्वर्ण, हीरा, मोती आदि के बहुमूल्य आभूषण धारण करती थीं।' '[14] ग्रामीणाओं का सहज सिंगार पहुला हार और सन या सनकिरवा की बिन्दी है, चुहुटिनी की माल है, पहुला हार और छल्ला है। बच्चन सिंह ने परिधान, प्रसाधन और अलंकार-सौन्दर्य के आधार पर निम्न, मध्य और उच्च वर्ग भेद किए हैं। सतसई में अधिक वर्णन उच्चवर्गीय स्त्रियों के अलंकारों का है। इसलिए यहाँ अलंकारों का संख्या विस्तार भी खूब है। अलंकारों का जिक्र करते हुए लिखा है ''वे बेंदियाँ पहनती थी तो हीरे की जड़ी हुई, नाक में सींके पहनती भी तो नीलमणि से जड़ी हुई, ललाट पर टीका धारण करती थी, तो मणि.माणिक्य से संयुक्त, बेसरें ऐसी पहनती थीं जिनमें मोती झूलते थे।''15 16, 20, 25, 34, 82, 90, 97, 103, 105, 106, 129, 136, 137, 154, 173, 204, 208, 209, 212, 237, 248, 271, 322, 335, 305, 315, 338, 355, 413, 441, 611, 116, 626, 673, 676, 679, 685, 687, 690, 706, 707 आदि दोहे उपर्युक्त आभूषणों के चित्रण के रूप में देखे जा सकते हैं। पुरुष शोभा संवर्द्धक उपादानों का चित्रण भी बिहारी ने यत्र.तत्र किया है। सतसई में श्रीकृष्ण की रूप-छवियों को मुकुट, मोरचन्द्रिका, बाँसुरी, बनमाल, कटिकाछनी, मकराकृति कुण्डल आदि का चमत्कारिक एवं उद्दीपन रूप में सजाया है। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त सामान्य नायक के छल्ला, लालमणी आदि का चित्रण भी कई दोहों में हुआ है। श्रीकृष्ण के आभरण.सौन्दर्य की एक दो बानगी लेते हैं।

'कहा लड़ैते दृग करैं, परे लाल बेहाल
कहुँ मुरली कहुँ पीतपटु, कहूँ मुकुट बनमाल।'[16]

यहाँ गोपिका के नेत्र व्यापार से विकल कृष्ण की मुरली, मुकुट, बनमाल आदि रूढ़ आभूषणों को अस्तव्यस्त दिखाकर मनोदशा को लक्षित किया है। नारी-पुरुष कृत्रिम आभूषणों की चर्चा के बाद यह देखना दिलचस्प होगा कि अंग एवं रूप-सज्जा के लिए बिहारी उन्हें कितना आवश्यक मानते हैं। यहाँ कवि की आभूषणों को लेकर मौलिक सौन्दर्य-दृष्टि का भी उद्घाटन हो जाएगा। कालिदास ने 'किमिवहि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' कहकर नैसर्गिक रूप को सज्जा की आवश्यकता नहीं होती, इस तथ्य पर बल दिया था। बिहारी ने भी-'गोरे मुँह बेंदी लसै अरुन, पीत, सित श्याम' कहकर गौर वर्णी नायिका चाहे रोली की लाल, केशर की पीली, चन्दन की सफेद या मृगमद की श्याम बिन्दी लगा ले सभी उसके ललाट पर सुन्दर ही लगती हैं। अर्थात् बिहारी कृत्रिम अलंकरण की अपेक्षा नैसर्गिक रूप-सौन्दर्य को महत्त्व देते हैं। अलंकार नायिका के लिए शोभा कारक नहीं बस शोभावर्द्धक ही है। चमत्कारिक वर्णनो में वे साधन मात्र हैं, साध्य नहीं। तभी तो वे आभूषण नायिका की रूप-छवि को पवित्र और स्वच्छ बनाए रखने के लिए द्रष्टा के 'दृग पग पोछन' के लिए 'पायन्दाज' बन जाते हैं। कहीं वे देह के रंग से इतने मिल जाते हैं, कि उनका आभास स्पर्श से ही होता है। आचार्य केशव की 'भूषण बिनु न बिराजई' की स्थापना को झुठलाकर बिहारी ने सहज, नैसर्गिक रूप को महत्त्व दिया है। बिहारी की सौन्दर्य-दृष्टि में तो आभूषण केवल कहने मात्र के लिए शोभा के अंग हैं ये शोभा को बढ़ाते नहीं सुन्दरी के तन पर सजकर स्वयं सज्जित हो जाते हैं। नायिका की देह स्वच्छ निर्मल दर्पण है, कनकाभूषण तो देह.दर्पण में पड़े धब्बे जैसे जान पड़ते हैं। 'दरपन के से मोरचे' में यही आशय लक्षित हुआ है। बिहारी की मांसल ग्राम्या तो सुनकिरवा या सन की बिन्दी में ही मोहक लगती है। अलंकार रहित सौन्दर्य सहज है, स्वाभाविक है और वास्तविक भी है। इसीलिए कृत्रिम आभूषण बिहारी के यहाँ उपेक्षित हो जाते हैं। नैसर्गिक-सौन्दर्य को बाह्य अलंकरणों की आवश्यकता नहीं होती। ''सुन्दरी के ललाट पर भोडर की बिन्दी भी सुशोभित होती है।' '[17] स्वाभाविक सौन्दर्य से युक्त नारी को अलंकारों की आवश्यकता नहीं होती इस शास्त्रीय मत को स्थापित करने के लिए बिहारी कृत्रिम आभूषणों को भार स्वरूप तक कह देते हैं।

''भूषण भारु सँभारिहै, क्यों इह तन सुकुमार
सूधे पाँइ न धर परै, सोभा ही के भार।''[18]

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अलंकृत काल में भी बिहारी की दृष्टि अलंकारों के प्रति औचित्यपूर्ण रही है, वे केशव के समान अतिवादी नहीं। सहज नैसर्गिक-सौन्दर्य ही सौन्दर्य का आदर्श है। हाँ, बेंदी लगाने से जिस तरह अंक दस गुना हो जाता है उसी प्रकार नायिका का सहज-सौन्दर्य आभूषणों से संवर्द्धित तो होता है, पर उनकी अतिशयता

सौन्दर्य बाधक भी हो जाती है।

अंगराग-सौन्दर्य:-सौन्दर्य प्रसाधनों में अंगराग के सौन्दर्य को भी उच्च, मध्य, निम्न वर्गानुसार देखा जा सकता है। नागर अभिरुचि के बिहारी ने उच्चवर्गीय प्रसाधनों की चर्चा ही अधिक की है। चोवा, चन्दन, केशर, कस्तूरी, गुलाबजल, पानपीक की लाली से रंजित अधर, काजल, अंजन, केशर की आड़, महावर आदि का वर्णन अनेक दोहों में हुआ है। पान की पीक (दोहा सं.22, 96, 679, 440 आदि), महावर (दोहा सं. 22, 35, 44, 287, 608 आदि), काजल, अंजन, (दोहा सं. 5, 22, 46, 670 आदि), डिठौना (28) एपन, केशर की आड़ (दोहा सं.42, 93, 104 आदि), चन्दन (180) केशर (359) गुलाब जल आदि के लिए और भी अनेक उदाहरण मिल जाएँगे। इन अंगरागों का मूल्य कम नहीं होता। पर इसका कारण बिहारी अधिकांश जिन उच्चवर्गीय स्त्रियों का वर्णन कर रहे हैं उनके पास अर्थ की कोई कमी नहीं थी। इस बात का उल्लेख बच्चनसिंह ने भी किया है। सामन्तीय दृष्टिकोण के बिहारी के काव्य में अन्य वर्ग की स्त्रियों के प्रसाधनों का उल्लेख अत्यल्प हुआ है। इसका कारण बच्चन सिंह के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि ''सामंतीय वर्ग का उन्होंने जितनी ईमानदारी से किया है उतनी ईमानदारी से अन्य वर्ग का नहीं।''[19] ताम्बूल चर्वित मुँह, अंजनांजित नेत्रों को सहज सिंगार मानते हुए बिहारी का दृष्टिकोण है।

''बेंदी भाल तँबोल मुँह, सीस सिलसिले बार।
दृग आँजे राजै खरी, एई सहज सिंगार।।''[20]

अंगरागों के वर्णन में भी बिहारी की दृष्टि सहज नैसर्गिक सौन्दर्य को उत्कृष्ट सिद्ध करने वाली ही रही है। महावर आदि अंगराग पैरों की नैसर्गिक लालिमा में भ्रांति ही उत्पन्न करते हैं। नायिका के सहज कजरारे नैन स्वाभाविक श्यामलता से खंजन को तिरस्कृत करते है। ''अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन।''[21] अंगराग निर्दोष रूप.सौन्दर्य सम्पन्न अंगों में लगने से उसकी स्वच्छ छवि को मैला ही करते हैं।

''करतु मलिन आछी छबिहि, हरतु जु सहजु बिकासु
अंगरागु अंगनु लगै, ज्यौं आरसी उसास।''[22]

इस दोहे का संदर्भ देते हुए वर्तमान युग सापेक्ष बिहारी की सौन्दर्य.दृष्टि को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामदेव शुक्ल लिखते हैं ''विज्ञान के इस युग में सौन्दर्य प्रसाधनों की शक्ति इस हद तक बढ़ी हुई है कि अनेक पदार्थों के लेपन से काला शरीर भी गोरा हो जाय-कम से कम ऐसे दावे तो किए ही जाते हैं। प्राचीन काल में केशर, कस्तूरी, चन्दन आदि से कीमती अंगराग बनते थे जो कम सुन्दर शरीर को भी बहुत सुन्दर बनाते थे। उनके सम्बन्ध में बिहारी की धारणा है कि सुन्दर शरीर पर वे वैसे ही लगते है जैसे स्वच्छ दर्पण पर मुँह की भाप छोड़ देने से वह धुँधला हो जाता है।''[23] यहाँ बिहारी का जोर देह (त्वचा) की स्वाभाविक दीप्ति, स्निग्धता, चमक पर है, अंगराग उसे बढ़ाते नहीं धुँधला ही करते हैं। फिर भी बिहारी ने इन प्रसाधनों का निषेध नहीं किया। स्वासों की सुवास और अधर की लालिमा के लिए पान पीक, नेत्र-सौन्दर्य संवर्द्धन के लिए अंजन और काजल, पैरों की लालिमा को और गहराने के लिए महावर आदि अंगों की सज्जा हेतु अंगरागों का चमत्कारिक प्रयोग कराया है। नायिका के तलवे और एड़ियाँ इतनी आरक्त हैं कि महावर लगाने वाली नाइन को पहले से ही महावर लगे होने की भ्रांति हो जाती है। अधिकतर अंगरागों को नायिका की नैसर्गिक अंगशोभा के समक्ष हीन ही ठहराया है। पंचेन्द्रिय के आकर्षण के निमित्त त्वचा का स्निग्ध, चमकीला, स्वासों, अंगों को सुवासित करने के लिए ही सामन्तीय उच्चवर्ग की नागर अभिरुचि इन प्रसाधनों की ओर रही होगी।

कविवर बिहारी की सतसई में वस्तुनिष्ठ दृष्टि से जहाँ भी नायिका के रूप.सौन्दर्य का चित्रण हुआ है, वहाँ कवि ने नायिका के रूप-संवर्द्धन हेतु, तो कहीं भाव-संवेदन हेतु और कही-कहीं चामत्कारिक रूप में वस्त्राभूषणों का चित्रण किया है। फिर भी कवि को सदा यह ख्याल रहा है कि वस्त्राभूषणों के बोझ से कहीं नायिका की नैसर्गिक रूप-छटा कम न हो जाए।

सन्दर्भ सूची:-

1. डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी, सौन्दर्य तत्त्व निरूपण, वाणी प्रकाशन दिल्ली- 1977, पृ. 83
2. वही, पृ. 21
3. जगन्नाथ दास रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी- 1979, दोहा सं. 576
4. वही, दोहा सं. 340
5. वही, दोहा सं. 106
6. वही, दोहा सं. 188
7. वही, दोहा सं. 478
8. डॉ. जनेश्वर प्रसाद, रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललित कलाएँ, भारतीय विद्या प्र.वाराणसी- 1984 पृ. 57
9. बिहारी रत्नाकर, दोहा सं. 326
10. वही, दोहा सं. 189
11. आचार्य भामाह, काव्यालंकार, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना- 1962 (2,27)
12. डॉ. राम सागर त्रिपाठी, बिहारी मीमांसा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली- 1966, पृ. 15-16
13. बिहारी रत्नाकर, दोहा सं. 327
14. डॉ. जनेश्वर प्रसाद, रीतिकालीन श्रृंगारिकता एवं ललित कलाएँ, पृ. 56
15. डॉ. बच्चन सिंह, बिहारी का नया मूल्यांकन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद- 1993, पृ. 9
16. बिहारी रत्नाकर, दोहा सं. 154
17. बिहारी रत्नाकर, दोहा सं. 441
18. वही, दोहा सं. 322
19. डॉ. बच्चन सिंह, बिहारी का नया मूल्यांकन, पृ. 130
20. बिहारी रत्नाकर, दोहा सं. 679
21. वही, दोहा सं. 46
22. वही, दोहा सं. 324
23. डॉ.रामदेव शुक्ल, सामन्ती परिवेश का यथार्थ और बिहारी का काव्य, अभिव्यक्ति प्र. इला.- 2000 पृ. 67

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

निराला की 'अर्चना' में रूप-सौन्दर्य का सौरभ

सुमेधा दुबे

शोधार्थी, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

विद्वानों ने निराला को नवगीत का जनक माना है। अर्चना उनके आधुनिक गीतों का संग्रह है। निराला इसकी भूमिका में स्वयं लिखते हैं,''हिन्दी की भाषा साहित्य में ज्ञानी और भक्त कवियों की पंक्ति बैठी हुई है, जिनकी रचनाएँ साधारण जनों के जिह्वाग्र से अमृत की धारा बहा चुकी है, ऐसी अवस्था में लोकप्रियता की सफलता दुराशामात्र है।''[1] भाषा में सहज ही उच्चरित होने वाले शब्दों का प्रयोग हुआ है। अर्चना के प्रथम गीत 'भव-अर्णव की तरुणी तरुणा' गीत में तुलसीदास की पंक्ति जिसमें रूप.सौन्दर्य की अनिर्वचनीयता मुखरित होती है। 'गिरा अनयन, नयव बिनु बाणी' का ही उल्लेख ''अनयन नयन-नयन की हो तुम''[2] में हुआ है। इसी गीत में 'हास तुम्हारा पाश' में चेष्टा-सौन्दर्य व्यंजित है। 'तन की, मन की, धन की हो तुम' गीत में आंतरिक भाव.सौन्दर्य की सरणी है।

''गहरे गया, तुम्हें तब पाया,
रही अन्यथा कायिक छाया।''[3]

अर्चना की तीसरे गीत 'भज भिखारी, विश्वभरणा' में पतित का हाथ पकड़कर चलाने वालों को मानवीय संवेदना के साथ सम्मान दिया है। 'भिक्षुक' कविता की छाया भी इसमें देखने को मिलती है। यहाँ करुणा-संवेदना का भाव-सौन्दर्य व्यंजित हुआ है। पाँचवें गीत 'पंक्ति. पंक्ति में मान तुम्हारा' गीत में अंग-छवि एवं चेष्टा-सौन्दर्य व्यक्त हुआ है।

''आँख.आँख पर भाव बदलकर,
चमके हो रँग-छवि के पल-भर।''[4]

छठे गीत 'दुरित दूर करो नाथ' में एकाकीपन की पीड़ा कण्टकाकीर्ण पथ के पीड़ादायक अनुभव के बीच प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से आशावादी भाव-सौन्दर्य व्यक्त हुआ है। विश्वनाथ से कवि जीवन को विपुल व्याल से मुक्त करने की वांछा भी व्यक्त करता है। भव-सागर से पार करो' गीत में भी पशुता, अहंकार एवं मोह.माया से मुक्ति.कामना में आध्यात्मिक भाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। 'लगी लगन, जगे नयन', 'शिशिर की शर्वरी', 'आशा-आशा मरे', 'छाँह ना छोड़ी', 'साधो मग डगमग पग' जैसे गीतों में वासना के विषम अंधत्व, संशय मुक्ति, पशुता, भूख-प्यास की पीड़ा, निराशा तथा संसार की जागृति आदि भावों के सौन्दर्य को प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से उच्च मानवीय मूल्यों के साथ प्रतिष्ठित किया है। 'सोयीं अखियाँ' गीत में सरस दर्शन से आँखों के भर जाने एवं बाहर की खोज पर विराम लगाकर, पलकों के द्वार बंदकर अतःसौन्दर्य की सलिला प्रवाहित की है। 'तिमिरदारण मिहिर दरसो' गीत में अंधकार से मुक्त होकर अंधकार को समाप्त करने वाले भगवान भास्कर के दर्शन की अभिलाषा कवि ने की है। 'राम की शक्ति पूजा' में जो रवि अस्त हो गया था और रघुनन्दन के नेत्रों में पुनः नैराश्य के बाद आशा की किरण प्रकाशित हुई थी, उसका संकेत भी यहाँ मिलता है। निराशा से आशा के प्रकाश की यात्रा का भाव.सौन्दर्य इस गीत में व्यक्त हुआ है।

'तुम जो सुथरे पथ उतरे हो' गीत में केश, मुख, अधर उरोज आदि अंगों के साथ आभा.सौन्दर्य 'ज्योतिश्छवि', 'ज्योतिश्छाय' जैसे पदों में व्यक्त हुई है। अश्रु ओस की भेंट बन गये हैं 'मधु मकरन्द', 'पवन मन्द-मृदु-गंध' आदि प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से मिश्रित रूप.सौन्दर्य की बानगी प्रस्तुत हुई है। 'जिनकी नहीं मानी कान' गीत में चेष्टा.सौन्दर्य का जीवन के सन्दर्भ में अद्भुत प्रयोग निराला ने किया है।

''आँख से आँख की खायी कटारी।''[5]

अलग-अलग संदर्भों में आँखों की दृष्टि पर विविध उपमाएँ पिरोई हैं। दृष्टि हृदय वेधक है, इसलिए कटारी की उपमा चेष्टा-सौन्दर्य के साथ दी गई है। 'दीप जलता रहा' गीत में 'पलक-दल रुक गए आँख जैसे लगी' जागतिक संदर्भ में नेत्रों की चेष्टा द्वारा व्यंजना के आश्रय में सौन्दर्य व्यंजित हुआ है। 'आँख लगायी तुमसे जब से' गीत में छल आदि को नकारकर चेष्टा एवं प्रभाव-सौन्दर्य व्यंजित हुआ है। 'दो सदा सत्संग मुझको' गीत में झूठ और सच का द्वन्द्व है, इसमें सत्य की साधना में कवि रत हो जाना चाहता है। 'चंग चढ़ी थी हमारी' गीत में चेष्टा-सौन्दर्य के संकेत मिलता है।

''आँख लगी जो हमारी, तुम्हारी कोर न छूटी।''[6]

'नयन नहाये, जब से उसकी छवि में रूप बहाये' गीत में छवि के प्रभाव का चित्र उकेरा गया है। यहाँ 'रंगभरी', 'अंग भरी', 'गातहरी' 'जोबन-जोबन से सँवरी' यौवना का चित्रण है। गीत में पुष्ट अंगों, सुदर्शन यौवन, रूप-सौन्दर्य की सज्जा आदि के चित्र उपस्थित हुए हैं। 'सरल तार, नवलगान' गीत में 'नव-नव स्वर', 'नव कलि', 'नव-नव अंजलि', 'नव-नव-मधु-गंध-पान', 'नव. रस', 'नव यौवन' तथा 'नव जीवन' आदि पदों के माध्यम से कवि, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और प्रकृति में नवीनता को सौन्दर्य का आधार मानता है। 'पार संसार के' गीत में मुक्ति के द्वार तक पहुँचाते हुए आध्यात्मिक सौन्दर्य की व्यंजना हुई है। 'प्रथम बन्दूँ पद विनिर्मल' गीत में नूपुर, हार आदि सौन्दर्य विधायक अलंकारों, आभूषणों का जिक्र हुआ है। 'पैर उठे, हवा चली' गीत में हर हृदय की कलिका के खिल जाने में प्रसन्नता और आनंद मिश्रित भाव-सौन्दर्य की व्यंजना हुई है। 'और न अब भरमाओ' गीत में 'लट अटकी है' पद में अद्भुत चेष्टा-सौन्दर्य की व्यंजना फागुन और फाग के परिवेश में हुई है।

''रह-रहकर मारे पर, यौवन के ज्वर के शर
नव.नव कल कोमल कर।''[7]

'अलि की गूँज चली द्रुम-कुंजों' गीत में अंग.सौन्दर्य 'उल्टी-सीधी बाल सँवरकर', 'मधु के फूटे अधर-अधर धर' पदों में अंग-माधुर्य का सौन्दर्य व्यक्त हुआ है। 'आज प्रथम गायी पिक पंचम' गीत में 'मनोरम विपिन', 'कुसुम-तरु फूले', 'किसलयों', 'बौर-बौर पर भौंरे' आदि पदों में प्रकृति-सौन्दर्य दर्शनीय है। 'फूटे हैं आमों में बौर' गीत में फागुनी परिवेश में प्रकृति के प्रभाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। 'अर्चना' गीत संग्रह में फागुनी परिवेश के सौन्दर्य के कई गीत निराला ने लिखे हैं। फागुन के रंग-राग ने निराला के अंतर मन को लगता है निकटता से छुआ है, इसलिए चौंतीसवें गीत 'खेलूँगी कभी न होली' में 'आँख नहीं कुछ बोली', 'गाढ़े-रेशम की चोली', 'घूँघट तुम खोलो' जैसे पदों में वस्त्राभूषण एवं चेष्टा-सौन्दर्य व्यक्त हुआ है। 'प्यास लगी है, बुझाओं' गीत में एक प्रकार की हृदय की अभिलाषा को सुन्दर आकार दिया है, जिससे जीवन प्रफुल्लित हो सके।

''मूँदा कमल खिलाओ- अमृत के घूँट पिलाओ।''[8]

'केशर की कलि की पिचकारी' गीत में होली का प्राकृतिक परिदृश्य उपस्थित हुआ है। पत्ते-पत्ते कलियों की पिचकारी की केशर से रँग गए हैं। पूरी प्रकृति नायिका की भाँति होली के लाल-पीले रंग में रँग गई है। 'बाँधों न नाव इस ठाँव, बंधु!' गीत में घाट पर नहाती हुई यौवना का स्मृति-चित्र कवि को चलायमान कर रहा है, क्योंकि जिस घाट पर वह यौवना स्नान करती थी, नाविक नाव को उसी घाट पर बाँधना चाहता है।

''यह घाट वही जिस पर हँसकर, वह कभी नहाती थी धँसकर,
आँखें रह जाती थीं फँसकर, कँपते थे दोनों पाँव, बन्धु!
वह हँसी बहुत कुछ कहती थी।''[9]

इन पंक्तियों में नायिका की चेष्टा एवं आश्रय पर पड़े रूप.सौन्दर्य के प्रभाव का सरस चित्रण हुआ है। वह मौन थी पर उसकी हँसी बहुत कुछ कहती थी पंक्ति में शब्दरहित प्रणयाभिव्यक्ति की हृदयस्पर्शी योजना हुई है। 'गिरते जीवन को उठा दिया' गीत में प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से जीवन से जुड़े हुए भावों का चित्रण किया गया है।

''बैठाला ज्योतिर्मुख करकर, खोली छवि तमस्तोम हरकर।''[10]

'धीरे-धीरे हँसकर आयीं' गीत में मुस्कान, चेष्टा आदि सौन्दर्य का चित्र उपस्थित हुआ है। 'सुर तरुवर शाखा खिली पुष्प भाषा' गीत में प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से अंग एवं चेष्टा-सौन्दर्य के कुछ चित्र उपस्थित किए हैं। 'मीलित नयनों', 'अधर-अधर', 'उभरे, उर-मधुर परस', 'हँसी केश-पाशा' पंक्तियों में उरोजों के उभार, केश-पाश, अधर आदि के चित्र उपस्थित हुए हैं। 'वेदना बनी, मेरी अवनी' गीत में कुछ विलक्षण भावों का सौन्दर्य एवं अंगों के चित्र उपस्थित हुए हैं। विपदा का अंगों पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे निराला ने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है कि कमल-कोमल मृदुल चरण भी विपदा में कठोर हो जाते हैं, पर प्रिय के आश्रय में जैसे बादलों की छाया ही मिल जाती है।

''तुमने जो गही बाँह, वारिद की हुई छाँह।''[11]

'आँख बचाते हो' गीत में नवीन रूप-दर्शन की कल्पना की गई है। 'खुलकर गिरती है' गीत में सरिता के निर्झरन तथा कुछ मृदु चेष्टाओं के प्रकृति-सुन्दरी के साथ संकेत किए हैं - 'काम, इशारा नहीं आया तो', 'मुसकाया, मन को भाया जो'। 'तन, मन, धन, वारे हैं' गीत में रतनारे सुन्दर नेत्रों को उद्दीपन, संदीपन, परम-रमण, पाप-शमन आदि विशेषणों से युक्त कर नेत्र-सौन्दर्य की भाव-प्रवण अभिव्यक्ति की है। विरह की अवस्था में विरह.प्रेम में जगकर आँखों का तरल चित्र 'वे कह जो गए कल आने को' गीत में उपस्थित किया है।

''खग-पाँख-मढ़ी मृग-आँख लगी,
अनुराग जगी दुख के तल्पों।''[12]

'घन तम से आवृत धरणी है;' गीत में भी प्राकृतिक सुषमा के ही चित्र हैं। 'तुम से जो मिले नयन' गीत में अंग-प्रत्यंग का खिलना, अलकों से मंद-मंद गंध का फूटना तथा अधर आदि का प्राकृतिक परिवेश के बहाने से आध्यात्मिक भाव-सौन्दर्य को रूपायित हुआ है। 'वन-वन के झरे पात' गीत में 'फूटे नव पत्र-गान' के माध्यम से पतझर से बसंत तक की प्राकृतिक यात्रा सम्पन्न की है। अगले गीत में भी 'वन के बसंत के मन भाये' गीत में भी बसंत का ही चित्रण है। 'गीत गाने दो मुझे तो' गीत में समाज में व्याप्त वेदना के परिशमन के लिए नैराश्य के अंधकार में आशा के संचार के लिए निराला गीत गाना चाहते हैं। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की विषमता में शक्ति-पूजा की तरह ही मानवता को सशक्त करना चाहते हैं। यहाँ आशा के आलोक का भाव-सौन्दर्य प्रबोधन के रूप में साकार हुआ है, इसलिए निराला कहते हैं-

''बुझ गयी है लौ पृथा की, जल उठो फिर सींचने को।''[13]

सहजता का भी अपना ही सौन्दर्य होता है। चाहे जीवन में हो, व्यवहार या भाषा में हो। ''सहज-सहज कर दो, सकलश रस भर दो'' पंक्ति कुछ इसी प्रकार का भाव.सौन्दर्य व्यक्त करती है।''[14] 'वासना-समासीना' गीत में प्रकृति पर अंग-सौन्दर्य का आरोप किया गया है। जहाँ जलद-पयोधर बन गए हैं और व्योम की मुख-छवि बिखरी हुई है। पीड़ा और वेदना के भाव-सौन्दर्य में शशि-मुख को देखना चाहते हैं, पर दुख की रात्रि बितती नहीं है। आँसू की लड़ियों में मोतियों के हार पिरो दिए हैं। यहाँ अलंकरणों एवं अंग का सौन्दर्य व्यंजित है। 'हार तुमसे बनी है जय' गीत में नूपुरों आदि आभूषणों, अनरुण अधर का रच जाना आदि पदों में अंग-सौन्दर्य व्यंजित हुआ है। निराला को अन्य भारतीय त्योहारों की अपेक्षा फागुन, फाग, होली से कुछ विशेष लगाव है।

''अट नहीं रही है, आभा फागुन की तन,
आँख हटाता हूँ तो, हट नहीं रही है।
पाट-पाट शोभा श्री, पट नहीं रही है।''[15]

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से प्रकृति-सौन्दर्य, दृष्टा पर सौन्दर्य के प्रभाव एवं शोभा-श्री को यहाँ व्यंजित किया गया है। 'कुँज.कुँज कोयल बोली' गीत में भी प्रकृति-सौन्दर्य का सुन्दर सम्भाव नारी के अंग-सौन्दर्य के सापेक्ष दर्शाया है। जहाँ 'सुरभित पल्लव की चोली है' कोयल ने अपने स्वरों की मादकता लता-कुंजों में घोल दी है, भ्रमरों की गुंजार से कलिका दोलायमान है। 'प्रिय के हाथ लगायी जागी' गीत में नायिका की सुषुप्ति और जागरण में विलम्ब होने की अवस्था का सरस चित्रण हुआ है। 'तार-तार निकल गए' गीत में आँखों की गलियों का खुल जाना, अंग-अंग में सुरभि और रंग का व्याप्त हो जाना बड़ी ही मनोहरता के साथ चित्रित हुआ है।

''आँखों की खुली गली, मिली कलित.गन्ध कली,
भीतर जो रही छली, अंग सुरभि.रंग छये।''[16]

'लघु तटिनी, तट छायीं कलियाँ' गीत में प्रकृति के माध्यम से नदी तट पर कलिकाओं की खिलन, भ्रमरियों के गुंजन आदि का चित्रण है। साथ ही मानवीय रूप-सौन्दर्य का प्रकृति पर आरोपण भी हुआ है।

''सुख के उठते हैं पुलकित डग,
रह जाती हैं अपल पुतलियाँ।''[17]

'गीत गाये हैं मधुर-स्वर' गीत में प्रकृति-सौन्दर्य के लुभावने

सुहावने चित्र उपस्थित हुए हैं।प्राणों को जो पुलकित कर दे ऐसी प्राणों में बसी हुई आलम्बन का चेष्टा-सौन्दर्य 'हँसो अधर-धरी हँसी' गीत में अभिव्यक्त हुआ है। जयशंकर प्रसाद को सौन्दर्य-चित्रण के उपादान के रूप में नीला रंग बहुत भाया है, उन्होंने श्रद्धा आदि अपनी कथा नायिका को इसीलिए नील परिधान पहनाया है। निराला ने भी भाव-भरी आँखों के लिए रस घन छायी हुई नीलिमा की, सारी सुन्दरता एक ही गीत में 16 स्थानों पर एक साथ व्यंजित कर दी। 'नील जलधि जल' गीत में नीलिमा के ये चित्र उपस्थित हैं। 'अनमिल-अनमिल मिलते' गीत में बिना मिले ही मिलने में काल्पनिक आकाश में, जगत् को पार करके द्रष्टा की आँखें सौन्दर्य-लोक तक पहुँच जाना चाहती हैं। सौन्दर्य-विधान को देव और मानव से परे निराला पहुँचा देते हैं, 'मुँदे नयन, मिले प्राण' गीत में यह चित्र द्रष्टव्य है। 'जननी, मोह की रजनी' गीत में बनी.ठनी महिलाओं, उनके वस्त्राभूषण आदि के सौन्दर्य का चित्रण हैं।

''साड़ी के खिले मोर, रेशम के हिले छोर।''[18]

'तुम आये कनकाचल छाये' गीत में यौवन उपवन मधुर पावन सावन की सरसता, सुषमा से युक्त लहराते हुए सरोवर आदि का चित्रण, सूर्योदय के समग्र प्रकृति-सौन्दर्य के रूप में हुआ है। साथ ही आध्यात्मिक रूप.सौन्दर्य की अभिव्यंजना भी हुई है।

''तू दिगम्बर, विश्व है घर, विष्णु-शंकर।''[19]

गीत में भी आध्यात्मिक सौन्दर्य देखा जा सकता है। मृग के नेत्र-सौन्दर्य को श्रीकृष्ण ने छीन लिया है। यहाँ प्रतीप अलंकार के द्वारा नेत्र-सौन्दर्य की व्यंजना है, साथ ही नेत्र पवित्रता के रंग में सराबोर दर्शाएँ गए हैं। गीत को पढ़ते हुए सहसा कविवर बिहारी की पंक्ति 'हरिणी के नैनान ते, हरि नीके ये नैन' का स्मरण हो आता है। इस गीत में झीने बसन और सुन्दर हसन का भी मनोहारी चित्र उपस्थित हुआ है।

भक्तिकाल में तुलसी से लेकर जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' की गंगा लहरी तक पतित पावनी गंगा पर अनेक श्रेष्ठ कविताएँ लिखी गईं। सुमित्रानंदन पंत की 'नौका-विहार' गंगा के मानवीकृत रूप.सौन्दर्य की अच्छी कविता है। निराला ने भी गंगा के अराल कटाव रूपी भ्रू-भंग के साथ 'निर्मल-जल-कल-रंगे', 'कनकाचल-विमल धुली' आदि विशेषणों से गंगा के रूप-सौन्दर्य को 'पतित पावनी, गंगे' गीत में रूपायित किया है। 'जगती से न कभी बन आयी' संसार से निराला की प्रायः अनबन रही है, इसलिए वे अव्यक्त सत्ता के चरणों को जगत् की प्रवंचना के परिणाम तथा भक्ति-भाव के उमड़े आँसुओं से पखारना चाहते हैं और उसी अव्यक्त के चरणों को मौन हो पकड़ लेना चाहते हैं।

''भक्ति-आँसुओं पद पखारकर,
नयन-ज्योति आरति उतारकर।''[20]

आध्यात्मिक भावनात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से 'विपद-भय-निवारण करेगा वही सुन' गीत महत्त्वपूर्ण है, जहाँ निराला निन्दारहित होकर, व्यर्थ की बकवास छोड़कर, भेद-भाव की आग से मुक्त होकर, अव्यक्त आलम्बन का ध्यान करना चाहते हैं और वहाँ शीघ्रता से पहुँच जाना चाहते हैं। राधा-कृष्ण की उपासना भक्तिकाल से रीतिकाल और भारतेन्दु से हरिऔध के प्रियप्रवास तक अक्षुण्ण चलती रही है। अर्चना में श्यामा-श्याम के (राधा-कृष्ण) युगल चरणों में निराला ने भी अर्चना के स्वर गुंजित किए हैं, उन्होंने 'श्याम-श्यामा के युगल पद' गीत में मन को कोकनद बना दिया है। निर्दोष, निष्पाप, नयनों का वन्दन, सच्चे आश्रय राधा-कृष्ण के चरणों में प्रस्तुत किया है। निराला ने अगले गीत में श्रीराम की अर्चना की है। राधा-कृष्ण और श्रीराम का अर्चन करने के पश्चात् 'अर्चना' संग्रह में देवी भगवती भवानी का स्तवन किया है, जिनके हाथों में विजय का वरदान है, जगत् में जो गति और सुमति का कारण हैं, ऐसी भवानी का अर्चन 'हे जननि! तुम तपश्चरिता' गीत में 'चरण पर मस्तक झुकाकर' किया है। 'मुक्तादल जब बरसो' गीत में कवि की अभिलाषा व्यक्त हुई है। इस गीत में वर्षा के प्रभाव का वर्णन है। मयूर का नर्तन, भँवरों की गुंजार, कोकिल का कूजन के रूप में यह प्रभाव वर्णित है। 'अनियारे दृग के तारे द्वय', 'छबि-छबि से', 'अमित रूपजल' आदि पदों में नेत्र और रूप-छबि का केनवास प्रकृति-छटा के साथ 'सावन पावन परसो' गीत में सजाया है। प्राकृतिक उपादानों के आधार पर रूप-सौन्दर्य की घटा 'गगन गगन है गान तुम्हारा' गीत में देखी जा सकती है।

''यौवन यौवन बाँधे सुनयन,
तन तन मन साधे मन मन तन।''[21]

प्रकृति के ललित लाश्य का एक और सौन्दर्य चित्र 'बीन वारण के वरण घन' गीत में देखा जा सकता है। जहाँ नूपुर आदि की झन्कार आँखों के सामने ध्वन्यात्मक चित्र उपस्थित कर देती है। सौन्दर्य-लोक ऐसा है कि सुध.बुध भी विस्मृत हो जाती है।

''चतुर्दिक छन-छन छनन-छन,
बिना नूपुर के रणन-रण,
वीचि के फिर शिखर पर,
फिर गर्त पर, फिर सुध बिसारी।''[22]

''घन आये, घनश्याम न आये, जल बरसे आँसू दृग छाये''[23] गीत में वियोगिनी गोपी का वियोगावस्था में अश्रुल नेत्रों का अंग.सौन्दर्य अद्भुत है। 'किरणों की परियाँ मुसका दीं' गीत में किरण-परियों की मुस्कान चिर मिलनातुर की स्थिर चितवन, नूपुरों का रणन आदि में रूप-सौन्दर्य का प्रकृति सापेक्ष अद्भुत चित्रण हुआ है। 'तुम्हारी छाँह है, छल है' गीत के माध्यम से 'तुम्हारे बाल', 'दृगों में ज्योति', 'उरोरुह', 'सुतनुता' तथा 'प्रभा' आदि पदों में अंग एवं दीप्ति सौन्दर्य का वैलक्षण्य के साथ अद्भुत चित्रण हुआ है। एक और गीत में माँ भवानी का आध्यात्मिक चित्रण है। माँ भगवती से कृपा की चितवन की याचना कवि करता है। यहाँ चेष्टा-सौन्दर्य के साथ दिव्य आलोक की आभा-सौन्दर्य भी 'माँ, अपने आलोक निखारो' गीत में व्यंजित है। 'चलीं निशि में तुम, आयीं प्रात' गीत में नूपुरों का निक्वण 'हीरकाभरण', 'पग जलजात', 'नवल वीक्षण' आदि पदों में अंग-सौन्दर्य, आभूषण-सौन्दर्य एवं चेष्टा-सौन्दर्य तीनों के चित्र उपस्थित हुए हैं। 'तपी आतप से जो सित गात' गीत में ''स्निग्ध शशि जैसे मुख अवदात''[24] पंक्ति में अंग-सौन्दर्य देखा जा सकता है। 'अर्चना' का अंतिम गीत सुमन 'मन मधु बन, आली!' गीत में गगन में छायी काली घटा, सौदामिनी की दमक, सजी सुतनु आदि पदों के साथ ''झुका दृगों से जिसने देखा, तन-मन-धन पा-ली ताली''[25] पंक्ति में चेष्टा-सौन्दर्य व्यंजित हैं।

निराला ने जीवन के यथार्थ मानवीय नियति, विवशताओं तथा सहज सरल जीवन के चित्र भी अर्चना में उपस्थित किए हैं। इसीलिए निराला के सन्दर्भ में बच्चन सिंह का मंतव्य है ''एक ओर उनमें विद्रोह का स्वर मुखर है तो दूसरी ओर मानवीय नियति और विवशताओं की करुण रागिनी। इतने सारे अन्तर्विरोध उसी व्यक्ति में दिखाई पड़ सकते हैं जो निरन्तर संघर्षों में टूटता और निर्मित होता रहा है।''[26] अर्चना के गीतों में आध्यात्मिक आत्मचेतना का सौन्दर्य भी परिलक्षित हुआ है। जहाँ ज्योति की ओर की

प्रस्थान है संभवतः इसीलिए डॉ. भगवानदेव यादव कहते हैं, ''दरअसल, निराला मानस के ऊर्ध्व स्तरों से ही सौन्दर्य के मांसल स्तर पर आते हैं और सारी सौन्दर्य-सुरभि लेकर ऊर्ध्वमुख हो जाते हैं।''[27] 'अर्चना' निराला की परवर्ती काव्य-सृजन की प्रमख कृति है। नरेश मेहता ने अर्चना को निराला की 'विनयपत्रिका' कहा है। इस गीत संग्रह में आध्यात्मिकता है, धर्म भावना है। नंदकिशोर नवल ने इसे निरी धर्म भावना न मानते हुए कार्ल मार्क्स की उक्ति को कोट किया है। ''धार्मिक वेदना एक साथ ही वास्तविक वेदना की अभिव्यक्ति और वास्तविक वेदना के विरूद्ध विद्रोह भी है।''[28] निराला ने रूप.सौन्दर्य का दर्शन केवल संभावित क्षेत्र में ही नहीं किया अपितु असंभाव्य क्षेत्रों में भी वे अपनी अन्तर्वेधिनी दृष्टि ले गए हैं।

अर्चना के गीतों में स्वातन्त्रोत्तर भारत के यथार्थ को बहुत तीखे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस गीत-संग्रह में निराला का स्वर आत्मपरक अधिक है। समग्रतः अर्चना के गीतों में प्रकृति.अर्चना की छटा है, पतित पावनी गंगा का कलनिनाद है, प्रेमपरक गीतों में गहन आत्मलीनता है। ग्रामीण अंचल की सहजता व सरलता है, सौन्दर्यात्मक पक्षों का विविध रूपों में चित्रण है। राधा-कृष्ण, श्रीराम, भगवती भवानी, भगवान शंकर आदि के अर्चन में आध्यात्मिक भाव-सौन्दर्य का प्रकाशन हुआ है, प्रकृति और मानवीय सौन्दर्य का सुन्दर सामंजस्य है, जहाँ अंग-सौन्दर्य, चेष्टा-सौन्दर्य, आभरण, अलंकरण-सौन्दर्य, शोभा-दीप्ति-कांति का सौन्दर्य तथा भाव-बुद्धि-सौन्दर्य की अनूठी झाँकियाँ सज्जित हैं।

सन्दर्भ सूची:-

1. सूर्यकांत त्रिपाठी, अर्चना, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, द्वि. सं. 2020, पृ. 5
2. वही, पृ.16
3. वही, पृ.16
4. वही, पृ.19
5. वही, पृ.32
6. वही, पृ.36
7. वही, पृ. 44
8. वही, पृ.49
9. वही, पृ.51
10. वही, पृ.52
11. वही, पृ.57
12. वही, पृ.62
13. वही, पृ.73
14. वही, पृ.74
15. वही, पृ.78
16. वही, पृ.83
17. वही, पृ.84
18. वही, पृ.95
19. वही, पृ.102
20. वही, पृ.111
21. वही, पृ.117
22. वही, पृ.118
23. वही, पृ. 119
24. वही, पृ.125
25. वही, पृ.126
26. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, पृ.157
27. डॉ. भगवान देव यादव, निराला का काव्य का वस्तुतत्व, पृ.287
28. नंदकिशोर नवल, अर्चना, कवर पृष्ठ

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से पड़ने वाला प्रभाव 'हनुमानगढ़ जिले के विशेष सन्दर्भ में'

कृष्ण लाल

डॉ. हरवीर यादव

1. शोधार्थी, भूगोल विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान
2. सहायक आचार्य एवं शोध निर्देशक, भूगोल विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

शोध सार :–कृषि परम्परागत राष्ट्र मे विशेष कर भारत मे एक आजीविका है, क्रिया उपागम है, जीवन पद्धति है, एक समाज है। तथा एक सांस्कृतिक विरासत है, जो भारत को सदियों से जीवित रखे हुए है।

आधुनिकरण ने प्राकृतिक संसाधनो का अन्धाधुध उपयोग जब तकनीकी स्वर वैज्ञानिक अन्वेषण, आविष्कारो ने कृषि विकास की उत्पादन क्षमता को बढ़ाया हो तथा कृषि मे नये आयामो को जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप हमे विभिन्न प्रकार की पर्यावरणीय समस्याओं का सच सामना करना पड़ा है।

प्रस्तुत शोधकार्य मे हनुमानगढ़ जिले जिले मे प्रयुक्त होने वाले रासायनिक जलाको उतरको के प्रभावो का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना :–भारत विश्व मे अपना प्रमुख स्थान है। देश और वर्तमान मे यह विकासशील देशो की श्रेणी से निकलकर विकसित देशों की श्रेणी की ओर अग्रसर हो रहा है। भारत की अव्यस्था का मुख्य आधार कृषि है। जो परम्परात जीविका का साधन माना जाता है। इसके अलावा कृषि भारतीय जनसंख्या मे कार्यशील जनसंख्या को आजीविका का स्त्रोत परिवार प्रदान करती है।

प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक कृषि मे अनेक बदलाव देखने को मिले। जिसके परिणाम स्वरूप इसके स्वरूपों मे विभिन्न बदलाव देखने को मिले। रासायनिक उर्वरको का उपयोग उत्पादकता बढ़ाने के लिए किया गया। जिसके कृषि मे सकारात्मक परिणामो जन्म दिया लेकिन इसके विपरीत कुछ नमाचजक प्रभाव भी देखने को मिले। को निमन है यो विभिन्न पर्यावरणीय समस्यों को जन्म दे रहे है।

अध्ययन क्षेत्र :–प्रस्तुत शोध पत्र राजस्थान राज्य के हनुमानगर जिले के सन्दर्भ मे प्रस्तुत किया गया है। इसे प्राचीन समय मे भटनेर कहाँ जाता था पहले यह श्री गंगानगर दिले का हिस्सा था। 12–7–1994 इसे एक अलग जिले का रूप दिया गया।

यह जिला राजस्थान के उत्तर–पश्चिमो आग मे स्थित है। इसका क्षेत्रफल 12645 वर्ग किमी है। यह 29050 से 3006 उतरी अक्षाश से 740 से 7506 पूर्वी देशान्तर के मध्य फैला हुआ है।

शोध समस्या चयन :–राजस्थान मे कृषि आधुनिकरण के कई क्रियाकलापों को सम्बन्धित किया जाता है। आधुनिक कृषि क्रियाकलापो से राजस्थान के कई जिलो पर अत्याधिक प्रभाव पड़ा है। आधुनिक कृषि के जिले पर प्रभाव को जानने के लिए हनुमानगढ़ जिले का चयन किया गया है।

अनुसंधान कार्य के उद्देश्य :–शोध का मुख्य उद्देश्य हनुमानगढ़ जिले मे कृषि विकास से पड़ने वाले प्रभावी अध्ययन करना तथा इससे उत्पन्न समस्याओ समाधान का आंकलन करना।

अनुसंधान की अवचारणा :– किसी भी शोधकार्य को करने से पहले कुछ परिकल्पनाएं की जाती है। जो सकारात्मक व नकारात्मक दोनो तरह की होती है। जिसके आधार ही शोध क्रियाओं एक प्रमाणिक विषय के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

अध्ययन विधि व आँकडो का संकलन :–प्रस्तुत शोध कार्य मे आंकड़ो का संकलुन मुख्य रूप से प्राथमिक व द्वितीयक समूक पर आधारित है। साथ मे प्राथमिक समको को एकत्रित करने के लिए प्रश्नावली तैयार करके कृषको से प्रश्न पूछना। द्वितीयक समको के लिए कृषि मंत्रालय की रिपोर्ट कृषि भवन तथा अन्य सम्बन्धित संस्क पुस्तकालय के आकड़ो को एकत्रित किया गया है।

शोध का महत्व :–इस शोध पत्र के माध्यम से किसानो उत्पादन लागत की स्थिति का पता रस्ते से लगाया जाएगा तथा उर्वरको से फ़सलो व पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का आंकलन किया जाएगा

विश्लेषण :–हनुमानगढ़ जिले मे बढती जनसंख्या व खाद्यानों की करती को पूरा करने के लिए कृषि की उत्पादकता को बढाते हेतू विभिन्न रासायनिक खादो तथा उर्वरको का प्रयोग किया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादो मे निरंतर वृद्धि रही है। लेकिन कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थों असून्दलन पैदा होता जा रहा है। वो मानव स्वास्थ अत्याधिक प्रभावित कर रहा है।

जिले मे रासायनिक उर्वरको से उत्पन्न फ़सलो से मानव के अलावा, चारा फ़सले से पशु भी अत्यधिक प्रभावित हो रहे हैं। पशुओ मे विभिन्न पाचन समस्याएँ, चर्मरोग, व रोग प्रतिरोधक क्षमता जा रही है।

भूमि मे रासायनिक उर्वरको के प्रबन्ध हेतु सुझाव :–अध्ययन क्षेत्र मे भूमि मे रासायनिक उर्वरको से होने वाली समस्याओ की तरफध्यान आकर्षित किया है। अत्याधिक उर्वरको के प्रयोग से भूमि मे विभिन्न प्रकार की समस्याएँ जैसे जलक्रान्ता, भूमि मे लवणता की मात्रा का बढ़ना मे भूमि विभिन्न पोषक तत्वो का दूषित होना इत्यादि सदस्या उत्पन्न हो रही है।

इन उर्वरको के सिमित व प्रबन्धित उपयोग के साथ–साथ जैविक खेती के प्रावधानों को भी अपनाना चाहिए जो हमारे लिए पर्यावरण के लिए तथा भूमि के लिए अत्याधिक लिए अत्याधिक उपयोगी स्वार लाभकारी सिद्ध

होगा।

सन्दर्भ सूची:-

1. कौशिक, एम, डी. (1996)- ''मानव एवं आर्थिक भूगोल रस्तोगी प्रकाशन (मेरठ)
2. जोशी, वाइ, जी. (1972)- नर्मदा बेसिन का कृषि भूगोल मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी (भोपाल)
3. बसन्त मोघे: (1985)- राजस्थान में कृषि उत्पादन हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर
4. सक्सेना एच. एम. (1978) राजस्थान का भूगोल हिन्दी ग्रन्थ अकादमी (जयपुर)
5. BHTIA S.S. [1965]- "PATTERN OF CROP CONCENTRATION AND DIVERSIFICA TION IN INDIA' ECONOMIC GEOGRA PHY
6. BRIAN.W.ILBERY [1986] AGRICULTUR AL GEOGRAPHY SOCIAL AND ECO NOMIC ANALYSIS
7. CHAUHAN T.S. [1987] AGRICULTURAL GEOGRAPHY. A STUDY OF RAJASTHAN STATE. ACADEMIC PUBLISHER, JAIPUR.
8. CHEW, H.C [1958]:- FIFTEEN YEARS OF AGRICULTURAL CHANGE
9. DUBE R.S. [1991] - APPLIED AGRICUL TURAL GEOGRAPHY

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

हिंदी की आदिवासी कविता का आर्थिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. परविंदर कौर

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

मनुष्य के जीवन में अर्थ का विशेष महत्व है। प्राचीन काल में मनुष्य की आवश्यकताएं अत्यंत सीमित थी परंतु आधुनिक युग की आवश्यकताएं असीमित होती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में आज की अर्थ की अर्थवता अत्यंत महत्वपूर्ण बन गई है। किसी भी राष्ट्र के विकास, उसके सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन की आधारशिला उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था ही होती है। राष्ट्रीय विकास में अर्थ की महत्ता बताते हुए केशव देव शर्मा लिखते हैं कि 'राष्ट्र का समग्र विकास अर्थ-व्यवस्था पर ही निर्भर करता है, जिस देश की अर्थव्यवस्था संतुलित होगी, वही राष्ट्र विकास के मार्ग पर अग्रसर मिलेगा। अतः संतुलित अर्थव्यवस्था ही राष्ट्रीय जीवन का प्रमुख आधार है।'[1] यदि राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से संपन्न होगा तो उसे किसी अन्य राष्ट्र पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। आदिवासी कविता में भी आर्थिक पक्ष का चित्रण किया गया है के किस प्रकार उन्हें अपने जीवन में आर्थिक शोषण, अर्थाभाव जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। गांव के लोगों का प्रमुख आधार कृषि है। पहाड़ों और वनों में रहने वाले आदिवासी समाज के लोग शिकार करके या जड़ी बूटियां बेचकर अपना जीवनयापन करते हैं। आदिवासी समाज के अर्थ उत्पादन के साधन लकड़ी ढोना, जड़ी-बूटी, फल-फूल एकत्रित करना, शिकार करना एवं खेती करना है। आदिवासी समाज के लोग अपनी परंपरागत एवं अस्थाई कृषि में विश्वास करते हैं। अज्ञानता के कारण ये लोग परंपरा से चली आ रही स्थानांतरित खेती में रुचि रखते हैं। आर्थिक विषमता, गरीबी, बीमारी, बेकारी आदि इन के जीवन की समस्याओं को बढ़ा रही हैं। आदिवासियों का आर्थिक जीवन उनकी भौगोलिक परिस्थितियों से निर्धारित होता है। शराब बनाकर बेचना, जादूगरी एवं नाच-गान उनके आर्थिक उपर्जन के माध्यम होते हैं। आदिवासी कविता में आदिवासियों के आर्थिक जीवन की समस्याओं की अभिव्यक्ति की गई है। आदिवासी समाज के कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से उनके जीवन के आर्थिक पक्षों को उभारने का प्रयत्न किया है।

आर्थिक शोषण:- आदिवासी वर्ग का पूंजीपतियों द्वारा शोषण किया जाता है। उन्हें काम के बदले उचित मजदूरी न देना या मजदूरी न ही देना, यह एक साधारण बात है। इसी कारण कड़ी मेहनत के बाद भी उन्हें अभावग्रस्त जीवन जीना पड़ता है। कवि रवि कुमार गोड़ ने अपनी कविता 'भूख की पीड़ा' में आदिवासियों के लिए इसी दर्द का चित्रण किया है -

'वह क्या सोचेंगे कि गरीबी क्या होती है,
जिनके हाथों में लाखों नोटों की गड्डियां हो।
अगर भूख पूछना ही है तो उनसे पूछो,
जो फुटपाथ पर सो जाते हैं, भूखे, नंगे पाँव,
मर जाते हैं भूख की पीड़ा से छटपटाकर।
भूख उनसे पूछो जो आज भी
इस विकासवादी दुनिया में
जी तोड़ मेहनत करके भी
पेट नहीं भर पाए अपने परिवारों का।'[2]

कवि ने पूंजीपति वर्ग के प्रति अपना विरोध दिखाया है कि आदिवासी वर्ग का दुःख, उनकी पीड़ा का एहसास उनके बिना किसी और को कैसे होगा, क्योंकि यह भूख, तड़प, इसका दर्द वही जान सकते हैं, जिन्होंने इसे भोगा है। दिन रात कठिन मेहनत करके भी जब उन्हें उनकी जीविका हेतु साधन नहीं मिल पाते तो उनके मन में विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है। कवि हीरा मीणा ने अपनी कविता 'सब जानते हैं' में आर्थिक शोषण के रूप को वर्णन किया है-

'मेहनत करने वाले रोजी-रोटी को तरसते हैं!!
तलुए चाटने वाले शाही जिंदगी पाते हैं!!
आंहों और कराहों के बवंडर छाने लगे हैं!!
मृगमरीचिका से सपने दिखाए जाते हैं!!
सब जानते हैं!!
सब जानते हैं!!'[3]

आर्थिक शोषण के कारण आदिवासियों को भूख से पीड़ित होते देखा जाता है। वर्तमान समय में बढ़ रहे आदिवासी वर्ग के शोषण, उनके साथ किए जा रहे छल का चित्रण किया गया है। पूँजीपति वर्ग उन्हें विभिन्न प्रकार के लालच देकर उनसे अपना काम निकलवाते हैं। बाद में उन्हें धोखा देकर उनकी मेहनत का पूरा हिसाब भी नहीं देते, जिस कारण गरीब लोग और गरीब होते जाते हैं। आर्थिक शोषण की समस्या आदिवासियों की बहुत बड़ी समस्या है, जिसके लिए आदिवासी कविता के माध्यम से आवाज़ उठाई जा रही है। पूँजीपति वर्ग का विरोध होने लगा है।

दयनीय स्थिति:- आदिवासी अपनी जीविका के साधनों के लिए परंपरागत व्यवसाय अपनाते हैं। वनों का उजड़ना आदिवासी समाज और उनकी आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डालता है। गरीबी और आर्थिक तंगी के कारण ये लोग कर्जदार हो जाते हैं। कुछ लोग शिकार करके, मछली पकड़ कर अपने जीवन की जरूरी वस्तुओं को प्राप्त करते हैं। आसपास के जंगल और जमीन, पहाड़, पानी आदि से जो कुछ मिलता है इस पर वे लोग निर्भर रहते हैं। कूटनीति, खोखली व्यवस्थाओं और मजदूरी की आर्थिक स्थितियों का चित्रण आदिवासी कविता में किया गया है। महादेव टोप्पो की कविता 'वे

और हम' में पूँजीपति वर्ग पर कटाक्ष किया गया है–

'वे कहते हैं'
सहानुभूति दिखाते
राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया में
जंगल के लोग
पहाड़ के लोग
उजड़ रहे हैं
यह नहीं बताते कि
इस प्रक्रिया में
वह आबाद हो रहे हैं।'[4]

आज आदिवासी समाज के लिए सरकार की ओर से अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं परंतु इसका लाभ आदिवासियों को न होकर पूँजीपति वर्ग को अधिक हो रहा है। आदिवासियों की जमीन पर कारखाने लगाकर उन्हें अपने ही घर से बेदखल किया जा रहा है। वह लोग झूठी सहानुभूति दिखाते हैं कि आदिवासियों के पक्ष की वे बात करते हैं जबकि वास्तविकता कुछ और होती है। रवि कुमार गोड़ ने अपनी कविता 'आदिवासी अभिव्यक्ति' के माध्यम से अपना आक्रोश इस प्रकार व्यक्त किया है–

कुछ ऐसे मक्कार हैं झूठे,
आदिवासियों के नाम पर,
सोचते हैं कि हम कितना लूट लूटें।
लूटोगे आखिर कब तक हमको,
जरा आज हमें बताओ बदलाव तुम।
भारत की संतान अगर हो,
सच कहने से न शरमाओ तुम'[5]

वर्तमान समय में सत्ताधारी लोग आदिवासियों की अज्ञानता का लाभ उठाकर अपना लाभ चाहते हैं। आदिवासी कविता में उनकी पीड़ा और वेदना को व्यक्त किया गया है। आदिवासी कवि जिस समाज में पैदा हुए, बड़े हुए, पढ़ लिखकर आगे बढ़े, इस समाज के हिस्से आई दुरावस्था को देखकर बेचैन हैं। विस्थापन, पलायन, गरीबी, शोषण का दंश भयानक होता है, उसकी वेदना बहुत गंभीर होती है। जिसने गरीबी, लाचारी, बेबसी झेली है, वह चुप कैसे रह सकता है। आदिवासी कवि अपने समाज को संगठित, शिक्षित होने का आह्वान करते हैं। अपने अन्याय, अत्याचारों के विरुद्ध उसे स्वयं लड़ाई लड़नी होगी तभी अपेक्षित बदलाव जहां परिवर्तन संभव हो पाएगा।

भूमि की समस्या:- आदिवासी समाज को अपनी ही रहने योग्य जमीन से दूर होना पड़ता है। आदिवासी समाज को विकास के नाम पर जंगलों से खदेड़ा जाता है। आदिवासियों की मुख्य समस्या भूमि से अलग होना है। आदिवासी आज भी सभ्य समाज से दूर जंगलों और पर्वतों में अधिक निवास करते हैं। प्रशासनिक अधिकारी, वन विभाग के ठेकेदार इत्यादि के प्रवेश से उनका शोषण प्रारंभ हुआ। जमीन से बेदखली, विस्थापन, पलायन आदि आदिवासियों के अस्तित्व का संकट ही नहीं है बल्कि संपूर्ण मानवता एवं मानवेत्तर प्राणी जगत के लिए खतरा है। रविकुमार गोड़ ने अपनी कविता 'इतना आसान नहीं होता' में आदिवासियों के विस्थापन की समस्या को उठाया है –

'तुम्हारे जल, जंगल, जमीन पर
अभी कब्जा होना बाकी है
अभी बाकी है चलाना जमीन पर तुम्हारे
भीमकाय बड़े–बड़े बुलडोजर
जो न केवल तुम्हारी जमीन को
रौंदेगा बेखौफहोकर।
बल्कि रौंदेगा तुम्हारे अरमानों को भी।'[6]

आधुनिकता का अर्थ यदि विस्थापन और संस्कृति को उजाड़ना है तो आदिवासी कवियों को यह मंजूर नहीं है। वह अपनी कविताओं में इसका विरोध करते दिखाई देते हैं। सरकार की कुल्हाड़ी से जंगल ही नहीं कटते बल्कि उन जंगलों के माध्यम से जीवनयापन करने वाली आदिवासी जनता का गला भी कटता है।

अर्थभाव की समस्या:- गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता, सामान्य वित्तीय व्यवस्था को अपनाना, वनों पर निर्भर रहना इत्यादि के कारण आदिवासी समाज आज ऐसी स्थिति में है, उन्हें रोजगार कार्य नहीं मिल रहे है। आदिवासियों को उनके परंपरागत व्यवस्थाओं से अलग कर लिया गया है। विकास के नाम पर उनसे उनका काम छीन लिया जाता है। आदिवासियों के विकास की सभी योजनाओं का लाभ पूँजीपति वर्ग ही उठता है। इस का विरोध हमें रविकुमार गोड़ की कविता 'आदिवासी अर्ज' में दिखाई पड़ता है जहाँ कवि ने कहा है –

'ना जाने कितने देश के नौजवान
हो रहे हैं सब बेरोज़गार
मिटा रहे हैं आदिवासियों की
भाषा–लिपि, संस्कृति समुदाय।
ताकि, राज करते रहे
ये पीढ़ी दर पीढ़ी।
उठो, जागो, लड़ो
अपने अधिकार, रोजगार, स्वतंत्रता,
मातृ भूमि, सम्मान के लिए।'[7]

पढ़ा लिखा आदिवासी वर्ग नगरों में जाकर नौकरी भी कर रहा है परंतु उच्च वर्ग के लोग समझते हैं कि यह अपने अधिकारों के लिए हमसे लड़ना चाहता है जबकि वास्तविकता यह है कि वहाँ भी उसे शोषण का शिकार ही होना पड़ता है। इसी कारण उसे अपनी नौकरी छोड़नी भी पड़ती है। कवि आदिवासी समाज को अपने अधिकारों, अपने अस्तित्व को बचाने के लिए उठ खड़े होने को प्रेरित करता है।

संदर्भ सूची:-

1. केशव देव शर्मा, आधुनिक हिंदी उपन्यास और वर्ग संघर्ष, राधाकृष्ण पब्लिकेशनस, दिल्ली, 1991, पृ.स. 35
2. रविकुमार गोड़, आदिवासी स्वर, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ.स. 7
3. हीरा मीणा, लोक की पुकार, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.स. 23
4. महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुजा बुक्स, दिल्ली, 2017, पृ.स. 63
5. रविकुमार गोड़, आदिवासी अभिव्यक्ति, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.स. 34
6. रविकुमार गोड़, आदिवासी स्वर, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ.स. 57
7. वहीं, पृ.स. 37

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

अंतरराष्ट्रीय संबंधों में मानवाधिकार की भूमिका

डॉ. शकरी चौहान

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शा. आदर्श कन्या महाविद्यालय, श्योपुर, मप्र.

प्रस्तावना :–आज,पहले से कहीं अधिक, मानव अधिकार अंतरराष्ट्रीय संबंधो (आईआर) के अभ्यास और अध्ययन दोंनो मे दृढता से अतंर्निहित हो गए है, बडे हिस्से मे संयुक्त राष्ट्र (यूएन) के बढ़ते विकास के कारण अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार शासन के उदय के साथ मिलकर अंतरराष्ट्रीय गैर –सरकारी संगठन और मानवधिकार कार्यकर्ता।[1]

आईआर के विद्धानों ने अतंर्राष्ट्रीय संगठनो के साथ–साथ विदेश नीति स्पेकट्रम मे मानवधिकारो के कामकाजी तर्क को और अधिक विस्तार से अध्ययन करने की आवश्यकता को मान्यता दी है, विशेष रुप से इस अहसास के बाद कि मानवधिकारों का अंतरराष्ट्रीय आयाम अंतरराष्ट्रीय राजनीति के मूल मै बैढता है। अंतरराष्ट्रीय कानून व्यापार और विदेशी सहायता।[2] फिर भी,आईआर साहित्य मे मानवधिकार की उल्लेखनीय रचि के बावजूद,यह स्पष्ट है कि आईआर के प्रमुख सिद्धांत (जैसे यथार्थ वाद ,उदारवाद और रचनावाद) ऐसे अधिकारो की भूमिका को काफी विविध तरीकों से समझाते है, जिनमें कई दावे किए जाते है। ठोस तर्क जो एक सार्वभौमिक नैतिक व्यवस्था की धारणाओ के साथ के राज्य की संप्रभुता के परेशान करने वाली तुलना को मजबूत करने प्रतीत होते है।[3] इस दृढ़ विश्रास के कि मानवधिकार वर्तमान मे अंतरराष्ट्रीय सबंधों की एक स्थायी विशेषता है,वर्तमान रिपोर्ट आईआर मे इन अधिकारों की भूमिका पर गंभीर रुप से चर्चा करने के लिए तैयार है ।

अंतरराष्ट्रीय संबंधो मे मानवाधिकार का उदय : –मानव अधिकारो की अवधारणा पहले से ही अठारहवीं शताब्दी मे सार्वजनिक डोमन मे थी, इसने 1945 मे अंतरराष्ट्रीय संबंधो मे अपना स्थान प्राप्त किया जब इसे संयुक्त राष्ट्र (यूएन) चार्टर और सार्वभौमिक घोषणा के रूप मे शामिल किया गया
1933 और 1945 के बीच जर्मन राष्ट्रीय समाजवादियों द्वारा यहूदियों, जिप्सयो, समलैंगिकों और नाजियों के राजनीति विरोधियों के खिलाफ किए गए मानवता के खिलाफ अपमानजनक अपराधों की प्रतिक्रिया। 1948 के मानवधिकारो की सार्वभौतिक घोषणा (यूडीएचआर) कई शिक्षाविदों द्वारा माना जाता है। संस्थापक दस्तावेज, जो एलेनोर रुजवेल्ट के अनुसार,सभी लोगों और सभी राष्ट्रो के लिए उपलब्धि के एक सामान्य मानक की स्थापना मे सहायता करता है। यूडीएच आर द्वारा प्रस्तुत प्रारंभिक उत्साह के बाद ,मानवाधिकार अधिवक्तो को 1970 के दशक तक इंतजार करना पड़ा इससे पहले कि दस्तावेजों मे निहित सिध्दांत वैश्विक मानचित्र पर राज्यो के व्यवहार को काफी प्रभावित और बाधित करना शुरू कर दे, विद्वानों ने सुझाव दिया कि सुस्त अवधि एक बड़े पैमाने पर दो मुख्य कारकों से प्रभावित थे अथति शीत युद्ध के दौरान प्रमुख समर्थक और उनके सहयोगी द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा को दी गई प्राथमिकता और यह तथ्य है कि अधिकांश राज्यो ने अपने मानवाधिकार प्रथाओं की बहू पक्षियों निगरानी की अनुमति नहीं दी। इन कारको से पता चलता है की शुरुआत से ही मानवाधिकार को व्यवस्थित कारको द्वारा ग्रहण किया गया था जिसमें राज्यों के बीच भारी शक्ति प्रतियोगिता और अंतरराष्ट्रीय समाज के कुछ अभिनेताओं द्वारा मानवाधिकारों को केवल मानको के रूप में ही देखने की प्रवृत्ति थी जिन्हें संभवतः लागू करने योग्य प्रतिबद्धताओं के रूप में नहीं देखा जा सकता है इसलिए यह मुख्य धारा के आईआर साहित्य में रिपोर्ट किया गया है कि कुछ देशों के अपवाद की साथ जो मानव अधिकारों के यूरोपीय सम्मेलन के हस्ताक्षरकर्ता थे, 1945 से 1970 के दशक की शुरुआत तक समग्र धारणा एक थी जिसमे बीच गहरी खाई थी मानको और वितरण व्यापक अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त करने से मानवाधिकार को प्रभावी ढंग से समिति करना। हालांकि 1970 के दशक के मध्य में कारको की बहुलता जैसे मानवाधिकार मूल्यो को बढ़ता वैधिकरण और कानूनी मानदंडो का विकास और एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसे मानवाधिकार का प्रसार मानव अधिकारो को अंतरराष्ट्रीय शुक्रिया में लाने के लिए अभिसरण हुआ है 1970 के दशक में INGOS का विकास और विस्तार देखा गया जो मानवाधिकार कानून के साथ राज्य के अनुपालन को मजबूत करने के लिए प्रतिबध्द थे, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण एमनेस्टी इंटरनेशनल और हामून राइट्स वांच थे। अतः में, मानवाधिकारों को कूटनीति में सम्मिलित करते हुए अमेरिका कांग्रेस ने सहायता व्यापार को मानव अधिकार से जोड़ने वाला कानून पारित किया, यह उल्लेख नहीं किया कि नांर्व और नीदरलैंड अपनी स्वयं की विदेश नीतियों में मानवा धिकार को बढ़ावा देने के लिए अधिक कार्यकर्ता उन्मुख हो रहे थे। यूरोपीय समुदाय (ईसी) और बाद में यूरोपीय संघ (ईयू) की सदस्यता के लिए मानवाधिकारो के सम्मान को एक पूर्व शर्त बना दिया, गया, जबकि कई यूरोपी देशो में लोग भी यूरोपीय मानव न्यायालय के माध्यम से अपने संबंधित देशों के खिलाफ मानवाधिकारों की शिकायतें दर्ज करा सकते थे। अधिकार (ईसीएच आर) इस प्रकार आईआर में मानवाधिकार के संस्थागत करण के उच्च स्तर का प्रदर्शन करता है ।

लोकतंत्र और सुशासन को बढ़ावा देना :–उपलब्ध साहित्य में दर्शाता है कि हाल के वर्षों में मानवाधिकार की सोच निर्विवाद रूप से दैनिक जीवन और सुख सक्रिय राजनीति के दार्शनिक आरोपो से बदल गए है जैसे कि वैश्विक स्तर पर लोकतंत्र और सुशासन को बढ़ावा देना इसमें कोई संदेह नहीं है कि सुशासन और लोकतांत्रिक आदर्श को बढ़ावा देना मानवाधिकारो के सम्मान की गारंटी देने में महत्वपूर्ण घटक है, क्योंकि अंतरराष्ट्रीय संधियो और संस्थानो द्वारा प्रबलित मानव अधिकार का वादा कानून के शासन स्वतंत्र न्यायिक के अभाव में कभी पूरा नहीं हो सकता है। प्रणालियों और समकालीन समाज में प्रचलित अन्य संस्थाएं लेकिन जब यह तेजी से स्पष्ट हो गया है कि पारदर्शी जवाबदेह और सहभागी शासन संरचनाएं लोकतांत्रिक उद्देश्य के पोषण मानव गरिमा के लिए सम्मान और मानवाधिकारों की रक्षा के लिए एक पूर्व शर्त है, यह आईआर

विध्दानो पर भी उभर रहा है कि मानवाधिकार व्यवस्था सफलतापूर्वक हो सकती है। राज्य अपनी स्थिति और पहचान को कैसे परिभाषित करते हैं। इसमें मानवदडों और मूल्यो के महत्व पर जोर देकर लोकतंत्र और सुशासन को बढ़ावा देने के लिए उपयोग किया जाता है। उदारवादी और सामाजिक रचनावादी सिध्दातो के अनुरूप, अब उस बिंदु पर पहुंच गया है। जहां अंतरराष्ट्रीय कानून और अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने मानव अधिकार के मानको की एक विस्तृत श्रृंखला विकसित की जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राज्यों को लोकतांत्रिक आदर्श और सुशासन संरचनाओं को बढ़ावा देने के लिए प्रभावित करते हैं या होने का जोखिम उठाते हैं दमनकारी प्रोत्साहित करने के रूप में माना जाता है साहित्य में यह तर्क दिया गया है कि जो राज्य प्रचलित अंतरराष्ट्रीय मानदंडों का पालन करने में विफल रहते हैं, अपनी नागरिकता के समर्थन को खोने का जोखिम उठाते हैं क्योंकि आधुनिक राज्यो में नागरिक अन्या सरकारों के प्रदर्शन के सापेक्ष अपनी सरकार की प्रदर्शन का मूल्यांकन करने की संभावना रखते हैं।

दुव्यर्वहार की रोकथाम:-दुव्यर्वहार की रोकथाम में यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि उदार लोकतंत्र द्वारा मानवधिकारो का तेजी से उपयोग किया जा रहा है ताकि व्यक्तिगत मनुष्यों को उन उत्पीड़नों से मुक्त किया जा सके जो उन्हें वह करने से रोकते हैं जो वे स्वतंत्र रूप से करने के लिए चुनते हैं ,के साथ संगत दूसरों की स्वतंत्रता जैसेकि आर ब्लैकमेल ने सुझाव दिया है अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उत्पीड़न अक्सर हिंसा और आतंकवाद के रूप में ले लेता है लेकिन इसमें विदेशी नेशन भी शामिल हो सकती है, जो की बुनियादी भौतिक जरूरतो के प्रावधान ने बांधा डालती है, जैसे कि जॉर्ज व डब्ल्यूबुश युध्द में पानी में डूबने की अलोकप्रियप नीति आतंक पर मुक्ति के बहस में मानवाधिकारो का उपयोग अंतरराष्ट्रीय अभिनेताओ एजेंसियो और अन्य हितधारको द्वारा प्रचलित व्यवस्था के भीतर परिवर्तन की संभावना की पहचान करने के लिए क्या जाता है।

अंतरराष्ट्रीय अभिनेताओ को वैध बनना:-उपलब्ध साहित्य दर्शाता है कि मानव अधिकार अंतरराष्ट्रीय संस्थानो को वैध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने जारी रखते हैं जिन्हें बदले में राज्य के व्यवहार के महत्वपूर्ण निर्धारको के रूप में देखा जाता है। वास्तव में आईआर के कुछ विध्दान एमनेस्टी इटरनेशनल और हामून राइट्स वाच जैसे अंतरराष्ट्रीय संस्थानो में (आई एनजीओ) को वैध बनाने में मानवाधिकारों को महत्वपूर्ण मानते हैं, इस तथ्य के कारण मानवाधिकार तेजी से कानूनी अधिकारों के दायरे में चले गए है अर्थात वे अधिकतर जो कानूनी प्रणालियो और रीति- रिवाजों के नियमों के तहत मौजूद है। अंतरराष्ट्रीय आर्थिक न्याय और व्यावसायिक नैतिकता सुनिश्चित करना:-जैसे कि गियोवनीं मंटीला द्वारा इंगित किया गया है, अंतरराष्ट्रीय शासन के लिए रुचि-आधारित दृष्टिकोण सुझाव देते हैं कि अभिनेता तर्कसंगत रूप से व्यवहार करेंगे आदेशित प्राथमिकता के एक सेट के साथ और उनकी उपयोगिता को अधिकतम करने के लिए कार्रवाई एवं वैकल्पिक पाठ्यक्रमो के लागत और लभो की गणना करेंगे उन प्राथमिकताओ को देखते हुए। इस विध्दानों के अनुसार, अंतरराष्ट्रीय अभिनेता दूसरों उपलब्धियो की तुलना में अपनी स्वयं की स्वार्थी उपलब्धियों के बारे में अधिक चिंता प्रदर्शित करके एक आत्म केंद्रित व्यवहारिक अभी विन्यास भी प्रस्तुत कर सकते है।

इस प्रकाश में आइआर विद्वानों का तर्क है कि 1990 के दशक के दौरान आर्थिक न्याय और व्यावसायिक नैतिकता सुनिश्चित करने की मानवाधिकार भूमिका शुक्रिया में आई जब INGOS ने आर्थिक न्याय और बहु राष्ट्रीय निगमों से जुड़े नकारात्मक प्रभावों के प्रकाशनों को बढ़ाया (उदाहरण के लिए शेल के व्यवहार पर वैश्विक गवाह) नाइजीरिया में, कोलंबिया में ब्रिटिश पेट्रोलियम और ऑक्सडेटल पर पेट्रोलियम पर एमनेस्टी इंटरनेशनल) जैसे कि मंटीला ने उल्लेख किया है।

क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत करना:-पहली नजर में ऐसा लगता है कि मानवाधिकारों का प्रचार और संरक्षण कभी भी क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय एकीकरण की फोकल सीमा के भीतर नहीं हो सकता है हालांकि मानवाधिकार से संबंधित मामले एकीकरण के कानूनी ढाचें राज्य के साथ-साथ राज्यों की दैनिक प्रथाओं में एक मौलिक भूमिका निभाते हैं, इस तथ्य के कारण इन क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय एकीकरण ब्लॉकों (जैसे ई यू एयू) (ओईसीडी , आसियान) के भीतर कई देश ने अपने शासन देश में कुछ प्रावधानों को लागू किया जिनका मानवधिकारों लोकतांत्रिक आदर्श और सुशासन पर प्रभाव पड़ता है। कई क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय ब्लॉकों ने अपनी संधियो मे मानवाधिकार को शामिल किया मानवाधिकारो को पहचान और उनकी रक्षा करने के लिए एक आम स्वीकृति के के रूप में इन आर्थिक और राजनीतिक ब्लॉकों की स्थापना को रेखांकित करने वाले मौलिक कानूनी प्रावधानों में आसानी से पाया जा सकता है। मानवाधिकारों को क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय ब्लॉकों की संरचना में एकीकृत करने के मुख्य कारणों में शामिल है विशेष मानवाधिकार संधियो सम्मेलनो या घोषणाओं जैसे मानवाधिकारों की सार्वभौमिक और घोषणा और कनेक्शन पर सहमति देकर मानवाधिकारों को सम्मान करने के लिए राज्यो द्वारा प्रतिबध्दता नस्लीय भेदभाव का उन्मूलन यह अहसास कि मानवाधिकार और सुशासन आर्थिक विकास और निवेश के माहौल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जो बदले में विकास उत्पादकता और नौकरियोंके निर्माण में योगदान करते हैं यह अहसास की शांतिपूर्ण वातावरण जो मानवाधिकार को मान्यता देता है और बढ़ता है आर्थिक विकास के लिए एक लोकतांत्रिक समाज में मानवाधिकारों का सम्मान करने के लिए बाध्य हैं, इसके विपरीत अर्थ है यह है कि आर्थिक विकास के माध्यम से मानवा धिकार को आर्थिक प्रभाव दिया जा सकता है।

निष्कर्ष:- इस चर्चा और विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि मानवधिकारो शासन की अंतरराष्ट्रीय संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका है, विशेष रूप से लोकतंत्र और सुशासन को बढ़ावा देने दुरुपयोग की रोकथाम अंतरराष्ट्रीय अभिनेता को वैध बनाने, अंतरराष्ट्रीय आर्थिक न्याय और व्यवसायिक नैतिकता सुनिश्चित करने के संबंध मैं जैसे कि साथ ही क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत करना यह पत्र अंतरराष्ट्रीय संबंधों के यथार्थवादी, उदरवादी और सामाजिक रचनावादी सिध्दांतों पर न केवल अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में मानवाधिकार और कानून के विस्तारित भूमिकाओं को प्रदर्शित करने के लिए बल्कि विभिन्न मानदंडों मूल्यों की समझ प्रदान करने के लिए भी निर्भर करता है। मानव अधिकार व्यवस्था को बनाने वाली संध्यो और प्रथाएं अनुपालन में राज्यो को प्रभावित करती है भूमिकाओ की कुछ आलोचनाएं भी प्रदान की गई है और प्रमुख सैध्दातिक ढांचो की उनका मूल्यांकन किया गया है इसमें कोई सदका नहीं है कि मानव अधिकार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राज्य के पूर्व राजनीतिक और सामाजिक आर्थिक गतिशीलता को प्रभावित करना जारी रखेंगे

संदर्भ सूची :-

1. रेगर ,एन दुनिया उलटी हो गई 25 वर्षो के बाद मानवाधिकार और अंतरराष्ट्रीय संबंध अंतरराष्ट्रीय मामले वॉल्यूम। 87 ना 5, 2011 पीपी। 1159 -1178,
2. ब्राउनली,आई द प्रिंसिपल ऑफ़ पब्लिक इंटरनेशनल लॉ, छठवें संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड 2003
3. कोटस ,टी न तो कास्मो पॉलिक्टनिज्म न ही रियलिज्म बी होल्डन संस्करण मे ग्लोब डेमोक्रेसी, रूटलेज, लंदन, 2000 पी पी, 87- 1011
4. ओकाफर, ओसी लेजिटियाइजिग ह्यूमन राइट्स एनजीओः लेसन फाय नाइजीरिया, अफ्रीका वर्ल्ड प्र प्रेस इंक ट्रैटन एनजे 2006

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

दलित कहानी में ब्राम्हणवाद के प्रति विद्रोह

रिकू शाह

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी. सी. कॉलेज, आसनसोल

'जौ तू बाभन औ बमनी जाया, तौ आन बाट कहू न आया ।
जौ तू तुरक औ तुरक्नी जाया, तौ भीतरी खतना कहू न कराया।।'
कबीरदास[1]

दलित कहानी संघर्ष एवं विद्रोह से उपजा साहित्य है। हजारों सालों की घुटनऔर भीषण यातनाओं से मुक्त होने के लिए दलितों ने अपने शोषण को वाणी देना प्रारंभ किया। दलितों को यह विश्वास था और अब भी है कि उनके शोषण का मूल कारण ब्राह्मणवाद पर आधारित आध्यात्मवादी विभेदकारी दर्शन है। बाहम्णवादी दर्शन वेद आधारित दर्शन है जो भारतीय समाज को चार वर्णों या वर्गों में बांटता है जिसमें ब्राह्मण स्वयं को सर्वोच्च स्थान पर रखता है जिसे हम ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में देख सकते हैं। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जो मंत्र है वहीं से वर्ण व्यवस्था का प्रथम दर्शन होता है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के सूक्तनब्बे में मंत्र 11 तथा 12 को देखें-

यत्पुरूष व्यदुधुः कतिधा व्याकल्पन।
मुख किमस्य को बाहु काबूर पादाउच्येते।।
ब्राह्मणोज्स्य मुख मासी बाहू राज्यः कृतः।
उरुतदस्य यदैश्य। पद्मया शूद्रोड जायत ।।[2]

अर्थात प्रजापति ने मानव समाज रूपी जिस पुरूष का विधान किया है उसकी कल्पना कितने प्रकार की हुई है, उस पुरूष का मुख क्या है?, इसके दोनों बाहु कौन हैं?,कौन इसकी दोनों जांघें हैं? तथा इसके दोनों पैर कौन हैं?। इसका उत्तर पुरुष सूक्त के मंत्र 12 में आया है कि इस पुरुष का मुख्य ब्राह्मण,बाहूक्षत्रिय, जांघें वैश्य और पैर शूद्र हैं। इसके आधार पर अपने आप को श्रेष्ठ समझने की ब्राह्मणवादी मानसिकता को दलित वर्ग देखता है। दलित चिंतक सूरज बड़त्या व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि वेदों और पुराणों में पुरुष को जननी के रूप में पेश किया गया है। सूरज बड़त्या का यह वक्तव्य देख सकते हैं-'यह है ब्राह्मण वेदों पुराणों की धर्म की चासनी में लिपटी तथाकथित समाजशास्त्रीय व्याख्या। इसी व्याख्या के आधार पर कालांतर में ब्राह्माणवादी ऋषि विश्लेषकों ने वर्ण व्यवस्था की नई-नई स्थापनाओं के आधार पर इसकी वैधता को सिद्ध करने का प्रयास किया। यह भारतीय समाज की ऐसी ब्राह्मणवादी स्थापना है जो वैज्ञानिक अनुसंधान, नृविज्ञान और इतिहास की विकासवादी अवधारणा सभी के विरोध में जाती है। इससे पता चलता है कि ब्राह्मणवादी संस्कृति मूलतः पितृसत्तात्मक संस्कृति भी है। ब्राह्मणवादी संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति का इससे भी अंदाजा लगता है कि जननी के रूप में वे स्त्री का सम्मान नहीं करते हैं जो सर्वथा अमान्य है। पता नहीं क्या सोचकर उन्होंने एक पुरूष को जननी के रूप में पेश किया'[3]। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरज बड़त्या ने अपने उक्त कथन के माध्यम से प्रचीन भारतीय संस्कृति जो ब्राह्मणों द्वारा गढ़ी गई है कि कटु आलोचना करते हैं। यह सही है कि कहीं न कहीं वेदों से लेकर धर्म सूत्रों और साहित्य तक में ब्राह्मणवादी श्रेष्ठता का दंभ है और क्षत्रिय,वैश्य तथा शूद्र को अपने से हीन स्तर का माना गया है। डॉ.भीमराव अम्बेडकर ने ब्राह्मणवाद को भारतीय समाज को जटिल बनाने तथा भारतीयों के अधिकतर समस्याओं के लिए जिम्मेदार माना है। ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध करने वाले विचारकों में ज्योतिबा फूले, डॉक्टर भीमराव अंबेडकर, एम.एन.राय, गेल ओमवेट,डॉ.रमेन्द्र,रमाबाई, ताराबाई प्रमुख हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि ब्राह्मणवाद है क्या? और यह केवल ब्राह्मणों में ही व्याप्त है या निम्न जातियों में भी देखने को मिलता है। डॉ. रमेंद्र ब्राह्मणवाद के संदर्भ में लिखते हैं-'ब्राह्मणवाद' शब्द का इस्तेमाल ब्राह्मण धर्म अर्थात हिंदू धर्म के लिए और खास तौर से उससे जुड़े वर्ण व्यवस्था की विचारधारा के लिए किया जाता है। ब्राह्मणवाद के मूल तत्व हैं- वेदों की प्रामाणिकता में विश्वास, वर्ण व्यवस्था, कर्मवाद, अवतारवाद, मोक्ष आदि। इनमें सामाजिक दृष्टि से वर्ण व्यवस्था सबसे महत्वपूर्ण है। वर्ण व्यवस्था का सीधा संबंध जाति व्यवस्था से है जो हिंदू समाज की सबसे बड़ी बुराई है। इस तरह सामाजिक दृष्टि से 'ब्राह्मणवाद' का अर्थ है-'वर्ण-व्यवस्था की विचारधारा',जो जाति व्यवस्था को ईश्वरीय बतलाकर एक सैद्धान्तिकअधिकार प्रदान करती है'[4]। वह ब्राह्मणवादी व्यवस्था को बुद्धि-विरोधी, अन्याय पूर्ण औरअलोकतांत्रिक मानते हैं। डॉ रमेन्द्र भारतीयसंदर्भ में ब्राह्मणवाद को एक वर्ग विहीन, जाति विहीन और औरत-मर्द बराबरी पर आधारित समाज की दिशा में बढ़ने के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा मानते हैं।इस तरह डॉक्टर रमेंद्र ने ब्राह्मणवाद को परिभाषित करते हुए इसका कड़ा विरोध किया है। हिंदू धर्म के बारे में डॉ. अंबेडकर के विचारों को हम रिडल्स इन हिंदुइज्म, एनीहिलेशन ऑफ कास्ट, फिलोसोफी ऑफ हिंदुइज्म, बुद्ध एंड हिज धम्मा में देख सकते हैं। इन पुस्तकों में हम डॉ. अंबेडकर को ब्राह्मणवाद का कड़ा विरोध करते हुए देखते हैं। डॉ. अंबेडकर ब्राह्मणवाद की व्याख्या करते हुए ब्राह्मण-वर्ग एवं ब्राह्मणी-व्यवस्था को भिन्न-भिन्न रूप में देखते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया हैकि 'मैं ब्राह्मणों के अधिकारों, सुविधाओं के विरुद्ध नहीं हूं जो उन्हें समुदाय के रूप में प्राप्त है। ब्राह्मणवाद से मेरा आशय है स्वतंत्रता, समानता तथा भातृत्व की भावना से विहीन होने से है। ब्राह्मण यद्यपि इसके सर्जक हैं, लेकिन आज उस भावना का अस्तित्व सभी वर्गों में मौजूद है। निम्न जातियों में तो यह और भी अधिक सुदृढ़ रूप में मौजूद है'।

(द टाइम्स ऑफ इंडिया 14 फरवरी 1938)[5]

डॉक्टर अंबेडकर निम्न जातियों में व्याप्त ब्राह्मणवाद को

नजरअंदाज नहीं करते। अधिकांश दलित कहानीकारों ने निम्न जातियों में व्याप्त ब्राह्मणवाद को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि दलित चिंतक अंबेडकरी विचारधारा से ही तमाम किस्म की वैचारिक ऊर्जा ग्रहण करता है।डॉ.अम्बेडकर ब्राह्मणों के विरुद्ध नहीं थे बल्कि उनका घोर विरोध ब्राह्मणवादी व्यवस्था से था जो कि उनके उक्त वक्तव्य से स्पष्ट होता है। डॉ.अम्बेडकर ब्राह्मणवादी व्यवस्था का समूल नाश करना चाहते थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, विपिन बिहारी,जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे, रजतरानी मीनू आदि की कहानियों में हम ब्राह्मणवाद को देख सकते हैं। यहां हम ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में व्याप्त ब्राह्मणवाद का विश्लेषण करेंगे। ओमप्रकाश वाल्मीकि के दो कहानी संग्रह प्रकाशित हैं-सलाम (2000)और घुसपैठिए (2003)। 'सलाम' कहानी में सलाम एक ऐसी प्रथा है जो सवर्ण समुदाय द्वारा दलित समुदाय के लिए बनाई गई है। इस प्रथा में विवाह उपरांत वर-वधू को सवर्ण के घर-घर जाकर सलाम करना पड़ता है। प्रत्येक घर से कुछ नेग मिल जाते हैं। कहानी का नायक हरीश इस प्रथा का विरोध करता है। बिरादरी के बड़े- बूढ़े अपने-अपने तर्क देकर ऊंच-नीच समझा रहे थे-'बाप दादों की रीत है एक दिन में तो ना छोड़ी जावे है, वह बड़े लोग हैं, सलाम पर तो जाना ही पड़ेगा और फिर जल में रहकर मगरमच्छ से बैर रखना तो ठीक नहीं है और इसी बहाने कपड़ा-लत्ता, बर्तन, भाड़े भी नेग- दस्तूर आ जाते हैं'[6]। इन कथनों से स्पष्ट है कि सवर्णों ने जहां यह परंपरा दलितों को छोटा करने या उन्हें नीचा दिखाने के लिए किया है,वहीं दलितों के लिए सलाम पर जाना आर्थिक मजबूरी भी है, क्योंकि नेग में उन्हें कुछ सामान मिल जाएंगे जो उनके जैसे गरीब मजबूर लोगों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। पुराने बड़े-बूढ़े लोगों में शिक्षा के अभाव के कारण आत्मविश्वास नहीं जगा है इसलिए वे लोग 'सलाम' परंपरा का समर्थन कर रहे हैं और ये भी जानते हैं कि ऐसा नहीं करने पर बड़े लोगों के कोप भाजन बनना पड़ेगा। हरीश शिक्षित है, स्वतंत्र विचारों का पोषक है, आर्थिक रूप से कमजोर नहीं है इसलिए वह 'सलाम' परंपरा को मानने से इनकार करता है। नई पीढ़ी पुरानी और अमानवीय प्रथाओं को ढोना नहीं चाहती। शिक्षा के फलस्वरूप उनमें जिस जागरूकता का विकास होता है, उसी का परिणाम है कि पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी में अंतर्द्वंद्व चलता है। शहर में पला-बढ़ा हरीश शिक्षा के साहचर्य के फलस्वरूप जिस विरोध और विद्रोह को अंजाम देता है, उसमें जिस आत्मविश्वास का उदय होता है, वह आत्मविश्वास एकाएक उस समय धराशाई हो जाता है जब हरीश और कमल एक छोटे दलित बच्चे को मुसलमान के साथ भेद बरतते देखते हैं। हरीश सवर्णों के खिलाफ सलाम प्रथा का विरोध तो करता है परंतु अपने ही समाज में पनप रहे भेद को देखकर दंग रह जाता है। एक छोटा सा बालक रोटी बनाने वाले कारीगर को मुस्लिम समझ कर उसके हाथ की रोटी खाने से मना कर देता है, उसका मना करना इस बात का साक्ष्य है कि दलितों के साथ-साथ संपूर्ण समाज में जातिवादी मानसिकता किस कदर व्याप्त है। 'मुसलमान के हाथ की बणी रोटी में नी खाता।' लड़के ने दूर हटते हुए कहा-'मुसलमान?.... कोण मुसलमान?'[7]

'घुसपैठिए'[8] कहानी सवर्ण समाज के उस अमानवीय चेहरे को सामने लाती है जो आरक्षण के कारण दलितों के साथ न केवलभेद बरतता है वरन् अमानवीय और क्रूर ढंग से उन्हें प्रताड़ित भी करता है। यह कहानी मेडिकल के छात्र सुभाष सोनकर पर आधारित है। सुभाष मेडिकल कॉलेज में इतना प्रताड़ित किया जाता है कि वह मजबूरन आत्महत्या करता है। वस्तुतः यह एक सांस्थानिक हत्या ही है। भेद और प्रताड़ना का यह स्तर मात्र एक छात्र तक ही सीमित नहीं है वरन् कॉलेज के अध्यापक,डीन सब इसमें शामिल हैं, अंततः वह आत्महत्या कर लेता है। रमेश चौधरी इस कहानी में एक प्रभावशाली किरदार के रूप में सामने आया है जो एक सामाजिक कार्यकर्ता है। वास्तव में वह दलित समाज के हित के लिए काम करना चाहता है। रमेश चौधरी उन दलितों के लिए बौखलाहट लिए हुए हैं जो आरक्षण के आधार पर नौकरी, प्रमोशन, बच्चों का एडमिशन तो चाहते हैं लेकिन दलित समाज के लिए कुछ नहीं करना चाहते। राकेश इस कहानी का एक अन्य पात्र है जो एक ऑफिसर के पद पर कार्यरत है। उसकी पत्नी इंदू अपने समाज और जाति से कटकर आराम और सुकून का जीवन जीना चाहती है। रमेश चौधरी का अपने घर में आना-जाना बिल्कुल पसंद नहीं करती। वह अपना सरनेम बदल कर दूसरा सरनेम लगाना चाहती है,वह नहीं चाहती है कि उसका पति सुभाष सोनकर इस मामले में कुछ भी बोले या करें। इस तरह यह कहानी सामाजिक व्यवस्था के उस घिनौने पक्ष को सामने लाती है जिसमें एक दलित छात्र को आत्महत्या करनी पड़ती है। यह कहानी सवर्ण समाज की संवेदनशून्यता और दलित समाज की उदासीनता दोनों को सामने लाती है। आलोचक डॉक्टर राजमणि शर्मा सुभाष सोनकर की आत्महत्या का कारण कॉलेज प्रशासन द्वारा उसका शोषण या जाति भेद नहीं बल्कि कुछ और ही मानते हैं। वे लिखते हैं-'सच तो यह है कि विषय की गंभीरता-गहनता फेल होने का कारण हो सकती है न की कोई साजिश फिर भी दलित चिंतकों ने इसे साजिश माना। यह आत्महत्या निश्चित रूप से पलायनवादी प्रवृत्ति है'।[9] डॉक्टर राजमणि शर्मा अपने उक्त कथन के माध्यम से सवर्ण समाज की या स्वयं की उसी संवेदनशून्यता को प्रकट करते हैं जिस सवर्ण समाज की संवेदनशून्यता को दिखाना ही वाल्मीकि जी की इस कहानी का उद्देश्य है । अपने उक्त कथन के माध्यम से शर्माजी वाल्मीकि जी की कहानी में व्यक्त उस सत्यता को और अधिक पुष्ट करते हैं, जिसे उन्होंने 'घुसपैठिए' कहानी के माध्यम से व्यक्त किया है । शर्मा जी की यह टिप्पणी ही घुसपैठिए कहानी की सफलता है। सवर्ण समाज की इसी घृणा और संवेदनशून्यता के कारण ही सुभाष सोनकर को आत्महत्या करनी पड़ती है । वह ब्राह्मणवादी व्यवस्था जो एक दलित को मेडिकल कॉलेज में बर्दाश्त नहीं कर पाता और उसकी मौत का कारण बनता है। 'घुसपैठिए' कहानी संकलन में एक कहानी 'शवयात्रा'[10]संकलित है जो दलित समाज में व्याप्त अंतर्विरोध को सामने लाती है। प्रस्तुत कहानी में जातिवादी सामाजिक संरचना में सबसे निम्न श्रेणी में अवस्थित बल्हार समुदाय का एक परिवार चमार समुदाय द्वारा तिरस्कृत और उपेक्षित है। कहानी की शुरुआत ऐसे होती है-'चमारों के गांव में बलिहारों का एक परिवार था'[11]। इस कहानी का प्रमुख पात्र कल्लन है जो शहर जाकर शिक्षा प्राप्त कर रेलवे में नौकरी करता है। शहर की शिक्षा और नौकरी से उसके रहन-सहन का तरीका बदल गया है। उसकी पत्नी भी शिक्षित थी। गांव आने पर कल्लन के इस बदलाव को चमार सहज रूप से नहीं ले पाते। चमारों के लिए कल्लन कल्लू था जो शहर जाकर कल्लू से कल्लन हो गया था परंतु चमार कल्लू से कल्लन हो जाने को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। गांव के पढ़े लिखे लोग भी उसकी जाति के कारण उससे कटे-कटे रहते थे। कहानी के घटनाक्रम में कल्लन की बेटी सलोनी बुखार से तड़प कर अपना दम तोड़ देती है। बलिहार होने के कारण गांव का डॉक्टर उसका इलाज नहीं करता। चमारों के श्मशान में बलिहारोंको अपने मुर्दे फूंकने की इजाजत नहीं थी। कल्लू ने सलोनी के शव को गांव के बाहर ले जाने के लिए शव को उठा लिया। सलोनी

की मॉ सरोज उपलों से भरा टोकरा लिए पीछे ङ्कपीछे चल रही थी । पूरा गांव इस शवयात्रा को देखने के लिए इकट्ठा हो गया था। कल्लन अपनी बेटी को खोने के बाद भी चमारों की नजर में अपने लिए संवेदना जुटा नहीं पाता। चमारों का यह गांव बलिहार परिवार के प्रति अंत तक संवेदनशून्य बना रहता है, जबकि इस गांव में 'रविदास जयंती' और 'अंबेडकर जयंती' धूमधाम से मनाई जाती है। बावजूद इसके जाति-प्रथा टस से मस नहीं होती।[12]

दलित लेखन अस्सीके दशक से शुरू होता है। आरंभ में हम दलित लेखन में चाहे वह किसी भी विधा में क्यों नहो ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रति विरोध देखते हैं लेकिन दलित लेखन के दूसरे चरण में दलित लेखक दलितों में व्याप्त ब्राह्मणवाद को उजागर करने से पीछे नहीं हटते। दलितों में व्याप्त अंतर्द्वंद्व को प्रायः दलित लेखकों ने उजागर किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के अलावा सूरजपाल चौहान का कहानी संग्रह 'नया ब्राह्मण'13में भी दलितों का अंतर्द्वंद्व उजागर होता है।

संदर्भ सूची :-

1. उद्धृत,बड़त्या,सूरज ,सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्यशास्त्र,अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्यूटर्स प्रा.लि.नई दिल्ली,प्रथम संस्करण 2010 पृष्ठ - 91
2. वही,पृष्ठ 42
3. वही पृष्ठ 43
4. डॉ.रमेन्द्र, ब्राह्मणवाद के विरोध में एम.एन.राय और डॉ.अंबेडकर के विचार,रमणिका गुप्ता,ज्ञानसिंह बल (संपादक) दलित दर्शन,नेहा प्रकाशन,दिल्ली संस्करण- 2009 कुल, पृष्ठ संख्या 90-95, पृष्ठ 90
5. उद्धृत,बल ज्ञानसिंह,दलित चिंतन के वैचारिक आयाम,रमणिका गुप्ता,ज्ञानसिंह बल, (संपादक),दलित दर्शन,नेहा प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2009 पृष्ठ 16
6. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. सलाम. राधाकृष्ण प्रकाशन. प्रथम संस्करण- 2000, पहली आवृत्ति 2010सलाम पृष्ठ 14
7. वही,पृष्ठ 19
8. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, घुसपैठिए, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण- 2003, शवयात्रा पृष्ठ 45
9. शर्मा,राजमणि,दलित चेतना की कहानियाँ-बदलती परिभाषाएँ ,वाणी पप्रकाशन ,दिल्ली ,आवृत्ति 2010 पृष्ठ 127
10. वाल्मीकि ,ओमप्रकाश ,घुसपैठिए ,राधाकृष्ण प्रकाशन ,प्रथम संस्करण -2003 शवयात्रा पृष्ठ 45
11. वही,पृष्ठ 45
12. वही,पृष्ठ 42
13. चौहान ,सूरजपाल,नया ब्राह्मण,वाणी प्रकाशन ,दिल्ली ,संस्करण -2009

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

अनुवाद की समस्याएँ

माधुरी सुरेशराव दीक्षित-क्षीरसागर
डॉ. अशोक वसंतराव मर्डे

1. शोधार्थी, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विद्यापीठ, छत्रपति संभाजीनगर, महाराष्ट्र
2. शोध निर्देशक एवं प्रोफेसर, यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, तुलजापुर, जिला-धाराशिव, महाराष्ट्र

भूमंडलीकरण के चलते दुनिया जितनी गति से नजदीक आ रही है जिसका परिणाम लोगोंमें नया कुछ सीखने जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती जा रही है जिससे अनुवाद आज के समय की जरूरत बनी है। 'अनु' उपसर्ग एवं 'वाद' संज्ञा के संयोग से अनुवाद शब्द बना है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है।'[1]

इसका अर्थ है स्त्रोत भाषा में प्रस्तुत किए गए विचारों को लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त करने का प्रयास करना अनुवाद है। यही प्रा.वेदकुमार वेदालंकार अनुसार '''अनु' उपसर्ग से पीछे आने या जाने का भाव सूचित होता है। यथा-अनुगमन, अनुकरण आदि। अनुवाद शब्द से स्पष्ट होता है कि अनुवादक को मूल रचनाकार के पीछे आना अथवा जाना है। वह मूल विचारों, भावों एवं आशय से बँधा होता है। किन्तु केवल मूल लेखक के पदचिह्नों पर पग रखते चलना मात्र यहाँ अभिप्रेत नहीं है। आशय है-दिशा की ओर अनुगमन करना, लेखक के आशय एवं लक्ष्य के प्रति गतिशील होना।'[2] उपर्युक्त दोनों विधानों से हमें यह ज्ञात होता है की दो भाषाओं का ज्ञान होना अनुवादक के लिए अनिवार्य है, अनुवाद के लिए अनुवाद के लिए मूल भाषा में निहित विचारों को समझना जरूरी है। अनुवाद एक कला है किसी कलाकार को अपनी कलाकृति को सबसे अच्छा बनाने के लिए कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वैसे ही अनुवादक को मूल रचना का भाव अपने अनुवाद लेखन में लाने के लिए कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सबसे पहली समस्या यह है की मूल रचना का आशय अनूदित रचना में अर्थ,भाव के बिना किसी बदलाव के लाना पड़ता है।

अनुवाद करते हुए स्त्रोत भाषा का पर्यायी शब्द लक्ष्य भाषा में उपलब्ध होना यह समस्या है। प्राय यह देखने को मिलता है की मूल रचना लेखक के रुचि एवं इच्छा के अनुसार शब्द,भाव में बदलाव लाता है लेकिन अनुवादक को यह स्वतंत्रता नहीं होती। प्रायः यह पाया जाता है की स्त्रोत भाषा में प्रयुक शब्दों का पर्याय नहीं मिलता जिससे अनुवादक को उस मूल शब्द या वाक्य की व्याख्या करनी पढ़ती है। अनुवादक को मूल रचना में व्यक्त आशय को लक्ष्य भाषा के अपने शब्दों में ढालना होता है। जो मूल लेखन से भी कठिन कार्य होता है इसलिए अनुवादक को भाषा ज्ञान होना बहुत अनिवार्य होता है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी भाषा की रचनाओं का अनुवाद करते समय भाषिक समस्या का सामना अनुवादक को करना पड़ता है तथा अनुवाद कार्य स्पष्ट नहीं होता। अनुवादक को भाषा के ज्ञान के साथ विषय का ज्ञान होना भी आवश्यक होता है। अनुवाद के लिए सही रचना का चुनाव करना अनुवादक की दूसरी समस्या है। साहित्य की विविध विधाओं में नाटक, उपन्यास, कहानी आदि में से अपने आकलन क्षमता के अनुसार कृति का चुनाव करना अतिआवश्यक होता है, इसमें गलती होनेसे अनुवाद कार्य में भी गलतियाँ होने की संभावनाएं अधिक होती है जिससे अनुवाद कार्य अपेक्षित श्रेणी तक नहीं पहुंचता। उदाहरण में, कथा-साहित्य एवं निबंध दोनों साहित्य की विधाएं होने के उपरांत दोनों में भिन्नता है दोनों का स्वरूप एवं शैली भिन्न है कथा-कहानी-उपन्यास का अनुवाद करनेवाला अनुवादक निबंध एवं नाटक के प्रति अपनी कलात्मकता को मोड पाएगा इसमें शक की गुंजाइश है। एक अनुवादक के लिए भाषा के साथ विषय का ज्ञान होना अधिक महत्व रखता है, नहीं तो अनुवादक का कार्य अपूर्ण लगना स्वाभाविक है, पाठक तक पहुँचने के लिए अनुवाद कार्य में भाषा की सरलता के साथ मूल लेखक की रचना का भाव आना अनिवार्य होता है, तभी अनुवाद की कृति को अच्छे पाठक मिलते है। अनुवाद की एक और समस्या यह है की मूल रचना में प्रस्तुत वातावरण के यथार्थ को ज्यों का त्यों अनूदित कृति में उतरना। इसमें केवल भाषा का तथा शब्दों का पर्यायवाची शब्दों से रूपांतरण या दिए हुए आशय का यथाकथित वर्णन करना नहीं होता। मूल कृति में प्रस्तुत देश-काल-वातावरण का भी ध्यान रखना होता है जिससे अनूदित कृति उसी भाषा या समाज की लगे। किसी देश, समाज, लोगों की संस्कृति, रीति-रिवाज, सभ्यता आदि का सजीव चित्रण करना अनुवादक के लिए कसौटी का काम होता है। अनुवादक को आवश्यकता के अनुसार मूल लेखन को विस्तार से समझाकर लिखना जरूरी होता है या उसकी व्याख्या करनी होती है। भीमसेन निर्मल जी के अनुसार 'अनुवाद के क्षेत्र में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। ध्वनि-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान, रूप-विज्ञान और शब्द-विज्ञान के अध्ययन से अनुवादक अपने कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न कर सकता है।'[3]

वैज्ञानिक क्षेत्र में अभिव्यंजना की शैली की अपेक्षा विषय-सम्प्रेषण प्रधान होता है।साहित्यिक क्षेत्र में विशेषतः काव्य अनुवाद में शब्द चयन,शब्द शक्तियाँ,छंदोविधान,अभिव्यंजना विधा को ध्यान में रखते हुए अनुवाद करना जरूरी होता है। प्रसिद्ध आलोचक सर जोनसन ने कहा था 'Poerty can not be translate in its own language.'लेकिन आज के दिन में हम यह देखते है की कितने ही कविताओं के अनुवाद सफलता से होते आए है और हो रहे है। अनुवाद की सफलता तभी होती है जब अनुवाद कार्य किसी सक्षम अनुवादक के हाथ से संपन्न हो अन्यथा मूल रचना सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अर्थ से अनर्थ की और बड़ती है।

भाषा की दृष्टि से कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे अनुवाद में तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हुए सावधानी बरतनी होती है, जैसे मराठी और हिन्दी मे 'चेष्टा'(क्रमशः मजाक/ प्रयास), 'शिक्षा'(क्रमशःदंड/ शिक्षण) जैसे भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते है ऐसे शब्दों का अशुद्ध प्रयोग हास्यास्पद हो सकता है। संस्कृत के कई शब्द मराठी में भी तत्सम रूप में प्रचलित है,किन्तु हिन्दी में अप्रचलित है।

तद्भव शब्दों में यह समस्या नहीं देखि जाती। तद्भव शब्द अपने भाषा के शब्द होते है जिसके कारण तद्भव तथा देशज शब्दों में शब्दों में एक तरह का अपनापन एवं विचारों को सक्षमता से प्रस्तुत करने का सामर्थ्य भी होता है। अनुवाद में लिंग भेद की समस्याएँ भी पाई जाती है। लोकरूढ़ि के अनुसार मराठी और हिंदी इन दो भाषाओं में लिंग से संबंधित अपने-अपने विशिष्ट प्रयोग होते हैं। मराठी में शब्दों के तीन लिंग होते है - स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसक लिंग। किंतु हिंदी में नपुंसक लिंग नहीं है। मराठी के नपुंसक लिंग शब्द हिंदी में स्त्रीलिंग या पुल्लिंग होते हैं। जैसे-मराठी में- 'रविला चैन पडत न्हवती. पोष्टात जाऊन त्याने आपल्या भावाला तार केली' इस वाक्य में चैन, तार ये शब्द मराठी में स्त्रीलिंग में होते हैं तो हिंदी में पुल्लिंग में दिखाई देते है। इसके अनुवाद में इस तरह की समस्या आती है- हिंदी में- रवि को चैन नहीं था। डाकघर में जाकर उसने अपने भाई कोतार भेज दिया।इसी तरह इसके विपरीत मराठी में जो शब्द पुल्लिंग में है वे हिंदी में स्त्रीलिंगमें मिलते हैं। जैसे- 'मराठी में- रावणाचा मृत्यू झाला. त्याचा देह जमिनीवर पडला.' हिंदी 'में- रावण की मृत्यु हो गयी। उसकी देह जमीन पर पड़ी थी।' इन दो वाक्यों में मृत्यू, देह मराठी में पुल्लिंग और हिंदी में स्त्रीलिंग होते हैं। अनुवाद में क्रिया भेद की समस्याओं में प्रायः हम देखते है कि मराठी भाषा की अपेक्षा हिंदी भाषा में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग अधिक मात्रा में होता है। इसकी जगह उठाना, बैठना, कहना, खाना, लेना, सोना, देना, आना, जाना, पाना, जाना आदि सहायक क्रियाओं का उपयोग किया जाता है। मराठी में- मी खातों, तो जातो. शाम निघाला.

हिंदी में- मैं खाता हूँ, वह जाता है। शाम निकल पड़ा।भाषा तब मुहावरेदार बनती है जब उस भाषा में क्रियाओं का लाक्षणिक प्रयोग होता है, लेकिन जब ऐसेलाक्षणिक प्रयोग रूढ़ बन जाते है तब उनका सामान्य प्रयोग होने लगता है। ऐसी क्रियाओं का अनुवाद शब्दशः नहीं किया जासकता। अनुवाद में वचन भेद की समस्याओं को देखो तो इनमें कुछ शब्दों का अनुवाद हिंदी में बहुवचनके रूप में होता दिखाई देता है। अनुवाद में कारक भेद की समस्याएँ भी आती है जब हिंदी में संज्ञा को लगनेवाले विभक्ति प्रत्यय संज्ञा से अलग लिखे जाते हैं किंतु सर्वनाम के साथ जोड़कर लिखे जाते है। मराठी में वह संज्ञा या सर्वनाम के साथ जोड़कर ही लिखे जाते हैं। जैसे-मराठी में- राधा ने तीचे काम केले.हिंदी में ङ्कराधा ने उसका काम कर दिया।मराठी से हिंदी में अनुवाद करते समय कई कारकों के प्रयोग एक विशिष्ट प्रकार से होते हैं। हिंदी कर्ता कारक का विभक्ति प्रत्यय 'ने' हैं, जो मराठी में भीउपयोग में लाया जाता है इसलिए हमें सावधानी से देखना एवं समझना होगा। मराठी में- खंडेकारांनी लिहिलेल्या ययाती कादंबरीस ज्ञानपीठ पारितोषिकमिळाले। यहाँ नी के स्थान पर ने विभक्ति नहीं आएगी। जैसे- हिंदी में- खांडेकरजी के लिखे ययाती उपन्यास को ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्तहो गया। मराठी 'पाहिजे' के लिए हिंदी में 'चाहिए' का प्रयोग होता है। किंतु इस क्रिया के कर्ता को मराठी में 'ने' प्रत्यय लगता है तो हिंदी में 'को' प्रत्यय की अपेक्षा होती है। जैसे-मराठी में- प्रत्येक तरुणाने आधी अभ्यास केला पाहिजे. हिंदी में- हरएक युवक को पहले पढाई करनी चाहिए।

शरीर का दोष दिखाने के लिए मराठी में 'ने' प्रत्यय का प्रयोग होता है औरहिंदी में 'से' प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे-मराठी में- माझा मित्र एक पायाने लंगड़ा आहे। हिंदी में- मेरा मित्र एक पाँव से लंगड़ा हैं।शरीर के अवयवों का निकट संबंध बताने एवं रिश्ते नाते बताने के लिए हिंदी में 'के' प्रत्यय का प्रयोग होता है जब की वचन कोई भी हो। जैसे-मराठी में- सावजीला तीन मुली होत्या. त्याला दोन मुले होती।

हिंदी में- सावजी की तीन बेटियाँ थी। उसके दो बेटे थे। मराठी 'ने' प्रत्यय के लिए हिंदी में प्रायः 'से' प्रत्यय लगता है जो करण कारक का प्रत्यय है। किंतु 'से' हिंदी में अपादान कारक का भी प्रत्यय है। अतः मराठी के 'ऊन', 'हून' के लिए भी 'से' प्रत्यय का ही प्रयोग होता है। जैसे- मराठी में- मी वाघाला घाबरतो. तरीपण मी त्याला भेटलो. हिंदी में - मैं वाघ से डरता हूँ। फिर भी मैं उससे मिला। 'से' का अपादान अर्थ में प्रयोग-मराठी में घरापासून पाच किलोमीटर अंतरावर एक झाड होते. त्याझाडावरून एक फल खाली पडले.हिंदी में- घर से पाँच किलोमीटर दूरीपर एक पेड़ था। उस पेड़ से एक फलनीचे गिर गया।' अनुवाद में सर्वनाम के प्रयोग में आती समस्याओं देखें तो मराठी सर्वनाम के लिए हिंदी में 'तू' और 'तुम' दो सर्वनाम है। 'तू' का हिंदी में प्रयोग बच्चे और बहुत निकट के व्यक्ति के लिए किया जाता है। कई बार क्रोध में किसी का निरादर करने के लिए भी 'तू' का प्रयोग किया जाता है। मराठी में 'तुम्ही' शब्द का अनुवाद मराठी भाषी प्रायः 'तुम' करता है जो समान है, किंतु हिंदी भाषी के लिए यह खटकनेवाली बात है। क्यों की मराठी में 'तुम्ही' बहुवचन है तो हिंदी में 'तुम' एकवचन है। हिंदी में 'आप' इस आदरवाचक सर्वनाम का प्रयोग होता है। कभी-कभी मराठी 'आपण' का इस रूप में प्रयोग होता है लेकिन 'आपण' 'हम' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे-मराठी में- आपण या। आपण जाऊ। हिंदी में- आप आइए। हम जाएंगे। हिंदी में 'आप' सर्वनाम का प्रयोग अन्य पुरुष में भी आदरार्थी होता है जो मराठी में प्रायः नहीं होता। मराठी में 'आप' निजवाचक सर्वनाम के रूप में भी प्रयुक्त होता है। मराठी भाषी लोग 'माझे', 'आमचे' जैसे सर्वनामिक विशेषण का अनुवाद 'मेरा', 'हमारा' करेगा लेकिन बहुत बार 'अपना' का प्रयोग हिंदी के अनुकूल रहेगा। जैसे-मराठी में- मी माझे काम करतो, तुम्ही तुमचे काम करा. हिंदी में- मैं अपना काम करता हूँ, आप अपना काम कीजिए। मराठी के 'हा', 'ही', 'हे' सर्वनाम विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। कई बार इनका हिंदी में अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं होती। जैसे- मराठी में- लोकमान्य टिलक हे भारतीय असंतोषाचे जनक होते । हिंदी में- लोकमान्य तिलक भारतीय विद्रोह के जनक थे।समुच्चय बोधक 'की' मराठी में दीर्घ है तो हिंदी में हस्व अर्थात 'कि' जैसे-मराठी में- राम सीतेला म्हणाला की, मी बाहेर जातो. हिंदी में- राम ने सीता से कहा कि मैं बाहर जाता हूँ।मराठी में मी घराकडे निघालो. तो शाळेकडे जाऊ लागला. हिंदी में मैं घर की तरफ निकाल पड़ा। वह पाठशाला की ओर जानेलगा।सम्बोधन के लिए मराठी में बहुवचन में 'नो', 'हो' जैसे प्रत्यय लगते हैं लेकिन हिंदी में सम्बोधन के सामान्य रूप को प्रत्यय नहीं लगता। उसके बहुवचन के रूप पर अनुस्वार नहीं होता। जैसे-मराठी में ए मुलांनो, सभ्य स्त्री-पुरुषहो माझे म्हणणे ऐका. हिंदी में- ए लड़को, देवियो और सज्जनो मेरी बात सुनिए।

अनुवाद में कहावतों की समस्याएँ आती है। कहावतों के लिए मराठी भाषा में 'म्हण' शब्द का प्रयोग 'किया जाता है। 'म्हण' और 'कहावत' के सूत्र एक ही हैं। रूढ़ि और परंपरा से कुछ कथन भाषा के स्थायी

अंग का बन जाते है। लोकसाहित्य का यह अंग सर्वमान्य हो जाने पर कहावत बन जाता है। कहावतें अपने आप में एक सार्थक वाक्य होता है जिसमें संक्षिप्त में बताया गया सत्य, अनुभव, विचार, उपदेश एवं सूचना का प्रभावशाली कथन होता है। कहावत लय और अलंकार से परिपूर्ण होती है। कहावत का अनुवाद लयपूर्ण बनाने में अर्थ और भाव को देखना जरूरी होता है। हर भाषा की कहावते भौगोलिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार अलग-अलग होती है। कहावतों के अनुवाद में भाव को देखना महत्वपूर्ण होता है। मराठी-हिंदी की समान कहवातें-

1. आपला हात जगनाथ -- अपना हाथ जगनाथ
2. करावे तसे भरावे -- जैसी करनी वैसी भरनी
3. नाचता येईना अंगण वाकड़े -- नाच न जाने आँगन टेढ़ा
4. डोंगर पोखरून उंदीर काढणे -- खोदा पहाड़ निकला चूहा

अनुवाद की एक और समस्या है अनुवादक के अनूदित कार्य में आने वाली छोटी-छोटी त्रुटियों को निकालना इस बात के लिए अनुवादक को अपनी कृति की सफलता के लिए पुनःनिरीक्षण करना आवश्यक होता है।प्रकाशन के पूर्व अपनी कृति को ध्यान से देखें, परखें और संशोधन पूर्वक बिना किसी संकोच के त्रुटियों को सुधारते हुए उसका अंत में एक बार निरक्षण करते हुए प्रकाशन को देना चाहिए।

निष्कर्ष:-अनुवाद कार्य को करते हुए हमें कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं का निराकरण करते-करते हम इस निष्कर्ष पर आते है कि कोई भी भाषा हो उसका अनुवाद करने के लिए कुछ अभ्यास और कुछ कौशल से कार्य करना होगा जिससे अनुवाद की त्रुटियों पर नियंत्रण रखते हुए अनुवाद की मनोरंजक और भाषाशक्तिवर्धक प्रक्रिया में हम स्त्रोत और लक्ष्य भाषाओं की सूक्ष्म प्रकृति को जान सकते है और न्यायपूर्वक अनुवाद कार्य को संपन्न कर सकते हैं। भाषाओं की भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के कारण शतप्रतिशत अनुवाद होना संभव नहीं होता, लेकिन अनुवाद में मूल लेखन के अर्थ के निकट अर्थ देने का प्रयास किया जाता है। उनमें आनेवाली त्रुटियों को नजरअंदाज कने के जगह उसपर ठोस उपाय करते हुए समस्याओं को सुलझाना होगा तभी अनुवाद का कार्य सफल होता है।

संदर्भ सूची:-

1. अनुवाद क्या है? भीमसेन निर्मल/ संपा. राजमल बोरा. पृष्ठ संख्या 127
2. अनुवाद क्या है? प्रा. वेदकुमार वेदलनकार/ संपा. राजमल बोरा.पृष्ठ संख्या135
3. अनुवाद क्या है? भीमसेन निर्मल/ संपा. राजमल बोरा. पृष्ठ संख्या 128
4. अनुवाद विज्ञान-विविध आयाम संपा.डॉ.पोपट भावराव बिरारी.पृष्ठ संख्या186

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

प्रेमचंद्र के कथा साहित्य में बालमन की अभिव्यक्ति

पूजा सिंह

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

शोध सारांश :-हिंदी साहित्य में मुंशी प्रेमचंद उन महान कथाकारों में से एक है, जिन्होंने अपने कथासाहित्य के माध्यम से समाज के हर वर्ग को छुआ है। प्रत्येक वर्ग की स्थितियों और परिस्थितियों कथा साहित्य में अभिव्यक्ति मिली है,फिर चाहे वह शोषित समाज हो, पुरुष हो या स्त्री। इसी प्रकार प्रेमचंद ने अपने साहित्यिक जीवन में लगभग 12 बाल कहानियों की रचना की है। जो 1948 ई. में 'जंगल की कहानियाँ'नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई। इन कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद ने तत्कालीन समय मे उत्पन्न परिस्थितियों के अनुकूल बालमन को राह दिखाने का प्रयास किया। इन कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद ने अपने समय में बच्चों को मानवीय संवेदनाओं के साथ-साथ मानवता, न्याय-अन्याय, नैतिकता और सामाजिक आचार व्यवहार से जुड़े मूल्यों और सामाजिक रिश्तों की महता का संदेश देने का प्रयास किया था। इन साहित्यिक कल्पनाओं में बचपन को भी एक स्थान मिला है। कथा साहित्य मे बचपन कभी चरित्र के माध्यम से, तो कभी भावनाओं के रूप में,चित्रित हुआ है, जिन्हें संस्कृति बचपन से जोड़ती है।प्रेमचंद के साहित्य में बचपन का चित्रण परिस्थितियोंवश किया गया। जो कहीं न कहीं उन्हें वास्तविक समाज में उनकी स्थिति से जोड़ता है। 'हम सभी के भीतर एक बच्चा छिपा है', का दावा करने के बाद भी साहित्य की रचना व्यसकों के द्वारा ही की जाती है। अतः कहीं न कहीं उनकी सोच का प्रभाव भी पात्रों पर पड़ता है। प्रस्तुत आलेख प्रेमचंद की कथा साहित्य में बचपन का प्रतिनिधित्व किन रूपों में किया गया है, पर प्रकाश डालता है।अपने कथा साहित्य में प्रेमचंद ने बाल भावनाओं को किस प्रकार अभिव्यक्त किया है,के अवलोकन का प्रयास आलेख में किया गया है।

बीज शब्द :-प्रेमचंद, बाल-साहित्य, मनोविज्ञान, बालमन, कथा-साहित्य, कहानियाँ।

आलेख-जब हम बाल साहित्य की बात करते हैं, तो यहाँ 'बाल' तथा 'साहित्य'दो शब्दों के समन्वय से बाल साहित्यका निर्माण होता है। 'बाल साहित्य' का अर्थ है, एक ऐसा साहित्य या ऐसी कृति जिसका निर्माणएक बच्चे को ध्यान में रखते हुए किया गया हो। एक ऐसा साहित्य जो एक विशेष आयु वर्ग के लिए लिखा गया हो। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि रचनाकार भी एक बालक ही हो।'बाल साहित्य वस्तुतः साहित्यसे अलग कुछ नहीं है। यह समग्र साहित्य का ही एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह एक विशेष आयु वर्ग के लिए लिखा जाने वाला साहित्य है।'[1] जब एक रचनाकार बाल साहित्य की रचना करता है। उससे वह अपनी उन रचनाओं के द्वारा बच्चों के भीतर उत्तम चरित्र का आदर्श स्थापित करने का प्रयास भी करता है। बच्चों का मनोरंजन करते हुए, उनका ज्ञानवर्धन करता है। ऊबाल साहित्य बच्चों के अंकुरों को पुष्ट करता है जो बड़े होकर उन्हें जीवन के सत्य को पहचानने में सहायता करते हैं।'[2] सोहनलाल द्विवेदी का विचार है कि सफल बाल साहित्य वही है जिसे बच्चे सरलता से अपना सकें और भाव ऐसे हो, जो बच्चों के मन को भाएं।यही बाल साहित्य की सार्थकता भी है, क्योंकि बाल साहित्य का निर्माण बच्चों के लिए बड़ों द्वारा किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि उसमें भाषा, कल्पना व भावों की इतनी सहजता हो, कि जब एक बच्चा उसे पढ़े तो वह बच्चे के मन तक आसानी से पहुँचने में समर्थ हो।श्री निरंकारदेव सेवक बाल साहित्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं 'जिस साहित्य से बच्चों का मनोरंजन हो सके, जिसमें वे रस लें और जिसके द्वारा वह अपनी भावनाओं और कल्पना का विकास कर सके वह बाल साहित्य है।'[3]

अतः बाल साहित्य से तात्पर्य केवल मनोरंजन प्रदान करना नहीं है। अपितु मनोरंजन के माध्यम से बच्चों में जीवनोपयोगी गुणों व आदर्शों का निर्माण करना भी है। किसी भी देश और राष्ट्र के लिए बच्चे कितने महत्वपूर्ण हैं। इसे भारत के प्रथम प्रधानमंत्री व बच्चों के प्रिय पं. जवाहरलाल नेहरू भी कहते हैं 'मैं हैरत में पड़ जाता हूँ कि किसी व्यक्ति या राष्ट्र का भविष्य जानने के लिये लोग तारों को देखते हैं। मैं ज्योतिष की गिनती में दिलचस्पी नहीं रखता। मुझे जब हिंदुस्तान का भविष्य देखने की इच्छा होती है तो बच्चों की आँखों और चेहरों को देखने की कोशिश करता हूँ। बच्चों के भाव मुझे भावी भारत की झलक दे जाते हैं।'[4]बच्चे ही भारत का भविष्य हैं। भावी भारत के कर्णधार हैं। राष्ट्र निर्माण का दायित्व उन्ही पर है।यही बालक राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, लेखक, समाज-सेवी, सैनिक, शिक्षक, खिलाड़ी आदि बनते हैं। अतः बाल्यावस्था से ही बच्चों को शारीरिक एंव चारित्रिक विकास की आवश्यकता होती है।

हिंदी साहित्य में प्रेमचन्द एक ऐसे रचनाकार हैं। जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से देश और समाज को राह दिखाने का प्रयास किया है। इनके कथा साहित्य में देशभक्ति की भावना, साधारण जन-समाज की हित कामना, शोषण का विरोध और जनवादी मूल्यों की स्पष्ट झलक देखने को मिलती। इनके द्वारा रचित कहानियों के माध्यम से व्यक्ति को अपने चरित्र को उज्वल बनाने की प्रेरणा मिलती है। अपने साहित्यिक जीवन में प्रेमचंद ने लगभग 300 कहानियों की रचना की है। जो मानव-मन की विभिन्न भावनाओं को प्रकट करती है।इसके साथ ही प्रेमचंद ने 'जंगल की कहानियाँ' नामक एक पुस्तक की भी रचना की। यह पुस्तक 12 कहानियों का संकलन है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसकी समस्त कहानियाँ बच्चों को केंद्र में रखकर लिखी गई है। इसके अतिरिक्त ईदगाह, दो बैलों की कथा, बड़े भाई साहब, माँ, चोरी, और अलग्योझा कुछ ऐसी कहानियाँ है, जिनमे बालमन की

भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है। बाल स्वभाव और बालमन का चित्रण इन कहानियों में देखने को मिलता है। प्रेमचंद ने सीधी-सरल भाषा के द्वारा, बच्चों की सरलता, कौतुहल और जिज्ञासा को एक दिशा प्रदान करने का प्रयास किया है और बच्चों को एक नैतिक आदर्श की राह दिखाई है।अपनी अन्य कहानियों की सामाजिकता, आदर्शवादिता और यथार्थ से हटकर, बच्चे के कल्पनालोक को साकार किया है। जहाँ हाथी, शेर, बंदर, तोता,आदि जैसे पशु पक्षियों का बसेरा है। जिन्हें देखकर बच्चा खुश भी होता है, नाचता भी है, उनसे खेलता भी है, और डरता भी है। 'जंगल की कहानियाँ' पुस्तक में'शेर और लड़का','वनमानुष की दर्दनाक कहानी','गुब्बारे पर चीता','पागल हाथी','वनमानुष खानसामा','सांप का मणि','मिटठू','पालतू भालू','बाघ की खाल','मगर का शिकार','जुड़वा भाई','दक्षिण अफ्रीका में शेर का शिकार' नामक कहानियाँ संकलित हैं। इन कहानियों के माध्यम से जहाँ प्रेमचंद बच्चों की मासूमियत और उनके मन को उड़ान देते है,वहीं दूसरी ओर वास्तविक जीवन से भी उनका परिचय करवातें हैं। 'शेर और लड़का' कहानी मे अपने काम के प्रति समर्पित एक लड़के का वर्णन है। जो अपने मालिक की एक गाय को ढूंढने के लिए अंधेरी रात में जंगल चला जाता है। उसे अपनी जान की भी फिक्र नहीं होती। जहाँ उसका सामना एक भूखे शेर से हो जाता है। किस प्रकार अपनी सूझबूझ और साहस के द्वारा वह शेर से अपनी जान बचा पाता हैं, की कथा का वर्णन कहानी में किया गया है। उदाहरणार्थ- 'आखिर उसे एक तरकीब तरकीब सूझी। वह पेड़ की फुनगी पर चढ़ गया और अपनी धोती खोलकर उसे हवा में उड़ाने लगा कि शायद किसी शिकारी की नजर पढ़ जाये। एकाएक वह खुशी से उछल पड़ा। उसकी सारी भूख, सारी कमजोरी गायब हो गई। कई आदमी झरने के पास खड़े उस उड़ती हुई झंडी को देख रहे थे।'[5]

'गुब्बारे पर चीता' कहानी में बलदेव के माध्यम से बच्चों के मन में उठती आकांक्षा को निरूपित किया गया। मेले, त्यौहारोंऔर सर्कस जैसे ही खेल तमाशे किस प्रकार बालक-मन को उद्वेलित करते हैं। जहाँ उनका ध्यान किसी भी काम मे नहीं लग पाता है।'लड़कों का मन तो सर्कस में लगा हुआ था। सामने किताबें खोले जानवरों की चर्चा कर रहे थे। क्योंकर शेर और बकरी एक ही बर्तन में पानी पीएंगे? और इतना बड़ा हाथी पैर गाड़ी पर कैसे बैठेंगा? पैर गाड़ी के पहिये बहुत बड़े-बड़े होंगे? और तोता बंदूक छोड़ेगा? और बनमानुष बाबू बनकर मेज पर बैठेगा ! बल्देव सबसे पीछे बैठा हुआ अपने हिसाब की कॉपी पर शेर की तस्वीर खींच रहा था।'[6] इसी प्रकार प्रेम और अपनेपन पर आधारित'पागल हाथी' कहानी मे एक हाथी और मुरली नामक आठ-नौ साल के बच्चे की दोस्ती को बताया।'मिट्ठू' कहानी में भीइसी अपनेपन को अभिव्यक्त किया गया है।

परिवार, प्रेम, आपसी संबंध और परिवेश का एक बच्चे के जीवन पर कितना सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, इसे प्रेमचंद की 'जु?वा भाई' कहानी में देखा जा सकता है। इस कहानी मे जहाँ भालू द्वारा एक बच्चे का लालन-पालन करने के कारण वह पशु सामान व्यवहार करने लगता है। जबकि उसका दूसरा भाई राजा के द्वारा पालित होने के कारण एक राजा बन जाता है।प्रेमचंद की इन कहानियों की विशेषता केवल यह नहीं है कि ये सामान्य जीव जंतुओं पर आधारित होकर बच्चों के अधिक निकट है,अर्थात् केवल बच्चों हेतु उपयोगी है। अपितु ये कहानियाँ वयस्कों को भी सीख देती है की एक बच्चे के समक्ष किस प्रकार का व्यवहार न्यायोचित है। जिसके प्रभाव के चलते उसका जीवन सकारात्मक और नकारात्मक किसी भी दिशामेंअग्रसर हो सकता है। इस संकलन की कहानियाँ मुख्य रूप से 10 वर्ष की अवस्था प्राप्त बालकों के निश्चल और निर्मल मन की अभिव्यक्ति हैं। इसी कारण अधिकतर कहानियाँ पशु-पक्षियों और जंगली जानवरों से संबंधित हैं।बच्चे के प्रारंभिक जीवन में भावनाओं और विचारों को आकार देने मे इन कहानियों की विशेष भूमिका रही है। आज के समय में भी ये कहानियाँ बच्चों के मन की कोमल भावनाओं को आकार देने मे सक्षम हैं।बच्चों की दुनिया में सभी एक समान है। वो हर किसी को प्रेम पूर्ण दृष्टि से देखता है। वयस्कों की तरहउसकी दुनिया में मिलावट नहीं है। वह दूसरों की भावनाओं से खेलना और उन्हें आहत करना नहीं जानता। यही इन कहानियों का सार भी कहा जा सकता है। सन् 1930 मे 'हंस' पत्रिका मे प्रेमचन्द का संपादकीय निबंध छपा 'बच्चों को स्वाधीन बनाओ'। जिसमें वे लिखते हैं, 'बालकों को प्रधानता ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए की वह हर एक काम के गुण दोष को भीतर से देखें।'अपनीइस उक्ति के अनुरूप इनकी कहानियाँ बच्चों को मानवीय संवेदना के साथ-साथ सामाजिक आचार-विचार, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित का भी संदेश देती हैं।'बड़े भाई साहब'और'चोरी' कहानी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।'पंचपरमेश्वर','दो बैलों की कथा' जैसी कहानियों के माध्यम से मित्रता, आपसी विश्वास और सद्भाव जैसे गुणों को बच्चों के भीतर अंकुरित करने का प्रयास भी करते हैं।

आज के इस तकनीक के दौर में बच्चे का प्रथम साक्षात्कार मोबाइल, टीवी शो से होता है। जहां बच्चे कथा-कहानियों व प्रेम के बदले हिंसात्मक कार्टून-चरित्र व जासूसी और रहस्यात्मक बातों को स्वयं के अधिक निकट पाते हैं। वहाँ प्रेमचंद की इन कहानियों की सार्थकता और बढ़ जाती है। ऐसे समय में जब बाल सुलभ सहृदयता और निर्मलअंत:करण काअभाव बालकों में देखने को मिलता है। ऐसे समय मे इन कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद बच्चों के व्यवहार के साथ-साथ उनकी मानसिक स्थिति को, उनके द्वन्द को भी अभिव्यक्त करते हैं। जब बच्चे अपना बचपन जीने के स्थान पर अपने से अधिक उम्र के व्यवहारको प्रदर्शित करने लगते हैं, तो उनकी मासूमियत खोने लगती है। प्रेमचंद की 'ईदगाह' कहानी इसी बाल-मनोविज्ञान को प्रस्तुत करती है।जहाँ अन्य सभी बच्चे मिठाइयाँ, झूले और खिलौनो मे अपने धन को खर्च कर खुश होते हैं,वहाँ हामिद अपनी दादी के लिए चिमटा लेकर लौटता है। उनकी दशा को देखकर वह द्रवित हो उठता है। जहाँ एक ओर ये कहानी बच्चे के मन की संवेदनशीलता के भाव को व्यंजित करती हैं,तो दूसरी तरफ पारिवारिक जिम्मेदारियाँ किस प्रकार एक बालक से उसका बचपन छीन लेती हैं, का भी वर्णन करती है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में केवल व्यवहारिक गुणों का ही वर्णन नहीं किया है, बल्कि एक बच्चे की मन:स्थिति का भी विभिन्न परिस्थितियों में प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।'अलग्योझा' कहानी में उस बच्चे की मनोस्थिति का वर्णन है, जिसकी माता की मृत्यु के पश्चात उसका पिता पुनर्विवाह कर लेता है। भारतीय समाज में पुनर्विवाह के उपरान्त बच्चे को किस मानसिक परेशानियों से गुजरना पड़ता है, का वर्णन कहानी में है। उदाहरणार्थ- 'भालू महतो ने पहली स्त्री के मर जाने के बाद दूसरी सगाई की, तो उसके लड़के रघु के लिए बुरे दिन आ गए। रघु की उम्र उस समय केवल वर्ष की थी। चैन से गांव मेँ गुल्ली डंडा खेलता फिरता था। माँ के आते ही चक्की में जुतना पड़ा।'[7] 'माँ' कहानी में भी प्रकाश के माध्यम से पिता की मृत्युके पश्चात अकेले माँ द्वारा पाले गए बच्चे के स्वभाव के अल्हड़पन को व्यक्त किया गया है। एक पिता का

बच्चे के जीवन में कितना महत्त्व है। एक पिता, जीवन और समाज से जुड़ें नैतिक मूल्यों से अपने बच्चे का परिचय कराता है। जिसके अभाव में प्रकाश कभी भी अपने जीवन में किसी के प्रति द्रवित हृदय नहीं कर पाता। माता और पिता दोनों का ही एक बच्चे के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। एक से उसे हृदय की कोमलता प्राप्त होती है, तो दूसरे से नैतिक व चारित्रिक आदर्श का ज्ञान प्राप्त होता है। किसी एक के भी अभाव में उसके जीवन की दिशा और दशा बिगड़ जाती है।

एक बच्चे के मन की असंतोष को प्रेमचन्द ने'बड़े भाई साहब' कहानी मे दिखाने का प्रयास करते हैं। एक बड़ा भाई अपने छोटे भाइयों के समक्ष किस प्रकार पिता सामान आदर्श को सामने रखने का निरंतर प्रयास करता है। ऐसा करते हुए वो किस प्रकार अपनी आकांक्षाओं को दबाता है, यह कहानी मे बड़े भाई साहब के माध्यम से दिखाया गया है। उदाहरण- 'मैं कनकौए उड़ाने को माना नहीं करता। मेरा भी जी ललचाता है;लेकिन करूँ क्या, खुद बेराह चलूँ, तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ? यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर है!'[8] प्रेमचंद की इन कहानियों का प्रयोजन केवल बच्चे के मन की अच्छी-बुरीभावनाओं का प्रकटीकरण ही नहीं है, अपितु बच्चों को सही राह दिखाना भी है। जिसे उनकी 'बड़े भाई साहब' कहानी मे देखा जा सकता है। जब छोटे भाई केमन में यह भावना पैदा होने लगती है, कि अबमेरे भाई मुझसे कुछ नहीं कह सकते। क्योंकि उन्हें मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं है। ऐसे समय मे'बड़े भाई साहब' कहानी में छोटे भाई को सही राह दिखाने हेतु बड़े भाई द्वारा कही गई बातें किसी एक के लिए ही नहीं है, बल्कि उन सब विद्यार्थियों और बच्चों के लिए हैं, जो अपनी छोटी-सी जीत पर गौरवान्वित हो जाते हैं। जिसके फलस्वरूप अपने भविष्य के प्रति उदासीनता का भाव ग्रहण कर भाग्य के भरोसे रहने लगते हैं। कहानी में बड़े भाई का कथन दृष्टिनीय है- 'तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं, लेकिन वह जेहन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले। तुम अपने दिल में समझते होंगे, मैं भाई साहब से महज एक दरजा नीचे हूँ, और अब उन्हें मुझे कुछ कहने का हक नहीं, लेकिन यह तुम्हारी गलती है।'[9] 'दो बैलों की कथा' मे जब मोती अपने उस मालिक से बदला लेना चाहता है, जो झूरि के यहां से उसे जबरदस्ती ले आया था। तब उसकी छोटी बच्ची के प्यार और अपनेपन के आगे मोती भी झुक जाता है। उसके मन मे तुरंत ख्याल आता है की ऐसा करने से वह छोटी ल?की जो उसे रोटी खिलाती है, अनाथ हो जाएगी। इस प्रकार प्रेमचंद की कहानियाँ किसी व्यक्ति विशेष की न होकर परिस्थितियों की है। प्रेमचंद 'कला के लिए कला' वाले सिद्धांत से अपनी कला का निर्माण नही करते। इनकी रचनाएं मनोरंजक अवश्य होती हैं, परंतु केवल मनोरंजन करना उनका उद्देश्य नहीं होता। 'ये पात्रों को भिन्न-भिन्न स्थितियों मे डालकर उनके विभिन्न प्रकार के चरित्र-सौन्दर्य का साक्षात्कार कराते हुए, उन्ही के द्वारा नैतिक-सिद्धांतों का प्रतिपादन कराते है।'[10]

निष्कर्ष-प्रेमचंद उन महान कथाकारों मे से हैं, जिन्होंने वयस्कों के अतिरिक्त बच्चों के लिए भी विशेष रूप से कथाओं की रचना की। 'जंगल की कहानियाँ' की रचना कर तत्कालीन समय मे उच्चादर्शों को बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत किया। एक ऐसे समय मे जब अंग्रेजी संस्कृति का प्रभाव चारों ओर फैल रहा था। ऐसे समय मे प्रेमचंद भारतीय संस्कृति से, मूल्यों से, बच्चों का साक्षात्कार करवाते है। इन कहानियों मे बालक के ही नहीं बल्कि जानवरों के भीतर छिपी मानवीय संवेदनाओं को भी वाणी प्रदान की है। जानवरों को मानवीय पात्र के रूप मे प्रस्तुत करते हुए, अंतर्मन मे छिपे भावों को कुशलता के साथ प्रेमचंद ने अभिव्यक्त किया है। भय, गुस्सा, हर्ष, उत्सुकता, मित्रता, दया, आदि जैसे मनोभावों का प्रेमचंद की कहानियों मे सफलतापूर्वक चित्रण मिलता है।

संदर्भ सूची:-

1. निराला,सूर्यकान्त त्रिपाठी, संपूर्ण बाल रचनाएँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 5।
2. देवसरे, डॉ. हरीकृष्ण, हिंदी बाल साहित्य-एक अध्ययन, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली,प्रथम संस्करण 1969, पृष्ठ 1।
3. वहीं, पृष्ठ 7।
4. पांडेय,विनोदचन्द्र'विनोद', हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, प्रथम संस्करण 2010, पृ. 9।
5. प्रेमचंद, जंगल की कहानियाँ, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण 1948, पृ.7।
6. प्रेमचंद, जंगल की कहानियाँ, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण 1948, पृ16।
7. प्रेमचंद, प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ(खंड-1), सुमित्र प्रकाशन,इलाहाबाद, पृ 01।
8. वहीं, पृ 57।
9. वहीं, पृ 56।
10. यादव,सं.वीरेंद्र नारायण, हिन्दी अनुशीलन(पत्रिका), वर्ष 48, अक्टूबर2005-मार्च2006(संयुक्तांक) अंक-4-5, पृ. 67-68।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

हिंसा का मार्ग छोड़ शांति पर बल देना होगा

डॉ. संदीप कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, एन आई आई एल एम विश्वविद्यालय, कैथल, हरियाणा, भारत

सारांश:-विश्व में किसी भी मुद्दे के समाधान के लिए हिंसा नहीं शांति से बैठकर बातचीत करने की जरूरत है। बातचीत ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हर छोटे से बड़ी समस्या का समाधान होता है। इतिहास गवाह रहा है, जब भी विश्व में किसी भी प्रकार की हिंसा हुई है। आखिर में बातचीत के माध्यम से ही समाधान हुआ है। चाहे प्रथम विश्व युद्ध की बात हो या दूसरे विश्व युद्ध के बाद परमाणु हमले के बाद के हालात हो, इन दोनों ही स्थितियों में आखिर में बातचीत से ही समाधान हुआ। यह बात अलग है कि तब शांति का मार्ग अपनाने के लिए यूनाइटेड नेशन का गठन किया गया। लेकिन वही यूनाइटेड नेशन आज भी है। विश्व में 2022 से रूस और यूक्रेन के बीच युद्ध चल रहा है। यूनाइटेड नेशन व अन्य देशों के बीच बचाव करने के बावजूद भी यह लड़ाई थमने का नाम नहीं ले रही है। दूसरी ओर 7 अक्टूबर से इसराइल और फिलिस्तीन समर्थित समाज के बीच जंग जारी है। इस जंग का नतीजा यह सामने आ रहा है कि फिलीस्तीन के गाजा का नक्शा बदल चुका है। गाजा में ऐसा कोई स्थान नहीं बचा जहां इजरायल की तरफ से बमबारी या मिसाइल से अटैक नहीं किया गया हो। गाजा पट्टी से लाखों की संख्या में स्थानीय लोग विस्थापित हो चुके हैं। उन्हें शरण देने के लिए कोई भी देश राजी नहीं है। यह सबसे बड़ी चिंता की बात है। यूनाइटेड नेशन व विश्व स्वास्थ्य संगठन के बार-बार अपील करने के बावजूद भी इसराइल और हमास के बीच युद्ध रुकने का नाम नहीं ले रहा है। यह माना कि इस युद्ध में सबसे पहले शुरुआत हमास के लड़ाकू ने की थी। हमास के लड़ाकू ने इसराइल पर हमला बोलकर उसे देश के महिलाओं सहित करीब 250 लोगों का अपहरण किया। इसी बात से आग बबूला हुए इसराइल ने जंग का ऐलान किया। पर अब समय आ चुका है की बातचीत के द्वारा इस मामले को शांति के मार्ग पर लेकर आना चाहिए। गलती चाहे किसी की हो लेकिन शांति के बिना समाधान नहीं होगा। कहा जा सकता है की विश्व को युद्ध नहीं शांति की जरूरत है।

सूचक शब्द:- युद्ध,शांति,इजरायल, फलीस्तीन, हमास,यूनाइटेड नेसंश

युद्ध की तबाही के बीच, मानवीय संकट गहराता:-इसराइल और फिलिस्तीन दो छोटे-छोटे देश हैं। कभी एक साथ होने वाले इन देशों के बीच 7 अक्टूबर से ऐसी जंग छिड़ी है, जो किसी के कहने से भी रुक नहीं रही है। चाहे इसराइल हो या फिर फिलिस्तीन। भविष्य में दोनों ही देश को बातचीत के लिए आगे आना होगा। पर यहां सबसे बड़ा सवाल यह है कि इनके बीच मध्यस्थता करें कौन? क्योंकि महाशक्ति कहे जाने वाले संयुक्त राज्य अमेरिका इस युद्ध में इजराइल का साथ दे रहा है लेकिन अमेरिका भी गाजा में विध्वंस का समर्थक तो नहीं है। पर इजरायल अमेरिका के बल पोते पर ही फिलिस्तीन पर वार कर रहा है। दूसरी ओर रूस इस युद्ध में अप्रत्यक्ष तौर पर फिलिस्तीन का साथ दे रहा है। शुरुआती दौर में इस जंग की आग को भड़काने वाले ईरान में सीरिया अब न्यूट्रल होकर बैठ गए हैं। इन्हें तमसबीन कहा जा सकता है। इजराइल में फिलीस्तीन के बीच चल रहे युद्ध के मुद्दे पर यूनाइटेड नेशन की सुरक्षा परिषद की कई बार बैठकर हो चुकी हैं। हर बार सिर्फ चिंता व्यक्त की जाती है। प्रस्ताव पास किए जाते हैं,लेकिन अब तक यूनाइटेड नेशन की सुरक्षा परिषद भी किसी भी समाधान पर नहीं पहुंचा है। दूसरी ओर विश्व स्वास्थ्य संगठन में इस युद्ध में प्रभावित लोगों को सुविधा देने में अब तक नाकाम साबित हुआ है। इसराइल जो कभी फिलिस्तीन का हिस्सा था वह आज एक अलग राष्ट्र है। लेकिन उसे इतना जरूर सोचना चाहिए आखिर रहने के लिए जगह गाजा के लोगों को भी चाहिए। हमास के लड़ाकू ने शुरुआती दौर में बहुत बड़ी गलती कर इसराइल पर अचानक हमला बोला। इसके परिणाम स्वरूप इसराइल ने हमास के खात्मे के लिए युद्ध का ऐलान कर दिया जो युद्ध अब तक लगातार जारी है। 2022 से चले जा रहे रूस-यूक्रेन युद्ध के बाद इजराइल फिलिस्तीन युद्ध में भी युद्ध अपराध किया जा रहे हैं। क्योंकि यूनाइटेड नेशन के युद्ध के संबंध में भी कुछ नियम तय किए गए हैं। उन नियमों का उल्लंघन युद्ध अपराध माना जाता है। इन दोनों युद्ध में बार-बार युद्ध अपराध हो रहे हैं। क्योंकि जंग कोई भी हो उसमें सिर्फ दोनों देशों की फौज या फिर आतंकियों के साथ लड़ाई होती है। लेकिन यहां एक देश दूसरे देश की जनता को मार रहा है। जबकि आम जनता का कोई कसर नहीं है। बेकसूर जनता अपनी जिंदगी की भीख मांग रही है। शरण लेने के लिए स्वास्थ्य केन्दों व अस्पतालों में जा रहे हैं। पर सोचने की बात यह है कि फिलिस्तीन में इस वक्त अस्पताल भी सुरक्षित नहीं है। अस्पतालों पर भी लगातार हमले किए जा रहे हैं। इजराइल का आरोप है कि गाजा के इन्हीं अस्पतालों के नीचे हमास के लड़ाकू ने अपने ठिकाने बनाए हुए हैं। यहां हमले करने जरूरी है। दूसरी और यूनाइटेड नेशन व विश्व स्वास्थ्य संगठन ऐसी जंग का लगातार विरोध कर रहा है। लेकिन उनके विरोध को ने तो इसराइल सुन रहा है और नए ही पूरा विश्व।

ग़ाज़ा में युद्ध से विस्थापित बहुत से लोगों को, स्वास्थ्य केन्द्रों में पनाह लेनी पड़ी :-संयुक्त राष्ट्र के आपातकालीन राहत समन्वयक मार्टिन ग्रिफ़्थ्स ने 11 दिसंबर सोमवार को ग़ाज़ा के लोगों के बारे में अपनी चिन्ताएँ फिर दोहराई हैं। ग़ाज़ा सिटी, ग़ाज़ा पट्टी के उत्तर में स्थित जबालिया और ग़ाज़ा के दक्षिणी इलाक़े - ख़ान यूनिस में, इसराइली बलों और फ़लस्तीनी सशस्त्र समूहों के दरमियान तीव्र लड़ाई की ख़बरों के बीच, यह चिन्ता की बात है। ग़ाज़ा में इसराइल की भीषण बमबारी भी जारी है। हालांकि एक बार युद्ध विराम के दौरान कुछ राहत जरूर मिली थी लेकिन अब एक बार फिर गा?ा के लोगों के लिए मुसीबत बन गई है। यूनाइटेड नेशन व विश्व स्वास्थ्य संगठन सपोर्ट के बावजूद भी यहां के लोगों को मूलभूत आवश्यकताओं की वस्तुओं के लिए तरसना पड़ रहा है। गाजा के लोगों को एक तरफ जहां मौसम के साथ लड़ना पड़ रहा है। वहीं दूसरी तरफ अपने पेट की भूख मिटाने के लिए तो वक्त की रोटियां के भी मोहताज हो गए हैं। क़तर के दोहा में 11 दिसंबर को वैश्विक मानवीय समीक्षा के दौरान पाया कि गाजा में स्थिति 'बदतर होती जा रही है', जबकि 'शान्ति के क्षणों' को सुरक्षित करने के प्रयास 'सबसे बड़ा महत्व' बने हुए हैं। यहाँ बार-बार कोशिश के बावजूद भी शांति स्थापित करना यूएनओ के लिए सबसे बड़ी चुनौती बना हुआ है। संयुक्त राष्ट्र राहत समन्वय कार्यालय की, ग़ाज़ा त्रासदी के बारे में अद्यतन जानकारी के अनुसार,

हाल ही में दक्षिणी इलाक़े में रफ़ाह पहुँचे हज़ारों लोगों को, सहायता वितरण केन्द्रों के आसपास, 'भोजन, पानी, आश्रय, स्वास्थ्य और सुरक्षा की सख़्त ज़रूरत है।' लोगों को कई-कई घंटों तक इन्तजार करना पड़ रहा है। जबकि लोगों के जिंदा रहने के लिए भोजन सहित मूलभूत आवश्यकताओं की चीजों का होना बहुत जरूरी है। युद्ध के इन भयभीत करने वाले हालातो के बीच जनता कुछ नहीं कर सकती सिर्फ दया की भीख मांग सकती है और वह उन्हें मिल नहीं रही। युद्ध के हालातों के दौरान पर्याप्त स्वच्छता की कमी के कारण, लोगों को खुले स्थानों में शौच करना पड़ रहा है। जिससे बीमारी फैलने का डर बढ़ रहा है। 7 अक्टूबर को हमास के चरमपंथियों द्वारा इसराइल के दक्षिणी इलाक़े में किए गए एक आतंकी हमले में 1,200 लोग मारे गए थे और लगभग 240 लोगों को बन्धक बना लिया गया था। इसराइल ने हमास के उस हमले के खिलाफ ग़ाज़ा में व्यापक कार्रवाई की है। फिलिस्तीन के खिलाफ युद्ध के दौरान भीषण बमबारी व मिसाइल अटैक भी हो रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन व ग़ाज़ा के स्वास्थ्य अधिकारियों के अनुसार, लड़ाई शुरू होने के बाद से ग़ाज़ा में लगभग 18 हज़ार लोग मारे गए हैं, जिनमें लगभग 70 प्रतिशत महिलाएँ और बच्चे हैं। इस युद्ध में 49 हज़ार लोग घायल भी हुए बताए गए हैं। यदि ऐसा वास्तव में हुआ है तो ये इजरायल व फिलिस्तीन ने युद्ध अपराध किया है। क्योंकि किसी भी युद्ध मे बेकसूर महिलाओं, बच्चों सहित आमजन को नहीं मारा जा सकता। जबकि यहाँ ऐसा हुआ है। इतना ही नहीं गाजा के अस्पतालों पर भी युद्ध का प्रभाव पड़ा है। एक अस्पताल पर तो मिसाईल अटैक हुआ था। उस वक्त अस्पताल में उपचाराधीन मरीजों की भी मौत हो गई थी। मानवता के खिलाफ कभी भी लड़ाई नहीं की जा सकती। हालांकि यूनाइटेड नेशंस के अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में आम जनता के नरसंहार को को चुनौती दी जा सकती है लेकिन तब तक काफी देरी हो चुकी होगी। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय खुद भी इस मामले में संज्ञान ले सकता है।

क्या है भविष्य की 'कूटनीति' ?:-युद्ध के दौरान ग़ाज़ा में भीषण युद्ध से तबाह अस्पतालों में कई हज़ार बच्चे भी मारे गए हैं। युद्धग्रस्त ग़ाज़ा में 'शान्ति के क्षण लाने' के प्रयासों के तहत, क़तर 'रचनात्मक कूटनीति' पर काम कर रहा है। पर यह कूटनीति कब सफल होगी यह सबसे बड़ा सुलगता सवाल है। ग़ाज़ा के दक्षिण में सैन्य अभियान की तीव्रता और पड़ोसी देशों के लिए ख़तरों के बारे में जो कुछ सुन रहे हैं, उसके मद्देनज़र, वो प्रयास और भी महत्वपूर्ण' बन जाते हैं। इसराइल के क़ब्ज़े वाले फ़लस्तीनी क्षेत्र को देखकर लगता है की युद्ध के कारण भड़के मौजूदा मानवीय संकट का कोई अन्त नज़र नहीं आ रहा है। 7 अक्टूबर को हमास और अन्य फ़लिस्तीनी सशस्त्र समूहों द्वारा हत्याओं, यौन हिंसा और अपहरण ने पूरे फिलिस्तीन को आघात पहुँचाया। इसराइल द्वारा जवाबी कार्रवाई से ग़ाज़ा में गहरा मानवीय संकट पैदा हो गया है। जहाँ लगभग 19 लाख लोग यानि वहाँ की अधिकांश आबादी विस्थापित हो गई है। युद्ध के कारण सहायता अभियान गम्भीर रूप से बाधित हो गए हैं, और केवल न्यूनतम ईंधन और राहत सामग्री ही ग़ाज़ा के भीतर पहुँच पा रही है। राहत के कभी प्रयास विफल साबित हो रहे हैं।

बन्दियों के साथ अमानवीय कृत्य

मानवीय मामलों के समन्वय के लिए संयुक्त राष्ट्र कार्यालय:- (OCHA) के अनुसार ग़ाज़ा के उत्तरी इलाक़े में, इसराइली सुरक्षा बलों ने 'सार्वजनिक स्थानों, आन्तरिक रूप से विस्थापित व्यक्तियों के लिए आश्रय के रूप में काम करने वाले स्कूलों के साथ-साथ, निजी घरों में रहने वाले सैकड़ों पुरुषों और लड़कों को, कथित रूप में हिरासत में लिया।' OCHA के अनुसार, 'कड़े सर्द मौसम में, बन्दियों के पूरे कपड़े उतरवाकर, उन्हें केवल अंडरवियर मे रखा गया। उन्हें हथकड़ियाँ लगाई गईं और खुले इलाक़ों में घुटनों के बल बैठने का आदेश दिया गया। इतना ही नही उन्हें पीटा गया। उत्पीड़न किया गया, और बुनियादी ज़रूरतों से वंचित रखा गया।' उनकी तस्वीरें और वीडियो सोशल मीडिया पर भी प्रसारित की गई ताकि लोगों में भय का माहौल बना रहे। इसराइली सेना के अनुसार, हमास से जुड़े होने के सन्देह वाले लोगों को पूछताछ के लिए इसराइल भेजा गया है,जबकि अन्य को रिहा कर दिया गया। यह पूरा मामला अमानवीय अत्याचार की श्रेणी में आता है। यह युद्ध अपराध है। उससे बड़ी निर्दयता नहीं हो सकती। हालांकि इस लड़ाई में दोनों तरफ से ही युद्ध अपराध करके मानवता को परेशान किया जा रहा है। वर्तमान में जैसी स्थिति गाजा में बनी हुई है ऐसी स्थिति कभी हिटलर के राज या के दौरान हुए कत्लेआम हुआ होगा।

सहायता अभियान पर प्रभाव:-गाजा में सहायता प्राप्त करने की संयुक्त राष्ट्र की क्षमता 'पिछले कुछ दिनों में काफ़ी कम हो गई है।' ग़ाज़ा के भीतर ट्रकों की कमी, दूरसंचार ठप होने और लड़ाई के कारण सहायता कर्मियों को रफ़ाह सीमा चौकी तक पहुँचने से रोका जा रहा है। इस चौकी के ज़रिए ही, मिस्र से बड़ी तादाद में राहत सामग्री ग़ाज़ा में दाख़िल हो रही है। जिस पर प्रभाव पड़ रहा है। राहत सामग्री न मिलने से तबाह हो चुके गाजा के लोग परेशान है। OCHA ने के अनुसार सप्ताहान्त में प्रतिदिन औसतन डेढ़ लाख लीटर ईंधन मिस्र से आया। यह 67 हज़ार लीटर के पिछले दैनिक औसत से अधिक है। लेकिन यह फिर भी अस्पतालों और ऐम्बुलेंस, पानी और स्वच्छता के साथ-साथ विस्थापितों के लिए आश्रयों सहित 'महत्वपूर्ण सेवाओं के बिखराव को रोकने के लिए आवश्यक न्यूनतम' मात्रा ही है। क्योंकि अब ईंधन की खपत बड़ती जा रही है। 10 दिसंबर को मिस्र से लगभग 45 टन रसोई गैस भी पहुँचाई गई,जो 1 दिसम्बर को, सात दिवसीय मानवीय युद्ध-ठहराव समाप्त होने के बाद 'युद्ध फिर से शुरू होने के बाद पहली ऐसी आपूर्ति' थी। इसराइल के क़ब्ज़े वाले फ़लस्तीनी क्षेत्र के लिए संयुक्त राष्ट्र की शीर्ष सहायता अधिकारी लिन हेस्टिंग्स ने रविवार को कहा कि 'एक क़ाबिज़ शक्ति होने के नाते, यह सुनिश्चित करना इसराइल का दायित्व है कि उसके क़ब्ज़े में रहने वाली आबादी को पर्याप्त स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य मानकों के साथ-साथ, भोजन और चिकित्सा देखभाल उपलब्ध हों।' ताकि बेकसूर लोगों को बचाया जा सके।

स्वास्थ्य सेवा का बुरा हाल:-इस लड़ाई का असर स्वास्थ्य सेवाओं का ज्यादा पड़ा है। सप्ताहान्त में ग़ाज़ा पट्टी में कई स्वास्थ्य सुविधाओं और कर्मियों पर हमले किए गए। OCHA ने ग़ाज़ा के स्वास्थ्य अधिकारियों के हवाले से कहा कि 7 अक्टूबर के बाद से कम से कम 286 स्वास्थ्य कर्मचारी मारे गए हैं और 57 एम्बुलेंस प्रभावित और क्षतिग्रस्त हुई हैं। युद्ध के दौरान जीवनदायिनी सेवाओ को बहाल करने वालों पर ऐसे आक्रमण बर्दाश्त से बाहर की बात होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के कार्यकारी बोर्ड ने 10 दिसंबर को एक विशेष सत्र में, ग़ाज़ा तक सहायता पहुँच और अन्तरराष्ट्रीय मानवीय कानून के सम्मान पर एक प्रस्ताव पारित किया। जिसे एजेंसी के प्रमुख डॉक्टर टैड्रॉस ऐडेहेनॉम घेबरेयेसस ने 卐शुरुआती बिन्दु卐 और 卐निर्माण के लिए मंच卐 कहते हुए सराहा। उन्होंने दोहराते हुए कहा कि 卐शान्ति के बिना, कोई स्वास्थ्य नहीं है।卐 इस क्षेत्र में स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए सबसे पहले शांति बहाल करना जरूरी है। शांति के बिना स्वास्थ्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

संदर्भ सूची :-

1. संयुक्त राष्ट्र समाचार : वैश्विक परिप्रेक्ष्य मानव कहानियां।
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन।
3. आज तक समाचार पोर्टल।
4. दैनिक भास्कर।
5. नवभारत टाईम्स।
6. दैनिक सच कहूँ।
7. संयुक्त राष्ट्र जेनेवा संधि।
8. मानवीय मामलों के समन्वय के लिए संयुक्त राष्ट्र कार्यालय की रिपोर्ट।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

आर्य समाज का हिंदी के विकास में योगदान

कमलेश

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डीएवी सेंटेनरी कॉलेज, फरिदाबाद

सारांश:-हिंदी का इतिहास जितना गौरवपूर्ण है उसका भविष्य भी उतना ही गौरवपूर्ण रहेगा क्योंकि हिंदी एक सरल तथा भावपूर्ण भाषा है। इसलिए आज विश्व भर के लोगों में हिंदी के प्रति लगाव बढ़ रहा है। स्वामी दयानंद द्वारा स्थापित आर्य समाज ने हिंदी को सिरोधारण किया है। आर्य समाज के नींव सत्य पर टिकी है, जो सत्य पर स्थिर रहता है, वह कभी भी किसी भी परिस्थिति में अपने कर्तव्य और लक्ष्य से विचलित नहीं होता। आर्य समाज हिंदी का विकास करना अपना कर्तव्य समझता रहा है। आर्य समाज ने अपने व्याख्यानो,भाषणों,सभाओं,प्रतियोगिताओं और शिक्षण संस्थाओं द्वारा हिंदी को जन-जन तक पहुंचाया है। देव दयानंद त्रिकालदर्शी स्वामी दयानंद ने वेदों पर भाषण करके प्राचीन वैदिक ज्ञान की ज्योति जलाई। संस्कृत का प्रकांड पंडित होते हुए भी उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश हिंदी में लिखी। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य पाठकों को इस तथ्य से अवगत कराना है कि आर्य समाज ने हिंदी भाषा को अमृत पिला कर उसे नया जीवन दान दिया है। परिणाम स्वरूप आज भारत में ही नहीं विश्व भर में हिंदी का डंका बज रहा है। शोध पत्र मे विवरणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

भूमिका:-18 वीं सदी में भारत का जन सामान्य अंधविश्वासों कुरीतियों तथा जादूटोनो के मकड़जाल में फंसा हुआ था। मुस्लिम शासकों ने हिंदी की उपेक्षा करके फारसी को राजकाज की भाषा बनाया। मुस्लिम राज की समाप्ति पर अंग्रेजी राज स्थापित हुआ और अंग्रेजी शासनकाल में भी हिंदी की उपेक्षा ही की गई तथा अंग्रेजी को राजकाज की भाषा और शिक्षा का माध्यम बनाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदी का समुचित विकास नहीं हो पाया। सशक्त वाणी, आकर्षक व्यक्तित्व, वर्षों अभ्यास और ब्रह्मचर्य पालन से संग्रहित निर्भयता, धैर्य और स्मृति आदि गुणों से संपन्न स्वामी दयानंद सरस्वती, बचपन का नाम मूल शंकर, ने विश्व कल्याण की कामना से जिस आर्य समाज की स्थापना की, वह विश्व की एक अद्भुत घटना थी। आर्य समाज ने भारतवर्ष को पुनः विश्व गुरु बनाने की दिशा में एक महान कार्य किया है। स्वामी जी अत्यंत दूरदर्शी थे। उन्हें अपनी दिव्य दृष्टि से यह भान हो गया था कि जब तक भारत की एक राष्ट्रभाषा नहीं होगी,तब तक भारत में एकता स्थापित नहीं हो सकती। एक गुजराती होते हुए भी उन्होंने हिंदी सीखी और अपने समस्त ग्रंथ इसी आर्य भाषा में लिखें। आर्य समाज द्वारा प्रवर्तित गुरुकुल शिक्षा आंदोलन भारत को विश्व पटल पर उभारने का सफल प्रयास है। आर्य समाज ने जितना सकारात्मक और गुणात्मक कार्य किया है वह किसी से छिपा नहीं है। देव भाषा संस्कृत को और राष्ट्रभाषा हिंदी को समृद्ध करने में आर्य समाज समाज के मनीषियों के योगदान को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

भाषा विषयक व्यवहारिक दृष्टिकोण:-भारत की सांस्कृतिक भाषा संस्कृत तथा लोक भाषा हिंदी के प्रचार के इच्छुक होने पर भी स्वामी दयानंद ने व्यवहारिक उपयोगिता की दृष्टि से तत्कालीन राजभाषा अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं को भी सीखने की संस्तुति की थी। इसलिए आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं में संस्कृत और हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती पढ़ाई गई,क्योंकि उनका कार्यक्षेत्र केवल भारत ही नहीं था, बल्कि वे विश्व कल्याण के लिए देश विदेश में भी आर्य समाज के सिद्धांतों को प्रेषित करना चाहते थे और प्रेषण के लिए विदेशी भाषाओं का ज्ञान होना भी आवश्यक था। इसलिए उनकी व्यवहारिक बुद्धि यह स्वीकार करती थी कि समय सुविधा और उपयोगिता की दृष्टि से अन्य भाषाओं को भी सीखना उचित है। वे स्वयं भी अंग्रेजी सीखना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने एक बंगाली बाबू की सहायता भी ली थी परंतु बहुत व्यस्त होने के कारण उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकीद्य अंग्रेजी को व्यवहार में लाने का एक कारण यह भी था जिससे कि आर्य समाज की कार्यवाही का ठीक-ठीक वृतांत गवर्नमेंट और अंग्रेजों को भी विदित होता रहे। उनका यह भाषा संबंधी व्यवहारिक दृष्टिकोण उनके द्वारा जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह को लिखी गई एक चिट्ठी से भी ज्ञात होता है,जिसमें उन्होंने जसवंत सिंह अपने पुत्र को संस्कृत और हिंदी पढ़ाने के साथ-साथ अंग्रेजी का अध्ययन करने का भी निर्देश दिया था।

संस्कृत से हिंदी की ओर:-शुरुआत में स्वामी जी अपने सभी व्याख्यान संस्कृत में देते थे। लेकिन संस्कृत समझना आम लोगों के लिए आसान नहीं था। एक बार स्वामी जी कलकत्ता की सभा में संस्कृत में व्याख्यान दे रहे थे। उनके किसी वाक्य का पाठकों ने संस्कृत की अच्छी समझ ना होने के कारण गलत अर्थ निकाला और सभा में बहुत वाद विवाद भी हुआ। उस सभा में ब्रह्म समाज के सूर्य, बाबा केशव चंद्र सेन भी उपस्थित थे। बाबा केशव चंद्र ने स्वामी जी को सलाह दी कि यदि वे संस्कृत के स्थान पर हिंदी का प्रयोग करेंगे तो बहुमत लोगों तक अपना संदेश पहुंचा पाएंगे। यह एक सर्वविदित और सर्वमान्य तथ्य है कि स्वभाव से विनम्र स्वामी दयानंद ने सेन की सलाह को शिरोधारण किया और उसके बाद उन्होंने न केवल हिंदी को अपनाया, बल्कि समस्त विश्व में हिंदी के प्रचाराअर्थ अथक प्रयास किया।

समाचार पत्रों द्वारा हिंदी का प्रचार प्रसार:-मुंबई में स्थापित आर्य समाज के 28 नियमों में से पांचवा नियम बताता है कि समाज में संस्कृत और आर्य भाषा अर्थात हिंदी के पुस्तकालय की आवश्यकता है। यह नियम इस बात की भी आशा दिलाता है कि समाज की ओर से हिंदी में आर्य प्रकाश नाम का साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित होगा। आर्य समाज ने हिंदी का प्रचार प्रसार करने के लिए अनेक समाचार पत्रों का सहारा लिया। जब से आर्य समाज की

स्थापना हुई,तब से ही समाज ने अपने कई दैनिक साप्ताहिक तथा मासिक पत्र प्रकाशित करने शुरू कर दिए। सबसे पहला प्रकाशित होने वाला समाचार पत्र आर्य प्रकाश था। उसके बाद आर्य दर्पण ,आर्य समाचार, आर्यपत्र ,आर्य भूषण वेदप्रकाश, सिद्धांत, ब्रह्मव्रत, धर्म प्रचारक, सदधर्म प्रचारक, आर्य सेवक ,दयानंद पत्रिका, वेद वाणी ,वेदपथ आदि पत्रों ने हिंदी का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार किया। समाचार पत्रों के अतिरिक्त आर्य समाज ने साहित्य लेखन का कार्य भी हिंदी में ही किया। कई वृहद ग्रंथ हिंदी में लिखे गए जैसे देवेंद्र शर्मा का वैदिक विनय,स्वाध्याय सुमन का स्वामी वेदानंद, नारायण स्वामी का वैदिक साहित्य, पंडित रघुनंदन शर्मा का वैदिक संपत्ति आर्य,पंडित इंद्र विद्यावाचस्पति का आर्य समाज का इतिहास आदि।

आर्य समाज का हिंदी से लगाव भक्त रेमल के एक उदाहरण से साबित होता है। भक्त रेमल को एक बार एक ग्रहणी अपने हाथ से भोजन पका कर देती है लेकिन रेमन ने उस ग्रहणी के हाथ का पकाया हुआ भोजन स्वीकार करने से इसलिए मना कर दिया क्योंकि उस ग्रहणी को हिंदी में हस्ताक्षर करने नहीं आते थे। उस ग्रहणी तथा उसके साथ -साथ हजारों बहनों ने हिंदी सीख ली। हिंदी के प्रसिद्ध पुरस्कार मंगला प्रसाद पुरस्कार पाने वाले सबसे ज्यादा आर्य समाजी ही थे।

विदेशों में आर्य समाज और हिंदी :- ***'आत्मा नित्य और अविनाशी है उसका नाश नहीं हो सकता, इसलिए प्रत्येक प्राणी को आत्म- उत्थान में लगना चाहिए' - स्वामी दयानंद***

आर्य समाज एक सुधारवादी आंदोलन है और इसी रूप में यह पूरी दुनिया में पहुंचा है। आर्य समाज की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण इसके सरल सिद्धांत है। आर्य समाज केवल कुछ लोगों के कल्याण की ही बात नहीं करता,बल्कि समस्त विश्व कल्याण की कामना करता है। 19वीं सदी में भारत से अनेकों भारतीय मजदूरों के रूप में मॉरीशस, वेस्टइंडीज, कैरेबियन सागर, दक्षिणअफ्रीका, सूरीनेम, गयाना आदि देशों में भेजे गए। आर्य समाज ने इन लोगों को अपनी भाषा और संस्कृति से जोड़ें रखने में एक बेजोड़ कड़ी का काम किया है। स्वामी शंकरआनंद जी आर्य समाज के ऐसे ही प्रचारक थे जो, 1960 में दक्षिण अफ्रीका में गए और यहां पर उन्होंने आप्रवासी भारतीयों के लिए हिंदी की पाठशाला स्थापित की। स्वामी भवानी दयाल ने डरबन में एक आश्रम खोला जिसमें एक हिंदी पाठशाला और पुस्तकालय बनाया गया। स्वामी जी ने यहां पर सबसे पहले हिंदी साहित्य सम्मेलन आयोजित किया और हिंदी नामक पत्र का भी प्रकाशन किया। इस कार्य में भाई परमानंद भी उनके सहयोगी रहे। पंडित नरदेव शास्त्री द्वारा 25 अप्रैल 1948 को दक्षिण अफ्रीका में आर्य हिंदी शिक्षा संघ की स्थापना की गई। जिसमें आर्य समाज के सिद्धांतों से संबंधित वाद विवाद, निबंध लेखन ,कविता, अभिनय आदि प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती थी। हरीशचंद्र आर्य और उनके छोटे भाई अरुण विद्यालंकर ने जोहान्सबर्ग में हिंदी विद्या मंदिर की स्थापना की। भवानी जी की आत्मकथा में एक स्थान पर लिखा है कि 5 साल तक मैंने नटाल तथा ट्रांसवाल में लगातार हिंदी का प्रचार किया।1964 में डरबन में हिंदी शिक्षण के लिए 5 केंद्र स्थापित किए गए जिनमें आज भी निरंतर हिंदी शिक्षण कार्य हो रहा है।

तंजानिया की राजधानी में वहां के आर्य समाज द्वारा प्रतिवर्ष 300 छात्र-छात्राओं को हिंदी परीक्षा देने की व्यवस्था की गई है। यहां पर कुछ बहने निजी तौर पर हिंदी कक्षाएं लगाती रही हैं। मॉरीशस ने हिंदी के प्रचार प्रसार में विश्व में अग्रणी भूमिका अदा की है। यहां पर श्रद्धानंद नामक हिंदी प्रेस अपने हिंदी पत्रों का प्रकाशन करती है मॉरीशस के लगभग प्रत्येक गांव में आर्य समाज है,और हर रविवार के दिन लोग यज्ञ करते हैं तथा प्रवचन सुनते हैं। पंडित वेणी माधव और सीताराम आर्यवीर वर्षों से विशुद्ध हिंदी में प्रकाशन करते रहे हैं। यहां महिलाओं के लिए हिंदू गर्ल्स कॉलेज है। आज मॉरीशस में प्रोफेसर विष्णु दयाल ,पंडित आत्माराम, अभिमन्यु अनंत, श्री जयनारायण ,रामदेव धुरंधर आदि मौलिक लेखक हैं जिनकी कृतियां भारत में भी प्रकाशित होती हैं। स्वतंत्र फिजी संविधान की सैनिक क्रांति से पूर्व हिंदी को मान्यता प्राप्त थी और संविधान की धारा 56 के अनुसार संसद की राजभाषा अंग्रेजी होते हुए भी कोई भी सदस्य इच्छा अनुसार फिजियन या हिंदी में बोल सकता था। बर्मा में भी आर्य प्रतिनिधि सभा आर्य युवक जागृति नामक पत्रिका प्रकाशित करती है जिसमें धर्म, दर्शन और संस्कृति संबंधी रचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। इंग्लैंड में हिंदी उर्दू और पंजाबी भाषा की संख्या बहुत ज्यादा है। यहां पर श्री दरबारी लाल ने आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का प्रतिनिधित्व करके हिंदी को विस्तृत किया है। कनाडा के टोरंटो तथा बैंकोंवर क्षेत्रों में भी आर्य समाज ने मंदिरों की स्थापना की है। अमेरिका के फ्लोरिडा क्षेत्र में वैदिक सोसाइटी नाम से वैदिक साहित्य पर कार्य करने वाले लेखकों की एक संस्था बनाई गई है जो प्रवचन, शोध पत्र, निबंध, संगोष्ठी आदि का प्रकाशन करती रहती है। इसके अलावा सूरीनेम वेस्टइंडीज, जावा, सुमात्रा, इंडोनेशिया आदि में भी आर्य समाज की स्थिति बेहतर है। इंडोनेशिया में हिंदुओं के महाकाव्यों का प्रभाव देखते ही बनता है।

हिंदीऔर संस्कृत के विकास में डीएवी का योगदान :-स्वामी जी के परम अनुयायीमहात्मा हंसराज का कहना था कि यदि हम अपनी संस्थाओं में हिंदी -संस्कृत नहीं पढ़ाते तो, इन संस्थाओं पर धन खर्च खर्च करना सर्वथा व्यर्थ है और समाज के लिए इनकी कोई उपयोगिता नहीं है। हंसराज स्वयं हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधान रहे, उनके भाषण से लेकर दीक्षांत समारोह तक के उपदेश सभी हिंदी में होते थे। चंदा मांगने की अपील भी हिंदी में ही होती थी। इसी परंपरा में निरंतरता बनाए रखकर डॉक्टर जीएल दत्ता ने हंसराज मॉडल स्कूल पंजाबी बाग नई दिल्ली में शिक्षा का माध्यम हिंदी घोषित कर दी। और केवल 10 छात्रों के साथ घाटा उठाकर भी 1 वर्ष तक के स्कूल चलाते रहे। डीएवी कॉलेज प्रबंधकृत समिति के पूर्व अध्यक्ष श्री वेदव्यास ने हिंदी और संस्कृत के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए भारत के सर्वोच्च न्यायालय का द्वार खटखटाया।

हिंदी- संस्कृत तथा भारतीय संस्कृति के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार में श्री दरबारी लाल की महती भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता। वे स्वयं हिंदी में प्रभाकर है और अपनी बड़ी पुत्री को भी हिंदी में ही एम ए करवाया द्य उन्होंने 400 पब्लिक स्कूलों की स्थापना की,जिनमें पूरी तरह से अंग्रेजी और अंग्रेजीयत का बहिष्कार किया जाता है।

निष्कर्ष :-आज भारत को स्वतंत्र हुए कई दशक हो चुके हैं,अंग्रेजी आज भी हमारे बीच पांव पसारे बैठी है। यद्यपि ग्लोबलाइजेशन के युग में अंग्रेजी विदेशों तथा प्रदेश में रोजगार प्राप्ति में सहायक भी रही है लेकिन हमारी राष्ट्रभाषा को भी उतना ही सम्मान मिले,इसलिए डीएवी पब्लिकेशन हरवर्ष हजारों धर्म शिक्षा की पुस्तकों का हिंदी में प्रकाशन करा कर मुफ्त में प्रतियां वितरित करती रहती है। आर्य समाज के शिक्षण संस्थानों में अनेक प्रतियोगिताएं अधिकांशत: हिंदी में ही होती हैं और बाहर से आने वाले विद्वान भी अपने व्याख्यान हिंदी में ही देते हैं। इसलिए इन संस्थानों में अंग्रेजी की बजाए चारों और हिंदी की धूम मची है।

महर्षि दयानंद के चरण चिन्हों पर चलते हुए आर्य समाज ने देश विदेश में हिंदी का शंखनाद फूंका। आर्य समाज को जब तक ऐसे ही त्यागी और निःस्वार्थ विद्वान मिलते रहेंगे, महर्षि का कार्य उसी तीव्र वेग से आगे बढ़ता रहेगा। अंत में निम्न पंक्तियों के साथ पत्र का समापन करते हैं।

'ए मेरी कलम तो सदा लिखती रहें हिंदी के मीठे बोल
तुझे अमर बनाने वाले वह दयानंद थे अनमोल'

संदर्भ सूची:-

1. आर्य समाज का इतिहास प्रथम भाग,इंद्र विद्यावाचस्पति,आर्य प्रकाशन
2. आर्य समाज का इतिहास,द्वितीय भाग,इंद्र विद्यावाचस्पति,आर्य प्रकाशन
3. आर्य जगत के भागीरथ श्री दरबारी लाल, डॉक्टर हरगगुलाल गुप्त, रीडर ,हिंदी विभाग, पीजीडीएवी कॉलेज ,दिल्ली विश्वविद्यालय
4. मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री, बीएल ग्रोवर अलका मेहता
5. www.pravkta.com
6. www.aryadabha.com
7. www.facebook.com
8. www.bharatdiscovery.org.com

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

नरसिंहपुर जिले में स्वतंत्रता संग्राम : राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में

डॉ. अमित कुमार ताम्रकार

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नात. महाविद्यालय, नरसिंहपुर

भारत भौगोलिक दृष्टि से विशिष्ट प्राकृतिक सीमाओं से सुरक्षित है। यह एक संपूर्ण भौगोलिक इकाई है। भारत का देश या 'भारतवर्ष' के नाम से ही यह अखंड मौलिक एकता विशिष्ट रूप से प्रमाणित हो जाती है। भौगोलिक एकता प्राकृतिक रूप में ही नहीं रही, अपितु भारतीयों की बुद्धि और भावनाओं में भी सुदृढ़ हो गई। महाकाव्यों एवं पुराणों में समस्त देशों को 'भारत वर्ष' नाम ही दिया गया है और यहां के निवासियों को 'भारती सन्तति' या 'भरत' के उत्तराधिकारी कहा गया है।

उत्तरे यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षम् तद् भारतम नाम भारती यत्र संततिः ।।

– विष्णु पुराण 2, 3–1

''समुद्र के उत्तर में, हिमालय के दक्षिण में जो (देश) है, वह भारत नाम का खण्ड (कहलाता) है और जहाँ के (लोग) भरत की संतान कहलाते हैं।''[1]

17 वी सदी के आरंभ में डच और अंग्रेजी व्यापारिक कंपनी और इस सदी के अंत में फ्रांसीसी व्यापारिक कंपनी का भारत आगमन हुआ। इन यूरोपीय कंपनियों ने 17वीं सदी के अंत तक भारत के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के बाजारों में प्रवेश कर गई थी और इनमें व्यापार पर प्रभुत्व जमाने के लिए आपस में संघर्ष भी हुआ और अंततः अंग्रेजों को इसमें सफलता मिली और उन्होंने सन् 1757 के प्लासी एवं सन् 1764 बक्सर के युद्ध में विजय के पश्चात बंगाल में अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित की।[2]

बंगाल में अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के उपरांत अंग्रेजों ने धीरे–धीरे पूरी तरह सोच समझकर, रणनीति एवं सामरिक तंत्र के माध्यम से अपना साम्राज्य विस्तार कर भारत को अपना उपनिवेश बना लिया और यहां के लोगों का भयंकर आर्थिक शोषण किया और अपनी सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा तथा धर्म इत्यादि को यहां के लोगों पर थोप दिया।

औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध आदिवासियों, सत्ताच्युत शासकों, सैनिकों इत्यादि ने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किया, जिसकी चरम परिणति हम सन् 1857 की क्रांति के रूप में देखते हैं। अंग्रेजों ने भारतीयों के शोषण को प्रभावी बनाने के लिए पाश्चात्य शिक्षा का भारत में प्रसार किया जो कि भारत में 'राष्ट्रवाद' के विकास के प्रमुख कारणों में से एक उप उत्पाद के रूप में था। जिसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म दिया जिसके नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन प्रारंभ हुआ। बंगाल विभाजन ने स्वतंत्रता आंदोलन को बढ़ावा दिया। स्वतंत्रता संग्राम में क्रांतिकारियों, किसानों, श्रमिकों, महिलाओं, समाजवादियों एवं देश की समस्त आम जनता ने औपनिवेशिक शासन का तीव्र विरोध किया। जिसमें लाखों भारतीय शहीद हुए क्योंकि बरतानिया सरकार ने इन आंदोलनों का कठोरतम रूप से दमन किया।

स्वतंत्रता संग्राम में मध्यप्रदेश के मध्य में स्थित नरसिंहपुर जिले का भी प्रमुख योगदान रहा। राष्ट्रीय स्तर पर जो भी आंदोलन चलाए गए या अन्य कोई रणनीति या रचनात्मक कार्यक्रम चलाए गए, उनमें नरसिंहपुर जिले के लोगों ने बढ़ चढ़कर भाग लिया। इस प्रकार यहां राष्ट्रीय स्तर पर चलाए गए स्वतंत्रता आंदोलन का क्षेत्रीय या स्थानीय स्तर पर उसके प्रभाव एवं प्रतिक्रिया का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

19वीं शताब्दी के प्रथमार्ध तक भारत में भाषा, राजनीति, धर्म आदि अनेक विषयों को लेकर मतभेद थे, जिसके कारण भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना अत्यंत दुर्बल थी, किन्तु समय के साथ–साथ शनैःशनैः अनेक ऐसे तत्वों का विकास होने लगा था जिनसे भारत में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होती जा रही थी। 1857 ई. की क्रांति के पूर्व देश के किसी न किसी भाग में निरंतर विद्रोह होते रहे जो इस तथ्य की पुष्टि करता है कि भारत में राष्ट्रवाद का निरंतर विकास हो रहा था।[3]

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेजी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का आरम्भ हुआ। दिसम्बर 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव पड़ी। कांग्रेस का सातवां अधिवेशन नागपुर में 1891 में हुआ, जिसके अध्यक्ष आनंद चार्लू थे, और इसके परिणामस्वरूप महाकौशल क्षेत्र में स्वतंत्रता आंदोलन को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।[4] हिंदुस्तान में बीसवीं सदी का उदय स्वदेशी आंदोलन के उदय के साथ जुड़ा है। इस आंदोलन से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को बहुत बल मिला और देश में एक सशक्त आंदोलन छिड़ गया। बंगाल व देश के अन्य हिस्सों के ग्रामीण व शहरी छात्र, युवक, महिलाएं पहली बार सक्रिय राजनीति में आए। इस आंदोलन का दायरा काफी बड़ा था और केवल आधे दशक में ही इस आंदोलन में भी तमाम राजनीतिक संघर्ष दिखाई पड़े, जो भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सामान्यतया अगले 75 वर्षों में आने वाले थे।[5]

उदारतावाद से लेकर राजनीतिक अतिवाद, आतंकवाद से लेकर प्रारंभिक समाजवादी विचारधारा, अदालती लड़ाई व जनसभाओं में भाषणवाजी से लेकर बहिष्कार, प्रतिरोध और यहां तक कि हड़तालः व्यापक जनांदोलन छेड़ने की कोशिश से लेकर व्यक्तिगत रूप से आतंकवादी–क्रांतिकारी आंदोलन छेड़ने जैसी चीजें इस आंदोलन में दिखाई पड़ी। आंदोलन की विशेषता यह थी कि इसका दायरा महज राजनीति तक सीमित नहीं था। कला, साहित्य, संगीत, विज्ञान, उद्योग व अन्य क्षेत्रों में भी इस आंदोलन का असर पहुंचा। तात्पर्य यह है कि समाज का हर तबका इस आंदोलन से किसी– न –किसी रूप में जुड़ गया। लार्ड कर्जन द्वारा 1905 ई. में बंगाल

विभाजन की घोषणा के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा मिली और ''स्वदेशी तथा बहिष्कार'' आंदोलन का जन्म हुआ। नरसिंहपुर भी इस आंदोलन से प्रभावित हुआ। बंगाल विभाजन, सन् 1906 में सर गंगाधर राव चिटनबीस की अध्यक्षता में जबलपुर अधिवेशन तथा सन् 1907 में नागपुर से हिन्द केसरी के प्रकाशन का जिले पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।[6]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, सूरत विभाजन, स्वदेशी आंदोलनकारियों पर अंग्रेजी हुकूमत के दमनकारी प्रहारों और सन् 1909 के संवैधानिक सुधारों के कारण नरमपंथी राष्ट्रवादियों की निराशा के सम्मिलित सदमे से अभी तक उभर नहीं पाई थी।

बाल गंगाधर तिलक ने 16 जून 1914 को जेल से छूटने के बाद पुनः अपनी राजनीतिक गतिविधि प्रारंभ कर दी और उनकी दिली ख्वाहिश कांग्रेस में किसी तरह शामिल होने की थी। दिसंबर 1915 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ और तिलक तथा एनी बेसेंट के प्रयासों को सफलता मिली। गरमपंथियों को कांग्रेस में वापस लेने का फैसला किया गया। तिलक ने अप्रैल 1916 में बेलगांव में हुए प्रांतीय सम्मेलन में 'होमरूल लीग' के गठन की घोषणा कर दी। कांग्रेस पूरी तरह से निष्क्रिय थी अतः ऐनी बेसेंट ने भी होमरूल लीग की स्थापना की घोषणा कर दी। तिलक और ऐनी बेसेंट ने अपनी-अपनी लीग के लिए कार्य क्षेत्रों का बंटवारा भी कर दिया। तिलक की लीग के जिम्मे आया कर्नाटक, महाराष्ट्र (बंबई को छोड़कर), मध्य प्रांत और बरार। देश के बाकी हिस्से ऐनी बेसेंट की लीग के जिम्मे आए। होमरूल लीग आंदोलन का प्रभाव नरसिंहपुर जिले पर भी पड़ा।[7]

सन् 1918 में जिले में होमरूल लीग की शाखा खोली गई। 24 नवम्बर 1918 को प्रांतीय कांग्रेस समिति का पुनर्गठन किया गया और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के लिए सदस्यों का निर्वाचन किया गया, जिसमें नरसिंहपुर के मानिकचन्द्र कोचर भी निर्वाचित किए गए। इसके बाद 1920-21 में कांग्रेस की एक शाखा खोली गई। इसकी प्रमुख गतिविधियों में कांग्रेस के असहयोग आंदोलन का प्रचार करना था। विधानसभा चुनावों के बहिष्कार करने के लिए सन् 1920 में नरसिंहपुर में एक बैठक बुलाई गई। रविशंकर शुक्ल, राघवेन्द्र राव, डॉ. मुन्जे, दौलत सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, विष्णुदत्त शुक्ल और अन्य नेताओं ने बैठक में भाग लिया और उस संबंध में असहयोग करने का निर्णय लिया।[8]

असहयोग आंदोलन - रौलट एक्ट, जलियावाला बाग कांड और पंजाब में मार्शल लॉ, मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों की दोहरी शासन प्रणाली, तुर्की का विभाजन, प्रथम विश्वयुद्ध के कारण मुद्रास्फीति की स्थिति तथा गांवों में किसान और खेतिहर मजदूर सूखा, महामारी और प्लेग से जूझ रहे थे। इन महामारियों की चपेट में आकर हजारों लोग मर गए। इस तरह शहरों-गांवों और कस्बों में सभी जगह अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफलोग कसमसा रहे थे। इसी का परिणाम था असहयोग आंदोलन, जो पहली अगस्त 1920 को गांधीजी के नेतृत्व में प्रारम्भ हो गया।[9]

नरसिंहपुर जिले की कांग्रेस शाखा द्वारा जिले में असहयोग आंदोलन का प्रचार-प्रसार किया गया। उसकी प्रमुख गतिविधियों में कांग्रेस के असहयोग आंदोलन का प्रचार करना था, जिसमें विदेशी वस्तुओं, शालाओं, महाविद्यालयों तथा विधि न्यायालयों का बहिष्कार, उपाधियों का परित्याग, शराब की दुकानों पर धरना तथा विदेशी वस्त्रों को जलाना आदि कार्य सम्मिलित था। यह निश्चय करने के लिए कि क्या विधानसभा के चुनावों का भी बहिष्कार किया जाये, सन् 1920 में नरसिंहपुर में एक आवश्यक बैठक बुलाई गई। रविशंकर शुक्ल, राघवेन्द्र राव, डॉ. मुन्जे, दौलत सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, विष्णुदत्त शुक्ल और अन्य नेताओं ने बैठक में भाग लिया और इस संबंध में असहयोग करने का निर्णय लिया। शराब की दुकानों पर धरना देने के जोरदार अभियान के परिणामस्वरूप कांग्रेसी स्वयंसेवक जिले के आबकारी शुल्क की आय को एक लाख रू. से 25,000 रू. गिराने में सफल हुए। सन् 1923 में शासन को विवश होकर नरसिंहपुर जिले की किसी भी प्रकार की शराब के लिए निषिद्ध क्षेत्र घोषित करना पड़ा।[10]

झण्डा सत्याग्रह - सन् 1923 में झण्डा सत्याग्रह की शुरूआत जबलपुर में एक छोटी सी घटना को लेकर हुई, जिसने कुछ ही समय में राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया। 8 मार्च 1923 को जबलपुर नगरपालिका ने जिसमें कांग्रेस का प्रभुत्व था, नगरपालिका भवन (टाउनहॉल) में तिरंगा फहराया तब डिप्टी कमिश्नर ने झण्डे को नीचे उतरवाया और पैरो तले कुचला इस घटना से जनता में रोष की लहर फैल गई।

पं. सुंदरलाल तपस्वी, श्री नाथूराम मोदी और श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान तथा कुछ अन्य स्वयं-सेवकों ने झण्डे के साथ जुलूस निकाला अब झण्डा सत्याग्रह प्रांतव्यापी हो गया और जिले-जिले से स्वयं सेवकों के जत्थे नागपुर में एकत्र होने लगे। नरसिंहपुर से भी एक जत्था सेठ कन्हैयालाल के नेतृत्व में पहुंचा। इस प्रकार नरसिंहपुर जिले में 1923 के झण्डा सत्याग्रह ने अभूतपूर्व उत्साह भर दिया, जिले से भारी संख्या में स्वयंसेवक पहले जबलपुर फिर नागपुर सत्याग्रह हेतु गये।[11]

सविनय अवज्ञा - कांग्रेस की कार्यकारिणी को 1929 ई. में हुई लाहौर कांग्रेस में यह अधिकार दिया गया था कि वह देश में सविनय अवज्ञा (सिविल नाफरमानी) आंदोलन छेड़े। इस आंदोलन में कर न अदा करना भी शामिल था। इसमें विधानसभा के सदस्यों से विधायक पद से इस्तीफा देने का भी आह्वान किया था। 1930 की मध्य फरवरी में साबरमती आश्रम में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई जिसमें गांधीजी को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे अपनी इच्छा से जब और जिस जगह से चाहें, सविनय अवज्ञा आंदोलन का शुभारम्भ कर सकते हैं। गांधीजी जन आंदोलन के माने हुए विशेषज्ञ थे, वे 'गंभीरता से जन-संघर्ष छेड़ने के लिए प्रभावी तरीका तलाश कर रहे थे', हर प्रकार से न्यूनतम मांगों वाली 31 जनवरी की उनकी चेतावनी भरी मांग को, जिसमें न्यूनतम मांगों का 11-सूत्रीय मांग पत्र पेश किया गया था, लार्ड इरविन ने अनदेखा कर दिया था। इसलिए अब सिर्फएक ही रास्ता बचा था-सविनय अवज्ञा का।[12]

नमक कानून के विरोध में गांधीजी ने 12 मार्च, 1930 में अहमदाबाद के पास स्थित साबरमती आश्रम से दांडी के लिए प्रस्थान किया 24 दिनों की यात्रा के बाद 6 अप्रैल 1930 को दांडी पहुंचकर उन्होंने समुद्रतट पर नमक हाथ में लेकर गांधीजी ने सिविल नाफरमानी आंदोलन का श्रीगणेश किया। यह ऐसा आंदोलन था जो राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में आम जनता की भागीदारी की दृष्टि से बेमिसाल था। इस आंदोलन में देश के अन्य भागों की तरह नरसिंहपुर भी अपना योगदान देने के लिए उत्सुक और तैयार था। यह एक जन आंदोलन था जिसमें सामूहिक हडताल, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और नमक तथा वन कानूनों का तोड़ा जाना शामिल था। जिले के समुद्रतट से दूर होने के कारण नरसिंहपुर में नमक सत्याग्रह संभव नहीं था अतः यहां पर वन सत्याग्रह चीचली एवं बचई प्रारम्भ हुआ। शासन ने आपात शक्ति अधिनियम लगाकर आंदोलन को दबाने का प्रयास किया। इस आंदोलन का प्रथम चरण 5 मार्च 1931 ई. को प्रसिद्ध गांधी-इरविन समझौता होने के

बाद वापस ले लिया गया।[13]

4 जनवरी 1932 को गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद आंदोलन का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ। आंदोलन को दबाने के लिए पुलिस ने फिर कठोर तरीके अपनाए। नरसिंहपुर में भी कठोर कदम उठाये गए, यहां जुर्माने लगाने के अतिरिक्त जंगली जातियों को कोड़े लगाये गये। मध्यप्रांत के अन्य जिलों के साथ ही नरसिंहपुर में विधि विरूद्ध संघ अध्यादेश लागू किया गया। महाकौशल कांग्रेस समिति और साथ ही सभी जिला कांग्रेस समितियां अवैध घोषित कर दी गईं। सन् 1932 में नरसिंहपुर को होशंगाबाद में मिला दिया गया।

अप्रैल 1934 में गांधीजी ने आंदोलन को वापस लेने की घोषणा कर दी। अंग्रेजों की 'बांटो और राज करो' की नीति का एक और असली रूप अगस्त 1932 में साम्प्रदायिक पुरस्कार के रूप में सामने आया। जिसमें पृथक निर्वाचन मंडल की बात की गई थी। गांधीजी ने इसका तीव्र विरोध किया और लगभग दो साल तक गांधीजी ने सारा काम-काज छोड़कर 'छुआछूत निवारण आंदोलन' में जुटे रहे। इसके खिलाफ उन्होंने बड़ा जबरदस्त आंदोलन चलाया। 7 नवम्बर 1933 को वर्धा से गांधीजी ने अपनी 'हरिजन यात्रा' आरम्भ की। हरिजन कोष के संग्रहण के लिए गांधीजी सन् 1933 में नरसिंहपुर आये। गांधीजी का वहां के लोगों ने भव्य स्वागत किया। जिला कांग्रेस समिति के मुख्यालय करेली में एक सभा आयोजित की गई और उन्हें एक थैली भेंट की गई। गांधीजी के आगमन से कांग्रेस कार्यकर्ताओं को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।

अंग्रेजी सरकार के साथ कुछ महीनों की जद्दोजहद के बाद कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने 1935 के अधिनियम के तहत सरकार में आना स्वीकार कर लिया। जुलाई 1937 के दौरान मध्य प्रांत सहित छः प्रांतों में इसने अपने मंत्रिमंडल गठित किए। अक्टूबर 1939 में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न राजनीतिक संकटों के चलते त्यागपत्र दे दिया।[14]

8 अगस्त 1940 को वायसराय लिनलिथगो ने कांग्रेस के सम्मुख अगस्त प्रस्ताव रखा कि युद्ध के बाद भारत के लिए एक नए संविधान के निर्माण के लिए एक प्रतिनिधि सभा गठित करने का विचार है। कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को असंतोषजनक माना। कांग्रेस ने एक बार फिर गांधीजी से कमान संभालने का अनुरोध किया, गांधीजी ने तय किया कि हर इलाके में कुछ चुने हए लोग व्यक्तिगत सत्याग्रह करें। सत्याग्रही की मांग यह होगी कि युद्ध में हिस्सा लेने के खिलाफ प्रचार करने के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए। विनोवा भावे पहले सत्याग्रही थे (17 अक्टूबर 1940) और जवाहरलाल नेहरू दूसरे।[15] व्यक्तिगत सत्याग्रह में नरसिंहपुर के ठाकुर निरंजन सिंह, श्यामसुंदर नारायण मुशरान, कुन्दनलाल तिवारी, शंकरदत्त तिवारी, रामसिंह चौहान, ठाकुर रूद्र प्रताप सिंह, चौधरी पुशू सिंह, दौलत सिंह, हरिनारायण राठी, श्यामलाल जैसवाल, वी.पी. पचोरी और अन्य लोग इस आंदोलन में कूद पड़े।[16]

भारत छोड़ो आंदोलन - मार्च 1942 में क्रिप्स मिशन की विफलता से यह स्पष्ट हो गया था कि ब्रिटिश सरकार युद्ध में भारत की अनिच्छुक साझेदारी को तो बरकरार रखना चाहती है, लेकिन किसी सम्मानजक समझौते के लिए तैयार नहीं है। दूसरी ओर दूसरे विश्व युद्ध के कारण परिस्थितियां अत्यधिक गंभीर होती जा रही थी। जापान सफलतापूर्वक सिंगापुर, मलाया, वर्मा पर कब्जा कर भारत की ओर बढ़ने लगा, युद्ध के कारण वस्तुओं के दाम भी बढ़ रहे थे।

गांधीजी ने कांग्रेस को अपने प्रस्ताव को न स्वीकार किये जाने की स्थिति में चुनौती देते हुए कहा कि ''मैं देश की बालू से ही कांग्रेस से भी बड़ा आंदोलन खड़ा कर दूंगा'' नतीजतन कांग्रेस कार्यसमिति ने वर्धा की अपनी बैठक 14 जुलाई 1942 में अंग्रेजों ''भारत छोड़ो प्रस्ताव'' पारित किया। 7 अगस्त 1942 को भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक बंबई के ग्वालिया टेंक में हुई, जिसमें गांधीजी के ऐतिहासिक ''भारत छोड़ो प्रस्ताव'' को समिति ने 8 अगस्त 1942 को स्वीकार कर लिया। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में गांधीजी ने अपने संबोधन में कहा कि ''मैं आपको एक मंत्र देता हूं, ''करो या मरो''।[17]

9 अगस्त को कांग्रेस के सभी बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर अज्ञात स्थानों पर भेज दिया गया। कांग्रेस को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया। 10 अगस्त को नरसिंहपुर जिला कांग्रेस समिति को गैर कानूनी संघ घोषित किया गया। छात्रों ने नरसिंहपुर और गाडरवारा में जुलूस निकाले, आम सभा करने के प्रयत्न किये गये, लेकिन प्रत्येक बार सभा को भंग कर नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। 18 अगस्त को तेदूंखेड़ा के स्थानीय नेता बाबूलाल जैन को गिरफ्तार किया गया, जिसके परिणामस्वरूप लोगों की भीड़ ने पुलिस को घेर लिया और वह हिंसा पर उतारू हो गई।[18]

23 अगस्त को चीचली में पुलिस द्वारा गोली चलाने से एक पुरूष तथा महिला मंसाराम तथा गोराबाई की मृत्यु हो गई। यह दुःखद घटना नर्मदा प्रसाद तथा बाबूलाल को, जिन्होंने दो दिन पूर्व चीचली में आयोजित आम सभा में अंग्रेज विरोधी भाषण दिये थे, गिरफ्तार किए जाने के कारण हुई थी।[19]

स्थानीय जनता में असंतोष बढ़ रहा था, बोहानी रेल्वे स्टेशन के पास बाबई-कला में रेल्वे सिग्नल को क्षति पहुंचाई गई, टेलीग्राफ तथा टेलीफोन के तार काट दिए गए। अनेक गिरफ्तारियाँ एवं दमन के बावजूद स्वतंत्रता संघर्ष पूरे जोश-खरोश के साथ चलता रहा। विद्रोह पुनः न भड़क उठे इसलिए शासन ने अगस्त 1942 में गिरफ्तार किए गए नेताओं को 9 अगस्त 1943 को फिर से गिरफ्तार कर लिया।[20]

धीरे-धीरे आंदोलन शांत होता गया किन्तु लोगों में ब्रिटिश शासन के प्रति विक्षोभ और असंतोष बना रहा। भारत छोड़ो आंदोलन भारत को स्वतंत्र भले न करवा पाया हो पर इसका दूरगामी परिणाम सुखदायी रहा। इसलिए इसे ''भारत की स्वाधीनता के लिए किया जाने वाला अंतिम महान प्रयास'' कहा गया। बेवेल योजना, शिमला सम्मेलन, केबिनेट मिशन और अंततः एटली की घोषणा के परिणामस्वरूप माउण्टबेटन योजना के आधार पर भारतीय स्वतंत्रता विधेयक ब्रिटिश संसद में 4 जुलाई 1947 को प्रस्तुत किया गया, जिसे 18 जुलाई को स्वीकृति मिली, जिसके अनुसार 14 अगस्त 1947 की अर्धरात्रि को देश ने स्वतंत्रता प्राप्त की।[21]

स्वतंत्रता के उपरांत भारत सरकार द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक आयोजन को अपनाया गया। जिससे देश की अर्थव्यवस्था विकास की ओर अग्रसर हुई। जिसका लाभ नरसिंहपुर जिले को भी हुआ जिसके परिणामस्वरूप जिले में आधारभूत संरचना, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि सुविधाओं का प्रसार हुआ, जिससे कृषि, उद्योग, व्यापार-वाणिज्य, बैंकिंग इत्यादि आर्थिक गतिविधियों का विकास हुआ। वर्ष 1991 की नई आर्थिक नीति के परिणामस्वरुप देश में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण को अपनाया गया। जिससे देश की अर्थव्यवस्था वैश्विक अर्थव्यवस्था से जुड़ गई। आर्थिक सुधारों के परिणामस्वरुप देश की अर्थव्यवस्था तीव्र गति से विकास की ओर बढ़ी। इन आर्थिक सुधारों एवं नीतियों का लाभ नरसिंहपुर जिले को

भी हुआ। नरसिंहपुर जिला देश की तरह ही कृषि प्रधान जिला है यहां एशिया की सबसे उपजाऊ मिट्टी 'कलमेटा हार' में पाई जाती है। यहां की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है तथा जिले के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। नरसिंहपुर जिला साक्षरता के क्षेत्र में प्रदेश के अग्रणी जिलों में शामिल है। शिक्षा का प्रसार होने के कारण यहां के कृषक उन्नत ढंग की वैज्ञानिक कृषि की आधुनिक उन्नत तकनीकी एवं नवाचारों को अपना रहे हैं। इसी का परिणाम है कि जिले की कुल सिंचाई का 85 प्रतिशत सिंचाई फव्वारा पद्धति से की जाती है। जिले में दलहन, तिलहन, गेहूं, चना, गन्ना इत्यादि फसलें अधिक मात्रा में उपजाई जाती हैं। गन्ना के अत्यधिक उत्पादन के कारण जिले में गुड़, खांडसारी एवं चीनी मिलों का अत्यधिक विकास हुआ है। करेली तहसील की गुड़ मंडी, गाडरवाड़ा की अरहर दाल एवं बरमान का भटा अत्यधिक प्रसिद्ध है और कृषि विभाग इन तीनों वस्तुओं के GI टैग के लिए प्रयासरत है।

संदर्भ सूची:-

1. लूनिया, बी.एन., भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, प्रकाशक-लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, वर्ष 2015, पृ. 10.
2. ग्रोवर, बी.एल., यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, प्रकाशक- एस.चन्द्र एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, वर्ष 2003, पृ. 48-53.
3. गुप्त, मानिकलाल, आधुनिक भारत का इतिहास, (1740-1950), प्रकाशक-साहित्य रत्नालय, कानपुर, वर्ष 2016, पृ. 262.
4. चन्द्र, विपिन, आधुनिक भारत, प्रकाशक-एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, वर्ष 1993, पृ. 136.
5. चन्द्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, वर्ष 2005, पृ. 84.
6. पूर्वोक्त,
7. वही, पृ. 116
8. श्रीवास्तव, प्रेमनारायण, म.प्र. जिला गजेटियर, नरसिंहपुर, वर्ष 1971, पृ. 64-65.
9. चन्द्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, वर्ष 2005, पृ. 134, 135.
10. श्रीवास्तव, प्रेमनारायण, म.प्र. जिला गजेटियर, नरसिंहपुर, वर्ष 1971, पृ. 65
11. पटैल, डॉ. राजेन्द्र, नरसिंहपुर जिले में 1857 का विद्रोह तथा स्वाधीनता आंदोलन, (1857 ई.-1945 ई.तक), वर्ष 2014, प्रकाशक- रिसर्च इंडिया, प्रेस नई दिल्ली, पृ. 246-247.
12. चन्द्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, वर्ष 2005, पृ. 210.
13. श्रीवास्तव, प्रेमनारायण, म.प्र. जिला गजेटियर, नरसिंहपुर, वर्ष 1971, पृ. 65.
14. चन्द्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, वर्ष 2005, पृ. 258, 273.
15. वही, पृ. 362
16. वही, पृ. 366-367.
17. श्रीवास्तव, प्रेमनारायण, म.प्र. जिला गजेटियर, नरसिंहपुर, वर्ष 1971, पृ. 67
18. वही, पृ. 67
19. वही, पृ. 68
20. वही, पृ. 68
21. ग्रोवर, बी.एल., यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, प्रकाशक- एस.चन्द्र एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, वर्ष 2003, पृ. 317-318.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

जनपद बदायूँ की ऐतिहासिकता

मोहित कुमार सिंह
डॉ. पंकज शर्मा

1. शोधार्थी, इतिहास, किशोरी रमण (पी. जी.) कॉलेज, मथुरा
2. शोध निर्देशक, किशोरी रमण (पी. जी.) कॉलेज, मथुरा

जनपद बदायूँ उत्तर प्रदेश का एक प्राचीन क्षेत्र है। यह उत्तर प्रदेश के रुहेलखण्ड क्षेत्र में सोत नदी के किनारे तथा गंगा नदी से लगभग 30 कि.मी. उत्तर में स्थित है। बदायूँ ऐतिहासिक तथा धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। पुरातात्विक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से बदायूँ का अपना विशिष्ट स्थान है। हिन्दू मुस्लिम सद्भाव, आध्यात्मिक, वैदिक, पौराणिक, शिक्षा, संस्कृति, कला की प्राचीन धरोहरों को आदि काल से अब तक अपने आप में समेटे हुए बदायूँ का विशेष इतिहास रहा है। प्रोफेसर गोटी जॉन ने लखनऊ संग्रहालय में पत्थर की लिपि पर आधारित एक प्राचीन शिलालेख में इस शहर का नाम बेडामुथ(बेदामुथ) बताया था। इस शिलालेख की पंक्तियों के अनुसार शहर का एक नाम 'भदौनलक' भी था।[1] यहाँ के पुरातात्विक स्थल बिसौली की खुदाई 1950 में बी. बी. लाल द्वारा की गई थी। बिसौली होर्ड की जाँच के बाद इस पर व्यापक ध्यान दिया गया , जिसने उन्हें 1955 में इस एक मौलिक लेख लिखने के लिए प्रेरित किया साथ ही इस स्थल की खुदाई में ताम्र संचय प्राप्त हुए है यह प्रमुख ताम्रपाषाण स्थल था। प्रसिद्ध ताम्र मानवकल्प आकृति यहीं से प्राप्त हुई थी।[2]

राजा महिपाल के मंत्री सुर्यध्वज ने इस नगर को वेदों की शिक्षा का केंद्र बताया है।[3] जिसका प्रमाण आज भी बदायूँ में सूरजकुंड के रूप में स्थित है। यह कुण्ड प्राचीनकाल का वह गुरुकुल है जहाँ वेदों की शिक्षा दी जाती थी यहाँ कई स्त्रोतों में बदायूँ का अस्तित्व वैदिक काल से बताया जाता है। हिमालय पर्वत से लेकर चम्बल नदी तक का यह क्षेत्र जो कि प्राचीन इतिहास में पांचाल राज्य के नाम से जाना जाता था का सर्वप्रथम उल्लेख महाभारत में मिलता है। आकार में बड़ा होने के कारण बाद में इस राज्य का विभाजन उत्तरी तथा दक्षिणी पांचाल में हो गया। उत्तरी पांचाल की राजधानी 'अहिक्षेत्र' वर्तमान में बरेली में स्थित रामनगर के पास स्थित थी तथा दक्षिणी पांचाल की राजधानी 'काम्पिल्य' वर्तमान में फर्रुखाबाद में स्थित थी।[4] गुप्तकाल में समुद्रगुप्त 335ई0 – 375ई0 का समकालीन 'अच्युत' उत्तरी पांचाल का शासक था। 638 ई0 में भारत आए प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वर्णन में इस क्षेत्र में 'शिलादित्य' नामक बौद्ध शासक का उल्लेख किया है।[5] इतिहासकार रोज खान लोधी के अनुसार अशोक ने एक बौद्ध विहार बनवाया जिसका नाम बुद्धमऊ रखा। जार्ज स्मिथ के अनुसार बदायूँ का नाम अहीर राजकुमार बुध के नाम पर रखा गया। कन्नौज के कछवाहा वंश के राजाओं का राज्य होने के कारण जनपद बदायूँ के गंगा घाट को कछला घाट नाम दिया गया था। इतिहासकारों के अनुसार राजा विक्रमजीत को मार कर जब सालवहान दिल्ली के सिंहासन पर बैठा तब उसने बदायूँ के शासन व्यवस्था का भार अपने पुत्र चंद्रपाल को सौप दिया। इसकी पुष्टि लखनऊ संग्राहलय में रखे शिलालेखों से होती है। इन शिलालेखों के अनुसार राजा सालवहान के 11 उत्तराधिकारी हुए जिन्होंने बदायूँ पर शासन किया था। इनका सम्बन्ध कन्नौज के राठौर वंशी राजाओं से भी था।

संवत् 805 वि0 में कम्पिल के राजा हरिन्द्रपाल ने तोमरों को पराजित करके बदायूँ को अपने अधिकार में ले लिया। इसके पौत्र राजा हरपाल ने 965 वि0 में अपने अधिकार क्षेत्र को दो भागों में विभाजित कर दिया। एक क्षेत्र की राजधानी कन्नौज को बनाया गया जिसका शासन अपने ज्येष्ठ पुत्र देवचन्द्र को दिया। दूसरे क्षेत्र की राजधानी अहिक्षेत्र को बनाया जिसका शासन उसने अपने कनिष्ठ पुत्र शिवपाल को सौंपा। प्राचीन होने के साथ साथ पुरातात्विक दृष्टि से भी यह जनपद समृद्ध था फिर भी पुरातत्व की दृष्टि से अधिक महत्व नहीं मिलता है। हाल ही में इस जनपद के ग्राम खेडा जलालपुर के टीले से हिन्दू मंदिरों के अवशेष, मूर्तियों के टुकड़े प्राप्त हुए है ए. एस. आई. के अनुसार ये अवशेष 7वीं –8वीं शताब्दी के हैं।

980 ई0 में इस वंश के राजा अजयपाल ने बदायूँ को अपनी राजधानी घोषित किया। इसके पुत्र चंद्रपाल को महमूद गजनवी से युद्ध लड़ना पड़ा था। युद्ध के पश्चात इसने महमूद गजनवी से संधि कर ली। 1028 ई0 में गजनवी के भांजे सैय्यद सालार मसूद गाजी ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया इसी युद्ध में राजा चन्द्रपाल की मृत्यु हो गई।[6] 1234 वि0 में जयपाल का पुत्र महिपाल द्वितीय बदायूँ का राजा घोषित हुआ। कल्याण राय ने 'आतहारक' में इसकी विस्तृत चर्चा की है। महिपाल ने अपनी रानी चन्द्रावती के नाम पर नगर के उत्तर में एक चन्द्र सरोवर नामक तालाब बनवाया।[7] जिसे आज चंदोसर के नाम से जाना जाता है। 12वीं शताब्दी का एक शिलालेख जो बदायूँ पर शासन करने वाले बारह राठौड़ राजाओं की सूची देता है, इसमें बदायूँ को वोदामायुता कहा गया है।

1192ई0 में मुहम्मद गोरी ने दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान को हराया और भारतीय उपमहाद्वीप में दिल्ली सल्तनत की स्थापना की। बदायूँ और आस-पास के क्षेत्र, जिनमें ज्यादातर गंगा यमुना दोआब के घने जंगल और घास के मैदान शामिल हैं, पर 1196 ई0 में गोरी के सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने कब्जा कर लिया था।[8] इस प्रकार बदायूँ का महत्त्व दिल्ली के पहले राजवंश के साथ शुरू होता है। 12 वीं शताब्दी में यह शहर दिल्ली सुल्तानों के अधीन कटेहर प्रान्त (रुहेलखण्ड) का मुख्यालय बन गया। ऐबक ने एक स्कूल की स्थापना की जिसका नाम उसनें 'मुइजी मदरसा' रखा। समय के साथ बदायूँ उत्तर भारत में इस्लामी शिक्षा का महत्वपूर्ण केंद्र बन गया, जहाँ

कई मस्जिदें, मदरसे तथा खानकाह पूरे भारत से विद्वानों, कवियों को आकर्षित करते थे। हसन निजामी बदायूँ का उल्लेख 'हिंदुस्तान के प्रमुख नगरों में एक' के रूप में करता है।[9] पूरे सल्तनत काल में यह एक दुर्ग तथा स्पन्दमान दास बाजार के साथ एक प्रमुख इक्ता और प्रमुख प्रशासनिक केंद्र रहा। अपनी सामरिक अवस्थिति, जिसकी परिधि पर कटेहरिया क्षेत्र स्थित था, के कारण खलजियों के काल तक यह एक महत्वपूर्ण सैन्य नगर बना रहा। यह नगर सल्तनत कालीन प्रारम्भिक स्मारकों से परिपूर्ण है। ताज उल मसिर में दिए विवरण के अनुसार 1196 ई0 में 'कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा बदायूँ पर अधिकार किया गया है जिसके बाद यह दिल्ली साम्राज्य की उत्तरी सीमा पर एक महत्वपूर्ण चौकी बन गई।'

इल्तुतमिश सुल्तान बनने से पूर्व बदायूँ का गवर्नर था। सुल्तान इल्तुतमिश के शासन काल के दौरान 1210ई0 से 1214ई0 तक दिल्ली सल्तनत की राजधानी बदायूँ रहा था।[10] बदायूँ के प्रसिद्द नीलकंठ महादेव मन्दिर जिसे लखनपाल ने बनवाया था, को इल्तुतमिश ने तुडवा दिया था तथा इसके स्थान पर 1222 ई0 में जामा मस्जिद का निर्माण करवाया था। यहाँ की जामा मस्जिद प्रायः समांतर चतुर्भुज आकार की है। भीतरी प्रांगण के पूर्वी भाग में मुख्य मस्जिद है जो तीन भागों में विभाजित है। बीच के प्रकोष्ठ पर मस्जिद है। बाहर से देखने पर यह मस्जिद साधारण सी ही दिखती है। प्रसिद्द सूफी सन्त शेख निजामुद्दीन औलिया का जन्म बदायूँ में 1238 ई0 को हुआ था। इनके पिता सय्यद अहमद बुखारी बदायूँ में आकर बस गये थे। औलिया ने अपनी खानकाह दिल्ली में स्थापित की थी। दिल्ली सल्तनत के सय्यद वंश के शासक अलाउद्दीन आलम शाह ने 1450 ई0 में दिल्ली की गद्दी छोड़ दी और बदायूँ आ गया। यहाँ सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के परिवार जनों के बनवाये हुए हुए कई मकबरे हैं। अलाउद्दीन ने अपने जीवन के अंतिम दिन बदायूँ में ही बिताये थे।

अकबर के शासन काल में (1556 ई0) बदायूँ, दिल्ली शासन के अधीन कर लिया। अकबर ने बदायूँ को फौजी जागीर के रूप में कासिम अली खां को दे दिया।[11] अकबर के दरबारी इतिहासकार अब्दुल कादिर बदायूँनी यहाँ अनेक वर्षों तक रहा था। 1571 ई0 में बदायूँ में हुए भीषण अग्निकाण्ड का बदायूँनी ने आँखों देखा वर्णन किया था। बदायूँनी का मकबरा यहाँ का प्रसिद्ध स्मारक है। यहाँ इमाद उल मुल्क की दरगाह भी उल्लेखनीय इमारतों में से एक है। यहाँ नवाब अखलास खां के नाम पर ताजमहल जैसा मकबरा उनकी बेगम महबूब बेगम ने बनवाया था। यह इमारत ताजमहल की नकल है। यह प्रेमिका के प्यार की निशानी कही जाती है। 1605 ई0 में जहाँगीर ने फरीद खां को बदायूं का गवर्नर नियुक्त किया। शाहजहाँ के समय गवर्नर कार्यालय सहसपुर-बिलारी में स्थानांतरित कर दिया गया था।

1801 ई0 में अवध के नवाब द्वारा बदायूँ और उसके आसपास के क्षेत्र को ब्रिटिश सरकार को सौप दिया। 1823 ई0 में अंग्रेजों ने सहसवान को जिला बनाकर वर्चस्व स्थापित कर लिया और 1855 ई0 में सहसवान के स्थान पर बदायूँ को जिला बना कर सरकारी कामकाज शुरू हुआ।[12] उस समय जिले को पांच तहसीलों सदर, दातागंज, बिसौली, गुन्नौर तथा सहसवान में बांटा गया। इन तहसीलों में लगान वसूलने के लिए बोली लगाकर लगान वसूली के ठेके दिए जाते थे। तहसील के कर्मचारियों को वेतन नही दिया जाता था इसके बदले उन्हें कमीशन दिया जाता था। बाद में यह कार्य तहसीलदारों से हटा कर बोर्ड ऑफ रेवेन्यु को दे दिया गया। बदायूँ में जेल की स्थापना 1840 में हुई जो 1857 ई0 के विद्रोह में नष्ट हो गई। जिसका बाद में जीर्णोद्धार हुआ था । यह जेल अब तक वही स्थापित है। 1911 ई0 में बदायूँ ब्रिटिश भारत का एक जिला था जो संयुक्त प्रान्त के रुहेलखण्ड डिवीजन में था। 1920 ई0 में जिला कांग्रेस कमेटी की नींव डाली गई और महात्मा गाँधी के आह्वान पर बदायूँ की जनता ने शांतिपूर्ण तरीके से आन्दोलन में भाग लिया था।[13] जनपद बदायूँ के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल - ब्यौली तथा कोट दोनों ही बदायूँ के ऐतिहासिक स्थल है जहाँ प्राचीन इमारतें तथा उनके खण्डहर विद्यमान है। कहा जाता है राजा सालवाहन का राजभवन कोट में था जिसका बहुत ऊँचा खेडा अब भी देखा जा सकता है। खेडा नवादा भी यहाँ का एक प्रमुख ऐतिहासिक स्थल है जो बदायूँ शहर से 1 कि0 मी0 दूर है यहाँ से बौद्ध विहारों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ मुगल कालीन कई स्मारक हैं जिनमें से लगभग सभी खण्डहर अवस्था में हैं। अन्य इमारतों एवं स्थलों में जामा मस्जिद बदायूँ, बदायूँ का किला या रौजा बदायूँ, गौरीशंकर मन्दिर बदायूँ, मंगला मन्दिर बदायूँ, नवाब इखलास खां का रौजा (काला ताज), सागरताल नवादा, रापड़ वाला गुम्बद, मकबरा बीवी चमन आरा, बदायूँ का ताजमहल, छोटे-बड़े सरकार की दरगाह आदि प्रमुख हैं।

सन्दर्भ सूची:-

1. https://upculture.up.nic.in/hi
2. शर्मा. आर. एस, इन्डियन हिस्टोरिकल रिव्यू -1 दिल्ली (1974) पृष्ठ 93 .
3. चिश्लोम, ह्यूग बदायूँ एन्सैक्लोपिडिया -. 4 कैब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,पृष्ठ 373 .
4. स्मिथ, जॉन, भारत का राजनैतिक भूगोल कोलकाता 1882, पृष्ठ 223.
5. मजूमदार, रमेश चंद्र प्राचीन भारत 1977 दिल्ली, पृष्ठ 135.
6. शेरिंग, मैथ्यू एतमोर हिन्दू जातियां स्पिक एण्ड कम्पनी कोलकाता 1872 पृष्ठ 237.
7. पाण्डेय, विमल चंद्र प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास v1&2. .
8. इब्नबतूता, यात्री विवरण, तुगलक कालीन भारत (अनुवादक- रिजवी) अलीगढ़ 1957 पृष्ठ160.
9. फारुथी, आर.के. - सल्तनतकालीन भारत, दिल्ली,पृष्ठ 2-3.
10. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, दिल्ली सल्तनत 1980. पृष्ठ 104,105
11. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, दिल्ली सल्तनत 1980. पृष्ठ 172,173.
12. रिजवी, एस. ए. ए, उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश 1957.पृष्ठ 78.
13. रिजवी, एस. ए. ए, उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश 1957.पृष्ठ 84-85 .

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

राजा भोज द्वारा स्थापित जालोर संस्कृत पाठशाला : अतीत एवं वर्तमान

डॉ. समय सिंह मीना

सह आचार्य, संस्कृत, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान

शोधसार :- कला और वैदुष्य के धनी राजा भोज ने अपने समय में विद्वानों को प्रश्रय देकर ज्ञान के प्रचार-प्रसार को भरपूर बढ़ावा दिया। उन्होंने सांस्कृतिक गौरव को नई उँचाईयाँ प्रदान की। विश्व प्रसिद्ध भोजपुर मंदिर, उज्जैन स्थित महाकालेश्वर मंदिर, धार की भोजशाला, भोपाल शहर, भोपाल तालाब आदि महत्त्वपूर्ण निर्माण कार्यों के अलावा धार, उज्जैन, विदिशा जैसी प्रसिद्ध नगरियों को नया स्वरूप प्रदान किया। केदारनाथ, रामेश्वरम, सोमनाथ, मुण्डीर आदि मंदिर भी बनवाए, जो हमारी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर हैं। उन्होंने शिव मंदिरों के साथ ही सरस्वती मंदिरों का भी निर्माण किया। धार, मांडव, तथा उज्जैन में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक भवन बनवाए। इसी क्रम में सदियों तक उनका यशोगान करने का जो उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया वह था-संस्कृत भाषा के शिक्षण के प्रचार-प्रसारार्थ संस्कृत पाठशालाओं का निर्माण। उन्होंने धार, अजमेर और जालौर में संस्कृत पाठशालाओं का निर्माण करवाया। वर्तमान में धार की, संस्कृत पाठशाला एवं देवालय 'कमल मौला की मस्जिद' के नाम से, अजमेर को पाठशाला एवं देवालय 'ढ़ाई दिन का झोंपड़ा' के नाम से तथा जालोर की पाठशाला 'तोपखाना' के नाम से जानी जाती है। परमार वंश के सुप्रसिद्ध शासक राजा भोज ने इस तोपखाना (जालोर की संस्कृत पाठशाला) का निर्माण करवाया था। इसके स्तम्भों पर हिन्दू तथा जैन मंदिरों से सम्बन्ध रखने वाले शिलालेख भी उत्कीर्ण हैं। कालान्तर में इस पाठशाला को मुस्लिम शासकों द्वारा मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। राठौड़ शासनकाल में इस परिसर में तोपें रखी जाती थी। अतः इसे वर्तमान में तोपखाना के नाम से जाना जाता है। इस तोपखाने के ऊपरी भाग में कमलाकृतियाँ तथा अन्य उत्कृष्ट अलंकरण अवलोकनीय हैं।

संकेताक्षर :- जालोर, तोपखाना, सरस्वतीकण्ठाभरण, जाबलीपुर, शिलालेख, संस्कृत-पाठशाला, देवालयनुमा, राजा भोज, धार, अजमेर।

शोध-पत्र :-

अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती।
पण्डिता मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवं गते।।[1]

कालिदास के इस कथन से स्पष्ट होता है कि धारा नरेश राजा भोज के समय विद्या और कला दोनों अपने चरमोत्कर्ष पर थे। भोजप्रबन्ध के अनुसार परमार वंशीय राजा भोज का शासनकाल 1010-1055 ई. के लगभग माना जाता है। उनका राज्य मध्य भारत में मालवा क्षेत्र के आस-पास केन्द्रित था। परम-भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर उपाधियों से विभूषित राजा भोज धार-नगरी के राजा सिन्धुराज के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सावित्री था। इनकी पाँच वर्ष की अल्पायु में ही इनके पिता इनको अपने भाई मुंज को सँभलाकर स्वर्ग सिधार गये। बाद में वत्सराज के सहयोग से ये धार नगरी पर के राजा बने।[2] राजा भोज स्वयं बहुत बड़े विद्वान् थे। वे बहुत अच्छे कवि, दार्शनिक और ज्योतिषी थे। उन्होंने शिक्षा, कला, काव्य, योग, औषधशास्त्र, भवननिर्माण, खगोलविद्या, धर्म, कोशरचना आदि विविध विषयों पर ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनकी सभा बड़े-बड़े पण्डितों और विद्वानों से सुशोभित रहती थी। इनकी धर्मपत्नी लीलावती भी एक विदुषी महिला थी। साथ ही वे वीर, प्रतापी और गुणग्राही राजा थे। इन्होंने अनेक देशों पर विजय प्राप्त की। इसके अलावा अपनी शौर्य के बल पर दाहल के कलचुरी गांगेयदेव और तैलंग आदि पर विजय प्राप्त की । इनकी विद्वता और पराक्रम के कारण ही जनमानस में यह कहावत प्रचलित हुई कि 'कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली।'' मध्यप्रदेश के धार स्थित भोज शोध संस्थान में भोज रचित कुल 84 ग्रन्थों में से मात्र 21 ग्रन्थ ही संग्रहीत हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण, श्रृंगारमंजरी, चम्पूरामायण, चारुचर्या, तत्त्वप्रकाश, व्यवहारसमुच्चय आदि इनकी रचनाएँ मानी जाती हैं। राजा भोज की यश पताका चहुँओर फैली हुई थी। विल्हण विरचित विक्रमांकदेवचरितम् में लिखा है कि ''अन्य नरेशों की तुलना राजा भोज से नहीं की जा सकती। परन्तु क्षितिपति की तुलना भोजराज से की है। जिसमें लिखा है कि लोहरा का राजा क्षितिपति भी भोज के ही समान गुणी था।''[3] कालिदास राजा भोज की स्तुति में लिखते हैं-

महाराज श्रीमञ्जगति यशसा ते धवलिते
पयः पारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते।
कपर्दी कैलासं करिवरमभौमं कुलिशभृ-
त्कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना।।[4]

अर्थात् 'हे श्रीमन् महाराज! तुम्हारे यश से समग संसार के शुभ्र हो जाने पर संप्रति ये पुरुषोत्तम विष्णु क्षीरसागर का, जटाधारी शिव कैलास पर्वत का, वज्रधारी इंद्र ऐरावत का, राहु चंद्रमा का और कमलवासी ब्रह्मा अपने वाहन हँस का अन्वेषण कर रहे हैं।'

इस प्रकार कला और वैदुष्य के धनी राजा भोज ने अपने समय में विद्वानों को प्रश्रय देकर ज्ञान के प्रचार-प्रसार को भरपूर बढ़ावा दिया। उन्होंने सांस्कृतिक गौरव को नई उँचाईयाँ प्रदान की। विश्व प्रसिद्ध भोजपुर मंदिर, उज्जैन स्थित महाकालेश्वर मंदिर, धार की भोजशाला, भोपाल शहर, भोपाल तालाब आदि महत्त्वपूर्ण निर्माण कार्यों के अलावा धार, उज्जैन, विदिशा जैसी प्रसिद्ध नगरियों को नया स्वरूप प्रदान किया। केदारनाथ, रामेश्वरम, सोमनाथ, मुण्डीर आदि मंदिर भी बनवाए, जो हमारी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर हैं। उन्होंने शिव मंदिरों के साथ ही सरस्वती मंदिरों का भी निर्माण

किया। धार, मांडव, तथा उज्जैन में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक भवन बनवाए। इसी क्रम में सदियों तक उनका यशोगान करने का जो उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया वह था–संस्कृत भाषा के शिक्षण के प्रचार–प्रसारार्थ संस्कृत पाठशालाओं का निर्माण। उन्होंने धार, अजमेर और जालौर में संस्कृत पाठशालाओं का निर्माण करवाया। वर्तमान में धार की, संस्कृत पाठशाला एवं देवालय 'कमल मौला की मस्जिद' के नाम से, अजमेर को पाठशाला एवं देवालय 'ढ़ाई दिन का झोंपड़ा' के नाम से तथा जालोर की पाठशाला 'तोपखाना' के नाम से जानी जाती है। हम यहाँ जालौर की संस्कृत पाठशाला के गौरवमय अतीत, वास्तुशिल्प तथा वर्तमान स्वरूप पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रहे हैं। इससे पूर्व जालौर शहर के इतिहास पर दृष्टिपात् करना विषय प्रवेश हेतु सोपान का कार्य करेगा।

राजस्थान के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में स्थित तथा गुजरात राज्य का सीमावर्ती जिला जालोर अपने गौरवशाली अतीत के लिए जाना जाता है। स्वर्णगिरी पहाड़ी की तलहटी में बसे इस शहर को 8वीं शताब्दी ई. में स्थापित माना जाता है। महर्षि जाबालि की तपोस्थली के रूप में सम्मान स्वरूप इसे जाबलीपुर (जबलीपुर) कहा जाता था। जालोर के इतिहास की पहली प्रामाणिक तिथि 1174 जालोर के तोपखाने में एक शिलालेख में मिली है।[5] शिलालेख से स्पष्ट होता है कि 12 वीं शताब्दी की शुरुआत में जालोर पर परमारों का बोलबाला था। छह नियम वकपतिराजा, चंदना, देवराजा, विजलां, धरवरसा और विशाला थे।[6]

चित्र–1 मुख्य मण्डप के खम्भे पर उत्कीर्ण लेख

इस शहर पर गुर्जर प्रतिहारों, परमारों और चौहानों सहित कई शासकों ने शासन किया था लेकिन कालान्तर में दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने कान्हड़देव चौहान के शासन काल में 1311 ई. में जालोर पर आक्रमण कर इस शहर को नष्ट कर दिया था। इसके बाद 1704 ई. में मारवाड़ के शासकों ने इस शहर का गौरव वापस लौटाया। यूँ तो जालोर का किला (स्वर्णगिरी दुर्ग), मलिक शाह मस्जिद, सिरे मंदिर, सुन्देलाव तालाब, जालोर वन्य जीव अभरयारण्य, नीलकंठ महादेव मंदिर, तपोस्थली चितरणी, लाहियाणगढ़ (जसवन्तपुरा), ऐतिहासिक शहर भीनमाल, वाराहश्याम मंदिर (भीनमाल), सेवाड़ा का मंदिर (राजीवाड़ा), आशापुरा माता मंदिर (मोदरान), भाद्राजून भालू अभयराण्य (जसवन्तपुरा), सुधामाता मंदिर आदि जालोर के प्रसिद्ध आकर्षण केन्द्र हैं। परन्तु अपने अद्भुत शिल्प, कला के बेजोड़ स्वरूप और अपने गौरवमय अतीत के लिए जो ज्ञानपिपासुओं को बरबस ही अपनी ओर खींच लेता है, वह है– जालोर शहर स्थित 'तोपखाना'। यह इमारत कभी अपने समय का प्रमुख शिक्षण केन्द्र रही है। यह एक भव्य संस्कृत पाठशाला (विद्यालय) थी जिसे राजी भोज ने 7 वीं और 8 वीं शताब्दी के मध्य बनवाया था। परन्तु अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय पाठशाला स्थित देवालय को नष्ट कर दिया गया और पाठशाला को बंद कर दिया गया। राठौड़ राजाओं के शासनकाल में इसमें तोपें तथा राजकीय असला–बारूद आदि रखे जाते थे, इस कारण यह इमारत 'तोपखाना' के नाम से जानी जाने लगी। आजादी के पश्चात् रसद विभाग ने इसे अनाज भण्डारण के उपयोग में लिया जाने लगा। वर्तमान में यह पुरातत्त्व विभाग की धरोहर है।[7] परन्तु आज भी यह स्थान 'तोपखाना' के नाम से ही जाना जाता है।

चित्र–2 पुरातत्त्व विभाग द्वारा स्थापित चेतावनी बोर्ड

संस्कृत अध्येता होने के कारण सहज जिज्ञासावश शोधार्थी द्वारा वीर वीरमदेव राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जालोर में पदस्थापन के दौरान अपने साथी संस्कृत शिक्षक श्री राजेन्द्र सुथार के साथ 04 मार्च, 2020 बुधवार को अपरान्ह में तोपखाने का भ्रमण कर इसके इतिहास और स्थापत्य के बारे में अध्ययन किया और आवश्यक तथ्य फोटो आदि संकलित किये। मौके पर मौजूद चौकीदार से भी पूछताछ कर जानकारी जुटाई। जैसे ही हम तोपखाने के समीप पहुँचते हैं तो पाते हैं कि एक वर्गाकार उँची चारदीवारी से धिरा हुआ यह परिसर है। बड़े–बड़े चौकोर पत्थरों से निर्मित इस चारदीवारी के ऊपर लोहे के सरियों से सुरक्षा दीवार बनाई हुई है। मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर बायीं ओर एक प्राचीन मंदिर है और दायीं ओर एक छोटी मजार। तोपखाने का मुख्य द्वार बहुत ही भव्य और दीर्घाकार है जिसमें लकड़ी का बना हुआ बड़ा दरवाजा है जिस पर तैलनुमा काले रंग की पुताई की हुई है। बडे दरवाजे के बायें पल्लड़ में से एक छोटा दरवाजा है जिसमें से झुककर हमने प्रवेश किया। मुख्य दरवाजे के ऊपर ही एक कमरा बना हुआ है जिसकी सीढ़ियाँ मुख्य द्वार से अन्दर प्रवेश करते ही बायीं ओर से जाती हैं। मान्यता है कि यह शाला प्रधान का निवास स्थल रहा होगा।[8]

चित्र–3 तोपखाने के प्रवेश द्वार का बाहरी भाग

चित्र-4 तोपखाने के प्रवेश द्वार का बाहरी भाग

अन्दर प्रवेश करते ही एक भव्य वर्गाकार चौड़ा परिसर नजर आता है। दरवाजे के समीप ही पुरातत्त्व विभाग द्वारा पर्यटकों को इमारत का संक्षिप्त परिचय देने के लिए एक शिलापट्टिका स्थापित की गई है जिस पर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में उत्कीर्ण है कि ''परमार वंश के सुप्रसिद्ध शासक राजा भोज ने इस तोपखाना (जालोर की संस्कृत पाठशाला) का निर्माण करवाया था। इसके स्तम्भों पर हिन्दू तथा जैन मंदिरों से सम्बन्ध रखने वाले शिलालेख भी उत्कीर्ण हैं। कालान्तर में इस पाठशाला को मुस्लिम शासकों द्वारा मस्जिद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। राठौड़ शासनकाल में इस परिसर में तोपें रखी जाती थी। अतः इसे वर्तमान में तोपखाना के नाम से जाना जाता है। इस तोपखाने के ऊपरी भाग में कमलाकृतियाँ तथा अन्य उत्कृष्ट अलंकरण अवलोकनीय हैं।'' [9]

चित्र-5 पुरातत्त्व विभाग द्वारा स्थापित तोपखाना परिचय पट्ट

भले ही आज यह इमारत समुचित देखरेख के अभाव में काफी अस्त-व्यस्त हो चुकी है फिर भी यह आज भी काफी प्रभावशाली और भव्य नजर आती है। समस्त प्रांगण पत्थर की पट्टियों से पटाया गया है। परिसर के बीचों-बीच एक गोलाकार चबूतरा है जिस पर छोटी-छोटी तोपें रखी हुई हैं। साथ ही पर्यटकों के लिए बैठने के लिए प्रांगण में सफेद पत्थर की बनी अनेक बैंच (पट्टियाँ) स्थापित की हुई हैं।[10]

चित्र-6 मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही दिखाई देने वाले समस्त परिसर का पैनोरोमा

मुख्य द्वार की ओर दायीं तरफएक पीपल की पेड़ है और कुछ खम्भों के अवशेष नजर आते हैं तथा बायीं तरफवर्गाकार चबूतरे पर निर्मित एक भग्न देवालयनुमा इमारत है जिसमें आठ नक्काशीयुक्त खम्भों पर गोलाकार मण्डप बना हुआ है। मण्डप का आंतरिक भाग में बहुत सुन्दर कमलाकार कंगूरे और नक्काशी की हुई है जो दर्शकों को मंत्र-मुग्ध कर देते हैं। संभवतः यह शिवालय था मण्डप के नीचे मध्य भाग में भग्न किंतु नक्काशीयुक्त वृहद् पाषाणखण्ड स्थित हैं और शिव-पार्वती, गणेश तथा वाराह अवतार की खण्डित मूर्तियाँ हैं।[11]

चित्र-7 मुख्य द्वार के बायीं ओर स्थित भग्न देवालय

चित्र-8 भग्न देवालय मण्डप का आन्तरिक भाग

परिसर के मुख्य द्वार को छोड़कर चारों ओर ऊँची चारदीवारी के साथ समानन्तर सफेद पत्थर से निर्मित दो-दो खम्भे हैं। प्रत्येक चार खम्भों जोड़ते हुए एक मण्डप है। इस प्रकार चारों तरफभव्य नक्काशीयुक्त खम्भों और मण्डपों युक्त गलियारानुमा आकृति उभर कर आती है। इन सभी मण्डपों और खम्भों का वास्तुशिल्प वैसा ही भव्य और आकर्षक है जैसा पूर्व में वर्णित भग्न देवालय का। परिसर का प्रत्येक खम्भा अपने आपमें अद्भुत है। प्रत्येक खम्भा दो भागों में निर्मित है। ऊपर के एक-तिहाही भाग के नीचे चारों तरफबाहर की ओर निकलते कंगूरे हैं जो ऐसे नजर आते हैं मानो एक बड़े और एक छोटे खम्भे को एक दूसरे के ऊपर रख कर स्थापित किया गया हो।[12]

चित्र-9 परिसर के दायीं ओर का मण्डपों युक्त गलियारा और खम्भे

मुख्य प्रवेश द्वार से प्रवेश करते ही बिल्कुल सामने परिसर स्थित मुख्य मण्डप दिखाई देता है जिसके सामने का आर्च सफेद पत्थर से निर्मित है और बारीक झरोखों से युक्त दो मंजिला दीवार जैसा नजर आता है। दूर से देखने पर यह किसी भवन का बाहरी हिस्सा सा प्रतीत होता है। इसकी तीसरी मंजिल का निर्माण अधूरा छूटा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका निर्माण कार्य निरन्तर चल रहा था किन्तु किसी कारणवश इसका निर्माण कार्य अधूरा

छूट गया।[13]

चित्र–10 मुख्य मण्डप के सामने का अधूरा आर्च

मुख्य मण्डप के आन्तरिक भाग में बाहरी दीवार से सटे छोटे–छोटे कक्ष हैं जिनमें से एक में शिवलिंग सहित शिव पंचायत स्थापित है। कक्ष के द्वार पर नंदी की प्रतिमा है। मंदिर जीवन्त है और उसकी पूजा अर्चना की जाती है।[14]

चित्र–11 मुख्य मण्डप के आन्तरिक भाग स्थित कक्ष में विराजमान शिव पंचायत

मुख्य मण्डप के दायीं ओर स्थित विशालकाय खम्भों पर लेख उत्कीर्ण हैं। इस परिसर में आज भी 276 खम्भे हैं जो कि इसकी समृद्धता का प्रतीक है। सम्पूर्ण परिसर में जल निकाशी हेतु ढकी हुई नालियाँ हैं। मुख्य प्रवेश द्वार के बायीं ओर का गलियारा अन्य हिस्से की अपेक्षा कालिमा लिया हुआ है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस हिस्से को पाकशाला के रूप में उपयोग लिया जाता था। इस प्रकार सम्पूर्ण परिसर का आँखों देखा दृश्य उपस्थित करने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जालोर स्थित तोपखाना जो मूलतः एक संस्कृत पाठशाला थी। सम्पूर्ण परिसर का निर्माण अध्ययन–अध्यापन के अनुकूल ही किया गया है। खुले परिसर में एक ऊँचे स्थान से सभी को अध्यापन कराया जा सकता था और मुख्य द्वार के ऊपर निर्मित कक्ष से हर समय निरीक्षण किया जा सकता था। इस प्रकार देववाणी की यह शिक्षणस्थली राजप्रश्रय में पुष्पित और पल्लवित होती रही होगी। आज भी यह जालोर शहर के बीचों–बीच स्थित यह संस्कृत पाठशाला की इमारत हम सब के लिए प्रेरणास्रोत है और आने वाली पीढ़ी को युगों–युगों तक आत्मगौरव का बोध कराती रहेगी। जब यह पाठशाला जीवन्त रही होगी तो निश्चित रूप से इसमें वैदिक ध्वनियाँ गुँजायमान रही होंगी। अतः इसका यह तूष्णीभाव निश्चित ही मन को कचोटता सा कालिदास की इस उक्ति को स्मरण करा ही देता है जिसमें वे राजा भोज के नहीं रहने पर स्थिति को स्पष्ट करते हैं कि–

अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते।।[15]

संदर्भ सूची:–

1. भोजप्रबन्ध, कवि वल्लाल सेन, व्या. डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री, चौखम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला, वाराणसी, संस्करण 1979, श्लोक 327, पृ. 182
2. भोजप्रबन्ध, भोजस्य राज्यप्राप्ति, पृ. 01–21
3. राजा भोज, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ., इलाहाबाद हिंदुस्थानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, 1932, पृ. 106,
4. भोजप्रबन्ध, श्लोक 82, पृ. 36
5. अर्ली चौहान, डायनाक्ट्री, डी. शर्मा, पृ. 145
6. चित्र–1 मुख्य मण्डप के खम्भे पर उत्कीर्ण लेख
7. चित्र–2 पुरातत्त्व विभाग द्वारा स्थापित चेतावनी बोर्ड
8. चित्र–3 व 4 तोपखाने के प्रवेश द्वार का बाहरी भाग व आन्तरिक भाग
9. चित्र–5 पुरातत्त्व विभाग द्वारा स्थापित तोपखाना परिचय पट्ट
10. चित्र–6 मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही दिखाई देने वाले समस्त परिसर का पैनोरोमा
11. चित्र–7 व 8 भग्न देवालय मण्डप का बाहरी और आन्तरिक भाग
12. चित्र–9 परिसर के दायीं ओर का मण्डपों युक्त गलियारा और खम्भे
13. चित्र–10 मुख्य मण्डप के सामने का अधूरा आर्च
14. चित्र–11 मुख्य मण्डप के आन्तरिक भाग स्थित कक्ष में विराजमान शिव पंचायत
15. भोजप्रबन्ध, श्लोक 326, पृ. 181

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

धर्मवीर भारती की कहानियों में नारी जीवन

अन्जू परिहार

शोधार्थी, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

सारांश:- कथा- साहित्य लेखन की दृष्टि से धर्मवीर भारती जी का महत्वपूर्ण स्थान है। भारती जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखक, कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कथाकार, और सामाजिक विचारक के रूप में जाने जाते है। भारती जी ने जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण करने वाली कई अनेक महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखी है, जिनको उन्होनें अपने कहानी संग्रह -'स्वर्ग और पृथ्वी','चाँद और टूटे हुए लोग', 'मुर्दो का गाँव', 'बन्द गली का आखिरी मकान' और 'साँस की कलम से' (समस्त कहानियाँ एक साथ) आदि में संग्रहित किया है। इनकी कहानियों में नारी जीवन की वास्तविकता का चित्रण चित्रित हुआ है। भारती जी की रचनाओं में नारी जीवन की अनेक समस्याओं, संघर्ष ,उत्पीड़न, दासता, उपेक्षा, शोषण आदि का संवेदनायुक्त मार्मिक यथार्थ चित्रण मिलता है। इनकी कहानियों में नारी संवेदना अधिक व्यापक रूप में दृष्टिगोचर होती है, जो जीवन के सुख - दु:ख, उतार - चढ़ाव व दबे घुटे दर्द भरे वातावरण का जीवंत चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत करती है। भारती जी की कहानियों में नारी जीवन की समस्याओं और उस पर परिवार व समाज द्वारा किए गए उत्पीड़न व वेदना आदि का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। इन्होंने कहानियों में जीवन की विसंगतियों के साथ - साथ विडम्बनाओं और सामाजिक रूढ़ियों से बँधीं हुई नारी की दयनीय दशा को भी दिखाया हैं, तों वहीं दूसरी ओर अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी मुक्ति का स्वर भी मुखरित किया है। इनकी कहानियों में नारी संवेदना का एक ऐसा अटूट परिचय मिलता है कि पाठक के अन्तर्मन को झकझोर देता है। केवल कहानी कहना भारती जी का उद्धेश्य नहीं अपितु उन्होने तत्कालीन निम्नवर्गीय व मध्यमवर्गीय भारतीय नारी जीवन के आन्तरिक और बाहरी यथार्थ के सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म चित्र को अपनी लेखनी के माध्यम से कई कहानियों में उद्घाटित किया है।

प्रस्तावना:- धर्मवीर भारती जी ने नारी जीवन का अत्यन्त गहराई के साथ चित्रण किया है। इनकी कहानियों में नारी की जो स्थिति दिखाई जान पड़ती है वह आज भी कई मायनों में प्रसांगिक ही नजर आती है। स्त्री व पुरूष दोनों ही जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिए के समान होते है, यदि इनमें से कोई एक भी पिछड़ जाता है, तो यह जीवन रूपी गाड़ी वहीं पर रूक जाती है, जो समाज के विकास को प्रभावित करती है। प्राचीन काल से ही पितृसत्तात्मक समाज कभी नियम तो कभीं परंपराएँ व रूढ़ियाँ तो कभी अहं की भावना तो कभी शोषण के माध्यम से नारी जीवन को पराधीनता की बेड़ी में जकड़ने का प्रयास करता चला आ रहा है। समय-समय पर नारी पर उसके परिवार तथा समाज द्वारा शोषण, अत्याचार व उत्पीड़न किया जाता है, जो कि यह दिखाता है कि कैसे एक नारी को पराधीनता की बेड़ी पहनाकर समाज की मुख्य धारा से पृथक कर दिया जाता है। इससे उत्पन्न अनेक विषम स्थिति व परिस्थितियों का चित्रण भारती जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया है।

नारी संवेदना व अत्याचार का चित्रण:-भारती जी का चर्चित कहानी संग्रह 'बन्द गली का आखिरी मकान' में संकलित कहानियों का वस्तु संसार और संरचना शिल्प बाकी कहानियों से थोड़ा भिन्न-सा दिखाई पड़ता है। इसमें उल्लेखित 'गुलकी बन्नो' कहानी में गुलकी की पीड़ा व्यक्तिगत न हो कर पाठक की पीड़ा हो जाती है। इस कहानी में एक अभागी उपेक्षित विकलांग महिला की दारूण गाथा गुँथी होती है जो कि जीवंत रूप में समाज की एक विचित्र सी कहानी लगती है। भारती जी की कहानी 'गुलकी बन्नो' में गुलकी का पति निर्दयी था। मरा हुआ बच्चा पैदा होने के कारण उसने गुलकी पर कई अत्याचार किए। उसे सीढ़ी से तक ढकेल दिया, जिससे गुलकी का कूबड़ निकल आया था। 'गुलकी की उम्र ज्यादा नहीं थी। यही हद से हद पचीस-छब्बीस। पर चेहरे पर झुर्रियाँ आने लगी थी और कमर के पास से वह इस तरह दोहरी हो गयी थी जैसे अस्सी वर्ष की बुढ़िया हो।'[1] गुलकी की यह दयनीय दशा उसके पति द्वारा त्यागे जाने के कारण हो गयी थी तो वहीं निरमल की माँ गुलकी के बारे में कहती हुई नजर आती है कि-'यह मुसीबत और खड़ी हो गयीं। मरद ने निकाल दिया तो हम थोड़ें ही यह ढोल गले बाँधेंगे।'[2] इस प्रकार का वार्तालाप नारी जीवन की उपेक्षा को दर्शाता है, जिसमें पति द्वारा त्यागी जाने वाली स्त्री को समाज उपेक्षित नजरिये से देखता है और उसी को कोसता है। गुलकी का कूबड़ उसके पति की ही देन है परन्तु वह अपनी दूसरी पत्नी का बच्चा पैदा होने पर गुलकी से सेवा करवाना चाहता था, इसलिए वह गुलकी को लाने के लिए एक पत्र लिखता है तब सत्ती गुलकी के जाने का विरोध करती है। जिस पर निरमल की माँ कहती है-'अरे बिटिया, पर गुजर तो अपने आदमी के साथ करेगी न! जब उसकी पत्नी आयीं हैं तो गुलकी को जाना चाहिए। और मरद तो मरद। एक रखैल छोड़ दुई - दुई रखैल रख ले तो औरत उसे छोड़ देगी? राम ! राम!. .....पति तो भगवान है बिटिंया ! ओका जाय देव !'[3] इस कहानी में समाज में नारी की दशा और पुरूषों की स्वतंत्रता का चित्रण है। गुलकी का पति अपनी दूसरी पत्नी और उसके बच्चे की सेवा करवाने के नाम पर जब गुलकी को लेने आता है। तब वह बुआ से कहता हुआ नजर आता है कि-'इसे ले तो जा रहे है पर इतना कहे देते है, आप भी समझा दे उसे - कि रहना हो तो दासी बनकर रहें। न दूध की न पूत की हमारे कौन काम की; पर हाँ औरतिया की सेवा करे, उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू-बुहारू करे तो दो रोटी खाय पड़ी रहें। पर कभी उससे जबान लड़ाई तो, खेर नहीं। हमारा हाथ बड़ा जालिम है। एक बार कूबड़ निकला, अगली बार परान निकलेगा!'[4] इसमें पति द्वारा पत्नी पर किए

गए अत्याचार का वर्णन है। इस प्रकार इस कहानी के माध्यम से भारती जी ने नारी जीवन के उत्पीड़न को दर्शाया है और साथ ही पुरूषवादी समाज में नारी के प्रति हिनता की भावना का चित्रण भी किया है।

'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी संग्रह में संकलित 'सावित्री नम्बर दो' नामक कहानी में एक बीमार पत्नी की मनोव्यथा का चित्रण है। सावित्री मन ही मन पुराणों में वर्णित सावित्री को संबोधित करते हुए एक स्त्री के मनोभावों को प्रकट करते हुए कहती है कि –'तुम तो जानती हो कि हम स्त्रियाँ चाहे सुन्दर हो या न हो लेकिन पति की आँखों का छलकता नशा, उसकी बाँहों का गर्म कसाव, कान में धीरे से कही गयी झूठी – सच्ची बातें हमें कितना भर देती है ! हमारे शरीर अकस्मात् कितने बहुमूल्य; कितने गौरवमय हो उठते हैं। लगता हैं हमारे पास चाहे कुछ न हो पर एक चीज है उन्हें देने को, एक तृप्ति, एक उल्लास, एक भराव जो हम केवल हम अपने अर्पित शरीर से दे सकते हैं।'[5] इस कहानी में जिन्दगी जीने के लिए के लिए एक पत्नी की संघर्षशीलता का वर्णन हैं जो कि एक गम्भीर बीमारी से ग्रस्त हो जाने के कारण अपने पति के प्रति कर्त्तव्यों को पूरा न कर पाने की व्यथा से ग्रसित होती है। इसमें रोग ग्रस्त नारी की मानसिक दुर्बलता और उसकी मार्मिक दशा का चित्रण चित्रित किया गया हैं। सावित्री के रोग ग्रस्त हो जाने के कारण उसकी सास उसे कोसती है, उसे सुनाकर अपने बेटे से कहती है कि –'मै क्या जानती थी? तेरे करम फोड़ दियें मैने ऐसी बहू लाकर । मरी कही तुझे रोग न दे जाए, हाय राम! जा, छोड़ आ इसके घर, वहाँ का पाप वहीं फले! तेरे लिए क्या लड़कियों की कमी है।'[6] इसमें नारी के लिए उलाहना का भाव व नारी विडम्बना नजर आ रही है। जब तक एक नारी स्वस्थ रहती है तब तक ही वह घर – परिवार को भांति है और जब वह किसी रोग से ग्रस्त हो जाती है तो सभी की उलाहना का पात्र बन जाती है। इस कहानी में सावित्री की बीमारी की वजह से उसके मायके व ससुराल दोनों परिवार में समस्याग्रस्त स्थिति निर्मित हो जाती है। सावित्री अपनी बीमारी से उत्पन्न कुंठा को दूसरों को अपमानित कर दूर करने का प्रयास करती थी। सावित्री मन ही मन सोचती हैं कि–'इलाज कई हुए पर मैने कहा न कि दिमाग में कुछ बिगड़ा होता तो सुधरता भी, यह तो एक आदत–सी उभर आयीं थी जिसके आगे में बेबस थी। बिलकुल ठीक तो याद नहीं कि कब और कैसे इस पर रोक लग गयीं, लेकिन जहाँ तक मुझे ख्याल आता है शायद सित्तों का बदला हुआ रूख मुझे कारगर साबित हुआ।'[7] इस कहानी में एक गंभीर बीमारी से ग्रस्त नारी की मनोदशा व संवेदना को चित्रित किया गया है जो कि छः साल से मृत्यु शैय्या पर लैटी है और अपनी मौत का इंतजार कर रही है। भारती जी की कहानी 'सावित्री नम्बर दो' कर्त्तव्य बोध का पाठ पढ़ाती है, पर अन्त में वह पीड़ा की अनुभूति छोड़ जाती है।

भारती जी की कहानी 'एक बच्ची की कीमत' में नारी की अत्यन्त दयनीय और भुखमरी स्थिति का चित्रण मिलता हैं। इस कहानी में माँ – बेटी को एक अन्न का दाना भी खाने को नहीं मिलता हैं। एक बार जब बिन्दो और रामी आपस में मिलते हैं तो रामी पूछती हैं कि–'बिन्दों तुम्हारी बच्ची क्या मर गयी? .....मरी नहीं अभी जिन्दा हैं– मैने उसे पंजाबी के हाथ बेच दिया ! बिन्दों ने सर झुकाकर कहा और रूँधें गले से सिसकने लगी। बेच दिया ! रामी चीख पड़ी, तो यह कहो, हत्यारिन अपनी बच्ची के हाड़ बेचकर पेट भर रहीं है। तेरी जबान नहीं कट गयीं, तेरे हाथ नहीं टूट गयें बेचते बखत।'[8] यह वार्तालाप दरिद्रता की अत्यन्त भयावह स्थिति को प्रकट करता है। भूख की इतनी बेबसी और लाचारी होती हैं कि कैसे एक माँ अपनी ही बच्ची को ही बेच देती है? भारती जी की कहानी 'एक बच्ची की कीमत' में अकाल की भीषण पीड़ा झेलती एक माँ की बेबसी का चित्रण है जो अपनी बेटी समेत कई दिनों से भूखी थी। रामी के पास अपनी बेटी के प्राणों की रक्षा का एक मात्र उपाय यह था कि वह भी बिन्दो की तरह ही अपनी बेटी को पंजाबी के हाथ बेच दे, जिससे कम से कम उसकी बेटी को खाने को तो मिल जाएगा और वह जिन्दा भी रहेंगी। लेकिन उसकी ममता उसे इस कार्य की अनुमति नहीं देती है परन्तु जब उसकी बेटी की हालत बदतर होती गई । फिर वह अपनी बच्ची के प्राणों की रक्षा के लिए उसे बेचना स्वीकार करती है और सोचती है कि उसे बेचकर जो पैसा मिलेगा उससे उसे भी खाने को मिल जायेगा फिर वह पंजाबी के पास चली जाती है –'पंजाबी ने झुककर बच्ची को देखा। रंग साफथा, कट अच्छा था, मगर भूख की वजह से दुबली थी। अच्छी निकलेगी। पाँच साल में तैयार हो जाएगी, निखर जाएगी.....और कम से कम पाँच सौ रूपये तो मिल ही जाएँगें – उसने अपने मन से सोचा। बोल कितने में देगी?'[9] इसमें नारी शोषण व दासता का चित्रण दिखाई देता है। अतः पंजाबी चंद सिक्कों में उसकी बेटी का सौदा करता है और जब उन सिक्कों से वह अनाज खरीदने जाती है तो बनिया उसे धोखा देकर उसके सिक्के के बदले में अपना खोटा सिक्का थमा कर अनाज देने से मना कर देता हैं। यह कहानी भूख से तड़पती बच्ची के लाचार माँ की बेबसी को बतलाती है, जिसमें मजबूरीवश उसे अपनी बच्ची के प्राणों के खातीर उसका सौदा करना पड़ता हैं। यह कहानी जहाँ एक ओर माँ की बेबसी को चित्रित करती है तो वहीं दूसरी ओर समाज द्वारा नारी पर किये जाने वाले शोषण का विभत्स रूप भी दिखाती है। इस कहानी को पढ़कर पाठक के मन में समाज के ऐसे सभ्य कहे जाने वाले लोगों के प्रति घृणा की भावना व्याप्त हो जाती हैं।

भारती जी की कहानी 'शिंजिनी' में राजपुरोहित नारी को अस्तित्वहीन मानतें हुए कहते है–'नारी की अपनी कोई स्वतन्त्र गति नहीं होती। तुम्हें किंजल्क की गति लेकर उसी के समानान्तर देवत्व की दिशा में उड़ना होगा। लेकिन इसका ध्यान रखना होगा, कि तुम्हारी थकान कहीं किंजल्क के पंखों का बोझ न बन जाए।'[10] शिंजिनी को अपनी मानवीय भावनाओं का त्याग कर युवराज किंजल्क की सेवा में नियुक्त किया जाता हैं। पर साथ ही उसे यह भी आदेशित किया जाता हैं, कि वह अपने और किंजल्क के बीच की दूरी को सदैव बनाए रखे। परन्तु जब गंधर्व – लोक के देवता किंजल्क वहाँ नियम के विरूद्ध शिंजिनी के प्रति अपनी काम भावना अभिव्यक्त कर देता हैं तो वहाँ की जनता इसका दोषारोपण शिंजिनी पर ही कर देती है और कहतें है–'देवता का इसमें कोई अपराध नहीं है, सारा अपराध शिंजिनी का है। एक ने कहा 'ठीक है।' दूसरा बोला , अपराध सदा नारी करती हैं। पुरूष तो अनजान है– निर्दोष हैं। और पुरूषों के उस समूह ने एक स्वर से नारी के विरूद्ध अपना निर्णय दे दिया।'[11] इस कहानी के माध्यम से भारती जी ने नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण बताया है जिसमें कि पुरूष के दोषी होते हुए भी सारा दोषारोपण सिर्फ नारी पर ही कर दिया जाता हैं और उसे अपराधिनी मान लिया जाता हैं जैसा कि इस कहानी में शिंजिनी के साथ हुआ हैं। भारती जी की 'कुलटा' कहानी में स्त्री के प्रति सामाजिक नजरिये को यथार्थ के साथ चित्रित किया गया हैं। कहानी में लाली पड़ोस में रहने वाले लड़के से लिफाफा – टिकट माँग रही थी तभी लड़के का भाई वहाँ आ जाता है और बोला कि –'क्या कह रही थी ?..... तुम अभी इन लोगों के ढंग नहीं जानते! पुरी कुलटा है वह! .....जानते हो विधवा है यह। दूसरा ब्याह किया है। मैने पहले ही दिन कह दिया था।'[12] इस कहानी में एक विधवा स्त्री

के प्रति समाज के नजरियें को दर्शातें हुए बताया गया है एक विधवा स्त्री यदि दूसरा ब्याह करती है तो उसे समाज दुश्चरित्र समझता है। 'कुलटा' कहानी में लाली अपने पहले पति की मृत्यु के बाद अपने चार महिने के बच्चे के खातिर पहले से ही दो बच्चे के पिता नन्दराम से दूसरा ब्याह करती है, परन्तु वह उसको कुलटा समझता है और कह उठता है–'कमीनी है बदजात!.....मैं कहे देता हूँ कि घर में इन्हीं बच्चों के आराम के लिए लाया हूँ! तुझे माँ बनकर रहना हो तो रहो वरना याद रख.....भूखों मर रही थी, अब चर्बी चढ़ गयीं है न! हड्डी – हड्डी तोड़ डालूँगा।.....मुझे तो समाज के मन्त्री जी ने अच्छा फँसा दिया। कहाँ बुढ़ापे में यह पाप गले पड़ा मेरे !'[13] इसमें पति द्वारा पत्नी पर कियें गये अत्याचार को दिखाया है। लाली अपने पहले पुत्र को घर बुलाने के लिए उसे खत लिखती है तो नन्दराम उसके साथ मारपीट करते हुए कहता है –'मैं सब समझता हूँ, सब जानता हूँ । रोज मुहल्लें भर मे जाकर उसकी चिट्ठी ढूँढ़ती है।.....इतनी हिम्मत तेरी। उसे यहाँ बुलाएगी, जान ले लूँगा तेरी।.....मैने एक दफे कह दिया न। खबरदार जो उसे खत लिखा। तेरी उँगलिया काटकर मिर्चा भर दूँगा।'[14] इसमें भारती जी ने पति द्वारा प्रताड़ित पत्नी और उसकी बेबसी के साथ समाज की सोच को भी चित्रित किया है, जिसमें लाली के पुत्र द्वारा भेजे गये पत्र को समाज के कुछ लोग बिना सोचे समझे बिना पड़े उसे प्रेम–पत्र समझ लेते है और उसे दुश्चरित्र व कुलटा कह देतें है आदि का यथार्थ चित्रण कहानी में देखने को मिलता है। भारती जी ने विविध पात्रों के माध्यम से समाज का नारी के प्रति दृष्टिकोण तथा विचार के साथ–साथ नारी की भावनाओं का चित्रण भी किया हैं।

नारी के प्रति उपेक्षा का भाव:–नारी जीवन की समस्या केवल इतनी नहीं हैं कि उन पर शोषण ही किया जाए बल्कि समाज में उनके प्रति उपेक्षा का भाव, उनको पुरूष के समान अधिकार न प्रदान करना तथा सामाजिक दृष्टिकोण के साथ – साथ उनकी भूमिका को महत्वहीन समझना भी एक प्रमुख समस्या है। भारती जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में नारी के प्रति किए गए उपेक्षित व्यहार का भी चित्रण किया है।

भारती जी की कहानी 'बन्द गली का आखिरी मकान' में नारी संबधी समाज की सोच को मुखरित किया गया है। इसाक मियां आवाज लगा के मुंशी जी से कहते हैं। कि –'मुंशी! अबे कब तक जनानखाने में घुसा रहेगा! तबीयत ठीक कर । इधर से तेरा चौका छू जाता है। किसी दिन खेत की तरफसे कमन्द लगाकर खिड़की से आएँगे। जरा मरद पठान से रूबरू बातें कर तो तेरा दिमाग ठीक हो, नहीं तो औरतों के बीच पड़ा औरतों की तरह कुजड़िहाव करता हैं।'[15] समाज के कुछ लोग नारी को घृणित और तुच्छ की दृष्टि से देखते है इसी का चित्रण किया गया है। नारी के संबंध में इसी तरह के विचार वकील साहब भी रखते थे। उन्होंने मुंशी जी से कहा था कि – 'मुंशी जी, तुम तो समझदार हो! जो किया तो अब नतीजें के लिए तैयार रहों। भैयां हम दोष नहीं देते। यह औरत ऐसी खाई है कि बड़े–बड़े ऋषि – मुनि भवसागर पार गये लेकिन इस खाई में गिरें तो बचे नहीं। फिर हम तुम तो इन्सान हैं।'[16] कहानी में इन पात्रों के माध्यम से भारती जी ने पुरूषवादी समाज में नारी के प्रति हेय भावना का चित्रण किया हैं।

भारती जी की कहानी 'कुबेर' में नारी की स्वर्ण के प्रति लालसा की भावना को दर्शाया गया है और साथ ही साथ उसके दुष्परिणाम की ओर भी प्रकाश डाला गया है। मूर्तिरूप से जीवित होकर कुबेर कहता है कि – ''अब मै मनुष्य से बदला ले सकूँगा। मनुष्य ने प्रेम के सामने मेरी उपेक्षा की थी। उसकी असह्नय उपेक्षा ने मुझे जड़ बना दिया था। आज मैं नारी का आश्रय लेकर मनुष्य से प्रतिशोध लूँगा।'[17] पुरूष नारी को अपनी जागीर समझकर हमेशा से उस पर अधिकार जमाता चला आ रहा हैं जैसे कि नारी उसकी गुलाम हो। 'कुबेर' कहानी में पुरूषों की इसी प्रवृति को दर्शाते हुए बताया गया हैं कि इस कहानी का पुरूष पात्र जब अपने अधिकार का पहला प्रयोग नारी पर करता है तो कहता हैं–'तुम पर मेरा अधिकार हैं, समझी?.....तुम्हें मेरे साथ चलना होगा – अभी चलना होगा।'[18]

भारती जी की कहानी 'मंजिल' में बताया गया है कि नारी के सौन्दर्यरूपि नशे के कारण मनुष्य ईश्वर को भी भूल जाता है। कहानी में जब पुरूष ने पहली बार नारी को देखा कि –'फूलों से लदी हुई बसन्ती झाड़ियों के बीच में लाज से सकुची हुई नारी। पुरूष को एक नया साथी मिला। वह हँसती थी तो फूल झरते थे। पुरूष फूलों को भूल गया। उसकी आँखों में चाँदनी छिटकती थी। वह चाँद को भूल गया। नारी की गति में ईश्वरत्व की शान थी। और पुरूष ईश्वर को भूल गया।'[19] इसमें नारी के सौन्दर्य को पुरूष के भटकाव का कारण बतलाया गया है जबकि नारी हमेशा से पुरूषों के जीवन का आधार रहीं हैं। एक कहावत में कहा गया हैं कि किसी कामयाब पुरूष की कामयाबी के पीछे किसी स्त्री का हाथ अवश्य होता है किन्तु पुरूष – प्रधान समाज इस बात को स्वीकारने से सकुचाता हैं। 'मंजिल' कहानी में पुरूष कहता है–'नारी हमारी मंजिल है? असम्भव! नारी बहुत दुर्बल हैं।.....नारी पथ हो सकती है, मंजिल नहीं ! साधन हो सकती है, साध्य नहीं!'[20] इस कहानी में पुरूष द्वारा की गयीं नारी की उपेक्षा को चित्रित किया गया हैं। 'आधार और प्रेरणा' कहानी में शिखर नारी की उपेक्षा करते हुए सरिता से कहता है कि –'मुझे किसी की आवश्यकता नहीं हैं। प्रेम केवल नारी की प्रेरणा चाहता है, नारी का आधार नहीं।'[21] स्वर्ग की कामना लिए शिखर सरिता के प्रेम को ठुकरा कर चला जाता है। नारी को साधना के मार्ग में रोड़ा डालने वाली कहा गया हैं लेकिन सत्य यह हैं कि साधक अपने मन की दुर्बलताओं को छिपाते हुए सारा दोष नारी के सिर पर मढ़ देता हैं। जैसे कि 'नारी और निर्वाण' कहानी में नारी को निर्वाण के पथ में बाधक मानते हुए कहा हैं –'दूर हटो नारी की छाया – मेरे निर्वाण–पथ में बाधक मत बनो। मुझे निर्वाण चाहिए। मुझे भ्रम में न डालों नारी!'[22]

'स्वप्नश्री और श्रीरेखा' कहानी में भारती जी ने नारी के विषय में पुरूष व नारी दोनों के विचारों को प्रकट किया है। कहानी में समुद्रगुप्त नारी को महत्वहीन समझते हैं। वे श्रीरेखा से कहते हैं कि –'मैं नारी को इतना महत्व ही नहीं देता कि उसकी उपेक्षा करने का व्यर्थ कष्ट उठाऊँ।.....मेरे खेलने के लिए बड़ी – बड़ी वस्तुएँ है। मैं साम्राज्यों के भाग्य से खेल सकता हूँ; नारी जैसे कच्चे खिलौने से मैं नहीं खेलता।'[23] यहाँ पुरूष नारी को खिलौना समझता हैं और साथ ही उसके प्रति उपेक्षित व्यवहार भी रखता हैं। जिसका प्रत्युत्तर देते हुए श्रीरेखा कहती है–'नारी जीवन में कच्ची हो किन्तु खेल या प्यार में कच्ची नहीं होती। जिस दिन वह खेलने अथवा प्यार करने का निश्चय करती है उसी दिन उसमें अपूर्व प्रतिभा जाग जाती हैं।'[24] समुद्रगुप्त और श्रीरेखा दोनों के विचारों से भिन्न स्वप्नश्री कहती है कि –'कुमार, नारी एक सूत्र हैं; एक गूढ़ सूत्र। जैसे एक सूत्र की व्याख्या से टीकाकार अधिकतर अपनी ही मनःस्थिति और विचार–धारा के अनुसार टीका करता हैं; उसी प्रकार नारी की व्याख्या भी प्रत्येक पुरूष अपने अनुभव और अपनी विचार शक्ति के अनुसार करता हैं।'[25] इस कहानी में समुद्रगुप्त नारी की अपेक्षा स्वयं को श्रेष्ठ समझने लगता है जबकि श्रीरेखा नारी को शक्ति और प्रतिभा से परिपूर्ण मानती हैं तो वहीं दूसरी ओर नारी के संबंध में स्वप्नश्री समाज में

व्याप्त विचारों और उनकी प्रतिक्रियाओं को बतलाती हैं।

भारती जी की कहानी 'पूजा' में समाज में व्याप्त नारी की स्थिति का चित्रण करते हुए कहा हैं कि –'देवताओं ने पुरूष को वाणी इसलिए दी है कि वह अपनी भावनाओं को प्रकट करें, और स्त्री को वाणी इसलिए दी है कि वह अपनी भावनाओं को साफ-साफछिपा जाए।'[26] एक स्त्री अपनी भावनाओं को इसलिए व्यक्त नहीं कर पाती क्योंकि उसको बाल्यावस्था से ही दूसरों की इच्छानुसार ही जीना पड़ता है। उसकी खुद की मरजी से वह कुछ नहीं कर पाती हैं, बेबस और लाचार हो जाती हैं। जैसा कि इस कहानी में पूजा के साथ हुआ हैं, वह कहती हैं –'तो यह है मेरे भाग्य में! वे चाहते है में देवता के चरणों पर चढ़ूँ। पिता की इच्छा है कि मैं देवदासी बनूँ। और मेरी इच्छा– कितनी नाचीज़ मेरी इच्छा। मैं तो महज दूसरे की इच्छा पर चूर–चूर हो जाने के लिए बनीं हूँ। कितना महान भाग्य है मेरा।'[27] इस कहानी में भारती जी ने नारी की दयनीय व असहाय दशा का चित्रण किया है जिसमें वह स्वयं अपने ही जीवन का निर्णय अपनी ही इच्छानुसार नहीं कर पाती हैं। पूजा जब देवदासी बनने जा रहीं थी तब वह नक्षत्र से कहती हैं कि –'कल तक में कुवाँरी थी– अपना यौवन, अपना हृदय, अपना रूप किसी को भी समर्पित करने को स्वतन्त्र । आज में देवदासी हूँ, मेरी सुकुमार प्यासी भावनाएँ, मेरी अछूती तरूणाई आज महज उसकी है, उस पत्थर के देवता की।'[28] इस कहानी में देवदासी परंपरा का चित्रण दिखाई देता है जिसमें देवदासी अपनी मानवीय इच्छाओं का त्याग करते हुए ईश्वर को समर्पित हो जाती है। भारती जी ने इस कहानी के माध्यम से परंपरा के नाम पर स्त्रियों पर किए जाने वाले शोषण का चित्रण किया हैं।

निष्कर्ष:–भारती जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त आडम्बर, परंपरा और सामाजिक दशा का वास्तविक चित्रण किया है जो कि पाठक के अंतर्मन को छू जाता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा समाज में नारी की दशा व समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है तथा साथ ही समाज द्वारा प्रताड़ित और उपेक्षित नारी की पीड़ा व समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता, विसंगतियों व शोषणखोर प्रवृत्ति को भी उजागर किया है। भारती जी की कहानियों में नारी जीवन पर हो रहें अन्याय व अत्याचार का चित्रण चित्रित हुआ हैं जिससे कि समाज की वास्तविकता भी नजर आती हैं और साथ ही समाज का नारी के प्रति दृष्टिकोण भी पता चलता हैं कि किस तरह अन्याय व शोषण से आहत नारी अपना जीवन व्यतीत करती हैं जिससे समाज का रूप विकृत दिखाई देता है। इसलिए समाज के विकास के लिए नारी जाति का विकसित होना अतिआवश्यक है और यह तभी संभव होगा जब नारी शोषण व दासता से पूरी तरह मुक्त हो जाए।

संदर्भ सूची:–

1. भारती धर्मवीर – बन्द गली का आखिरी मकान (गुलकी बन्नो), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सत्रहवाँ संस्करण – 2015, पृष्ठ क्रं0 – 11
2. वही, पृष्ठ क्रं0 – 11
3. वही, पृष्ठ क्रं0 – 19
4. वही, पृष्ठ क्रं0 – 22
5. भारती धर्मवीर – बन्द गली का आखिरी मकान (सावित्री नम्बर दो), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, सत्रहवाँ संस्करण– 2015, पृष्ठ क्रं0 – 28
6. वही, पृष्ठ क्रं0 – 29
7. वही, पृष्ठ क्रं0 – 43
8. भारती धर्मवीर –साँस की कलम से (धर्मवीर भारती की सम्पूर्ण कहानियाँ – एक बच्ची की कीमत), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण –2021, पृष्ठ क्रं0 – 120
9. वही, पृष्ठ क्रं0 – 122
10. भारती धर्मवीर – साँस की कलम से (धर्मवीर भारती की सम्पूर्ण कहानियाँ – शिंजिनी), पृष्ठ क्रं0 – 182
11. वही, पृष्ठ क्रं0 – 189
12. भारती धर्मवीर – साँस की कलम से (धर्मवीर भारती की सम्पूर्ण कहानियाँ – कुलटा), पृष्ठ क्रं0 – 88
13. वही, पृष्ठ क्रं0 – 89
14. वही, पृष्ठ क्रं0 – 91
15. भारती धर्मवीर – बन्द गली का आखिरी मकान (बन्द गली का आखिरी मकान), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सत्रहवाँ संस्करण –2015, पृष्ठ क्रं0 – 103
16. वही, पृष्ठ क्रं0 – 108
17. भारती धर्मवीर – साँस की कलम से (धर्मवीर भारती की सम्पूर्ण कहानियाँ – कुबेर), पृष्ठ क्रं0 – 215
18. वही, पृष्ठ क्रं0 – 217
19. भारती धर्मवीर – साँस की कलम से (धर्मवीर भारती की सम्पूर्ण कहानियाँ – मंजिल), पृष्ठ क्रं0 – 220
20. वही, पृष्ठ क्रं0 – 222
21. भारती धर्मवीर –साँस की कलम से (धर्मवीर भारती की सम्पूर्ण कहानियाँ – आधार और प्रेरणा), पृष्ठ क्रं0 – 53
22. भारती धर्मवीर – साँस की कलम से (धर्मवीर भारती की सम्पूर्ण कहानियाँ – नारी और निर्वाण), पृष्ठ क्रं0 –201
23. भारती धर्मवीर – साँस की कलम से (धर्मवीर भारती की सम्पूर्ण कहानियाँ–स्वप्नश्री और श्रीरेखा), पृष्ठ क्रं0 –170
24. वही, पृष्ठ क्रं0 – 170
25. वही, पृष्ठ क्रं0 – 171
26. भारती धर्मवीर – साँस की कलम से (धर्मवीर भारती की सम्पूर्ण कहानियाँ – पूजा), पृष्ठ क्रं0 – 151
27. वही, पृष्ठ क्रं0 – 159
28. वही, पृष्ठ क्रं0 – 161

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

नई शिक्षा नीति 2020 : अवसर एवं चुनौतियाँ

योगेश बनिया
डॉ. पंकज पारीक

1. शोधार्थी, शिक्षा, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर,
2. प्राचार्य, मंत्रम् शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, झाड़ौल, उदयपुर

सारांश :-अच्छी तरह से परिभाषित और भविष्यवादी शिक्षा नीति एक देश के लिए विद्यालय और कॉलेज स्तर पर आवश्यक है क्योंकि शिक्षा आर्थिक और सामाजिक प्रगति की ओर ले जाती है। अलग-अलग देष अलग-अलग शिक्षा प्रणालियों को परंपरा और प्रकृति पर विचार करके अपनाते हैं और इसे प्रभावी बनाने के लिए विद्यालय और कॉलेज शिक्षा स्तरों पर अपने जीवन चक्र के दौरान अलग-अलग चरणों को अपनाते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (एनईपी 2020), जिसे 29 जुलाई 2020 को भारत के केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित किया गया था, भारत की नई शिक्षा प्रणाली की दृष्टि को रेखांरित करती है। नई नीति शिक्षा पर पिछली राष्ट्रीय नीति, 1856 का स्थान लेती है। यह नीति प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा के साथ-साथ ग्रामीण और शहरी भारत दोनों में व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए एक व्यापक रूपरेखा है। नीति का लक्ष्य भारत की शिक्षा प्रणाली को बदलना है। नीति जारी होने के तुरंत बाद, सरकार ने स्पष्ट किया कि किसी को भी किसी विशेष भाषा का अध्ययन करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा और शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी से किसी क्षेत्रीय भाषा में स्थानांतरित नहीं किया जाएगा।

मुख्य शब्द :- उच्च शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, अवलोकन और विश्लेषण, कार्यान्वयन रणनीतियाँ, दृष्टिकोण, चुनौतियाँ, अवसर।

पृष्ठभूमि :-जनवरी 2015 में, पूर्व कैबिनेट सचिव टी.एस.आर. सुब्रमण्यम की अध्यक्षता में एक समिति ने नई शिक्षा नीति के लिए परामर्श प्रक्रिया शुरू की। समिति की रिपोर्ट के आधार पर, जून 2017 में, एनईपी का प्रारूप 2019 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के पूर्व प्रमुख कृष्णस्वामी कस्तूरीरंगन के नेतृत्व में एक पैनल द्वारा प्रस्तुत किया गया था। नई शिक्षा नीति को बाद में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी किया गया था, जिसके बाद कई सार्वजनिक परामर्श हुए। भारतवर्ष के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि शिक्षा नीति बनाने के एि देश के लगभग 2.5 लाख ग्राम पंचायतें, 6600 ब्लॉक और 650 जिलों से विचार लिए गए। इसमें शिक्षाविदों, अध्यापकों, अभिभावको, जनप्रतिनिधियों एवं व्यापक स्तर पर छात्रों से भी सुझाव लेकर उनका मंथन किया गया। जन आकांक्षाओं के अनुरूप एवं राष्ट्रीय आवश्यकता और चुनौतियों के अनुरूप नई शिक्षा नीति 2020 की घोषणा की गई है। नई शिक्षा नीति 2020 का मुख्य उद्देश्य भाषा दक्षता, वैज्ञानिक स्वभाव, सौंदर्य बोध, नैतिक तर्क, डिजिटल साक्षरता, भारत बोध और चेतना का विकास करना है। साथ ही राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा में सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं को महत्त्व, पाठ्यक्रम को और अधिक गुणवत्तायुक्त, लचीला/एकीकृत और मूल्यांकन परक करने की बात कही गई है। नई शिक्षा नीति, भारतीय जीवन मूल्यों पर आधारित होने के साथ-साथ, भारतीय परंपराओं, भारतीय संस्कृति एवं भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन, पुनर्स्थापन एवं प्रसार पर जोर देती है, जिससे यह भारत को एक समर्थ, गौरवशाली, आत्मनिर्भर बनाने में शिक्षा प्रणाली में बड़े परिवर्तन कर पुनः भारत को विश्व गुरू बनाने के प्रयास का बिगुल बजा दिया है।

अवसर :-भारतीय शिक्षा क्षेत्र के विकास को बढ़ावा देने के लिए, वर्तमान सरकार ने एक व्यापक राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पेश करके इसे नया रूप देने का निर्णय किया है। वर्तमान में शुरू की गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारत केंद्रित शिक्षा प्रणाली की कल्पना करती है जो सभी को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करके हमारे देश को एक समान और जीवंत ज्ञान समाज में बदलने में सीधे योगदान देती है। भारतीय ज्ञान परम्परा को दृष्टिगत रखते हुये नई शिक्षा नीति 2020 के द्वारा अपनायी गयी 5+3+3+4 की प्रणाली मानवीय और धरातलीय स्तर पर सामाजिक समावेशन कर सकारात्मक विकास का प्रतिपादन करती है, जो व्यक्ति और समाज के साथ ही राष्ट्र निर्माण में भी सहायक सिद्ध होगी। नई शिक्षा नीति में मातृभाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं का ज्ञान विद्यार्थियों के ज्ञान में क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर विकास में सहायक है। इस शिक्षा नीति के माध्यम से तकनीकी ज्ञान के विकेन्द्रीकरण का प्रयास किया गया है, जो तकनीकी रूप से सशक्त एवं समावेषी समाज का निर्माण कर अपने नागरिकों को ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में योगदान देने योग्य बनायेगा। आज सम्पूर्ण विश्व भारतीय परम्परा व संस्कृति का अनुसरण करके भारतीय मूल्यों से तादात्म्य स्थापित कर रहा है। योग और आयुर्वेद इसके प्रमुख उदाहरण है। नई शिक्षा नीति 2020 में इन भारतीय मूल्यों को पुनर्जीवित करने, विकसित एवं उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता दिलाने का सराहनीय कदम उठाया गया है। भारतीय सामाजिक परिदृश्य में नई शिक्षा नीति 2020 का पदार्पण किसी शैक्षिक क्रान्ति से कम नहीं है, क्योंकि नई शिक्षा नीति देष में स्कूल और उच्च शिक्षा में परिवर्तनकारी सुधारों के साथ-साथ रोजगारपरक एवं सार्वभौमिकता पर आधारित व्यवस्था है। इस नीति का समतावादी एवं समावेशी दृष्टिकोण समाज के वंचित, पिछड़े, दिव्यांग, अल्पसंख्यक, आदिवासी एवं महिलाओं के शिक्षा प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करता है। नई शिक्षा नीति 2020 का लक्ष्य भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति के रूप में स्थापित करना है। नई शिक्षा नीति के माध्यम से वर्तमान सरकार ने दृढ़ संकल्पित होकर भारतीय परम्परा को पुर्नजीवित करने और भारत को ज्ञान-हब बनाने का प्रयास किया है। इस राष्ट्रीय नीति 2020 के द्वारा शिक्षा का एक ऐसा रोडमैप तैयार किया है,

जिसमें भारतीयता का पूट परिलक्षित होने के साथ-साथ आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी समाज की संरचना साकार हो सके। सत् विकास के संबंध में संयुक्त राष्ट्र ने 2030 तक जिन 17 लक्ष्यों को प्राप्त करने का उद्देश्य रखा है, उसमें गुणवत्तापूर्व शिक्षा भी एक है। नई शिक्षा नीति संयुक्त राष्ट्र संघ के इस उद्देश्य की पूर्ति में एक साधन बनने के लिये भी अभिलाषी है। नई शिक्षा नीति तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के इस लक्ष्य का यह माना है कि आज विश्व में ज्ञान तथा सूचना अतुल भंडार है, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति उस ज्ञान का लाभ तभी उठा सकता है, जब यह सभी स्तरों पर सुलभ हो और स्कूलों में भर्ती दरों में वृद्धि हो। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे संगठन 2017-18 के अनुसार भारत में अभी भी लगभग 3.22 करोड़ बच्चे स्कूली शिक्षा से वंचित हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार यू-डीआईएसई 2016-17 के आंकड़ों के अनुसार, प्राथमिक स्तर पर लगभग 19.6 प्रतिशत छात्र अनुसूचित जाति के हैं, जबकि उच्चतर माध्यमिक स्तर यह प्रतिशत कम होकर 17.3 प्रतिशत हो जाता है। नामांकनों मे भी ये गिरावट अनुसूचित जनजनति के छात्रों (106 प्रतिशत से 68 प्रतिशत) और दिव्यांग बच्चों (11 प्रतिशत से 025 प्रतिशत) के लिए अत्यन्त गंभीर विषय है। इसमें से प्रत्येक श्रेणी में महिला छात्रों के नामांकनों में और भी गिरावट आई है तथा महिला छात्रों की उच्चतर शिक्षा के नामांकन में गिरावट तो और भी अधिक है। गुणवत्तापरक शिक्षा ही सत् विकास की बुनियाद है। देशीय शिक्षा के द्वारा ही कोई भी राष्ट्र स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर हो सकता है तथा जीवन स्तर को उन्नत कर सकता है। इसलिये नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से 2030 तक लड़कियों और लड़कों के बीच की विषमता को पूरी तरह समाप्त करने तथा समाज के सभी तबकों को शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षण प्राप्त कराने का लक्ष्य रखा गया है। भारत में युवाओं की सर्वाधिक जनसंख्या है तथा 2022 तक भारत विश्व का सबसे नौजवान राष्ट्र होगा, लेकिन भारत में आज भी 27 प्रतिशत जनसंख्या निरक्षर है। अभी तक भारत जीडीपी का लगभग 3.8 प्रतिशत ही शिक्षा पर व्यय करता आ रहा है, लेकिन नई शिक्षा नीति में इसका लक्ष्य 6 प्रतिशत रखा गया है। इस प्रकार भारत की बदलती हुयी सामाजिक, आर्थिक स्थिति और संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्धारित किये गये सत् विकास संबंधी लक्ष्य के साथ तारतम्य स्थापित करते हुये नई शिक्षा नीति 2020 के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। नई शिक्षा नीति 2020 का लक्ष्य भारत में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने, सर्जनात्मक और नवाचारों पर आधारित शोध संस्कृति को प्रोत्साहित करने के साथ ही समावेशी शिक्षा प्रणाली अपनाकर भारत को ज्ञान परम्परा की सर्वोच्च शक्ति बनाने में है। नई शिक्षा नीति 2020 व्यावसायिक शिक्षा पर बल देते हुये, उसे मुख्य पाठ्यक्रम का भी हिस्सा बनाती है, जिससे शिक्षा ग्रहण करते समय विद्यार्थियों को कौशल विकास के अवसर प्राप्त होंगे। इस नीत के अनुसार स्कूल में शिक्षा ग्रहण करते हुये कुछ ऐसा समय निर्धारित होगा, जिसमें विद्यार्थी स्थानीय आधार पर उपलब्ध व्यावसायिक विशेषज्ञ जैसे मोची, बढ़ई, कलाकार, कुम्हार आदि के सम्पर्क में आकर उनके कौशल का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। शिक्षण संस्थानों को लाभरहित संस्थाओं की श्रेणी में रखा गया है। सभी शिक्षण संस्थानों से यह अपेक्षा की गई है कि वे अपने शुल्क सम्बन्धी नीतियों में पारदर्शिता रखेंगे। नई शिक्षा नीति को समावेशी बनाने के लिये नौकरशाही से मुक्त करने का भी प्रयास किया गया है।

चुनौतियाँ :-

1. प्रत्येक सप्ताह विश्वविद्यालयों को खोलना एक अत्यन्त कठिन कार्य है-भारत में आज देश भर में लगभग 1,000 विश्वविद्यालय हैं। 2035 तक उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात को दोगुना करना, जो नीति के घोषित लक्ष्यों में से एक है, का अर्थ होगा कि हमें अगले 15 वर्षों के लिए हर सप्ताह एक नया विश्वविद्यालय खोलना होगा। हर सप्ताह एक विश्वविद्यालय को निरंतर आधार पर खोलना निस्संदेह एक बड़ी चुनौती है।

2. हमारी स्कूल व्यवस्था में सुधारों के मामले में यह संख्या कम चुनौतीपूर्ण नहीं है-राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का इरादा उन 2 करोड़ बच्चों को स्कूल प्रणाली में वापस लाने का है जो वर्तमान में स्कूलों में नहीं है। आप इसे किसी भी तरह से देखें, 15 वर्षों में इसे पूरा करने के लिये प्रति सप्ताह लगभग 50 स्कूलों की स्थापना की आवश्यकता है।

3. कोविड के दौर में फंडिंग एक बड़ी चुनौती है-धन के दृष्टिकोगण से, यह बेहोश दिल के लिए एक चुनौती नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में सकल घरेलू उत्पाद के 4.6 प्रतिशत से 6 प्रतिशत तक शिक्षा खर्च में वृद्धि की परिकल्पना की गई है, जो प्रतिवर्ष लगभग 2.5 लाख करोड़ रूपये है। यह पैसा देश भर में स्कूलों और कॉलेजों के निर्माण, शिक्षकों और प्रोफेसरों की नियुक्ति और स्कूली बच्चो को मुफ्त नाश्ता उपलब्ध कराने जेसे परिचालन खर्चों के लिए अच्छी तरह से खर्च किया जाएगा। जो चीज चीजों को पेचीदा बनाती है वह यह है कि यह नीति ऐसे समय में अस्तित्व में आई है जब अर्थव्यवस्था को कोविड-19 संबंधित लॉकडाउन से नुकसान हुआ है, सरकारी कर संग्रह बहुत कम है, और राजकोषीय घाटा कोविड से पहले भी उच्च था।

4. निष्पादन की गति को कम करने के लिए स्वास्थ्य सेवा और आर्थिक सुधार पर वर्तमान ध्यान-अर्थशास्त्री सरकारी खजाने पर दबाव के बावजूद बड़े प्रोत्साहन पैकेजों की मांग कर रहे हैं जो सकल घरेलू उत्पाद के दो अंकों के प्रतिशत के बराबर हों।

5. प्रशिक्षित शिक्षकों का एक बड़ा पूल बनाने की आवश्यकता है-स्कूली शिक्षा में, नीति पाठ्यक्रम के एक व्यापक संरचनात्मक पुनरू डिजाइन की परिकल्पना करती है, जो एक बहुत ही स्वागत योग्य कदम है। लेकिन इस पाठ्यक्रम को प्रभावी ढंग से वितरित करने के लिए, हमें ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता है जो प्रशिक्षित हैं और शैक्षणिक आवश्यकताओं को समझते हैं। कई पाठ्यचर्या परिवर्तनों के लिए शिक्षकों के साथ-साथ माता-पिता की ओर से मानसिकता में पर्याप्त बदलाव की आवश्यकता होती है।

6. अंतर-अनुशासनात्मक उच्च शिक्षा एक सांस्कृतिक बदलाव की मांग करती है-उच्च शिक्षा में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का अंतर-अनुशासनात्मक शिक्षा पर ध्यान देना एक बहुत ही स्वागत योग्य कदम है। विश्वविद्यालय, विशेष रूप से भारत में, दशकों से बहुत अलग और विभागीय रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता और व्यापकता में सुधार के लिए कई पहलें हैं।

निष्कर्ष:-देश में अर्थव्यवस्था, सामाजिक स्थिति, प्रौद्योगिकी अपनाने और स्वस्थ मानव व्यवहार को तय करने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण पहलू है। भारत की नई शिक्षा नीति 2020 गुणवत्ता, आकर्षण, सामर्थ्य में सुधार के लिए नवीन नीतियां बनाकर और निजी क्षेत्र के लिए शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए सख्त नियंत्रण के साथ आपूर्ति में वृद्धि करके ऐसे उद्देश्य को प्राप्त करने की ओर अग्रसर है। यह नीति बहुआयामी तथा समग्र होने के साथ ही व्यावसायिक भी हैं और लचीली भी। यह शिक्षा नीति किताबी ज्ञान की बजाय कौशल विकास पर अधिक ध्यान केन्द्रित करती है। इसका यह स्वरूप समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को समाप्त कर समावेशी समाज के निर्माण के लिये महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा। इस नीति का

महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह भारतीय मूल्यों को गठजोड़ कर उच्च तकनीक के साथ ऐसी प्रणाली हमारे सम्मुख रख रही है, जिसके माध्यम से हम अपने गौरवशाली अतीत से जुड़े हुये आधुनिक युवा तैयार कर पायेंगे। इस प्रकार आत्मनिर्भर भारत एवं समावेशी समतापरक समाज के सपने को साकार करने में यह निश्चित ही एक सकारात्मक कदम साबित होगा।

संदर्भ सूची :-

1. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf
2. https://www.orfonline.org/hindi/research/challenges-new-education-policy-2020-education-in-indian/
3. https://reflections.live/articles/23/244-kd8upntt-2020.html
4. https://www.allresearchjournal.com/archives/2020/vol6issue9/PartB/6-9-7-410.pdf

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

ज्ञानेंद्रपति की कविताओं में युग चेतना

बिजय कुमार पधान

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा, गुजरात

सारांश:-लेखक अपने समय का संवाहक होता है। समाज को केंद्र में रखकर वह अपना रचना कर्म को आगे बढ़ाता है। इसलिए उसकी रचना में युग-जीवन की अमिट छाप विद्यमान होती है; क्योंकि वह मूलतः युगीन चेतना से प्राभावित होता रहता है। युग-चेतना के आलोक में समकालीन कवि ज्ञानेंद्रपति की कविताओं में वर्णित सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैश्विक, भू-राजनीति और पर्यावरण आदियों का अध्ययन इस आलेख का उद्देश्य है। हर काल का कवि अपने युग की चेतना के साथ तादात्म्य रखकर अपनी कविता का सृजन करता है। वह कविता रचना करते समय समाज की चेतना उसके मस्तिष्क में हमेशा कार्यरत रहता है एवं उससे प्रभावित होकर वह साहित्यिक कर्म में प्रवृत्त होता है।

मुख्य शब्द:- युग, चेतना, भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उदारीकरण, संयुक्त राष्ट्र महासंघ, सतत विकास लक्ष्य (एसडीजी), उपभोक्तावाद, भू-राजनीति), ब्लैकहोल, एक्सपोसैट।

समाज में व्याप्त विभिन्न दिशाओं को कवि की रचनाओं में स्थान मिलती है। कवि की रचना में जीवन वर्णन के साथ-साथ तत्कालीन युग जीवन का भी परिचय मिलता है। समाज का निर्माण मनुष्य से हुआ है। मनुष्य गतिशील प्राणी है। इसी गतिशीलता के कारण भिन्न-भिन्न युग में कवियों की रचनाओं में युगीन चेतना के रूप भी विस्तृत होते जाते हैं। मनुष्य के मन मस्तिष्क पर जिन चेतनाओं का प्रभाव पड़ता है, उन्हीं की अभिव्यक्ति साहित्य एवं समाज में होती है। मुंशी प्रेमचंद के अनुसार ''साहित्यकार बहुदा अपने देश काल से प्राभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठते हैं और इस तीव्र विकलता में वह रो उठते है, पर उसके रुदन में व्यापकता होती है।[1]'' इस तरह साहित्य का युग चेतना के साथ प्रत्यक्ष संबंध रहता है । युग चेतना कवि की रचना को सभी स्तरों पर प्राभावित करता है। एक लेखक का साहित्य युगीन चेतना के अनुरूप मनुष्य समाज को पथ-प्रदर्शक करता है। किसी भी भाषा का लेखक अपने युग में प्रचलित मान्यताओं, समस्याओं, स्थितियों के आधार पर रचनाकर्म में अग्रसर होता है। इस प्रकार कवि की रचना एवं युग चेतना का संबंध अटूट है।

आधुनिक रचना के क्षेत्र में सर्वाधिक चर्चित शब्द 'युग चेतना' है। युग चेतना समाज की मान्यताओं एवं स्थितियों के संदर्भ में अवगत कराती है। युगीन चेतना का अर्थ है समय, इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, कला, चिंतन, दर्शन और जीवन दृष्टि के बारे में किसी भी युग विशेष में जो भावात्मक और वैचारिक परिवेश होता है। तत्कालीन युग की विचारधाराएं जो युगीन जीवन में चेतना का संचार करती है, साहित्य में युग चेतना के नाम से जानी जाती है। प्रत्येक रचनाकर की रचना का मूल उत्स युगीन जीवन से संबंधित रहता है। इससे भिन्न रहकर लेखक अपनी रचना में तत्कालीन समय उपस्थित नहीं कर सकता। इसी बीच समकालीन कवियों में ज्ञानेंद्रपति एक ऐसे कवि हैं जो बदलते युग को अपनी कविताओं में उतार रहे हैं और युग के साथ बने हुए हैं। उनकी कविताओं में ग्राम्य जीवन का उजास है तथा तत्कालीन समाज की परिस्थितियों पर प्रहार कर सही दिशा दिखाने की ज्योति विद्यमान है। इन्हें 'संशयात्मा' काव्य संग्रह के लिए वर्ष 2006 का 'साहित्य अकादेमी पुरस्कार' प्रदान किया गया ।

समग्र लेखन के लिए उन्हें 'पहल सम्मान', 'शमशेर सम्मान' और 'जनकवि नागार्जुन स्मृति सम्मान' से सम्मानित किया जा चुका है।

वर्तमान युग सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैश्विक विडंबनाओं से घेरा है। समाज में अनेक भू- राजनैतिक परिर्वतन हो रहा है, जिसका सीधा प्रभाव समाज पर पड़ रहा है। इन प्रभावों को पहचान कर उसे झेलने में आम जनता खुद को असमर्थ पा रहा है । ऐसे में समकालीन साहित्यकारों ने युग की चेतना से प्रभाव ग्रहण कर अपने साहित्यिक कर्म में प्रवृत्त हो रहे हैं। इनमें एक बड़ा नाम है ज्ञानेंद्रपति, जिनके काव्य संग्रहों में विषय वैविध्य का अभाव नहीं है। ज्ञानेंद्रपति एक ऐसी कविताओं के सृजन की आकांक्षी थे जो वर्तमान समय के साथ-साथ आने वाले कई पीढ़ियों तक प्रासंगिक बनी रहे। उनकी कविताएं सामाजिक भावनाओं को व्यक्त करने वाली कविता है। अपने काव्य संग्रह 'मनु को बनाती मनई में' संकलित 'भावनाओं की अकाल-बेला में' कविता में कवि इस बात को इस प्रकार रखता है -

''क्योंकि यह धरती
आज की ही नहीं है
क्योंकि यह आकाश
भविष्य का भी है
लिखो - अगले किसी जमाने की कविताएं
इस जमाने के बीचोबीच।''

समाज के ईदगिद घटित तमाम घटनाओं को केंद्र में रखकर साहित्य कर्म में प्रवृत्त होने की बात है उनकी कविता में देखी जाती है। उनके अनुसार रचनकार अतीत की पुनर्व्यख्या करता है, वर्तमान की समीक्षा करता है और भविष्य की संभावित कल्पना। आज के समय में कविता के स्थान कहां होना चहिए उसका भी जिक्र किया है। 'कविता भविता' काव्य संग्रह में संकलित 'कविता-विपथ' में कवि को वन के मृग कहा है और झाड़-झंखाड़ के बीच रास्ता को कविता कही है। अर्थात् वर्तमान युग में कवि को अपने

परिवेश का ध्यान रखते हुए कविता निमार्ण करने की वकालत कवि करता है। ज्ञानेंद्रपति अपने समय में चल रहे सरकार की नीतियों की खबर रखने वाले एक सजग कवि है। आम जनता के प्रति इनकी संवेदना अधिक मात्रा में दृष्टव्य है। ये आम आदमी के साथ खड़े होकर वहां से चीचों को देखने में विश्वास करते हैं। उनकी कविता 'दिसंबर,2020' में नये कृषि-कानूनों के खिलाफ किसानों का बुलाया भारत बंद को कविता का विषय बनाया है और वैचारिक स्तर पर किसानों के साथ खड़े होकर तत्कालिन सरकार के उक्त कृषि नियम का विरोध करके अपना स्वर बुलंद किया है -

''तुम कहते हो, तुमने
किसानों को आजादी दे दी है
****
तुम्हारी मायावी मिथ्या का यह सबसे घातक वार है
देश की छाती पर
कि देश की आत्मा के अन्नमय कोश पर
और इसे
इस देश के किसान ठीक-ठीक समझते हैं ...।''

कवि आज उस दिन को याद करता है जब 1965 ई. में भारत में अनाज का संकट की वजह से अकाल की नौबत आ गई थी । लाल बहादुर शास्त्री जी ने तब किसान को देश की रीढ़ की हड्डी कहा और 'जय जवान जय किसान' का नारा लगाए थे । परंतु आज किसान समाज के हाशिए पर खड़ा है। जहां भारत विकासशील से विकसित देश की और बढ़ रहा है और देश की अर्थव्यवस्था जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) जिस किसान की वजह से तेजी से बढ़ रही, वहां आज उनकी इस दशा देख कवि चकित है। पत्रकारिता वर्तमान समाज का एक अभिन्न अंग है। हमारे सामने उसके कई माध्यम उपलब्ध हैं। कोई भी समाज, सरकार, वर्ग, संस्था, व्यक्ति पत्रकारिता की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता। मीडिया जहां निष्कलंक भाव से सूचना जनता के सम्मुख पहुंचाता है, वहां आज राजनैतिक कुचक्र के जाल में फंसकर अपनी अस्मिता को कलंकित करके लोगों में भ्रम फैला रही है। इन पत्रकारों और उनकी पत्रिकाओं का घिनौना सच कवि 'कविता भवति' में संकलित 'चुनाव बाद का पत्रकारिता दिवस' में उल्लेख किया है ; जैसे -

''अबके अखबारों ने
चुनाव पर्व में क्या खूब चांदी काटी
हजारों हाथों से लाखों लाख बटोरे
खूब छापे उम्मीदवारों के समाचारवेशी विज्ञापन
जिसने खर्चा--उसकी चर्चा
रोकड़े के अनुपात में पक्ष में हवा बहती रही
जनता भौचक, पत्रकार स्तब्ध; प्रबंधकों की लहती रही
पत्रकारिता की विश्वसनीयता उधड़ी, उधियायी....।''[4]

इस तरह वर्तमान युग में मीडिया एवं राजनीति की चोली दामन का साथ का पर्दाफाश किया है। भारतेंदु, द्विवेदी, छायावाद और छायवादोत्तर युग पत्रकारिता का एक ऐसा समय था जब पत्र-पत्रिकाओं का संबंध सीधे जनसाधारण से था। किसी भी प्रकार के अन्याय का प्रतिकार करने के लिए जनता जब उठ खड़ी होती है तो उसे अपनी आवाज़ बुलंद करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं का सहारा लेता था। परंतु आज मीडिया में आम जनता की जगह राजनेताओं तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियां और उनके विज्ञापन ने ले लिया है। पत्रकारिता आज के युग में एक व्यवसाय बन गया है। उसे बड़े-बड़े राजनैतिक दलों एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों का गुलाम बना दिया गया है। वह अपनी अस्मिता खोने लगा है। प्रिंट मीडिया, टी वी, इंटरनेट के माध्यम से पश्चिमी संस्कृति का आगमन और असमाजिक क्रियाकलाप युवाओं तक पहुंचने में संभव हो रहा है जिससे समाज में नैतिकता, मानवीय संवेदना गिरती नजर आ रही है। समाजचेतस कवि ज्ञानेंद्रपति पत्रकारिता के इस रूप की निंदा करते हुए समाज में उसकी भूमिका पर सवाल खड़ा किया है।

उक्त कविता में कवि फिर कहता है कि -

''सो, यही हो
कविता! तू ही बन
खबरनवीसों की
खबररसां
कवि!
कवियों का कवि होने
की जगह
पत्रकारों का पत्रकार
बन कर रह
सह और कह!''[5]

इस युग ने अबतक की सबसे बड़ी महामारी कोरोना की भयावहता को देखा और उसे झेला भी है। कोरोना महामारी ने समाज, जीवन, आर्थिक और साहित्य आदि सभी पर असर डाला है। इस वैश्विक महामारी ने पूरी दुनिया को बदल कर रख दिया। 21वीं सदी के कवियों ने कोरोना काल को भोगा है। अतः ज्ञानेंद्रपति की कविता 'कोरोना-काल में अड़हुल' और 'लौटना' महामारी में पीड़ित जनता के दुखों को बयां करती हैं। इस महामारी के इलाच हेतु समाज में फैली अंधविश्वास को कवि ने 'कोरोना काल में अड़हुल' में रेखांकित किया है। देशव्यापी लॉकडाउन के समय में मजदूरी करने हेतु गांव से शहर अथवा अन्य किसी राज्य में गये लोगों के जीवन की जटिलता के बारे में कवि ने कहा है कि -

''चलता चला जाता था
खाकी डंडे से खदेड़े जाने पर

सूने रेलमार्ग पर भी
उसे अविराम चलते जाना था दिन हो कि रात
गिरते - पड़ते
सिर पर गठरी-मोटरी
गोद में नन्हा बच्चा संभाले
बाजू पकड़े बमुश्किल चल पाती पत्नी
कोई-कोई तो लगभग पूरे दिनों की गर्भवती भी।''[6]

उस समय उनके जीवन निर्वाह का एक मात्र साधन मजदूरी करना वह छीन चुकी थी। ऐसे में उनके पास जिंदगी जीने की न आशा बची थी न हौसला। सरकार की और से भी सहायता की कोई उम्मीद नहीं दिख रही थी। समाज के लोगों के दुखों से दुखित कवि इस समय को अपनी कविता में उतरता ह । संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ने सतत विकास लक्ष्य (एसडीजी) को साकार करने के लिए विश्व के समस्त देश अपने-अपने हिसाब से प्रयास कर रहे हैं। भारत के पर्यावरण और वन मंत्रालय ने 1985 में स्वच्छ गंगा मिशन की घोषणा की थी। परंतु तब से लेकर आज तक कितने साल गुज़र गए हैं और इसी बीच राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना भी बनाया गया, जिसके

तहत भारत के हर छोटी-बड़ी नदियों को स्वच्छ रखने की बात की गयी। इसके लिए मंत्रालय से पैसे उठाया गया किंतु न गंगा स्वच्छ हुई न ही भारत की अन्य नदियां। गंगा की प्रदूषण से चिंतित कवि ज्ञानेंद्रपति 'गंगातट' शीर्षक काव्य संकलन की अनेक कविताओं में नदी के महत्व का चित्रण किया गया है। आज हमारा देश पानी के संकट का सामना कर रहा है; क्योंकि मनुष्य नदियों को गंदा करने में कोई कसर नहीं छोड़ रखा है। इसलिए कवि 'नदी और साबुन' शीर्षक कविता में यह कहता है कि –

''नदी!
तू इतनी दुबली क्यों है
और मैली कुचली

मरी हुई इच्छाओं की तरह मछलियां क्यों उतराई हैं
तुम्हारे दुर्दिनों के दुर्जल में
किसने तुम्हारा नीर हरा
कलकल में कलुष भरा ...।''[7]

'गंगास्नान' नामक कविता में एक बूढ़ी स्त्री की गंगास्नान की आखरी इच्छा के माध्यम से गंगा नदी की पूर्व पवित्रता एवं वर्तमान की मलीनता का जिक्र किया है। हमारी आस्था का प्रतीक पवित्र गंगा नदी का अस्तित्व खतरे में पड़ा देख कवि यहां चिंतित है। 'संशयात्मा' काव्य संग्रह में अनेक कविताएं ऐसी हैं, जिनमें पर्यावरण के प्रति कवि भावुक नजर आता है। आजकल बड़े-बड़े कंपनियां अपनी आवश्यकता पूर्ति हेतु पहाड़ों की कटाई कर रहे हैं एवं कवि अपनी कविता में इसका विरोध करता है –

''नए दिन के लिए वे तैयार कर रहे हैं खुद को
अब आएंगे पर्वतों के पंख काटने वाले वज्रधर इंद्र के वंशज
अपनी फटफटिया में भड़भड़िया में
और फटाफट धड़ाधड़
चालू हो जाएंगे क्रशर
बारूद की गंध फैल जाएगी हवा में
उनके टूटने की गंध के ऊपर
और वे बोल्डरों में गिट्टियों में खंड-खंड हो जाएंगे ...।''[8]

21वीं सदी में परिवेश की आवश्यकता के प्रति सजग रहते हुए जंगल, नदी, पहाड़, पशु-पक्षियों का होने एक स्वस्थ समाज के निर्माण में कितना महत्वपूर्ण है, उस ओर कवि ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। प्रकृति को नष्ट करने की वजह से जलवायु परिवर्तन जैसी समस्या उत्पन्न हो रही है जिसके चलते प्राकृतिक आपदा भी दिन व दिन बढ़ रहे हैं। इसकी कीमत मनुष्य को चुकानी पड़ रही है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने एक्सपोसैट अर्थात् ध्रुवणमापी उपग्रह लंच किया है, जिसका उद्देश्य विषम परिस्थितियों में खगोलीय स्त्रोतों की विभिन्न गतिशीलता का अध्ययन करना है। आम भाषा में कहें तो ब्लैकहोल का अध्ययन करना है। ज्ञानेंद्रपति इन अंतरिक्ष विज्ञान की जानकारी रखने वाले कवि थे जिन्होंने तारों के टूटने से ब्लैकहोल का निर्माण होने की बात अपनी कविता 'गंगातट, शुरुआत की वेला' में कहा है –

''उस तारे को उन्होंने
फालतू जान छोड़ दिया है
फालतू और गैरजरूरी
वह ब्लैकहोल में बदल जाए, उनकी बला से।''[9]

भूमंडलीकरण सम्पूर्ण विश्व में अपने साथ मुक्त बाजारवाद तथा उपभोक्तावाद को लेकर आया। इसने व्यक्ति को अपने देश, संस्कृति तथा परंपरा से अलगा कर अपने व्यवहारिक हितों की पुष्टि किया। इसके चपेट में भारत भी शामिल है। भूमंडलीकरण ने देश की राजनीति, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया है। इसने न सिर्फ मनुष्य के विचारों को प्रभावित किया है अपितु हमारी संवेदनाओं पर भी आघात किया है। भूमंडलीकरण के चलते उपभोक्तावाद, उदारीकरण को जन्म दिया है जिसका मूल लक्ष्य सिर्फ अर्थ उपार्जन है। ऐसे में भूमंडलीकरण के भयावहता को कवि ने अपनी कविता में पूरी संचेतना के साथ उजागर किया है। ज्ञानेंद्रपति के संशयात्मा काव्य संग्रह के अधिकांश कविताएं उदारीकरण के विरुद्ध का स्वर है। वैश्विक स्तर पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का मनमानी एवं स्वार्थपरता नीति का पर्दाफाश किया है। विश्व में जितने बड़े-बड़े युद्ध लड़े गए हैं, उन सभी में कहीं न कहीं अमेरिका की भागीदारी मौजूद है। युद्ध का लाभ उठाकर अमेरिका उन देशों को शस्त्र बेचता है। उदाहरण के रूप में भारत-पाकिस्तान युद्ध में पाकिस्तान को प्रचुर मात्रा में शस्त्र बेचकर युद्ध को बढ़ावा दिया और खुद पैसा बटोर रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना विश्व में शांति रक्षा हेतु हुई थी परंतु यह संस्था अमेरिका की कठपुतली बनकर काम कर रही है जिसका जिक्र कुछ दिन पहले हमारे विदेश मंत्री जयशंकर साहब ने किया था। लेकिन इस अमरीका की चालाकी के बारे में ज्ञानेंद्रपति आज से लगभग 20 साल पहले कहे थे – 'संयुक्त राष्ट्रसंघ के सींगों के नाम हैं-

संयुक्त राज्य अमेरिका कि उन्नत सांड है संयुक्त राज्य अमेरिका और उनका उफनता अंडकोश भर संयुक्त राष्ट्रसंघ है।' बाजारवाद आज भारत के इतने अंदर घुस चुका है कि आम जनता उसके शिकार हो रहे हैं। उसके प्रभाव से मोहग्रस्त आदमी केवल लाभ को सर्वोपरि मान रहा है, जिससे मानवीय संवेदनाएँ लुप्त होते जा रहे हैं। मनुष्य के जीवन से ज्यादा आज पैसा का मूल्य अहम बन गया है। ज्ञानेंद्रपति की एक ऐसी कविता है 'ललमटिया में लहू के दाग नहीं दिखते' । इसमें कवि ने झारखंड की एक जगह ललमटिया के कोयला खनन की बात कही है , जहां हादसा हुआ था। वह खदान जगह स्पर्श करने जैसा नहीं था लेकिन कोयला निकालने के लिए ईसीएल व आउटसोर्सिंग कंपनी ने मिलकर डीजीएमएस के सारे नियम व शर्तों का दरकिनार कर कोयला निकालना शुरू कर दिया। कई बार हादसे के संकेत मिलने के बाबजूद प्रबंधन ने नजर अंदाज कर दिया जिससे 18 लोगों की जान चली गये। कवि के शब्दों में –

''अठारह शव निकाले जा चुके हैं बमुश्किल
ये पांच तो मानो पाताल का पता ढूंढने निकल पड़े हैं ...।''[10]

इससे साफ जाहिर होता है कि बाजारवाद का प्रभाव मानवीयता पर इतना हावी हो गया है कि मनुष्य ही मनुष्य की कीमत को नहीं पहचान पा रहा है। महानगरीय जीवन में व्याप्त अजनविपन, भय, संत्रास, अकेलपन से वर्तमान का युग चिंतित एवं विचलित हैं। ज्ञानेंद्रपति देख रहे हैं कि भारत के महानगरों में स्थित लोग पाश्चात्य संस्कृति को बड़ी सहयता से ग्रहण कर ले रहे हैं। भारत में आजकल फादर डे, मदर डे मनाया जा रहा है और यह पाश्चात्य संस्कृति की देन है। ऐसे एक दिन की कथा के सन्दर्भ में कवि की एक कविता 'पार्क में एक भेंट' शीर्षक से है, जिसमें तलाक के पश्चात् बच्चों की हालत का जिक्र किया गया है। ; जैसे –

''वह नन्हा बेटा
अपनी मां के साथ ही रह रहा था

जिनने दूसरी शादी कर ली थी
उसके नये पिता उसका बहुत खयाल रखते थे

लेकिन उसे
महीने के उस एक दिन का इंतिजार रहता था
जिस एक दिन
उसके विछुडे पिता को उससे मिलने की इजाजत थी ।''[11]

तलाक पति-पत्नी के बीच होती है लेकिन इसका परिणाम स्वरूप उनकी बच्चों की वचपन हमेशा के लिए छीन जाने की बात कवि ने कही है। भूमंडलीकरण के कारण जो भयावह असमानता चारों तरफ फैली हुई है, उससे देश की विशालतम भावी पीढ़ी दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर है। नये कविता के एक सशक्त कवि श्रीकांत वर्मा ने 1969 ई. मे 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया था जिसे लेकर इंदिरा गांधी ने चुनाव जीते थे। परंतु तब से आजतक लगभग 64 वर्ष हो गये हैं न समाज बदला न गरीबी घटी। आज भी भारतवर्ष में ऐसे कई लोग और छोटे बच्चे हैं जिनके पास न खाने के लिए रोटी है न सर के ऊपर छत है। कई बालक ऐसे हैं उनकी पढ़ने की उम्र में किसी चाय टपरी में काम कर रहे हैं और रात को कहीं बाहर खुले आसमान के नीचे सो रहे हैं।'लेन-देन' शीर्षक कविता में इस दृश्य का वर्णन किया गया है-

''एक बंद दुकान की सीढ़ी पर
सोया हुआ एक बालक म्लान
हां, हूं पहचानता उसे
चाय-गिलासों को धोने-मांजने वाला छोकरा वह
अनाम ।''[12]

सहज-सरल हमलावर भाषा वर्तमान युग की कविता की जान है। इस युग की भाषा है तो सरल परंतु समाज पर तीखा वार करती है। यहां काव्य भाषा यथार्थ को रूपायित करने में अधिक सक्षम है। इस युगीन चेतना से प्रभावित ज्ञानेंद्रपति की भाषा में युग की वे सारी विशेषताएं देखने को पाते हैं। ज्ञानेंद्रपति की भाषा वास्तव में उनके हृदय की अभिव्यक्ति है, जो यथार्थ जीवन में प्रवेश कर अनेक तत्व ग्रहण कर समाज के साथ जोड़कर जागरूकता फैलाती है। ये कविता में भाषा और शिल्प की अपेक्षा संवेदना को प्रधान्य देते हैं। इनके अनुसार भाषा केवल एक अपनी संवेदना व्यक्त करने का माध्यम है। यह बात ये 'चित्त-धातु' कविता में खुद स्वीकार करते हैं -

''नहीं, यह केवल
भाषा और शिल्प का ही मामला नहीं
संवेदना के प्रकार का है
और संवेदना का प्रकार
तय होता है चित्त-धातु से;
कह सकते हैं ;
गीति-कवि का चित्त द्रवणशील होता है
और मुक्तछंद के कवि का चित्त प्रसारणशील ।''[13]

ज्ञानेंद्रपति अपनी कविता में मुक्तिबोध एवं धूमिल की तरह भिन्न-भिन्न संदर्भों में अपने समाज के आंखों देखे वर्चस्व के रूपों का अंकन किया है । इनकी कविता में उनके पर्यवेक्षण की गंध मिलती है और वर्तमान युग की मान्यताओं एवं प्रचलन के गहरे दबावों से लाचार होकर रची जाती है । ये कविताएं अपने युग के मनुष्य को परिभाषित करता हुआ आगे बढ़ती है। इसलिए सृजन कर्म में निरंतर युगीन चेतना की बदलती हुई परिस्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। अतः उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि ज्ञानेंद्रपति की कविताएं वर्तमान युग से हमें सजग कराती है और समाज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों से अवगत कराती है। इनकी कविता मानवीय विचारधारा का संशोधन करके एक आदर्श समावेशी समाज निर्माण की और प्रोत्साहित करती है।

संदर्भ सूची :-

1. प्रेमचंद मुंशी, साहित्य का उद्देश्य, पृ.24
2. संपा. मंगलम कुमार, ज्ञानेंद्रपति प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण,2022, पृ.128-129
3. वही, पृ.118-120
4. वही, पृ. 54
5. वही, पृ.56
6. वही, पृ. 116
7. ज्ञानेंद्रपति, गंगतट, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999, पृ.19-20
8. संपा. मंगलम कुमार, ज्ञानेंद्रपति प्रतिनिधि कविताएं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2022, पृ.11
9. वही, पृ. 42
10. ज्ञानेंद्रपति, संशयात्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ.43
11. संपा. मंगलम कुमार, ज्ञानेंद्रपति प्रतिनिधि कविताएं, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2022, पृ. 15
12. वही, पृ.127
13. वही, पृ. 120-121
14. वही, पृ. 98

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

अनुज लुगुन की कविता में पितृसत्ता का प्रतिरोध

अपर्णा ए

शोधार्थी, हिंदी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन, केरल

कविता मनुष्य की आत्मा का सर्वाधिक प्रतिरोधी टीका है, सर्वाधिक सशक्त टीका है। मृत्यु के विरुद्ध कविता एक टीका है।

–अरुण कमल

समाज में व्याप्त असंगतियों.विसंगतियों से असहमत होकर नया बोध स्थापित करने की कोशिश प्रतिरोध है। अत: प्रतिरोध समाज को प्रचलित रास्ते से भिन्न होकर एक नया रास्ता प्रदान करता है। इस प्रकार वह समाज के विकास का कारक बन जाता है। इसलिए प्रतिरोध को समाज के विकास के लिए प्रयत्नशील सकारात्मक परिवर्तन भी कहा जा सकता है। कविता प्रतिरोधात्मक संस्कृति की उपज है। अत: समाज के नाना प्रकार की मुसीबतों पर वह अपना प्रतिवाद जाहिर करती है। इस प्रकार वाद से विवाद (प्रतिवाद) और फिर संवाद (नूतन आशय या नवीनतम बोध) से होकर ही काव्य की यात्रा अपनी मंज़िल तक पहुँचती है। समकालीन दौर में भी इस प्रतिरोधवादी काव्यानुक्रम अनवरत ज़ारी है। क्योंकि कविता यह पहचानती है कि 'बिना संघर्ष और प्रतिरोध के दुनिया सुंदर नहीं हो सकती।'[1]अनुज लुगुन इस प्रतिरोधात्मक काव्य परंपरा के एक सक्रिय अनुयायी हैं। 'अघोषित उलगुलान'(काव्य संग्रह, 2023), 'बाघ और सुगना मुंडा की बेटी'(लंबी कविता,2014) और 'पत्थलगड़ी' (काव्य संग्रह, 2021) कवि के इस काव्यात्मक संघर्ष एवं प्रतिरोधपरकता के उत्तम दृष्टांत हैं। इन काव्य सृष्टियों से होकर गुज़रने पर यह भी सुस्पष्ट होता है कि उनके संघर्ष तथा प्रतिरोध वर्चस्व और वर्चस्ववादी सभ्यता के खिलाफ़ हैं। ज्ञात की बात है कि श्रेणीबद्ध सामाजिक संरचना वर्चस्व को जनम देती है। यानि स्तरीयता पर आधारित यह सामाजिक अव्यवस्था मनुष्य को लिंग, जाति, धर्म, नस्ल, वर्ण (रंग), संपत्ति के आधार पर उच्च–नीच, श्रेष्ठ–अधम बनाती है। पितृसत्ता ऐसी एक सामाजिक विकृति है, जो पुरुषत्व को उच्च व श्रेष्ठ स्थापित करने के लिए स्त्रीत्व/स्त्रैणता को नीच व अधम ठहराती है और साथ ही जीवन के विविधात्मक संदर्भों में स्त्री के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दमन–शोषण भी करती है। अनुज लुगुन के द्वारा सृजित बाघ और सुगना मुंडा की बेटी शीर्षक कविता पितृसत्तात्मक व्यवस्था, प्रभु व्यवस्था, ब्राह्मणवादी व्यवस्था, पूँजीवादी व्यवस्था इत्यादि अमानवीय षड्यंत्र के खिलाफ़ अपना प्रतिरोध दर्ज करती है। 'कविता में मुण्डा समाज, आदिवासी समाज केंद्र में है, पर यह कविता आज के उपेक्षित, दलित, पीड़ित समाज की ओर भी अग्रसर होती है, जो बाघ के हिंस्र हमले का शिकार है।'[2] प्रस्तुत कविता का मुख्य पात्र बिरसी है, जो सुगना मुंडा की बेटी और बिरसा मुंडा की बहन है। कविता बिरसी के द्वारा बाघ यानि सभी प्रकार की शोषणकारी, सत्तात्मक, वर्चस्ववादी व्यवस्थाओं का प्रतिरोध कर मुक्ति की आकांक्षा को ध्वनित करती है। इस शोधालेख के ज़रिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ़ कविता की प्रतिरोधी चेतना को देखने–परखने–समझने का प्रयास किया जाएगा।

आदिवासी जीवन पर स्पष्ट निगाह रखने से यह अवगत होता है कि आदिवासी समाज और उनकी संस्कृति सहजीविता पर आधृत हैं/थे। वास्तव में इसी सहजीविता आदिवासी और उनकी आदिवासियत की पहचान है। यानि 'सहजीविता के बिना आदिवासी की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जो सहजीवी नहीं है, वह आदिवासी नहीं है।'[3] सहजीविता का तात्पर्य स्वतंत्रता, समता एवं बंधुत्व पर आधारित जैव केंद्रित जीवनावबोध से है। इसलिए यह सहजीवी दर्शन प्रेम, सम्मान, सामूहिकता व पारस्पर्यता पर आधारित भेद–भाव रहित मज़बूत रिश्तों को गढ़ने में समर्थ व सक्षम है। इस प्रकार बराबरी और बंधुता की अवधारणा पर टिके रहने के फलस्वरूप 'आदिवासी समाज में वर्चस्व का कोई स्थान नहीं है। वहाँ वर्चस्व का निषेध है, प्रतिरोध है।'[4] इस प्रतिरोधपरकता की काव्यात्मक अभिव्यक्ति देती हुई कविता कहती है कि 'जंगल केवल जंगल नहीं है/नहीं है वह केवल दृश्य/वह तो एक दर्शन है/पक्षधर है वह सहजीविता का/दुनिया भर की सत्ताओं का प्रतिपक्ष है वह।'[5]यानि आदिवासी समाज और उनकी मूलभूत संस्कृति में पितृसत्ता, पूँजी की सत्ता, धर्म की सत्ता इत्यादि किसी भी प्रकार की सत्तात्मक ताकतों का अंश तक स्वीकार्य नहीं है। इस बात को ऐसा भी कहा जा सकता है कि यह समाज समसत्ता पर केंद्रित है। कविता बिरसी के द्वारा समसत्ता पर अधिष्ठित आदिवासी जीवन परिदृश्य को उजागर करती हुई कहती है कि 'हम सुगना मुंडा की बेटियाँ हैं, उनके बेटों के सामने बेटियाँ नहीं, उनके बेटों की संगी बेटियाँ।'[6] अत:कविता के अनुसार आदिवासी स्त्री घूँघट के नीचे सहम कर जीने वाली नहीं हैं बल्कि फरसे और धनुष के साथ बलिदानी हैं।'[7] इसके साथ ही कविता इस बात की खुलासा भी करती है कि आदिवासी स्त्री 'अपने पिता के घर में उसकी पैतृकता की समान भागीदारी हैं।'[8] इस प्रकार कविता अपने काव्यात्मक सबूतों के द्वारा यह अनावृत करती है कि असमानता रूपी हिंसात्मकता आदिवासी समाज में न के बराबर है। दूसरे लफ़्ज़ों में कहा जाए तो यह समाज सच्चे अर्थों में गणतांत्रिक मूल्यों पर निर्भर है।

आदिवासी समाज से भिन्न गैर आदिवासी समाज श्रेणीबद्ध है और कई प्रकार की सत्तात्मकता एवं वर्चस्ववादिता से आबद्ध है। इसलिए वहाँ उच्च–नीचत्व की सामाजिक स्थिति भी कायम है। किंतु अफ़सोस की बात तो यह है कि वर्तमान दौर में आदिवासी समाज–संस्कृति के ऊपर इस मुख्य वर्चस्ववादी समाज और उनकी सभ्यता का आतंक है, जिससे आदिवासियों के बीच सत्ताओं का प्रचार–प्रसार हो रहे हैं। इस प्रकार आदिवासी समाज पर गैर आदिवासी समाज के इस हस्तक्षेप से आजकल आदिवासियों की

सामाजिक व्यवस्था एकदम चौपट हो रही है। कविता में इसका मार्मिक स्पष्टीकरण देते हुए रीडा हड़म (आदिवासी पुरखा) बिरसी से कहता है कि 'जब तक हमारी दुनिया/ एक द्वीप की तरह थी/ तब तक समता थी/हमारे गीत-अखाड़े सबके लिए बराबर थे/ तुम्हारे लिए गीतिः ओड़ाः था/ धुमकुड़िया था, पेल्लो एड्पा था, घोटुल था/ लेकिन जब से हमारी दुनिया में/ घुसने लगी हैं सागर की बेखौफ़ लहरें/ उसके सत्तात्मक विषाणु हमारे बीच फैलने लगे हैं/ कहीं पितृसत्ता, तो कहीं सामंती सत्ता/ कहीं धर्म की सत्ता तो कहीं पूँजी की सत्ता है।'[9]वास्तव में विघटनकारी बाहरी सभ्यता के इस हमले से आज आदिवासियों की सहजीविता की संस्कृति ही नष्ट-भ्रष्ट हो रही है जिससे उनके जीवन और रिश्तों का व्याकरण भी बदल रहा है। इस सांस्कृतिक संकट से वाकिफ़ होकर कविता में सुगना मुण्डा का कहना है कि 'हमें अपने पूर्वजों की सहजीविता से जबरन दूर रखकर/हमारे अंदर वर्चस्वकारी संस्कार आरोपित किये जा रहे हैं/कि हम एक ही दिखें, एक ही रंग में रँगे/हम भी सभ्यता के भ्रम में करने लगे हैं/बेटियों की पहचान बेटों से अलग।'[10]इस प्रकार यह कविता आदिवासियों के खिलाफ हो रही इस पितृसत्तात्मक साजिश का सविस्तार बखान भी खुलकर प्रस्तुत करती है। रीडा हडम का बिरसी से संवाद इसका ठोस सबूत है।[11]

वास्तव में मानवीयता पर अधिष्ठित आदिवासी संस्कृति के ऊपर सत्तात्मक विद्रूपताओं से भरी बाहरी सभ्यता की यह दखलअंदाज़ी अमानवीयता या हिंसा का स्वरूप है। इसलिए कवि आदिवासी जीवन और उनकी संस्कृति पर अशांति के बीज बोने वाले इन हिंसात्मक, सत्तापरक, वर्चस्ववादी लोगों या ताकतों को सूचित करने के लिए 'बाघ' शब्द का प्रयोग करते हैं। इसका काव्यात्मक स्पष्टीकरण देते हुए कविता में बिरसा मुण्डा का कहना है कि 'यह बाघ का ही हमला है कि/हम बिखर रहे हैं/हम भूल रहे हैं अपनी ही सहजीविता/लैंगिकता के साथ/पितृसत्ता का स्वीकार/हमारे खून में ज़हर भरेगा/और आंतरिक संरचना में कमज़ोर होकर/मुक्ति की परिकल्पना संभव नहीं होगी।'[12]इस प्रकार यह व्यक्त होता है कि कविता में चित्रित बाघ सामान्य बाघ नहीं है, बल्कि वह अप्राकृत बाघ है जो प्राकृत बाघ की तुलना में कहीं ज्यादा चालाक व खतरनाक है। कविता के संपूर्ण अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि कविता में प्रयुक्त 'उलट्बग्घा', 'कुनुईल', 'चानर-बानर'इत्यादि शब्द भी इस बाघ शब्द का ही पर्यायवाची हैं। इसके साथ ही यहाँ पर यह विदित होता है कि समसत्ता पर आधारित आदिवासी समाज में पितृसत्ता की स्थापना ही इस बाघ का वास्तविक मक़सद है। अतः कविता इसी बीच एक ऐतिहासिक मोड़ के ज़रिए अतीत में चली जाती है और शोषण की इस क्रिया-प्रक्रिया के पीठ पीछे की असलियत को आलोकित करती है। काव्य की पंक्तियाँ हैं, 'उस दिन जब/सुगना मुंडा की बेटी ने/उनकी वासनामयी/दैहिक माँग को खारिज कर दिया/तो वे 'चानर-बानर'् बन कर/उसके समाज के अंदर ही घुस आये/अब वे दैहिक सुख के लिए/सुगना मुंडा की बेटी के/वंशजों की आत्मा में भी प्रवेश कर/बाघ का रूप धर रहे हैं।'[13] इस प्रकार कविता यह भी साबित करती है कि यह शोषणकारी बाघ आजकल केवल बाहर ही नहीं बल्कि आदिवासी समाज के भीतर भी घुस आए हैं। अतः काव्यात्मक शब्दावली भीतर के इस सत्तात्मक बाघ के रूप को भी अप्रच्छन्न करती है। जैसे, 'बहुत मुश्किल होगा पहचानना/कि बाघ कौन है/जिसे तुम अपना भाई मानती हो/जो तुम्हारा सहोदर है/जो तुम्हारे बिरादरी भी हैं/उसे भी गौर से परखो,/तुम देख सकती हो/देखो...देखो!/वहाँ जो केंद्र में बैठा है/वह तुम्हारा ही तो भाई है/जो तुम्हारे ही/अधिकार और पहचान की बात करता है/देखो, उसका रूप बदल रहा है/उसकी अँगुलियाँ नाखूनों में/हथेलियाँ खूनी पंजों में बदल रही हैं/उसके दांत बाहर की ओर निकल आये हैं नुकीले/आँखें अंगारे की तरह हैं/वह आदमी है लेकिन बाघ हो रहा है/वह चानर-बानर है/वह उलट्बग्घा है/वह कुनुईल है/देखो बुनुम में वह अपनी देह रगड़ रहा है।'[14]कविता एक अन्य मुकाम पर पहुँचकर यह भी पहचानती है कि सेना, पुलिस, व्यवस्था इत्यादि सब इस बाघ के विभिन्न रूप हैं जो स्त्री शोषण में कार्यरत हैं। काव्य पंक्तियाँ हैं, 'यहाँ जो आदमखोर पहूँचा है/वह जानवर है/जानवर नर है, पुरुष है, पुल्लिंग है/पितृसत्ता का प्रवक्ता/सेना, पुलिस, व्यवस्था का स्वरूप,/कितनी ही युवतियाँ थीं/जो शिकार बनायी गयीं/उनकी देह की गंध को/अभी महुए में घुलना बाक़ी था/महुआ के खिलने से पहले ही/उसे पाला मार गया/यहाँ बच्चे, बूढ़े, औरत/और सभी सहजीवि तो मारे गये हैं/पितृसत्ता के उस प्रवक्ता के द्वारा,/.....इतना सैन्य संगठित है वह कि स्त्री के गुप्तांगों तक में/ठोंकता है अपनी सत्ता/इतना चालाक है कि/वह स्त्रीलिंगों का करता है/पुल्लिंग रूपांतरण/पितृसत्ता का प्रचारक,/सभी सत्ताओं का उद्घोष।'[15]इस प्रकार यह समूची कविता 'समसत्ता का पितृसत्तात्मक भाष्य'[16] रचे जाने के खिलाफ बेहिचक खड़ी हो जाती है।

कविता के समग्र वाचन से यह जाहिर होता है कि उसकी वास्तविक चिंता आदिवासी अस्तित्व को लेकर है। क्योंकि सांस्कृतिक ध्वंसता अस्तित्वगत विनाश में ही परिणत होती है। इसलिए कविता आदिवासियों के बीच उभर रही प्रतिलोमी संस्कृति के खिलाफ़ उनकी सहजीविता के संस्कार को प्रतिष्ठित करने पर तुली हुई है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो वह वर्चस्ववादी व्यवस्था के स्थान पर सहजीवि व्यवस्था की हिमायती है। इस बात को सत्यापित करती हुई कविता कहती है कि 'जब तक वह सहजीवि ज्ञान है, वह जीवन है,/तभी तक आगामी लड़ाई की सार्थकता है/उसके बिना फिर से सब कुछ/कुरूप होगा, अराजक होगा।'[17] कविता इसी बीच सहजीविता पर ज़ोर देकर यह साफ़-साफ़ बताती है कि बाघ पर अंकुश लगाने के लिए सहजीविता का आगामी पीढ़ी में बीजारोपण करना ज़रूरी है।[18] इस प्रकार कविता का सूक्ष्म-समग्र अध्ययन करने से यह प्रत्यक्ष होता है कि कविता में प्रस्तुत सहजीविता की संस्कृति वर्चस्ववादी सभ्यता या पितृसत्ता की प्रतिरोधी है। अतः यह कहा जा सकता है कि कविता वर्चस्व की प्रतिरोधवादी आदिवासी संस्कृति के इतिहास और वर्तमान को वाणी दे रही है। सिर्फ इतना ही नहीं परिसमाप्ति तक पहूँचते ही कविता यह काव्यात्मक उद्घोषणा भी करती है कि 'यह देश बहुजन का है/यह देश बहुजन का होगा/दलित-पिछड़े, आदिवासी, स्त्री/सब शोषित जन, सब सर्वहारा/अस्तित्व और अस्मिता के साथ/आँख तरेरेंगे आदमखोर को।'[19]

संदर्भ सूची :-

1. रविभूषण, भूमिका, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ.10
2. रविभूषण, भूमिका, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ.9.10
3. रविभूषण, भूमिका, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ.10
4. रविभूषण, भूमिका, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ.10
5. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी

दिल्ली, 2019, पृ. 44
6. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 50
7. 'सुगना मुंडा की बेटियाँ घूँघट के नीचे/सहम कर नहीं जीती हैं/वे तो फरसे और धनुष के साथ बलिदानी हैं।'(अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 40)
8. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 41
9. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 52
10. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 43
11. 'तुमने देखा है/अपने ही भाईयों को/जो हाट में आते हैं दिकु से बतियाते हैं/वह दिकु उनसे कहता है कि/'कैसे भाई हो जो/तुम अपने बहनों को/वश में कर नहीं सकते/कैसे पति हो/जो पत्नी को सरेआम हँसने पर मना नहीं करते/सब के सब मर्द-जनाना/एक साथ बतियाते-गपियाते हैं/नीचता है यह, असभ्यता है यह'/और तुम्हारे ही भाई/अब तुम्हें देखने लगे हैं बेटियों की तरह/पितृसत्ता के विषाणु फैल रहे हैं/हमारे अंदर यहाँ से वहाँ तक/संस्थागत और नीतिगत रूपों में।'(अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 51)
12. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ.43
13. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 34
14. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 62
15. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 99.100
16. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 42
17. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ. 63
18. 'सहजीविता की समझ ही ज्ञान है/संवेदनाओं, अनुभूतियों की पहचान ही ज्ञान है/ज्ञान प्रतिस्पर्धा नहीं प्रेम सिखाता है/...अब यह तुम सबका दायित्व है कि/इसका बीजारोपण आगामी पीढ़ी में करो,/ज्यों-ज्यों इसके बीज/अंकुरित होंगे, पुष्पित होंगे, फलित होंगे/त्यों-त्यों बाघ पर अंकुश लगेगा।' (अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019,पृ.76)
19. अनुज लुगुन, बाघ और सुगना मुंडा की बेटी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019, पृ.105

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

हिंदी दलित साहित्य की चयनित कहानियों में आर्थिक वैषम्य का स्वरूप

डॉ. तपस्या चौहान

असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा, उप्र.

सारांश :–वर्ण व्यवस्थानुसार निम्न स्थान पर अधिकार व सम्मान से वंचित संघर्षशील दलित वर्ग स्वअस्मिता तथा स्वाभिमान को विशिष्ट समाज में चिह्नित करने हेतु निरन्तर प्रयासरत् है। उसी दलित की सामाजिक सहभागिता की तृष्णा का उद्वेलित रूप दलित साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित हुआ है। हिंदी दलित साहित्य ने वर्तमान में दलित वर्ग के विभिन्न पक्षों को अधिपति समाज के निकष पर प्रस्तुत कर दलितों की अंतहीन वेदना को अनावरित किया है। इस वेदना का तथ्य व तत्वों के आधार पर विश्लेषण अत्यंत वीभत्स सत्य को व्याख्यायित कर पीड़ित वर्ग की विभिन्न दशाओं का वर्णन प्रस्तुत करता है।

बीज/मुख्य शब्द :– दलित, अस्मिता, आर्थिक वैषम्य, भ्रष्टाचार, अपराधवृत्ति, यौन शोषण।

प्रस्तावना :– प्रकृति प्रदत्त बुद्धिजीवी द्वारा विभिन्न व्यवस्थाओं का निर्माण किया गया। वर्ण व्यवस्था भी इसी व्यवस्था प्रणाली का अत्यंत शक्तिशाली सामाजिक प्रबंध है जो समाज के व्यवहार के क्रियान्वय को नियंत्रित करता है। समाज का यह प्रबन्ध प्रत्येक व्यक्ति को अनुशासित तथा व्यवहार को नियंत्रण की परिधि में रखने हेतु किया गया। ऋग्वेद में वर्ण व्यवस्था को इस प्रकार से स्पष्ट किया है–

''ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरुतदस्य यदेश्यः पदभ्याँ शूद्रो अजायतः।।''[1]

अर्थात् ब्राह्मण की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख, क्षत्रिय की भुजाओं, वैश्य जंघाओं तथा शूद्र की पैरों से हुई है। पैरों से उत्पत्ति होने के कारण शूद्र को ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य वर्ण की सेवा का कार्य दिया गया जबकि ब्राह्मण का कार्य अध्ययन–अध्यापन, पूजा–पाठ, हवन–यज्ञ करना था। क्षत्रिय का कार्य प्रजा की रक्षा व युद्ध करना तथा वैश्य को व्यापार सम्बन्धी कार्य की परिधि में रखा गया। उत्तर वैदिककाल से पूर्व यह व्यवस्था कर्म आधारित रही अर्थात् व्यक्ति स्वेच्छा से कार्य का चयन करता किन्तु समय परिवर्तन के साथ ही इस व्यवस्था ने एक विकृत रूप ही धारण कर लिया। विकृत रूप से तात्पर्य है कि अब व्यक्ति अपने कार्य को स्वेच्छा से विकल्प के रूप में चयन न करके जन्म के आधार पर करने लगा। यहीं से जाति व्यवस्था को आकार मिलना आरम्भ हो गया। शूद्रों को अन्य तीनों वर्णों की मात्र सेवा का कार्य नहीं दिया गया अपितु वे सभी घृणित कार्य कराये जाने लगे जो सामान्य समाज से उन्हें अलग बस्तियों में रहने पर बाध्य कर दें। सवर्ण समाज को शूद्रों को अलग बस्तियों में रहने तथा अधिकारों से वंचित रखने का बल हिंदुओं के धार्मिक ग्रन्थों द्वारा प्राप्त होता। मनु स्मृति को सामाजिक व्यवस्था का मार्गदर्शक मानकर शूद्रों को घृणित कार्य करने पर बाध्य किया गया क्योंकि मनुस्मृति में वर्णित है कि–

''एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुकर्म समादिशत्
एतेषामेव वर्णानाम शुश्रुषामनसूयया।।''[2]

अर्थात् ब्रह्मा ने शूद्रों को मात्र एक ही कर्म करने का आदेश दिया है वह है उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा करना। अब विशिष्ट समाज द्वारा शूद्रों के प्रति हृदयहीन कट्टर नियमों को समाज में विधानों के रूप में स्थापित कर दिया गया। चाण्डाल, अछूत, अवर्ण, पंचम, अस्पृश्य जैसे नामों को शूद्रों के परिचय के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। धार्मिक कट्टरता ने शूद्रों के जीवन को पशु से भी अधिक दयनीय बना दिया। ''उन्हें मंदिरों में प्रवेश नहीं दिया जाता था। सवर्णों के कुओं और तालाबों से पानी भी नहीं मिलता था। अछूतों पर दृष्टिपात होने मात्र से लोग अपवित्र हो जाते थे और यदि कोई अछूत किसी ब्राह्मण के सामने आ जाये तो उसे कठोर सजा भी मिलती थी।''[3] जिस कारण शूद्र/दलित इसे नियम मानकर एक घुटन भरा दयनीय जीवन पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करने लगे। भौतिक सुख–सुविधाओं व अधिकारों से वंचित होने के कारण अब दलित आर्थिक रूप से अत्यंत कमजोर हो गया। स्थिति यह हो गयी कि अब न तो उसके पास भोजन था न ही तन ढ़कने के लिए वस्त्र। यदि कुछ था तो वह था अधिकार व अस्मिता विहीन अत्यंत पीड़ादायक घृणित जीवन। दलितों के दयनीय जीवन को देखकर अनेक साधु संतों व समाज सुधारकों ने अथक प्रयास किये। यह प्रयास साहित्य के माध्यम से भी हुए। अनेक भाषाओं में पद्य व गद्य रचनाएं होने लगीं। हिंदी साहित्य में दलितों की दयनीय स्थिति को शब्दों में गुंफित कर साहित्य लिखा गया जो दलितों के प्रति सहानुभूति को दर्शाता है। समय के परिवर्तन के साथ दलितों ने भी लेखनी चलाई। साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से दलित रचनाकारों ने स्व–अनुभवों का यथार्थ चित्र अंकित किया जो दलित विमर्श ही है।

मुख्य पत्र :– विशिष्ट वर्ग के शोषण की गाथा का जीवंत स्वरूप शब्दों के रूप में हिंदी दलित कहानियों का प्रमुख विषय रहा है। वर्ग विशेष द्वारा शोषण का स्तर शोषित वर्ग के जीवन का आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक पक्ष रहा है। एकपक्षिय अधिकारों की सुसपन्नता ने शोषित वर्ग अर्थात् दलितों को सदैव के लिए निचले पायदान पर खड़ा कर दिया है। अधिपति वर्ग द्वारा हाशियाकृत किये गये इस दलित समाज का दलन कर उसे सामाजिक व्यवस्था के नियमन हेतु प्रताड़ित किया जाता रहा। अतः वे आर्थिक रूप से पिछड़ते चले गये। अनेक विचारकों तथा समाज–सुधारकों द्वारा किये गये अथक प्रयासों से दलित समाज में अस्मिता व स्वाभिमान की मृत कोशिकाओं में ऊर्जा का नवीन संचार होने लगा किंतु इसकी गति अत्यंत धीमी थी। निरन्तर प्रयासों के फलस्वरूप अब यह एक प्रचण्ड अग्नि का रूप

धारण कर चुकी है। द्विवर्गीय समाज में शोषित वर्ग आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न भुखमरी, अशिक्षा व गरीबी से संघर्ष कर समाज में अपनी उपस्थिति को अंकित करने हेतु प्रयासरत् है। सदियों अस्मिता स्वाभिमान व सम्मान से वंचित उच्च समाज द्वारा निम्न पायदान पर रखे गये इन संघर्षी जीवों को घोर आर्थिक विपन्नता से जूझना पड़ रहा है। आर्थिक विपन्नता ने दलित का जीवन घोर नारकीय बना दिया है, क्योंकि धन ही जीवन में सुख-सम्पन्नता का विकास करता है जबकि ''आर्थिक असंतुलन विभिन्न विषमताओं का जनक है। अर्थ की अधिकता जहाँ व्यक्ति को विलासी, तामसी एवं पाशविक बना देती है वही अर्थाभाव उसे कुंठित एवं पंगु बना देता है। उसकी क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है, वह निष्क्रिय और भाग्यवादी बन जाता है। आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाने की वजह से व्यक्ति में अपराधवृत्ति एवं अनैतिकता का जन्म होता है। मानवीय सम्बन्धों में बिखराव और समस्याओं के मूल में 'अर्थ' की विषमता ही रही है।''[4] इसी आर्थिक वैषम्य के यथार्थ को हिंदी दलित कहानियों के माध्यम से स्वानुभूति के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। संवेदनाओं की शून्यता, भ्रष्टाचार, अपराध, यौन शोषण जैसी समस्याएँ आर्थिक वैषम्य के निकष पर इस प्रकार विश्लेषित की जा रही हैं।

संवेदना एवं भावनाओं की शून्यता आर्थिक असंतुलन से उत्पन्न प्रवृत्ति है क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभूति के माध्यम से मानव अंतः स्तल जब भावातिरेक से ओत-प्रोत होकर व्यवहारिक क्रियाकलापों द्वारा जीवंत समाज की स्थापना करता है तो यह संतुलन स्वस्थ समाज को दर्शाता है किन्तु जब इन्हीं भावनाओं व संवेदनाओं में किसी भी प्रकार का असंतुलन आ जाता है तो यह व्यक्ति व समाज दोनों के लिए घातक सिद्ध होता है। आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न कुंठा, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ, अनाचार आदि को समाज में घटित होते निरंतर देखा जा रहा है। समाज में घटित समस्याओं का सफल व यथार्थ चित्रण साहित्य में रचनाओं के माध्यम से शब्दबद्ध किया गया है। दलित रचनाकारों ने भी आर्थिक विपन्नता के परिणामों को रेखांकित किया है क्योंकि आर्थिक विषमता संवेदना तथा भावनाओं को सोख कर विभिन्न अनैतिक प्रवृत्तियों तथा अमानवीय व्यवहार को अस्तित्व प्रदान कर रही है। जिसका बलिष्ठ आकार हिंदी दलित कहानियों में स्पष्ट रूप से देखा गया है। पुष्टि हेतु 'कैलाशचन्द चौहान' की कहानी 'रात की रानी' की मुख्य स्त्री पात्र राधा के नशेबाज पति के व्यवहार को संवेदनहीनता के सशक्त उद्धरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

''आज तेरी उस चुड़ैल मालकिन ने जरूर कुछ पैसे दिये होंगे। दे जल्दी। मुझे बस पचास रूपये चाहिए।''

''कह दिया ना, नहीं दिए।''

''फिर झूठ बोलती है।'' रामप्रसाद ने फिर दो-तीन लात घूंसे राधा के जड़ दिये।''[5]

मार पीट कर राधा से राम प्रसाद का पैसे छीनकर शराब पीने चले जाना और भूख से व्याकुल बच्ची व पत्नी के विषय में तनिक भी न सोचना, मृत संवेदना को ही दर्शाता है। केवल धन अभाव ही व्यक्ति के भीतर की भावनाओं का भक्षण नहीं कर रहा है अपितु आर्थिक सम्पन्नता भी संवेदनाओं का रस निचोड़ रही है। 'रजनी दिसोदिया' की कहानी 'चारपाई' में भी कुछ इसी प्रकार का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। जब चारपाई कहानी का पुरुष पात्र ओमप्रकाश पढ़ लिखकर धन अर्जित करके एक बड़े घर में अपने बूढ़े पिता रामस्वरूप को लेकर आता है तो रामस्वरूप अपने साथ एक पुरानी चारपाई लेकर आता है जिस पर वह पूरे दिन बैठा रहता क्योंकि उस चारपाई से राम स्वरूप की स्वर्गीय पत्नी की यादें जुड़ी हुई थीं। ''जब भी पिताजी की चारपाई उनके कमरे में लगाकर ओम प्रकाश वापिस अपने कमरे में आता तो उसके दिमाग में गर्म पानी के बुलबुले फिर से बनने और फूटने लगते।

''पता नहीं क्या जताना चाहते हैं चारपाई से चिपटे रहकर''[6] उसे यह चारपाई अपने नये घर में कचौटती रहती। वह अपने पिता की आँखों में उस चारपाई के प्रति भावनाओं को देख ही नहीं पा रहा था। वर्तमान में धन का महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि व्यक्ति नैतिक मूल्यों के स्थान पर स्वार्थसिद्धि में लिप्त है। वह लाचार का शोषण करने से भी पीछे नहीं हटता। नारी सशक्तिकरण के इस दौर में स्त्री शिक्षित हो या अशिक्षित, उसका किसी न किसी रूप में शोषण हो ही रहा है। गरीब दलित स्त्री के पास न तो शिक्षा है और न ही अधिकार। जिस कारण विशिष्ट समाज में उसका यौन शोषण होना अब आम सा हो गया है। इस कथन की पुष्टि हेतु 'सूरजपाल चौहान' की कहानी 'बाबू जी फिर कब आऊँ' एक सटीक उदाहरण है। प्रस्तुत है इसी कहानी की कुछ पंक्तियाँ- वह कई बार आयी और संजीव ने उसका मन चाहा उपयोग किया।

''तुम बहुत मजेदार हो।'' संजीव ने एक दिन कहा था उससे। वह मुस्कुरा नहीं पायी थी। उसके मुँह से इतना ही निकला- बाबू जी, मेरा आदमी भी यही कहता था। उसके चेहरे पर यादों के बादलों की छाया थी। उसने संजीव को बताया कि उसका पति लकवा-ग्रस्त है उसके उपचार पर बहुत अधिक खर्चा हो गया है। अब उसके पास इलाज के लिए पैसा नहीं है। एक चार साल और दूसरी सात साल की दो बेटियां हैं उसके पास। पति, अपना और दोनों बेटियों का पेट पालना उसके लिए दूभर हो रहा है।''[7] अशिक्षित दलित स्त्री का यौन शोषण करना सम्पन्न समाज के पुरुषों के लिए एक स्वस्थ मनोरंजन बन चुका है। 'मोहनदास नैमिशराय' की कहानी 'भीड़ में वह' इसी यथार्थ को अत्यंत जीवतंता के साथ चित्रित कर रही है-

''कितनी ही बार मन न होते हुए भी स्कूल के एक-दो मास्टरों ने उसे बुलाया था। जब-जब बुलाया, उसे जाना ही पड़ा था। मन न चाहते हुए भी वह बात सुननी पड़ी थी। जिसे कोई भी औरत सुनना पसंद नहीं करती। पर वह न सुने तो बाबू का क्या होगा?''[8]

अपने परिवार के उत्तरदायित्वों के निर्वहन हेतु दलित स्त्री को मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है किन्तु स्वयं को सभ्य समाज कहने वाले सवर्ण पुरुष उस दलित स्त्री के शरीर का भोग अपनी अतृप्त वासनाओं की तृप्ति हेतु करते हैं जिससे स्त्री को शारीरिक व मानसिक यंत्रणाओं को परिवार के पोषण हेतु सहना पड़ता है।

भ्रष्टाचार शोषण का वह रूप है जिसकी उत्पत्ति विलासितापूर्ण जीवन के आदि हो चुके समाज की अति लिप्सा की प्रवृत्ति से हुई है। भ्रष्टाचार ने सम्पूर्ण भारत के विकास को लकवा-ग्रस्त बना डाला है जिसमें दलित दरिद्रता के गहरे दलदल में धंसता चला जा रहा है। 'अजमेर सिंह काजल' की कहानी 'हत्यारे' भी इसी विकट समस्या को दर्शाती है।

यथा- ''बुद्धशरण ने सौ-सौ के दो नोट पुलिसमैन के हाथ पर रखते हुए कहा- 'साहब'। हमें जाने दो, मेहरबानी होगी।''

पुलिसमैन ने कहा- कम से कम पांच सौ चाहिए।'' 'साहब! इतनी तो हमारी दिहाड़ी भी नहीं पड़ती, मान जाइए, जाने दो हमें।''[9]

अंत में रिश्वतखोरी के कारण मासूम दलितों को बेरहमी से मार दिया जाता है। भ्रष्टाचार ही नहीं अपराधवृत्ति भी आर्थिक वैषम्य से उत्पन्न एक घातक प्रवृत्ति है जो मानवता का भक्षण कर अनैतिक कृत्यों का सूत्रपात करके

समाज को विषाक्त करती जा रही है। यही अनैतिकता की प्रसूति है। पीढ़ी दर पीढ़ी आर्थिक विपन्नता से जूझ रहे दलितों के पास न तो जीविकोपार्जन हेतु नौकरी के लिए ऊँची पहुँच है और न ही रिश्वत है, न ही व्यवसाय के लिए जमीन-जायदाद। यदि उसके पास कुछ है तो वह है बेरोजगारी और सामाजिक दुत्कार। इन्हीं सब से त्रस्त गरीबी, अशिक्षा व भुखमरी के शिकार दलित को रेखांकित करती है 'जयप्रकाश कर्दम' की कहानी पेंशन।

''हाँ अंगूठा मैंने काटा था।''

''अंगूठा कहाँ है?''

''घर में फ्रिज के अंदर रखा है।''

पुलिस ने अविनाश के घर जाकर फ्रिज खोलकर देखा तो फ्रिज में प्लास्टिक की एक छोटी सी डिब्बी के अंदर अंगूठा सुरक्षित रखा था।

''अंगूठा किसलिए काटकर रखा तुमनें?'' अंगूठा मिल जाने पर पुलिस ने अविनाश से पूछा।

''ताकि मैं अंगूठा लगाकर दादी की पेंशन लेता रहूँ।''[10]

यह वाक्य अनाथ अविनाश के हैं जिसकी दादी ने बचपन से उसे पाला और पढ़ाने की बहुत कोशिश की लेकिन स्कूल में शिक्षक की मार और बुरी संगत में फंसकर वह जुआ और शराब का आदि हो गया। स्कूल में हुए दुर्व्यवहार व आर्थिक तंगी के कारण उसका मन पढ़ने-लिखने के स्थान पर अनैतिक कृत्यों की ओर चला गया।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्षतः भ्रष्टाचार, यौन शोषण, अपराध, नैतिक मूल्यों का हनन आदि प्रवृत्तियों के मूल में अर्थ अर्थात् धन ही मुख्य कारण बना है। जीवनयापन की प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति धनाभाव से असंभव है। प्रत्येक व्यक्ति अर्थ प्राप्ति के लिए एक धावक बना है किन्तु दलित के तो अधिकार व सम्मान से वंचित कर पैर ही काट दिए हैं। दलित वर्ग सम्मान व अधिकार से वंचित जमीन पर रेंगने वाले कीड़े की भांति जीवनयापन करने को विवश है। अधिकारों की असंतुलित, सामाजिक व्यवस्था होने पर भी दलित अपनी अस्मिता, स्वाभिमान व अधिकारों की प्राप्ति हेतु संघर्षशील है। हिंदी दलित साहित्य नवीन संभावनाओं व चुनौतियों को इंगित करते हुए सकारात्मकता का बीजारोपरण कर एक स्वस्थ समाज की स्थापना के संदेश के प्रसार का माध्यम बना हुआ है।

संदर्भ सूची:-

1. ऋग्वेद 10, पुरुसूक्त 90, श्लोक 12, दयानंद संस्थान प्रकाशन, दिल्ली
2. दलित आत्म कथाओं में बचपन, राजेन्द्र बड़गूजर, गौतम बुद्ध बुक सेन्टर, दिल्ली, संस्करण-2013, पृ. 15
3. दलित विमर्श, डॉ. नरसिंह दास, खेमदास वणकर, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2007, पृ. 43
4. डॉ. सरिता शुक्ला, धर्मवीर भारती, युग चेतना और अभिव्यक्ति, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-2004, पृ. 40
5. कैलाश चंद चौहान, संजीव का ढ़ाबा, आरोही प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2012, पृ. 48
6. रजनी दिसोदिया, चारपाई, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ. 88
7. सूरजपाल चौहान, नया ब्राह्मण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2009, पृ. 113
8. मोहनदास नैमिशराय, आवाजें, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2011, पृ. 151
9. अजमेर सिंह काजल, गणतंत्र के नायक, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2012, पृ. 67
10. जय प्रकाश कर्दम, खरोंच, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृ. 35-36

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

हिंदी की आदिवासी कविता का आर्थिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. परविन्दर कौर

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब

मनुष्य के जीवन में अर्थ का विशेष महत्व है। प्राचीन काल में मनुष्य की आवश्यकताएं अत्यंत सीमित थी परंतु आधुनिक युग की आवश्यकताएं असीमित होती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में आज की अर्थ की अर्थवता अत्यंत महत्वपूर्ण बन गई है। किसी भी राष्ट्र के विकास, उसके सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन की आधारशिला उस राष्ट्र की अर्थव्यवस्था ही होती है। राष्ट्रीय विकास में अर्थ की महत्ता बताते हुए केशव देव शर्मा लिखते हैं कि 'राष्ट्र का समग्र विकास अर्थ-व्यवस्था पर ही निर्भर करता है, जिस देश की अर्थव्यवस्था संतुलित होगी, वही राष्ट्र विकास के मार्ग पर अग्रसर मिलेगा। अतः संतुलित अर्थव्यवस्था ही राष्ट्रीय जीवन का प्रमुख आधार है।'[1] यदि राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से संपन्न होगा तो उसे किसी अन्य राष्ट्र पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। आदिवासी कविता में भी आर्थिक पक्ष का चित्रण किया गया है के किस प्रकार उन्हें अपने जीवन में आर्थिक शोषण, अर्थाभाव जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। गांव के लोगों का प्रमुख आधार कृषि है। पहाड़ों और वनों में रहने वाले आदिवासी समाज के लोग शिकार करके या जड़ी बूटियां बेचकर अपना जीवनयापन करते हैं। आदिवासी समाज के अर्थ उत्पादन के साधन लकड़ी ढोना, जड़ी-बूटी, फल-फूल एकत्रित करना, शिकार करना एवं खेती करना है। आदिवासी समाज के लोग अपनी परंपरागत एवं अस्थाई कृषि में विश्वास करते हैं। अज्ञानता के कारण ये लोग परंपरा से चली आ रही स्थानांतरित खेती में रुचि रखते हैं। आर्थिक विषमता, गरीबी, बीमारी, बेकारी आदि इन के जीवन की समस्याओं को बढ़ा रही हैं। आदिवासियों का आर्थिक जीवन उनकी भौगोलिक परिस्थितियों से निर्धारित होता है। शराब बनाकर बेचना, जादूगरी एवं नाच-गान उनके आर्थिक उपर्जन के माध्यम होते हैं। आदिवासी कविता में आदिवासियों के आर्थिक जीवन की समस्याओं की अभिव्यक्ति की गई है। आदिवासी समाज के कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से उनके जीवन के आर्थिक पक्षों को उभारने का प्रयत्न किया है।

आर्थिक शोषण- आदिवासी वर्ग का पूंजीपतियों द्वारा शोषण किया जाता है। उन्हें काम के बदले उचित मजदूरी न देना या मजदूरी न ही देना, यह एक साधारण बात है। इसी कारण कड़ी मेहनत के बाद भी उन्हें अभावग्रस्त जीवन जीना पड़ता है। कवि रवि कुमार गोड़ ने अपनी कविता 'भूख की पीड़ा' में आदिवासियों के लिए इसी दर्द का चित्रण किया है -

'वह क्या सोचेंगे कि गरीबी क्या होती है,
जिनके हाथों में लाखों नोटों की गड्डियां हो।
अगर भूख पूछना ही है तो उनसे पूछो,
जो फुटपाथ पर सो जाते हैं, भूखे, नंगे पाँव,
मर जाते हैं भूख की पीड़ा से छटपटाकर।
भूख उनसे पूछो जो आज भी
इस विकासवादी दुनिया में
जी तोड़ मेहनत करके भी
पेट नहीं भर पाए अपने परिवारों का।'[2]

कवि ने पूंजीपति वर्ग के प्रति अपना विरोध दिखाया है कि आदिवासी वर्ग का दुःख, उनकी पीड़ा का एहसास उनके बिना किसी और को कैसे होगा, क्योंकि यह भूख, तड़प, इसका दर्द वही जान सकते हैं, जिन्होंने इसे भोगा है। दिन रात कठिन मेहनत करके भी जब उन्हें उनकी जीविका हेतु साधन नहीं मिल पाते तो उनके मन में विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है। कवि हीरा मीणा ने अपनी कविता 'सब जानते हैं' में आर्थिक शोषण के रूप को वर्णन किया है-

'मेहनत करने वाले रोजी-रोटी को तरसते हैं!!
तलुए चाटने वाले शाही जिंदगी पाते हैं!!
आंहों और कराहों के बवंडर छाने लगे हैं!!
मृगमरीचिका से सपने दिखाए जाते हैं!!
सब जानते हैं!!
सब जानते हैं!!'[3]

आर्थिक शोषण के कारण आदिवासियों को भूख से पीड़ित होते देखा जाता है। वर्तमान समय में बढ़ रहे आदिवासी वर्ग के शोषण, उनके साथ किए जा रहे छल का चित्रण किया गया है। पूँजीपति वर्ग उन्हें विभिन्न प्रकार के लालच देकर उनसे अपना काम निकलवाते हैं। बाद में उन्हें धोखा देकर उनकी मेहनत का पूरा हिसाब भी नहीं देते, जिस कारण गरीब लोग और गरीब होते जाते हैं। आर्थिक शोषण की समस्या आदिवासियों की बहुत बड़ी समस्या है, जिसके लिए आदिवासी कविता के माध्यम से आवाज़ उठाई जा रही है। पूँजीपति वर्ग का विरोध होने लगा है।

दयनीय स्थिति- आदिवासी अपनी जीविका के साधनों के लिए परंपरागत व्यवसाय अपनाते हैं। वनों का उजड़ना आदिवासी समाज और उनकी आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डालता है। गरीबी और आर्थिक तंगी के कारण ये लोग कर्जदार हो जाते हैं। कुछ लोग शिकार करके, मछली पकड़ कर अपने जीवन की जरूरी वस्तुओं को प्राप्त करते हैं। आसपास के जंगल और जमीन, पहाड, पानी आदि से जो कुछ मिलता है इस पर वे लोग निर्भर रहते हैं। कूटनीति, खोखली व्यवस्थाओं और मजदूरी की आर्थिक स्थितियों का चित्रण आदिवासी कविता में किया गया है। महादेव टोप्पो की कविता 'वे और हम' में पूँजीपति वर्ग पर कटाक्ष किया गया है-

'वे कहते हैं'
सहानुभूति दिखाते
राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया में
जंगल के लोग
पहाड़ के लोग
उजड़ रहे हैं
यह नहीं बताते कि
इस प्रक्रिया में
वह आबाद हो रहे हैं।'[4]

आज आदिवासी समाज के लिए सरकार की ओर से अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं परंतु इसका लाभ आदिवासियों को न होकर पूँजीपति वर्ग को अधिक हो रहा है। आदिवासियों की जमीन पर कारखाने लगाकर उन्हें अपने ही घर से बेदखल किया जा रहा है। वह लोग झूठी सहानुभूति दिखाते हैं कि आदिवासियों के पक्ष की वे बात करते हैं जबकि वास्तविकता कुछ और होती है। रवि कुमार गोड़ ने अपनी कविता 'आदिवासी अभिव्यक्ति' के माध्यम से अपना आक्रोश इस प्रकार व्यक्त किया है–

'कुछ ऐसे मक्कार हैं झूठे,
आदिवासियों के नाम पर,
सोचते हैं कि हम कितना लूट लूटें।
लूटोगे आखिर कब तक हमको,
जरा आज हमें बताओ बदलाव तुम।
भारत की संतान अगर हो,
सच कहने से न शरमाओ तुम'[5]

वर्तमान समय में सत्ताधारी लोग आदिवासियों की अज्ञानता का लाभ उठाकर अपना लाभ चाहते हैं। आदिवासी कविता में उनकी पीड़ा और वेदना को व्यक्त किया गया है। आदिवासी कवि जिस समाज में पैदा हुए, बड़े हुए, पढ़ लिखकर आगे बढ़े, इस समाज के हिस्से आई दुरावस्था को देखकर बेचैन हैं। विस्थापन, पलायन, गरीबी, शोषण का दंश भयानक होता है, उसकी वेदना बहुत गंभीर होती है। जिसने गरीबी, लाचारी, बेबसी झेली है, वह चुप कैसे रह सकता है। आदिवासी कवि अपने समाज को संगठित, शिक्षित होने का आह्वान करते हैं। अपने अन्याय, अत्याचारों के विरुद्ध उसे स्वयं लड़ाई लड़नी होगी तभी अपेक्षित बदलाव जहां परिवर्तन संभव हो पाएगा।

भूमि की समस्या– आदिवासी समाज को अपनी ही रहने योग्य जमीन से दूर होना पड़ता है। आदिवासी समाज को विकास के नाम पर जंगलों से खदेड़ा जाता है। आदिवासियों की मुख्य समस्या भूमि से अलग होना है। आदिवासी आज भी सभ्य समाज से दूर जंगलों और पर्वतों में अधिक निवास करते हैं। प्रशासनिक अधिकारी, वन विभाग के ठेकेदार इत्यादि के प्रवेश से उनका शोषण प्रारंभ हुआ। जमीन से बेदखली, विस्थापन, पलायन आदि आदिवासियों के अस्तित्व का संकट ही नहीं है बल्कि संपूर्ण मानवता एवं मानवेत्तर प्राणी जगत के लिए खतरा है। रविकुमार गोड़ ने अपनी कविता 'इतना आसान नहीं होता' में आदिवासियों के विस्थापन की समस्या को उठाया है –

'तुम्हारे जल, जंगल, जमीन पर
अभी कब्जा होना बाकी है
अभी बाकी है चलाना जमीन पर तुम्हारे
भीमकाय बड़े–बड़े बुलडोजर
जो न केवल तुम्हारी जमीन को
रौंदेगा बेखौफहोकर।
बल्कि रौंदेगा तुम्हारे अरमानों को भी।'[6]

आधुनिकता का अर्थ यदि विस्थापन और संस्कृति को उजाड़ना है तो आदिवासी कवियों को यह मंजूर नहीं है। वह अपनी कविताओं में इसका विरोध करते दिखाई देते हैं। सरकार की कुल्हाड़ी से जंगल ही नहीं कटते बल्कि उन जंगलों के माध्यम से जीवनयापन करने वाली आदिवासी जनता का गला भी कटता है।

अर्थभाव की समस्या– गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता, सामान्य वित्तीय व्यवस्था को अपनाना, वनों पर निर्भर रहना इत्यादि के कारण आदिवासी समाज आज ऐसी स्थिति में है, उन्हें रोजगार कार्य नहीं मिल रहे है। आदिवासियों को उनके परंपरागत व्यवस्थाओं से अलग कर लिया गया है। विकास के नाम पर उनसे उनका काम छीन लिया जाता है। आदिवासियों के विकास की सभी योजनाओं का लाभ पूँजीपति वर्ग ही उठता है। इस का विरोध हमें रविकुमार गोड़ की कविता 'आदिवासी अर्ज' में दिखाई पड़ता है जहाँ कवि ने कहा है –

'ना जाने कितने देश के नौजवान
हो रहे हैं सब बेरोज़गार
मिटा रहे हैं आदिवासियों की
भाषा–लिपि, संस्कृति समुदाय।
ताकि, राज करते रहे
ये पीढ़ी दर पीढ़ी।
उठो, जागो, लड़ो
अपने अधिकार, रोजगार, स्वतंत्रता,
मातृ भूमि, सम्मान के लिए।'[7]

पढ़ा लिखा आदिवासी वर्ग नगरों में जाकर नौकरी भी कर रहा है परंतु उच्च वर्ग के लोग समझते हैं कि यह अपने अधिकारों के लिए हमसे लड़ना चाहता है जबकि वास्तविकता यह है कि वहाँ भी उसे शोषण का शिकार ही होना पड़ता है। इसी कारण उसे अपनी नौकरी छोड़नी भी पड़ती है। कवि आदिवासी समाज को अपने अधिकारों, अपने अस्तित्व को बचाने के लिए उठ खड़े होने को प्रेरित करता है।

संदर्भ सूची:–

1. केशव देव शर्मा, आधुनिक हिंदी उपन्यास और वर्ग संघर्ष, राधाकृष्ण पब्लिकेशनस, दिल्ली, 1991, पृ.स. 35
2. रविकुमार गोड़, आदिवासी स्वर, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ.स. 7
3. हीरा मीणा, लोक की पुकार, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.स. 23
4. महादेव टोप्पो, जंगल पहाड़ के पाठ, अनुजा बुक्स, दिल्ली, 2017, पृ.स. 63
5. रविकुमार गोड़, आदिवासी अभिव्यक्ति, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृ.स. 34
6. रविकुमार गोड़, आदिवासी स्वर, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ.स. 57
7. वहीं, पृ.स. 37

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

ग्रामीण महिलाओं में परिवार नियोजन संबंधी मनोवृत्तियों में आए बदलाओं का प्रश्नावली के माध्यम से परीक्षण

मधु

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, बी. आर. डी. बी. डी. पी. जी. कॉलेज, बरहज, देवरिया, उप्र.

शोध सारांश :-यह शोध पत्र विकासशील देशों के संदर्भ में परिवार नियोजन के प्रति ग्रामीण महिलाओं की जागरूकता और प्रवृत्ति की पड़ताल करता है। परिवार नियोजन मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य में सुधार, गरीबी कम करने और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालाँकि, ग्रामीण महिलाओं के बीच जागरूकता का स्तर और परिवार नियोजन विधियों का उपयोग करने की प्रवृत्ति में काफी भिन्नता है। इस शोध का उद्देश्य सांस्कृतिक, आर्थिक और शैक्षिक पहलुओं पर ध्यान देने के साथ ग्रामीण महिलाओं की जागरूकता और परिवार नियोजन के प्रति उनकी प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी प्रदान करना है। वर्तमान समय की आवश्यकता है कि महिला स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए कारगर प्रभावी प्रशासन सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखकर किए जाएं। ताकि लैंगिक भेदभाव को मिटाकर स्वस्थ समाज का निर्माण किया जा सके। सरकार के साथ-साथ आम जनमानस को भी अपनी नैतिक जिम्मेदारी को समझते हुए घर परिवार में बेटा-बेटी दोनों को बराबर का दर्जा प्रदान करना चाहिए। इस हेतु आधुनिक संचार माध्यमों, पत्र-पत्रिकाओं, शैक्षणिक संस्थानों, व पाठ्यक्रमों का सहयोग लेना चाहिए। ग्रामीण महिला पुरुष को संतान निरोध संसाधनों के उपयोग के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए जिससे परिवार नियोजन कार्यक्रम सफल हो सके। आज सरकार के द्वारा विभिन्न संचार के माध्यमों से गर्भनिरोधकों पर आधारित विभिन्न प्रचार के माध्यमों द्वारा उनके मध्य जागरूकता प्रसारित की गई है। किंतु अभी भी ग्रामीण महिलाओं के साथ-साथ ग्रामीण पुरुषों में परिवार नियोजन तथा प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य को लेकर उनकी मनोवृत्तियों में ज्यादा परिवर्तन नहीं आ पाया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बढ़ते प्रयोग के पश्चात ग्रामीण महिलाओं में परिवार नियोजन संबंधी जागरूकता मे बढ़ोत्तरी हुई है। सरकार के प्रचार प्रसार, महिला रोजगार के अवसरों में वृद्धि एवं तकनीकी शिक्षा के बढ़ाने के परिणाम स्वरूप उनकी मनोवृत्तियों मे बदलाव आना प्रारंभ हो गया है। ये बदलाव आने के क्या क्या कारक रहे हैं और कौन कौन सी बाधाएं हैं। प्रस्तुत शोध के माध्यम से सूचना क्रांति के पश्चात ग्रामीण महिलाओं में परिवार नियोजन संबंधी मनोवृत्तियों में आए परिवर्तनों को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया गया है।

कुँजी शब्द :- परिवार नियोजन, सूचना क्रांति, मनोवृत्ति, लैंगिक विभेद, ग्रामीण महिलायें।

प्रस्तावना :- बड़ी आबादी को लेकर आरंभ से ही दुनिया में दो राय रही है। पुरानी सोच के अनुसार लोग मानते थे की जब प्रकृति ही इंसान को एक मुंह और दो हाँथ के साथ धरती पर भेजती है तो वह खाएगा एक मुंह से और कमाएगा दोनों हाथों से। आगे चलकर यह अवधारणा कुंद होने लगी और सीमित परिवार सुखी परिवार को आर्थिक बेहतरी की दृष्टि से उत्तम माना जाने लगा। वर्ष 1950 से 2023 के मध्य वैश्विक जनसंख्या इस अवधि के दौरान विश्व की जनसंख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1950 में, वैश्विक जनसंख्या लगभग 2.5 बिलियन थी और 2023 तक, यह 7.8 बिलियन से अधिक हो गई है। परिवार नियोजन के क्षेत्र में सरकारी नीतियों, विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रभाव विकसित देशों के साथ-साथ विकासशील एवं अविकसित राष्ट्रों पर भी पड़ा। इसके माध्यम से कुछ देशों की सामाजिक संरचना में काफी काफी परिवर्तन देखने को मिला। यद्यपि कुछ दशक से भारत की जनसंख्या में उत्तरोत्त कमी आयी है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता की हम जनसंख्या के अनुकूलतम् स्तर पर है। जनसंख्या वृद्धि को अभी भी जनसंख्या विस्फोट के स्तर पर देखा जा रहा है। चूकि सम्पूर्ण भारत प्रतिवर्ष ब्राजील जैसे देश के बराबर जनसंख्या वृद्धि कर रहा है। देखते ही देखते भारत दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश बन गया। आज भारत की कुल जनसंख्या 137 करोड़ के आसपास है। यह विश्व की कुल आबादी का 17.5 फ़ीसदी है। वर्ष 2010 में लेसन में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2048 में भारत की जनसंख्या सर्वाधिक लगभग 160 करोड़ होने के बाद इसमें गिरावट दर्ज की जाएगी। वर्ष 2100 में आबादी 1.03 करोड़ रह जाएगी। वैसे ये आँकड़े डराने वाले हैं। किन्तु क्या सरकार हाथ पर हाथ रखे बैठे रहे यह भी तो सही नहीं है। यद्यपि भारत दुनिया का सबसे पहला देश है जिसने अपने यहाँ परिवार नियोजन को सबसे पहले (वर्ष 1948) अपनाया, इसके बावजूद भी आज भारत दुनिया का सर्वाधिक आबादी वाला देश बन गया है। समाज की सबसे छोटी संगठित एवं पहिचान की जाने वाली इकाई परिवार है। किसी भी परिवार की धुरी महिला होती है और उसके स्वास्थ्य, शिक्षा, जागरूकता और मनोवृत्ति का सीधा प्रभाव परिवार पर पड़ता है। यही परिवार मिलकर गाँव का निर्माण करते हैं। भारत गांवों का देश है आज भी भारत मे 6 लाख से अधिक गाँव है। महिला के स्वास्थ्य एवं शिक्षा का परिवार के प्रत्येक सदस्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ महिला स्वस्थ संतान को जन्म देकर स्वस्थ और खुशहाल भावी पीढ़ी का निर्माण करती है। समाज में दोयम दर्जा प्राप्त होने के बावजूद भी वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अनेक महत्वपूर्ण कार्यों का उचित तरीके से निष्पादन कर समाज निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देती है। आजादी के इतने दिनों के बाद भी भारतीय समाज में महिला की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है और ग्रामीण भारत में तो यह स्थिति अपेक्षाकृत अधिक खराब है। यद्यपि आजादी के बाद प्रथम पंचवर्षीय योजना के साथ ही स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन पर भारत सरकार द्वारा विविध कार्यक्रम आरंभ किए गए थे। किन्तु आज भी

ग्रामीण दकियानूसी समाज में महिलाओं स्थिति दयनीय बनी हुई है, वह स्वतंत्र रूप से अपने कैरियर एवं परिवार नियोजन संबंधी स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पा रही हैं।

2011 में प्रति हजार पुरुषों के मुकाबले 940 महिलाओं की संख्या थी, जबकि 2001 में 933 ही थी। सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वरयन मंत्रालय भारत सरकार द्वारा 'भारत में महिला और पुरुष 2022' शीर्षक से पुस्तिका का 24वां अंक जारी किया। रिपोर्ट में कहा गया है कि जन्म के समय लिंगानुपात 2017-19 में 904 से तीन अंक बढ़कर 2018-20 में 907 हो गया। 2036 तक लिंगानुपात में 952 तक सुधार का अनुमान एक सकारात्मक विकास है। रिपोर्ट में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि लिंग स्वास्थ्य सेवा तक लोगों की पहुंच और अनुभव को प्रभावित करता है। आयु-विशिष्ट प्रजनन दर में सुधार हुआ है, 2016 और 2020 के बीच 20-24 वर्ष और 25-29 वर्ष आयु वर्ग में जीवित जन्मों की संख्या क्रमशः 135.4 और 166.0 से घटकर 113.6 और 139.6 हो गई है। यह सुधार उचित शिक्षा और नौकरी सुरक्षित करने के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता के कारण संभव हो पाया है।

सारणी-1 राज्यवार प्रजनन दर एवं वांछित दर

राज्य	कुल प्रजनन दर	वांछित दर
हिमांचल प्रदेश	1.9	1.5
पंजाब	1.6	1.4
उत्तराखंड	2.1	1.6
राजस्थान	2.4	1.8
असोम	2.2	1.8
बिहार	3.4	2.5
उत्तर प्रदेश	2.7	2.1
कर्नाटक	1.8	1.4
केरल	1.6	1.5
भारत	2.2	1.8

महिला प्रजननता दर में कमी लाने के प्रमुख उपाय-

भारत की जनता विशेष कर युवा श्रमिकों जिनकी संख्या 2030 में चीन से अधिक होगी को न केवल तकनीकि रूप से सफल बनाना होगा बल्कि विभिन्न प्रकार के सरकारी लाभों को जनता तक पहुंच कर या रोक कर उन्हें प्रजनन दर को रोकने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। देश में सबसे पहले 1952 में परिवार नियोजन को लागू किया गया था, लेकिन अपेक्षित परिणाम नहीं मिले। इसके पीछे की बड़ी वजह भारत के लोगों में तकनीकी शिक्षा की कमी थी। जिसके चलते वे अपनी आर्थिक स्थिति बेहतर नहीं कर सके। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की शुरुआत 2015 में हुई थी। यह एक सराहनीय कदम था। वास्तव में यह अप्रत्यक्ष रूप से प्रजनन दर को रोकने में काफी सहायक रहा है। भारत के विभिन्न प्रांतो के आंकड़ों को देखें तो पता चलता है कि दक्षिण और पश्चिम के सभी राज्यों की प्रजनन दर प्रति महिला दो या दो से कम है। इतना ही नहीं इसमें निरंतर गिरावट दर्ज की जा रही है। दूसरी तरफ बिहार उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश राजस्थान जैसे राज्य हैं, जहां पर प्रजनन दर दो से अधिक है। उत्तर प्रदेश में प्रजनन दर को दो के आसपास लाने के लिए कड़े कदम उठाने होंगे। इसके लिए सरकार द्वारा मुहैया कराई जा रही सरकारी सुविधाओं और सेवाओं को आम जनता तक पहुँच ब?ना भी एक कारगर तरीका हो सकता है। जिनके पास दो से ज्यादा बच्चे हैं इससे उनका ही जीवन स्तर सुधरेगा संसाधनों में उनके परिवार की हिस्सेदारी बढ़ेगी बच्चों को अच्छी शिक्षा और सेहत सुनिश्चित हो सकेगी इसके साथ ही और कदम भी उठाने होंगे। यदि सरकार तकनीकी शिक्षा पर जोर देती है और मुक्त स्वास्थ्य सुविधा सभी के लिए उपलब्ध कराती है तो प्रजनन दर जल्दी ही दो बच्चे के करीब लाई जा सकेगी। यद्यपि सरकार ‍हम दो हमारे दो‍ के महत्व को जनता को भलीभाँति समझाया है, लेकिन तकनीकी शिक्षा की कमी और मुक्त स्वास्थ्य सुविधा सभी के लिए उपलब्ध नहीं होने के कारण अभी वांछित स्तर पर जन्म दर को नियंत्रित नहीं किया जा सकाता। सरकार की महत्वाकांक्षी प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना और दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना को कड़ाई से लागू करना होगा। जिससे देश का युवा वर्ग तकनीकी ज्ञान से अछूता नहीं रहे। स्वास्थ्य के क्षेत्र में आयुष्मान भारत की एक महत्वपूर्ण पहल है, किन्तु यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज के लिए इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार किए जाने की आवश्यकता है। इन सुधारों के माध्यम से सरकार परिवार नियोजन के इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकती है, जिसके लिए इसकी शुरुआत की गई थी।

ग्रामीण महिलाओं में परिवार नियोजन संबंधी किए गए पूर्व अध्ययन

संसाधनों में उनके परिवार की हिस्सेदारी बढ़ेगी बच्चों को अच्छी शिक्षा और सेहत सुनिश्चित हो सकेगी इसके साथ ही और कदम भी उठाने होंगे। यदि सरकार तकनीकी शिक्षा पर जोर देती है और मुक्त स्वास्थ्य सुविधा सभी के लिए उपलब्ध कराती है तो प्रजनन दर जल्दी ही दो बच्चे के करीब लाई जा सकेगी। यद्यपि सरकार ‍हम दो हमारे दो‍ के महत्व को जनता को भलीभाँति समझाया है, लेकिन तकनीकी शिक्षा की कमी और मुक्त स्वास्थ्य सुविधा सभी के लिए उपलब्ध नहीं होने के कारण अभी वांछित स्तर पर जन्म दर को नियंत्रित नहीं किया जा सकाता। सरकार की महत्वाकांक्षी प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना और दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना को कड़ाई से लागू करना होगा। जिससे देश का युवा वर्ग तकनीकी ज्ञान से अछूता नहीं रहे। स्वास्थ्य के क्षेत्र में आयुष्मान भारत की एक महत्वपूर्ण पहल है, किन्तु यूनिवर्सल हेल्थ कवरेज के लिए इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार किए जाने की आवश्यकता है। इन सुधारों के माध्यम से सरकार परिवार नियोजन के इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकती है, जिसके लिए इसकी शुरुआत की गई थी।

शोधकर्ता। समाजशास्त्री	वर्ष	योगदान	परिसीमा
Bhatnagar G.S.	1978	जहाँ पर जागरुकता ज्यादा है, मास मीडिया का प्रचार प्रसार अधिक है वहाँ लोग स्वस्थ एवं परिवार नियोजन संबंधी सुविधाओं का लाभ उठा पा रहे है और जहाँ इनकी कमी है वहीं लाभ नही उठा पा रहे है।	केन्द्रित स्वास्थ्य सेवायें
Roy S	2008	हार्मोनलइंजेक्शन और महिलाओं के लिए प्रत्यारोपण गर्भ निरोधकों में नए विकास कार्यक्रम के दिशा निर्देश।	केन्द्रित स्वास्थ्य सेवायें
Jejiebhoy SJ	2012	इंजेक्शन गर्भनिरोधक के सम्बन्ध मे भारत मे महिलाओं और स्वास्थ्य देखभाल प्रदाताओं के दृष्टिकोण और अनुभव।	केन्द्रित एकल पहल (महिला एवं स्वास्थ्य)
Ade AD	2014	शहरी क्षेत्र की मुस्लिम महिलाओं के बीच गर्भनिरोधक प्रथाओं और आपातकालीन गर्भनिरोधक के बारे में जागरूकता।	ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति का अभाव
JanmejayaSamal and Ranjit Kumar Dehury	2015	भारत में परिवार नियोजन अभ्यास, कार्यक्रम	मनोवृत्तियों के ऑकलन का अभाव
Praful Kumar	2016	परिवार नियोजन में सुधार के लिए संभावित सामाजिक उपचार विधियाँ- किशोरों के जागरूकता और दृष्टिकोण पर एक अध्ययन	ग्रामीण महिलाओं की मनोवृत्तियों के ऑकलन का अभाव
Toshiko-kaneda	2019	परिवार नियोजन सम्बन्धी आकड़ो का विश्लेषण	विस्तृत विश्लेषण का अभाव

शोध साहित्य सर्वेक्षण:- पूर्व में किए गए अध्ययनों से एस तथ्य का पता लगाया जाता है की प्रस्तुत शोध के संदर्भ मे कौन से अध्ययन हो चुके है और किसका अध्ययन किया जाना बाकी है या एक समय अंतराल के बाद किसी अध्ययन के निष्कर्ष मे क्या बदलाव की संभावनाएं है। चूंकि शोध का अर्थ केवल नवीन तथ्यों का पता लगाना ही नहीं है बल्कि पुराने तथ्यों की जाँच करना भी है।

अध्ययन का उद्देश्य:- प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है कि 21वीं सदी में सूचना क्रांति के तेजी से प्रसार एवं सेवा क्षेत्र मे महिलाओं की ब?ी हुई भागीदारी के पश्चात ग्रामीण महिलाओं मे परिवार नियोजन को लेकर उनकी मनोवृत्ति में क्या परिवर्तन आए हैं। ग्रामीण महिलाओं मे परिवार नियोजन के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति न होने के बाधक तत्वों का पता लगाना। ग्रामीण महिलाओं मे परिवार नियोजन संबंधी मनोवृत्ति में उनके सामाजिक आर्थिक स्तरवार सार्थक अंतर के प्रमुख कारकों का पता लगाना है।

ग्रामीण महिलाओं की परिवार नियोजन संबंधी मनोवृत्तियों में आए बदलाओं का परीक्षण-परिवार नियोजन सार्वजनिक स्वास्थ्य का एक मूलभूत पहलू है, और इसकी सफलता व्यक्तियों, विशेषकर महिलाओं की अपने प्रजनन स्वास्थ्य के संबंध में जानकारीपूर्ण विकल्प चुनने की जागरूकता और प्रवृत्ति से प्रभावित होती है। विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में, परिवार नियोजन सेवाओं और शिक्षा तक पहुंच सीमित हो सकती है, जो परिवार नियोजन के प्रति ग्रामीण महिलाओं की जागरूकता और झुकाव को प्रभावित कर सकती है। शोधार्थिनी ने बस्ती जनपद के सल्टउआ ब्लॉक के पाँच गाँवों बहेरिया, बेलहसा, नेवादा, भिउरा, पिपरा जसी की 500 महिलाओं का साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से आँकणों को एकत्र कर तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का प्रयोग करते हुए, दण्ड आरेख एवं पाई चार्ट के माध्यम से विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

500 प्रतिउत्तर

चित्र संख्या-1

उपर्युक्त सारणी के विवेचन से स्पष्ट होता है की परिवार नियोजन संबंधी सेवाओं की बहाली और जागरूकता प्रसारण मे मीडिया की भूमिका सर्वाधिक है। सूचना प्रद्योगिकी को सुनियोजित रूप में लागू कर सरकार परिवार नियोजन संबंधी सेवाओं को बेहतर बनाकर नए आयाम स्थापित कर सकती है।

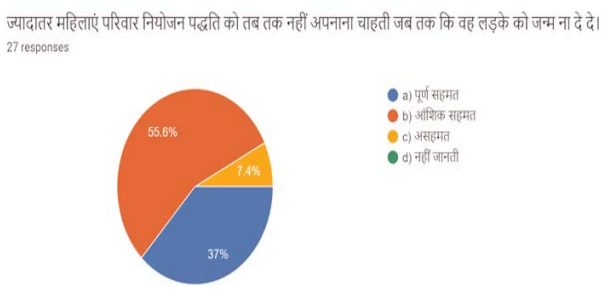

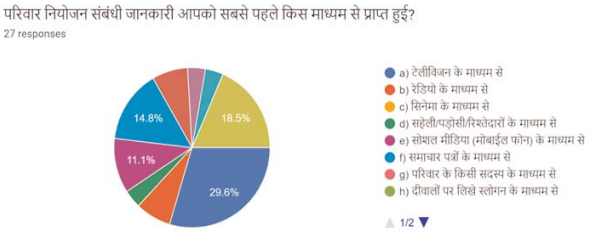

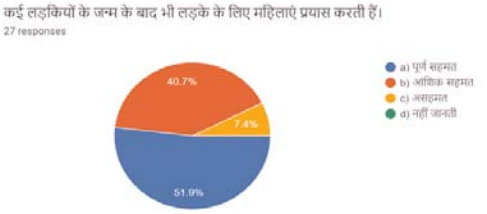

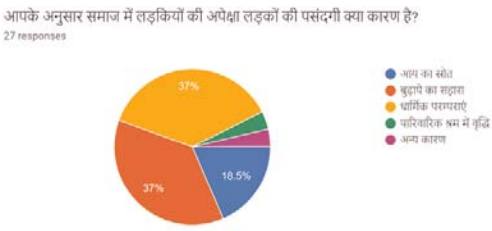

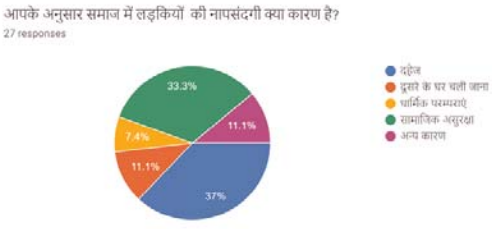

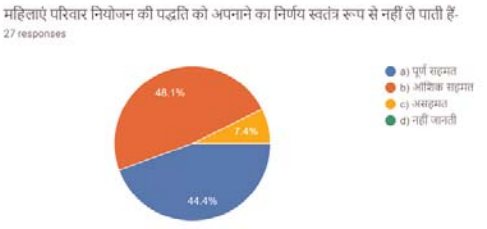

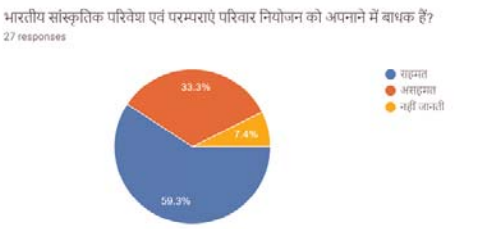

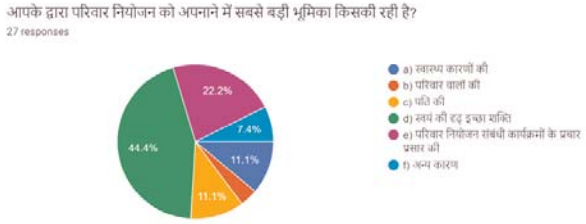

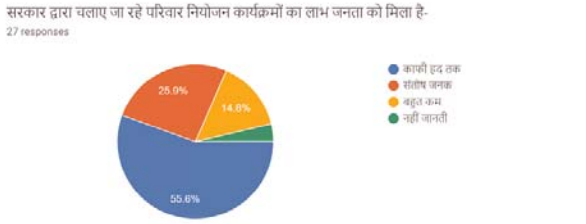

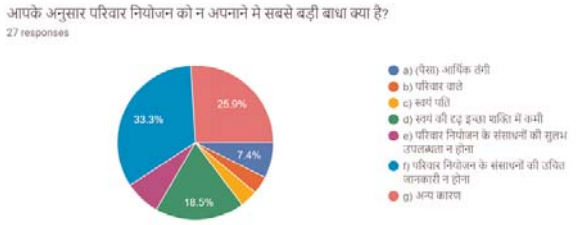

उपर्युक्त आँकणों के विश्लेषण से ग्रामीण महिलाओं में परिवार नियोजन संबंधी निम्नलिखित रुझान/निष्कर्ष प्राप्त हुए–

- सांस्कृतिक और धार्मिक कारक :– चित्र संख्या 8 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताएँ अक्सर परिवार नियोजन की धारणाओं को प्रभावित करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में पारंपरिक मूल्य हो सकते हैं जो परिवार नियोजन को हतोत्साहित करते हैं, जिससे जागरूकता सीमित हो जाती है, मनोवृत्तियों मे ज्यादा परिवर्तन नहीं आ पाया है। केवल 33 प्रतिशत महिलायें ही मनोवृत्ति में परिवर्तन को स्वीकार कर रही हैं।
- शिक्षा का अभाव :– बड़ी संख्या में ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा की पहुंच सीमित है, 2011 की जनगणना के अनुसार बस्ती जनपद के सल्टउआ ब्लॉक के ग्रामीण क्षेत्रों मे महिला साक्षरता दर केवल 30 से 35 प्रतिशत ही है। जिससे उनके लिए परिवार नियोजन के तरीकों और उनके लाभों के बारे में जानकारी प्राप्त करना मुश्किल है। यदि जान भी जाती हैं, तो विश्वसनीयता,आर्थिक तंगी, पुरुषवादी परंपराओं एवं नियोजन संबंधी साधनों की उपलब्धता की कमी होने के कारण अपना नहीं पातीं हैं। इस तथ्य की पुष्टि चित्र संख्या 1 और 3 भी करते हैं।
- स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं तक पहुंच :– चित्र संख्या 11 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि केवल 38.5 प्रतिशत महिलायें ही प्राथमिक स्वस्थ्य केंद्र पर उपलब्ध स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन संबंधी सेवाओं से संतुष्ट हैं। कई ग्रामीण क्षेत्रों में, स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं दुर्लभ या दूर हो सकती हैं, जिसके परिणामस्वरूप परिवार नियोजन सेवाओं तक सीमित पहुंच हो सकती है, जो जागरूकता को प्रभावित कर सकती है।
- आर्थिक बाधाएँ :– चित्र संख्या 11 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 7.4 प्रतिशत महिलायें आर्थिक तंगी के कारण परिवार नियोजन को नहीं अपना पति हैं, उनको स्वस्थ्य केंद्र तक पहुचने में दिक्कत होती है। ग्रामीण महिलाओं और उनके परिवारों को आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है जो एक बड़े परिवार का समर्थन करने की उनकी क्षमता में बाधा उत्पन्न करती हैं। आर्थिक अस्थिरता परिवार नियोजन विधियों के उपयोग को प्रोत्साहित कर सकती है।
- लैंगिक समानता :– चित्र संख्या 4,5,6,7 के सम्यक रूप से विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि ग्रामीण महिलायें स्वतंत्र रूप से परिवार नियोजन संबंधी निर्णय नहीं ले पातीं है। महिलाओं को परिवार नियोजन के बारे में निर्णय लेने के लिए सशक्त बनाने से ऐसे तरीकों का उपयोग करने की उनकी प्रवृत्ति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।
- परिवार एवं जीवनसाथी की भागीदारी :– चित्र संख्या 7 एवं 11 के सम्यक रूप से विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि परिवार नियोजन निर्णयों में परिवार एवं जीवनसाथी की भागीदारी और समर्थन ग्रामीण महिलाओं में इन तरीकों को अपनाने की प्रवृत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सुझाव :– परिवार नियोजन के प्रति ग्रामीण महिलाओं की जागरूकता और प्रवृत्ति सांस्कृतिक, आर्थिक और शैक्षिक कारकों की जटिल परस्पर क्रिया से प्रभावित होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार नियोजन को बढ़ावा देने के लिए, लक्षित हस्तक्षेपों के माध्यम से इन कारकों को संबोधित करना आवश्यक है, जैसे सामुदायिक शिक्षा कार्यक्रम, स्वास्थ्य देखभाल पहुंच में सुधार और महिलाओं को सूचित विकल्प चुनने के लिए सशक्त बनाना। ग्रामीण महिलाओं के बीच परिवार नियोजन के प्रति जागरूकता बढ़ाने और प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने से विकासशील देशों में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य में सुधार, गरीबी में कमी और लैंगिक समानता में महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है।

संदर्भ सूची :–

1. केंद्रीय सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा 16 मार्च, 2023 को भारत में महिला और पुरुष 2022 रिपोर्ट
2. Trakroo, P. L. (2000) Inter-State Variation in Availability and Use of electronic Media for Family Welfare Programme in India. Health and Population. 23 (4), pp190- 197.
3. Sahu, S.K., Health Culture of Oraons of Rourkela and its Hinterland, Ph.D. Thesis submitted to the Centre for Social Medicine and Community Health, J.N.U., New Delhi, 1980, pp. 145 ff.
4. Kakkar D. N. (1981) el al., "Different util isation of Health Services: A study in Rural Rajasthan'" paper presented at Seminar on Dimensions of Rural Development and Change in North Western Region with particular reference to Haryana held at Haryana Agricultural University, Hisser on 17-19 September.

5. Bhatnagar, G.S. (1978), "Community Responses to Health: A Study Conducted in Patiala Village in Punjab", Paper pre sented at the 14th All India Sociological Conference, Jabalpur University, Jabalpur.
6. Singh, A.L. (1997), The myth of the healthy tribal. Health modernity in two rural blocks of Chotanagpur, Bihar. Report on ICMR Task Force Health Modernity Education Project, Post-gradu ate Department of Psychology, Ranchi University, Ranchi.
7. Praful Kumar(2016), Probable Social Remedies to Improve the Family Planning Methods- Astudy on Awareness and Attitude of Adolescents in Rural Jharkhand, Indian Institute of Health Management Research (IIHMR) University, Jaipur, Rajasthan, India
8. Dhillon, H.S. and V.P.Srivastav (1972), "How people perceive illness and what they do when fall sick: A Study of Curative Behaviour in Urban Community", Technical Series, 29, paper 28, Monographed, New Delhi: Central Health Education Bureau.
9. Ade AD, Patil R. Contraceptive practices and awareness of emergency contracep tion among Muslim women of urban slum of Raichur, Karnataka. Int J Reprod Contracept ObstetGynaecol. 2014; 3:70-74.
10. Aalok,(2020) "electronic media me swasthy evam pariwar niyojan ke kshetra me sarkari vigyapano ka samjik prabhav" Ph.D. Thesis submitted to the Depsrtment of Sociology, D.D.U., Gorakhpur University, Gorakhpur, pp. 43 ff.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

अमृता प्रीतम के उपन्यास 'पिंजर' में भारत विभाजन की त्रासदी और स्त्री उत्पीड़न

डॉ. राजेश चौहान

अध्यापिका, हिन्दी विभाग, एल. आर. कॉलेज, साहिबाबाद, गाजियाबाद, उप्र.

भारत विभाजन की त्रासदी के गवाह रहें कई कलमकारों ने अपनी विभिन्न विधाओं के माध्यम से उस विध्वंस का तथा उससे उपजी परिस्थितियों का चित्रण बेबाकी ढंग से प्रस्तुत किया है तथा वह प्रस्तुत करने में ही सक्षम नहीं रहें हैं बल्कि पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में भी सफल सिद्ध हुए हैं। अमृता प्रीतम जी भी उन चर्चित कलमकारों में से एक हैं,जिन्होंने भारत विभाजन की त्रासदी के बेहद क्रुर एवं जुगुप्सा भरे प्रकरण के साथ-साथ स्त्री उत्पीड़न का दारुण व कारुणिक चित्र भी पूरी तन्मयता के साथ इस उपन्यास में उजागर किया है।

15 अगस्त 1947 का ऐतिहासिक दिन एक वो दिन है। जिस दिन हमारा देश अँग्रेजों की गुलामी सहने के उपरांत गुलामी की सभी जंजीरों से मुक्त हुआ था तो दूसरी ओर यही दिन भारतीय इतिहास के पन्नों में काले अक्षरों में भी लिखा गया था। यह दिन हम सभी के लिए एक दु:खद दिन था या यूँ कहे दुर्भाग्यपूर्ण था। सभी ओर आजादी का जश्न था परंतु पंजाब भारत विभाजन की त्रासदी से जूझ रहा था। इस त्रासदी में भारत को हिंदुस्तान और पाकिस्तान दो मुल्कों में बाँट दिया गया-'शहरों में सीमाएँ बना दी गई थीं। इनके एक ओर मुसलमान रह गए थें, दूसरी ओर सारे हिंदू चले गए थें।'[1] विभाजन क्यों हुआ? इसका मुख्य कारण था कि हिंदू बहुसंख्यक हैं और आजादी के बाद बहुसंख्यक लोग अर्थात हिंदू ही मुसलमानों पर राज करेंगे इसलिए मुस्लिम राष्ट्र की मांग की गई-'यहाँ हमारा अपना राज होगा। यहाँ हमारी हुकूमत होगी। यहाँ हम हिंदू का बीज भी नहीं रहने देंगे... ।'[2]उपन्यास में भी 1947 का वह दौर आता है। जब हिंदू मुसलमान में बँटा इंसान खूंखार भेड़िये में तब्दील हो जाता है और अपने खूंखारपन से बाँट देता है भाईचारे को, मानवता को, आपसी प्रेम को, विश्वास को, परिवार को तथा लोगों की भावनाओं को। 'शहरों में गालियाँ लहू से भर गई, बाजार के बाजार मुर्दो से पट गए।'[3] मुसलमानों द्वारा हिंदुओं की जघन्य हत्याएँ की जा रही थीं। मुसलमान लाठी डंडों व बंदूकों से हिंदुओं को मार रहे थें तथा तलवार घोंपकर वहीं ढेर कर रहे थें। यशपाल जी भी इस त्रासदी का वर्णन करते हुए कहते हैं-'प्लेटफार्म पर जगह-जगह खून फैला हुआ था। लाशें पड़ी हुई थीं। हाथों में बर्छे और फर्से लिए लोग निधड़क घूम रहे थें। आदमी कंधे पर ब्रेनगन लटकाए हुए... गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे के सामने पहुँचकर पूछ लेते थें। कोई मुर्गा है।'[4]परिवार के परिवार इस त्रासदी में मौत की नींद सुला दिए गए थें। इस त्रासदी में कत्ल की गई लाशें ट्रेनों से,बसों से हिंदुस्तान भेजी जा रही थीं। तो कुछ वहीं पड़ी लाशों पर गिद्ध उछल कूद कर रहें थें। कुत्ते और कौए उन्हें नोच-नोचकर खा रहें थें। उन सड़ी-गली लाशों से बदबू मार रही थी। जिनको न जलाया गया न दफनाया गया वह लाशें कुत्तों और कौओं का निवाला बनकर रह गयी थीं। भारत विभाजन के उस तांडव में मुसलमानों द्वारा बसों, ट्रेनों और घरों में आग लगाई जा रही थी, जोकि अपना प्रचंड रूप दिखा रही थी। चारों ओर भगदड़ मची थी। लोग अपनी जान बचाने में लगे हुए थें। बचाने की इस प्रक्रिया में कुछ अपने आपको बचाने में सफल हुए तो कुछ के शरीर आग की चपेट में आ गए और न जाने कितने अधजले शरीर टपकती चर्बी में तब्दील हो गए तो कुछ आदमियों के शरीर का मांस उस जलजले में जलकर हड्डियों से अलग-थलग लटक गया था। उनके शरीर हड्डियों के पिंजर शेष रह गए थें।

आग की इन लपटों में केवल मानव शरीर ही झूलसित नहीं हुआ था बल्कि हिंदुओं के घरों को भी इसमें स्वाहा कर दिया गया था। हिंदुओं के घर धूँ-धूँ कर जल रहें थें-'एक दिन उन्होंने न जाने किस तरह हवेली के दरवाजों और खिड़कियों पर तेल डाला और तेल से भीगे हुए दरवाजों और खिड़कियों में आग भी लगा दी ... हवेली के भीतर से आग की लपटों जितनी ऊँची चीखें भी निकल रही थीं।'[5] जहाँ एक ओर हिंदुओं के घरों को आग में स्वाहा कर दिया गया तो वहीं दूसरी ओर उनके घरों पर स्वयं कब्जा कर उनके मालिक बन बैठें। पिंजर उपन्यास में रामचन्द्र का घर इसका स्पष्ट प्रमाण है, जो भारत विभाजन की त्रासदी के पश्चात् अल्लादित्ता के अधिकार में था। इसके साथ-साथ वे उनकी अन्य संपत्ति के भी अधिकारी बन गए थें।

भारत विभाजन की त्रासदी में तथा उससे उपजी परिस्थितियों में सबसे दु:खद बात विशालजन का स्थानांतरण था। स्थानांतरण की उस प्रक्रिया में परिवार के कुछ सदस्य हिंदुस्तान आ गए तो कुछ पाकिस्तान में ही रह गए। पिंजर उपन्यास में रामचन्द्र के पिता इसका स्पष्ट उदाहरण है, जो स्थानांतरण के वक्त पाकिस्तान में ही गुम हो गए थें ठीक उनकी ही भाँति न जाने कितनी संख्या में ऐसे लोग आज तक भी अपनों के पास नहीं पहुँच पाए हैं। वो आज भी विभाजन के उस दंश को झेल रहे हैं और सिर्फ झेल ही नहीं रहे बल्कि न जाने कितने विलग हुए रिश्तें अपनों से मिलने की तड़प में व तड़प से मिली वेदना में जी रहे हैं, जिसे वह अपनी नियति भी मान चुके हैं परन्तु फिर भी वह उस विछोह में आज भी जीते जी मर रहे हैं।

भारत विभाजन की इस त्रासदी में समाज का हर वर्ग प्रताड़ित हुआ। अमीर, गरीब, बूढ़े, बच्चे और जवान किन्तु सही अर्थों में देखा जाए तो स्त्री वर्ग इसका अत्यधिक शिकार हुआ, जिसको केवल मानसिक रूप से ही तिरस्कृत नहीं किया गया बल्कि उसको शारीरिक रूप से भी प्रताड़ित किया गया फलस्वरूप उसका संपूर्ण अस्तित्व ही सामाज में नगण्य कर दिया गया। इस नगण्य नृत्य में उसकी अस्मिता बेशर्मी के साथ कुचल दी गयी थी। जो नए-नए रूपों में उस पर कहर बरसा रही थी। इस कहर के दौरान काम

भावना से पीड़ित पुरुष जंगली पशुओं की भाँति उसके साथ यौन अत्याचार कर रहा था। उसकी नजर में बूढ़ी, बच्ची,जवान यहाँ तक कि गर्भवती स्त्री भी केवल यौन का ही साधन थीं। इस साधन के तहत् मुस्लिम पुरुषों द्वारा न जाने कितनी हिंदू स्त्रियों को विस्थापन के समय अपनी पसंदीदा अनुसार कैम्प से अगवा कर लिया गया व उनको अपने-अपने घरों में कैद कर रखैल बनाया गया और उनसे जबरदस्ती यौन सम्बन्ध स्थापित किए गए। उपन्यास की पात्र लाजो उपन्यास में इस प्रकार की ही पीड़ित स्त्री है, जो विस्थापन के समय अल्लादित्ता द्वारा काफिले से अगवा कर ली जाती है और उसके पश्चात् उसको उसके ही घर में रखैल बनाकर रखता है।

उपन्यास में पूरो को गन्ने के खेत में मिली लड़की भी लाजो की भाँति ही अपनी कहानी बयां करती है,जो मुस्लिम दरिंदों के चुंगल से निकलकर गन्ने के खेत में आकर छिप जाती है,वह भारत विभाजन की प्रक्रिया में हुई शारीरिक वेदना को इस प्रकार व्यक्त करती है-'उस लड़की ने पूरो को बताया कि पास के गाँव में एक कैंप खुला हुआ था। रात को कुछ मुसलमान चोरी-छिपे आकर कैंप की जवान लड़कियों को उठा ले जाते थें। उस लड़की ने पूरो को बताया कि पूरी नौ रातें हो गई थीं। उसे रोज रात को नए-नए लोगों के घरों में जाना पड़ा था। पिछली रात वह किसी तरह अपने ले जाने वाले को भुलावा देकर भाग आई थी।'[6] इस हैवानियत के साथ-साथ कुछ स्त्रियों से निकाह कर उनके धर्म परिवर्तन भी कराए गए। उनके नाम के साथ साथ उनकी पहचान भी मिटा दी गई। धर्म के आधार पर उन्हें नए नाम दिए गए तो कुछ को गलियों,चौराहों तथा बाजारों में सरेआम निर्वस्त्र घुमाया गया यह दृश्य पिंजर में इस प्रकार वर्णित हुआ है-'एक दिन पूरो ने दस-बारह मनचले नवयुवकों को एक नंगी जवान लड़की को अपने आगे करके, दोनों हाथों से ढोल-ढमाके बजाते अपने गाँव से गुजरते देखा।'[7] उपन्यास में मुस्लिम पुरुष ही स्त्री का भक्षक नहीं है बल्कि हिन्दू पुरुष की नजर में भी मुस्लिम स्त्री केवल यौन पिपासा की ही वस्तु थी। पुरुषों के इस खेल में कुछ स्त्रियों ने चितौड़ की पद्मिनी जैसा साहस भी कर दिखाया, जो बलात्कार व धर्म परिवर्तन का शिकार होने के स्थान पर मौत को गले लगा उसका निवाला बन गयी न जाने कितने कुएँ और तालाब स्त्री की लाशों से पट गए,तो कुछ भेड़ियों पुरुष द्वारा इस्तेमाल के उपरान्त बाजारों में सजा कर बेच दी गई। यशपाल जी स्त्री की इस त्रासद अवस्था का वर्णन पुरुष द्वारा इस प्रकार कराते हैं-'पैंतीस, पैंतीस,पैंतीस रुपये! कोई और बोलो! पैंतीस रुपये में जाती है। पैंतीस रुपये एक,पैंतीस रुपये दो! और कोई बोलता है तो बोलो! नहीं तो जाती है... पैंतीस रुपये तीन... अच्छा बादशाहों, अब इसके लिए बोलो नया कोरा बिना बर्ता माल शक हो तो अपने हाथ से टटोलकर देख लो।'[8]

उपन्यास में स्त्री केवल भारत विभाजन के दौरान ही पुरुष की काम पिपासा से पीड़ित नहीं है बल्कि वह पारिवारिक व सामाजिक स्तर पर भी उत्पीड़ित हुई हैं। उपन्यास की कथावस्तु उपन्यास की मुख्य पात्र'पूरो' के इर्द-गिर्द बुनी गई है। पूरो गुजरात जिले के गाँव छत्तोआनी के शाहों (साहूकार) की पुत्री है। चौदह बसंत पार कर चुकी पूरो की मँगनी रत्तोवाल के अमीर घराने के सुन्दर-सुशील और गुणवान रामचन्द से तय कर दी जाती है। अपने यौवन के लावण्य में डूबी व अपने होने वाले मंगेतर के मधुर स्वप्न में खोई पूरो अपने भावी जीवन की नींव धरती नित-प्रतिदिन आनंदमयी रहती है परंतु उसका यह आनंदमय स्वप्न तब टूटकर चकना-चूर हो जाता है, जब बाइस वर्षीय मुस्लिम नौजवान रशीद, शेख और शाहों के बीच दादा-परदादा के समय से चली आ रही रंजिश के कारण उसका अपहरण कर लेता है। रशीद की जद की हद से क्षुब्ध पूरो हैरान और हतप्रभ होकर भी अपनी हिम्मत व बहादुरी से रशीद द्वारा अपहरण करने के पन्द्रह दिन पश्चात् उसके घर की ड्योढ़ी को लाँघ अपने पिता के घर आ जाती है, किंतु वह फिर भी किस्मत के हाथों छली जाती है अर्थात् उसका अपना ही परिवार देह शुद्धता, सामाजिक प्रतिष्ठा व शेखों की क्रुरता से बचने के लिए उसे अपनाने से इंकार कर देता है फलस्वरूप टूटी व बिखरी पूरो मौत को गले लगाती है परंतु मौत भी अपना रुख बदल लेती है और अंततः वह पुनः रशीद के पास लौट आती है। दो धर्मीय परिवारों की रंजिश रूपी भट्टी में स्वाहा हुई पूरो अब रशीद से बेमन निकाह कर पूरो से हमीदा बन जाती है और यह पहचान उसके हाथ पर चिह्नित के रूप में गोद दी जाती है। उसकी यह दोहरी पहचान उसे यह निर्धारित करने में भ्रमित करती है कि वास्तव में वह कौन है?-'दिन की रोशनी में पूरो हमीदा बन जाती है और रात के अंधकार में वह पूरो रहती।'[9] वह मात्र एक पिंजर अर्थात् निरा कंकाल बन कर रह जाती है परंतु फिर भी वह अपने कंकाल रूपी जीवन से उपन्यास में अन्य पीड़ित व शोषित स्त्रियों के मर्म के दर्द को समझ उनकी पीड़ा को हरती है। अमृता जी ने उपन्यास में केवल पूरे को ही पीड़ित नहीं दिखाया है। उपन्यास में अन्य स्त्रियाँ कम्मो, तारो, पागल आदि भी अनेक स्थलों पर पीड़ित व शोषित दिखाई देती हैं।

उपन्यास में दस-बारह वर्षीय कम्मो माँ की मृत्यु के उपरांत चाची की प्रताड़ना से पीड़ित है। कम्मो का पिता अपने स्वार्थ को सिद्ध करने हेतु किसी रखैल के साथ रहता है वह कम्मो से कोई वास्ता नहीं रखता। कम्मो अपनी चाची के पास रहकर नौकर से भी बद्तर जीवन जीती है, जिसको न तो वातानुकूलित जरूरत संबंधी चीजें मयस्सर होती है और न ही खाना-'उसके नंगे पैर अब ठंड से ठिठुरने लगे थे'[10] बावजूद इसके वह उम्र से तिगुना कार्य करती है उसके पश्चात् भी वह चाची की मार का शिकार बनती है।

उपन्यास की अन्य पात्र तारो भी बिना कसूर के सजायाफ्ता स्त्री है। तारो का जीवन जिस युवक के साथ वैवाहिक बंधन में बँधता है वह विवाह पूर्व से ही अपने घर में शूद्र जाति की स्त्री को रखैल के रूप में रखता है-'वह औरत उनकी जाति की नहीं है छोटी जात की है उसके माँ-बाप कहते थें कि बहू घर में अपनी ही जाति की आनी चाहिए।'[11] तारो के मायके वालों से जहाँ यह बात आच्छादन रखी जाती है तो वहीं दूसरी ओर उसके ससुराल पक्ष के लोग इस बात को जानते हुए भी समाज में इज्जत व प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिये तारो को छलते हैं। विवाह के उपरांत तारो के जीवन का अर्थ आदान के रूप में रोटी-कपड़ा और प्रदान के रूप में सिर्फ एक वेश्या की भाँति अपनी देह को पति को समर्पित देना भर था। इससे ज्यादा उसके जीवन का कोई और औचित्य नहीं था। तारो द्वारा इस नरकीय जीवन जीने के उपरांत भी उसके मायके वाले उसे रीति प्रथा का हवाला देते हुए उसे उसी नरक में जीवन यापन करने के लिए विवश व बेबस कर देते हैं- 'अब हम क्या बोल सकते हैं! वह अच्छी तरह रखे, दुःख दे, सुख दे'[12] तारो विवाह के इस बन्धन से मुक्त नहीं हो पाती है और अंत तक इसी नरक को भोगती है।

लेखिका उपन्यास में एक पागल स्त्री का चरित्र गढ़ कर स्त्री उत्पीड़न के सबसे दर्दनाक दृश्य से पाठकों का परिचय कराती हैं। झुलसा स्याह रंग, धूलसनी लटे, डरावनी हँसी, छितरे दाँत,देह पर फटा चिथड़ा,जिसको देखकर अनुमान होता है कि जब से वह जन्मी थी कभी नहाई नहीं। शरीर में सूखी हड्डियाँ जिनको देखकर लगता कि उसका शरीर मात्र एक पिंजर है। एक पागल पिंजर, उस पागल पिंजर पर भी पुरुष लालायित हो उठा और उसकी ललचायी भरी कामुक दृष्टि का परिणाम उस पगली के

नंगे पेट पर उभार भरने लगा–'वह कैसा पुरुष था! अवश्य ही कोई पशु होगा, जिसने इस जैसी पागल की यह दुर्दशा बना दी' [13] जिसे स्वयं अपनी सुध–बुध न थी वह अपने साथ–साथ उस पापी बोझ को भी ढोने लगी और उसका कामुक पुरुष के पाप को अपनी देह से विलग करने अर्थात् उसकी जन्मती प्रक्रिया की असहनीय पीड़ा में तड़पते हुए मृत्यु को प्राप्त हो गई– 'दो चार आदमियों ने मिलकर पगली के शव को ठिकाने लगा दिया' [14] निष्कर्षत :कहा जा सकता है कि जहाँ एक ओर यह उपन्यास भारत विभाजन की त्रासदी के अंधकारमय व भयावह पक्षों पर प्रकाश डालता है तो वही दूसरी ओर स्त्री उत्पीड़न के अनेक करुणामय पहलुओं से पर्दा हटाता है इसलिए यह उपन्यास भारत विभाजन की त्रासदी के साथ–साथ स्त्री उत्पीड़न को अनेक आयामों में व्यक्त करने में सफलता अर्जित करता है। अपनी इसी विशिष्टता व वैशिष्ट्य के कारण यह उपन्यास हिन्दी साहित्य जगत में अपना एक अलग ही महत्त्व रखता है।

सन्दर्भ सूची:–

1. अमृताप्रीतम,उपन्यास, पिंजर, प्रकाशनवर्ष1950 ई0, प्रकाशन, हिन्दी पॉकेटबुक्स, पृ0सं0 81
2. वही,पृ0सं0 80
3. वही,पृ0सं0 81
4. यशपाल,उपन्यास, झूठासच, प्रकाशनवर्ष1958 ई0, प्रकाशन, लोकभारती, पृ0सं0363
5. अमृताप्रीतम,उपन्यास, पिंजर, प्रकाशनवर्ष1950 ई0, प्रकाशन, हिन्दी पॉकेटबुक्स, पृ0सं082
6. वहीपृ0सं0 83
7. वहीपृ0सं0 82–83
8. यशपाल, उपन्यास, झूठासच, प्रकाशनवर्ष1958 ई0, प्रकाशन, लोकभारती, पृ0सं0377
9. अमृताप्रीतम,उपन्यास, पिंजर, प्रकाशनवर्ष1950 ई0, प्रकाशन, हिन्दी पॉकेटबुक्स, पृ0सं0 25
10. वहीपृ0सं0 38
11. वहीपृ0सं0 43
12. वहीपृ0सं0 44
13. वहीपृ0सं0 52
14. वहीपृ0सं0 54

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

संगीत में सौंदर्य एवं रस का महत्व

दिनेश कुमार मिश्रा
डॉ. प्रकाश कड़ोतिया

1. शोधार्थी, शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दशहरा मैदान, उज्जैन, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.
2. शोध निर्देशक, शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दशहरा मैदान, उज्जैन, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मप्र.

संगीत में सौंदर्य और रस दो महत्वपूर्ण आदान-प्रदान हैं जो उसे एक अद्वितीय कला बनाते हैं। यह दोनों मानवीय अनुभवों को संवाद करने, महसूस करने और समर्थन करने का एक माध्यम हैं। संगीत न केवल श्रवण अनुभव को सुंदर बनाता है, बल्कि उसमें विभिन्न रसों को प्रकट करता है जो हमारे भावनात्मक और सांस्कृतिक विकास को समृद्ध करते हैं।

सौंदर्य का महत्व:- संगीत में सौंदर्य एक महत्वपूर्ण तत्त्व है जो उसे उम्दा और अद्वितीय बनाता है। सौंदर्य एक आदर्श मानविक सुंदरता को जगाता है जो हमें आकर्षित करता है और हमारी भावनाओं को स्पष्ट करता है। संगीत में सौंदर्य बहुतायत में मौजूद होता है, जैसे कि एक अद्वितीय मेलोडी, रागों की आनंददायक विभिन्नता, लय की गतिमयता, ताल का आकर्षण और संगीतीय निर्माण के कलात्मक तत्व। सौंदर्य आदर्श को संगीत के माध्यम से प्रकट करके हमें एक आनंदमय और प्रशंसनीय अनुभव प्रदान करता है।

रस का महत्व:- रस संगीत में भावनात्मक अनुभवों को व्यक्त करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। रस शब्द से निर्मित हुआ है, जो भावनाओं और भावुकता को संक्षेप में व्यक्त करता है। संगीत में विभिन्न रसों की प्रस्तुति और प्रकटि के माध्यम से हमारी भावनाओं को प्रभावित किया जाता है। अगर हम विभिन्न रसों को समझने की बात करें, तो उदाहरण के रूप में शांत रस, हास्य रस, भक्ति रस, वीर रस, रौद्र रस, आदि महत्वपूर्ण हैं। ये रस हमारी भावनाओं को प्रवाहित करते हैं और हमें गहराई से उन भावनाओं को अनुभव करने की क्षमता प्रदान करते हैं। इस प्रकार, संगीत में सौंदर्य और रस का महत्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये तत्त्व हमें संगीत को समझने, अनुभव करने और आनंद लेने का एक अद्वितीय और सामर्थ्यपूर्ण अवसर प्रदान करते हैं। इनके माध्यम से हम संगीत के रंग-भरे संसार में खो जाते हैं और अपनी आत्मा को शांति, सुख, और प्रसन्नता से भर देते हैं।

संगीत एक ऐसी कला है जो सदियों से मानव सभ्यता का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है। इसका महत्व केवल मनोरंजन और मनोहारी सुरों से नहीं, बल्कि सौंदर्य और रस को जगाने में भी है। संगीत का शास्त्रीय, लोक और फिल्मी रूपों में व्यापक विस्तार होता है और यह आपकी भावनाओं को प्रभावित करने का एक शक्तिशाली साधन है। इस लेख में, हम संगीत में सौंदर्य और रस के महत्व पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

'सौन्दर्यशास्त्र' का मतलब होता है 'आकृति' या 'सौंदर्य सिद्धांत' इसके अंतर्गत, कला, साहित्य, संगीत, चित्र, नृत्य, स्थापत्य, आदि को सौंदर्य के दृष्टिकोण से समझा जाता है। पश्चिमी संगीत) के संदर्भ में, सौंदर्यशास्त्र उस शैली, लय, ताल, ध्वनि, और भाव को समझने में मदद करता है, जो संगीत में सौंदर्य को भर देता है। इस शास्त्र में, संगीत को एक कला के रूप में देखा जाता है, जिसका मूल उद्देश्य आनंद प्राप्त करना होता है। पश्चिमी संगीत में, सौंदर्य का मूल रूप ताल, लय, और ध्वनि में होता है। सौंदर्यशास्त्र के अंतर्गत, इसमें विभिन्न राग, रागा, ताल, और लय का अध्ययन भी किया जाता है। इसमें राग और लय के मेल से ही सौंदर्य का अनुभव होता है। संगीत में एक अनुकूल और आनंदमय वातावरण बनाने के लिए, सौंदर्यशास्त्र का अध्ययन अवश्यक है। सौंदर्यशास्त्र के माध्यम से संगीत के रूप और रूप को समझने में सहायक होता है, जिससे कलाकार अपने दर्शकों को एक आनंदमय अनुभव दे सके और संगीत को एक परंपरागत और संवेदनशील रूप में बढ़ावा दे सके।

1. संगीत में सौंदर्य का महत्व:-

सौंदर्य के साधन:- संगीत में स्वर, ताल, लय, संगति, गायन और वादन के द्वारा सौंदर्य को प्रकट किया जाता है। संगीत आपके मन की संगठनशीलता, स्वरों की ताजगी, संगीतमयता और मूड को सजाता है।

मानसिक सुख:- संगीत आपके मन को शांति, सुख और आनंद का अनुभव कराता है। यह मन की ऊर्जा को स्थिर करने में मदद करता है और तनाव को कम करता है।

आवाज का महत्व35 संगीत में आवाज एक महत्वपूर्ण सौंदर्यिक उपकरण है। संगीतकारों और गायकों की आवाज के माध्यम से संगीत की गहराई, विस्तार और रंगीनता व्यक्त होती है।

भाग 2. संगीत में रस का महत्व:-

भावनाओं का प्रकटक:- संगीत रस के माध्यम से भावनाओं को सुप्रभात करने का एक शक्तिशाली तरीका है। रस मनोभावों को जागृत करने, भावनाओं को संगीतीकृत करने और आनंद की अनुभूति कराने में मदद करता है।

भावनाओं का प्रवाह:- संगीत भावनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है। यह रस की विभिन्न स्थितियों को बदलता रहता है और संगीतकार और श्रोताओं को एक नई और गहरी अनुभूति का अनुभव कराता है।

संगीत का प्रभाव:- संगीत रस की सहायता से मन को विभिन्न भावों की ओर आकर्षित करता है। यह दु:ख, प्रेम, उत्साह, शांति, भक्ति और बहुत कुछ के अनुभव को संगीत के माध्यम से प्रकट करता है।

संगीत के माध्यम से सौंदर्य और रस का अनुभव मानव जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह हमें संतुष्टि, सुख और आत्म-विश्वास

प्रदान करता है। संगीत के माध्यम से हम सौंदर्य की अनुभूति करते हैं और रस की गहराई को खोजते हैं। यह एक साथ हमारे मन, शरीर और आत्मा को संयोजित करने की क्षमता रखता है। संगीत में सौंदर्य और रस के महत्व को समझने से हम अपने संगीतीकरण को बेहतर बना सकते हैं और संगीत का गहराई में रोमांचक अनुभव कर सकते हैं।

रस शब्द संस्कृत शब्द 'रस' से निकला है, जिसका अर्थ होता है 'रस्सा' या 'रसों की रेखा'। रस संगीत, नाट्य और साहित्यिक कला में विभिन्न भावों को जन्म देने वाला एक अद्वितीय तत्व है। यह एक ऐसा भावात्मक अनुभव है जो श्रोता या दर्शक को संगीत और कला की गहराई में ले जाता है। रस अनुभूति को शक्तिशाली और मनोहारी बनाने में मदद करता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार रस शब्द चार अर्थों में प्रयोग होता है

1. प्राकृतिक
2. आयुर्वेदिक रस
3. साहित्यिक रस
4. भक्ति रस

भाव का विकसित रूप ही रस है। संभवतः इस सृष्टि की कल्पना इस अलौकिक रस पूर्ण भावों की अभिव्यक्ति है।

प्रकारः- रस के शास्त्रीय विद्यालयों द्वारा मान्यता प्राप्त होने के साथ-साथ, भारतीय संगीत, नाट्य और साहित्य शास्त्र में विभिन्न प्रकार के रसों का वर्णन किया गया है। निम्नलिखित हैं कुछ महत्वपूर्ण रसों के प्रकार-

1. श्रृंगार रसः-श्रृंगार रस में प्रेम, सौंदर्य, सम्मोहन और आकर्षण के भाव होते हैं। इस रस को भारतीय संगीत और नाट्य शास्त्र में प्रतिष्ठित माना जाता है। यह रस प्रेम के भावों को प्रकट करने में मदद करता है।
2. हास्य रसः-ह्रास्य रस में हंसी, मजाक, खुशी और मनोरंजन के भाव होते हैं। यह रस विनोद के भावों को जगाने में मदद करता है।
3. करुण रस :-करुण रस में दुःख, करुणा, शोक और अदृश्य दुःख के भाव होते हैं। यह रस कष्ट और दुःख के भावों को प्रकट करने में मदद करता है।
4. रौद्र रस :-रौद्र रस में क्रोध, उग्रता, भय और रोष के भाव होते हैं। यह रस क्रोध और उग्रता के भावों को प्रकट करने में मदद करता है।
5. वीर रस :-वीर रस में साहस, उत्साह, गर्व और युद्ध के भाव होते हैं। यह रस वीरता और साहस के भावों को प्रकट करने में मदद करता है।
6. भयानक रसः-भयानक रस में भय, आतंक, डर और अनिश्चितता के भाव होते हैं। यह रस भय और आतंक के भावों को प्रकट करने में मदद करता है।
7. वीभत्स रसः-विमुखता, घृणा और घृणा के भाव होते हैं। यह रस विमुखता और घृणा के भावों को प्रकट करने में मदद करता है।

इनमें से हर रस अपने संगीतीकरण और कला में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और श्रोताओं को विभिन्न भावों का अनुभव कराता है।

8. अद्भुत रसः- विस्मय इस रस का स्थायी भाव मन जाता है द्य किसी आश्चर्य एवं न संभव होने वाली घटना को देखकर मन में जो भाव उत्पन्न होता है उसे अद्भुत रस की संज्ञा दी जाती है ।

जब माखनचोर श्री गोपाल कृष्ण ने अपने बचपन में माता यशोदा को मुख में ब्रह्माण्ड के दर्शन कराये तो माता यशोदा के मन में अद्भुत रस उत्पन्न हुआ ।

सौंदर्य तत्व और रस का संबंधः-सौंदर्य तत्व और रस, दोनों ही कला और साहित्य जगत में महत्वपूर्ण अंग हैं। ये दोनों एक-दूसरे के साथ गहरा संबंध रखते हैं और संगीत, नृत्य, चित्रकला और साहित्य के माध्यम से अद्वितीय अनुभव का सृजन करते हैं।

सौंदर्य तत्वः- सौंदर्य तत्व में विभिन्न घटक शामिल होते हैं जैसे आकृति, रंग, संरचना, प्रकाश आदि। ये तत्व साहित्य, चित्रकला और संगीत में दर्शाए जाते हैं और उन्हें सुंदर, आकर्षक और आनंददायक बनाते हैं। सौंदर्य तत्व अपने आप में ही एक रस का अनुभव कराते हैं, क्योंकि इनका मूल्यांकन हमारी इंद्रियों के माध्यम से होता है।

सौंदर्य तत्व संगीत, नृत्य, काव्य, चित्रकला, स्थापत्यकला और आदि में पाये जाते हैं। इन तत्वों का संयोजन एक आकर्षक, मनोहारी और सुंदर रूप में प्रगट होता है। सौंदर्य तत्व के माध्यम से व्यक्ति का मनोबल बढ़ता है और उसे आनंद की अनुभूति होती है। इसे देखने या अनुभव करने के लिए कोई निश्चित कार्य या लक्ष्य की आवश्यकता नहीं होती है, बल्कि यह स्वभाविक रूप से हमारे भावनात्मक और साधारण अनुभव का हिस्सा होता है।

रसः- रस कला और साहित्य में उत्पन्न होने वाली भावनाओं की स्थिति है। यह भावनाओं को संगीतीकृत करने, उन्हें संगठित करने और श्रोताओं को उनका अनुभव करने में मदद करता है। रस एक ऐसी अद्वितीय तत्व है जो श्रोता या पाठक को साहित्यिक और कलात्मक भावों की गहराई में ले जाता है। संगीत, नाट्य और साहित्य में रस के माध्यम से विभिन्न भावों को प्रकट किया जाता है, जैसे प्रेम, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर आदि। रस उस भावात्मक अनुभव को कहा जाता है जो संगीत, नाट्य और साहित्य के माध्यम से होता है। रस विभिन्न भावों को संगीत और कला की गहराई में प्रकट करता है। यह विभिन्न प्रकार के भावों की अनुभूति को समर्पित करता है और श्रोता या दर्शक को उन भावों का गहरा अनुभव कराता है। रस मनोवैज्ञानिक रूप से हमारे भावों, विचारों और आत्मा को संयोजित करने में मदद करता है।

सौंदर्य तत्व और रस का सम्बंधः- सौंदर्य तत्व और रस दोनों ही कला में भावों के स्रोत हैं। सौंदर्य तत्व, जैसे आकृति, रंग और प्रकाश, आंतरिक भावों को बाहरी रूप में प्रकट करते हैं और संगीत और नृत्य के माध्यम से रस की उत्पत्ति करते हैं। यह रस के अनुभव को सुंदर, प्रभावशाली और आनंदमय बनाते हैं। संगीत, नृत्य और साहित्य में रस के माध्यम से सौंदर्य तत्व को प्रकट किया जाता है, और सौंदर्य तत्व संगीत और नृत्य की रूपरेखा में अनुभव कराते हैं। इस प्रकार, सौंदर्य तत्व और रस एक-दूसरे के सहायक होते हैं और संगीत, नृत्य और साहित्य के माध्यम से अद्वितीय भावनाओं का संचार करते हैं। ये दोनों ही कलाएं हमारे मन, शरीर और आत्मा को संयोजित करने में मदद करती हैं और एक गहरे और पूर्णता से जीने का अनुभव प्रदान करती हैं। सौंदर्य और रस दोनों ही हिंदी साहित्य और कला के महत्वपूर्ण तत्व हैं। सौंदर्य तत्व सौंदर्यशास्त्र में विशेष रूप से विवेचित किया जाता है, जबकि रस संगीत, नाट्य और साहित्य शास्त्र में महत्वपूर्ण है। सौंदर्य तत्व और रस दोनों ही कला और साहित्य के आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सौंदर्य तत्व विभिन्न रूपों में साहित्यिक और कलात्मक भावों को प्रकट करने में मदद करता है, जबकि रस उन भावों को गहराई से अनुभव करने में सहायता प्रदान करता है। सौंदर्य तत्व रंग, संगीत, रूप, स्थापत्य, अभिनय आदि के माध्यम से हमारी इंद्रियों को प्रभावित करता है, जबकि रस हमारे मन, शरीर और आत्मा को संयोजित करता है और हमें आनंद की अनुभूति कराता है। सौंदर्य तत्व से जब हम रस की अनुभूति करते हैं, तो हम अपने भावनात्मक और साधारण जीवन को सुंदर बनाने में सहायता

प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार, सौंदर्य तत्व और रस दोनों ही हिंदी साहित्य और कला के महत्वपूर्ण अंग हैं और विभिन्न भावों और अनुभवों को प्रकट करने में मदद करते हैं। इनका संयोजन आदर्श और गहराई से अनुभव कराता है और हमें साहित्यिक और कलात्मक जगत् का आनंद दिलाता है।

सन्दर्भ सूची:-

1. शर्मा, श्री भगवतशरण, पाश्चात्य संगीत शिक्षा, संगीत कार्यालय, हाथरस, 1990
2. सिंह, प्रो. ललित किशोर, ध्वनि और संगीत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1901
3. शर्मा, डॉ स्वतंत्रा, पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 1996
4. भारतीय संगीत और नाट्य शास्त्र
5. नाट्यशास्त्र, भारतीय संस्कृति एवं संस्कृतिक विचार, विद्या निखिल गुप्ता, 2016
6. हिन्दी साहित्य कोश, राजेन्द्र यादव, 2015
7. वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, 2013
8. अभिनव गुप्त, अभिनव रस सिद्धांत, द्विवेदी, दशरथ विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2000
9. स्नेही, डॉ शिखा, सारस्वत, आकांक्षा, संगीत, अरिहंत पब्लिकेशन्स (इंडिया) लिमिटेड, मेरठ, 2016
10. चौधरी, सत्यदेव, रस सिद्धांत की प्रमुख समस्याएं, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1951

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

प्राचीन भारतीय शिक्षा के 'पाठ्यक्रम एवं शिक्षणविधियों' की वर्तमान समय में प्रासंगिकता

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर व प्रभारी, हिन्दी विभाग, पी. एस. एम. पी. जी. कॉलेज, कन्नौज, उप्र.

भारत भूमि धर्म प्रधान है। धर्म और भारत एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। एक प्राच्यविद् का कथन है, कि ''हे! धर्म, काव्य और विज्ञान के पितृ-देश में तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारा स्वागत है। हम तुम्हारे गौरवपूर्ण अतीत का पाश्चात्य के भविष्य में पुनर्जागरण चाहते हैं।'' यह कहा था महान प्राच्यविद् मैक्समूलर ने। उसने भारत के प्राचीन गौरव और गरिमा को समझ कर ही ऐसी इच्छा व्यक्त की थी। यदि उसकी आकांक्षा पूरी होती तो शायद आज के पाश्चात्य देश वर्तमान नरसंहार और विभीषिका से बचकर शान्ति और सद्भाव की ओर अग्रसर हो रहे होते। यदि पाश्चात्य देशों का एक विद्वान हमारे इस अतीत को अपने भविष्य में लाना चाहते हैं तो क्या उचित न होगा कि हम स्वयं अपने अतीत को वर्तमान में पुनः स्थापित करें। अतीत, वर्तमान और भविष्य में अनवरत प्रवाह पर घटनाओं की निश्चित करने की विधि मात्र है। इतिहास के दृष्टव्य परिवर्तनों एवं नवीन तथ्यों में आन्तरिक निरन्तरता का सूत्र चला करता है। यदि अतीत की सम्पूर्ण व्यवस्था को पुनः स्थापित करना सम्भव न हो तो कम से कम उसके निरन्तर प्रवाहित सूत्र को तो पकड़ ही लेना चाहिए, जिससे वर्तमान के सम्पूर्ण जन-मानस का कल्याण हो सके। आर्य मनीषियों ने बालक एवं समाज को ध्यान में रखते हुए शिक्षा व्यवस्थान्तर्गत उसके मानसिक, आध्यात्मिक, शारीरिक तथा सामाजिक विकास पर बल दिया एवं एतदर्थ उन्होंने मानसिक, चारित्रिक तथा सामाजिक आदि शिक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों का निर्धारण किया। प्राचीन शिक्षक इन उद्देश्यों के माध्यम से बालक की अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित करने के उपरान्त गृहस्थ जीवन में प्रवेश करके अपनी सामर्थ्य और क्षमतानुसार समाज के उन्नयन में योगदान करते हुए मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होते थे।

तत्कालीन समय में इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु स्वस्थ वातावरण उपलब्ध था। आचार्य और शिष्य पारस्परिक सहयोग के द्वारा उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करते थे। डॉ0 आत्मानन्द मिश्र के अनुसार समाज के अन्य विभिन्न वर्ग भी अपनी स्थिति के अनुसार इनके क्रियान्वयन हेतु यथाशक्ति आर्थिक सहयोग प्रदान करते थे। महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री अरविन्द, टी0पी0 नन तथा जॉन डी0बी0 आदि भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों ने भी समाज के विकास में यथाशक्ति योगदान करने हेतु शिक्षा के माध्यम से बालकों के सर्वांगीण विकास पर बल दिया है। अस्तु अनुमोदित किया जाता है कि प्राचीन शिक्षा की भाँति आधुनिक समय में भी शिक्षकगण, शिक्षाशास्त्री, शिक्षा प्रशासक एवं अभिभावकगण सम्मिलित रूप से बालकों के कल्याण के उद्देश्य के क्रियान्वयन में रूचि प्रदर्शित करें, जिससे कि व्यक्ति और राष्ट्र का कल्याण सम्भव हो सके।

पाठ्यक्रम :-प्राचीन शिक्षाशास्त्रियों ने विभिन्न उद्देश्यों की दृष्टि में रखते हुए ही पाठ्यक्रम का भी निर्माण किया था। इन्होंने इसका पाठ्यक्रम शनैः शनैः विकसित किया। व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किया। इस प्रकार प्राचीन पाठ्यक्रम बहुमुखी, गत्यात्मक एवं उपयोगी था। इसमें धार्मिक विषयों के साथ ही अनेकानेक लौकिक विषयों को भी सम्मिलित किया गया था। सम्मिलित विषयों में वेद-वेदांग, उपनिषद, आरण्यक, इतिहास पुराण राशि, निधि, वाकोवाका, एकायन, सर्पविद्या, भूतविद्या, देवविद्या, पित्रय विद्या, संगीतविद्या, स्वप्न विद्या, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शल्यचिकित्सा, चौसठ कलायें तथा सोलह शिल्प प्रमुख थे। तक्षशिला, वाराणसी तथा नालन्दा आदि उच्च शिक्षा केन्द्रों में दार्शनिक तथा अन्य महत्वपूर्ण विषयों में विशिष्टीकरण प्रदान करने की व्यवस्था थी। विषयों में विशिष्टीकरण प्राप्त करने हेतु विषय विशेष से सम्बन्धित मूलभूत ज्ञान अपेक्षित था। अस्तु स्पष्ट है कि प्राचीन आचार्यों ने शिष्यों के सर्वतोन्मुखी विकास हेतु सन्तुलित पाठ्यक्रम की व्यवस्था थी। प्राचीन शिक्षा व्यवस्थान्तर्गत बहुमुखी पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया गया था। अतएव आवश्यक है कि तत्कालीन समय की भाँति आधुनिक शिक्षण संस्थाओं में भी इस प्रकार के पाठ्यक्रम को व्यवहृत करके छात्रों को आदर्श नागरिकता की ओर प्रेरित करना शिक्षा का एक उद्देश्य था।

प्राचीन शिक्षा व्यवस्थान्तर्गत छात्र विषयों का चयन आचार्यों की सहायता से करते थे। आचार्यगण छात्रों की रूचि, मानसिक क्षमता तथा सामर्थ्य आदि का अवलोकन करके उन्हें विशेष विषयों के अध्ययन हेतु प्रोत्साहित करते थे। इस प्रकार विषयों के निर्वाचन में विद्यार्थियों को भलीभाँति निर्देशन उपलब्ध हो जाता था। इस निर्देशन प्रक्रिया के फलस्वरूप अल्प सुपात्र शिक्षक शिष्यों को ही आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विषयों के अध्ययन का अधिकार प्राप्त हो पाता था। इसका प्रमुख कारण यह था कि इनके अनुशीलन के लिए उत्कृष्ट प्रतिभा, अथाह चिन्तन एवं गहन अध्ययन की आवश्यकता होती थी। अधिकांश छात्र धर्मशास्त्रों का सामान्य ज्ञान प्राप्त करके लौकिक विषयों का अध्ययन करते थे। इस प्रकार समय से छात्र ज्ञानोपार्जन के उपरान्त सुखमय पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन व्यतीत करते हुए समुदाय एवं संघर्षरत समाज का उन्नयन करते थे।

आधुनिक समय में विषयों के निर्वाचन में छात्रों का स्वयं गुरूजनों से मार्ग दर्शन उपलब्ध नहीं हो पाता है। अतएव वे अपनी रूचि और मन, मानसिक क्षमता का ध्यान रखे बिना विषयों का निर्वाचन कर लेते हैं। परिणामस्वरूप वे अध्ययनीय विषयों में विशेष दक्षता नहीं प्राप्त कर पाते हैं और जीवन में असफलता की ओर उन्मुख होते हैं। उनका व्यक्तित्व अस्त-व्यस्त हो जाता है तथा वे सामाजिक समस्याओं से संघर्ष करने में कतराते रहते हैं। प्राचीन समय में छात्रों को अपने भावी जीवन में इस प्रकार की आज जैसी स्थिति में सामना नहीं करना पड़ता था। अस्तु आवश्यकता जान पड़ती है कि प्राचीन समय की भाँति ही आज भी शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत अध्यापक छात्रों को विषयों के निर्वाचन में उचित मार्गदर्शन करें तथा भावी समस्याओं के हल करने योग्य बनाये यद्यपि मनोविज्ञान के विकास ने विद्यालयों में निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था की है, जो सफल नहीं हो पा रही है। आधुनिक समय में प्रासंगिकता का

तात्पर्य है कि वर्तमान शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन शिक्षा के ''पाठ्यक्रम' एवं शिक्षण विधियों का किस सीमा तक प्रयोग किया जा सकता है और हमारी शैक्षिक समस्याओं का कहाँ तक निराकरण कर सकता है। बात यह है कि शिक्षा समाज का कर्म होती है। समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उसके पाठ्यक्रम का निर्माण होता है, किन्तु इस पाठ्यक्रम में वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के अतिरिक्त कुछ विषय ऐसे भी रखे जाते हैं जो हमारी संस्कृति का ज्ञान कराते हैं। अतएव पाठ्यक्रम देश और काल की आवश्यकतानुसार परिवर्तित हुआ करता है, जो पाठ्यक्रम वैदिक काल के लिए उपयुक्त था। वह आधुनिक समय के लिए अनपयुक्त हो सकता है। किन्तु पाठ्यक्रम के गठन के सिद्धान्त जो प्राचीन काल में प्रचलित थे उनका उपयोग किंचित संशोधन के साथ आज भी किया जा सकता है।

एक सिद्धान्त जो वैदिक, बौद्ध और नव-ब्राह्मणकाल में परिलक्षित होता है वह यह कि पाठ्यक्रम में धार्मिक एवं लौकिक दो प्रकार के विषय सम्मिलित किये जाते हैं। इनमें कुछ अनिवार्य विषय होते थे तथा अन्य वैकल्पिक। अनिवार्य विषयों में वेदाध्ययन आता था और वैकल्पिक में लौकिक विषय आते थे। अतः पाठ्यक्रम में दो प्रकार के विषय से एक तो व्यक्ति के आचरण को उन्नत बनाते थे एवं जिनके द्वारा इहलोक और परलोक में जीवनयापन सफल बनता था और दूसरा वे जो इस लोक में जीवकोपार्जन तथा गृहस्थ जीवन के लिए उपयोगी थे। इस प्रकार के विषयों का संचयन किया जाता था। प्राचीनकाल में शिक्षा धर्म से अनुप्राणित थी और धर्म की ही शिक्षा से व्यक्ति के जीवन में नैतिकता का प्रादुर्भाव होता था। वैदिक काल में नैतिकता ही सदाचरण को प्रभावित कर आध्यात्म की ओर अग्रसर करती थी। बौद्धकाल में नैतिकता ही अष्टमार्ग के माध्यम से निर्वाण दिलाती थी। नव-ब्राह्मणकाल में नैतिकता ही व्यक्ति में विनय का विकास करके उसे मोक्ष दिलाती थी। अतएव नैतिकता प्राचीन शिक्षा के मूल में थी। महात्मा गाँधी ने भी कहा है कि- मैं नैतिकता को ही धर्म मानता हूँ। उन्हीं के शब्दों में ''यह संसार नीति पर टिका हुआ है। नीति मात्र का समावेश सत्य में है। नैतिकता का पालन करना ही अपने मन और लालसाओं को जीतना है। नीति उस समय तक धर्म रह सकती है जब तक उसे चलाया जाये उसके पश्चात नहीं'' शिक्षा का एक उद्देश्य चरित्र विकास है, जिसका एकमात्र आधार नैतिकता है। शिक्षा को उसे ही सिखाना चाहिए।

आधुनिक काल में नैतिकता के अभाव के कारण चरित्र संकट उत्पन्न हो गया, जिससे विभिन्न देशों में भ्रष्टाचार का बोलवाला है। उसके निवारण का एक ही मार्ग है कि लोगों की नैतिक शिक्षा पर बल दिया जाये। जापान आदि देशों में नैतिकता को नागरिकता से सम्बद्ध किया गया है, जिससे कि धर्मनिरपेक्षता बनी रहे। भारतवर्ष का जन्म धर्म से ही हुआ है। अतएव उसकी शिक्षा के लिए धर्म की शिक्षा आवश्यक है। अतः हमारी शिक्षा प्रणाली में नैतिक शिक्षा का गठन अनिवार्य है।यद्यपि स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय संविधान के अन्तर्गत भारतवर्ष में धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है, किन्तु इसका केवल इतना ही अर्थ है कि राज्य किसी धर्म को वरीयता नहीं देगा। व्यक्ति अपना-अपना धर्म पालन करने के लिए स्वतंत्र हैं। केवल शासकीय विद्यालयों में धर्म निषेध है किन्तु धर्मस्थ से स्थापित ऐसे शासकीय विद्यालयों में भी धार्मिक शिक्षा प्रदान की जा सकती है। राधाकृष्णन विश्वविद्यालय आयोग ने धर्म के सिद्धान्तों की शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया है। श्री प्रकाश समिति ने भी इसे स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट है कि धार्मिक शिक्षा देने पर कोई अंकुश नहीं है। धर्म बालकों के जीवन का एक अंग है। इंग्लैण्ड हैडो रिपोर्ट ने धर्म को बालक के जीवन का एक प्रमुख अंग मानकर उसकी शिक्षा अनिवार्य करने की अनुशंसा की है। अतएव आज की शिक्षा में धर्म के सिद्धान्तों पर आधारित नैतिकता की शिक्षा प्रदान करना परमावश्यक है। प्राचीन काल की तरह इसकी शिक्षा को अनिवार्य कर देना चाहिए। ऐसी स्थिति में चरित्र का निर्माण हो सकेगा। वैकल्पिक विषयों के अन्तर्गत तात्कालिक समाज की आवश्यकतानुसार ही विषयों का शिक्षण प्रदान किया जाता था। वर्तमान समय का समाज पूर्णतया परिवर्तित हो गया है और आवश्यकतायें नितान्त भिन्न हैं। इसके अनुसार ही अब विषयों का चयन करना पड़ेगा। आज के समाज में धनुर्विद्या, सर्पविद्या तथा भूत विद्या आदि विषयों का कोई स्थान नहीं है। इसके स्थान पर आधुनिक सैन्य विज्ञान, चिकित्साशास्त्र एवं अभियांत्रिकी शिक्षा को अध्ययन करना पड़ेगा। प्राचीन पाठ्यक्रम में एक विविधकरण का सिद्धान्त भी दृष्टिगोचर होता है। राजाओं, स्त्रियों तथा सर्वसाधारण के लिए उपयुक्त अनेकानेक विषयों का शिक्षण प्रदान किया जाता था। इस सिद्धान्त का हमारी शिक्षा में पर्याप्त सीमा तक पालन हुआ है। इस सन्दर्भ मुदालियर आयोग की अनुशंसायें अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, किन्तु अभी माध्यमिक शिक्षा का पूर्ण रूप से विशालीकरण नहीं हुआ है। वर्तमान समय में जीवकोपार्जन के लिए आवश्यक अनेक व्यवसायों की शिक्षा का प्रबन्ध विद्यालयों में होना चाहिए, जो अभी तक अछूता प्रतीत हो रहा है। इसी प्रकार प्राचीन पाठ्यक्रम में संग्राही पाठ्य विषयों का प्राविधान था। उदाहरणार्थ-वैदिक पाठ्यक्रम में अनुशासन[1] के अन्तर्गत शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द निरूक्त तथा ज्योतिष को संग्रहीत किया गया था। इसी प्रकार देवजन विद्या में रंगारामानुजम ने देवजन विद्या, चिकित्साशास्त्र एवं संगीतशास्त्र को सन्निहित किया।[2] बौद्धकाल में लोकायतन के अन्तर्गत खगोल विद्या, ज्योतिष विद्या, प्रेत विद्या तथा ऐसे ही अन्य विषयों की शिक्षा मुख्य थी।[3] राजधम्म में राजा, मन्त्री, सेनानायक उच्च कर्मचारी तथा योद्धाओं की शिक्षा सम्मिलित थी।[4] नव-ब्राह्मण युग में आन्वीक्षी, त्रयी वार्ता तथा रणनीति आदि विद्यायें संग्राही विषयों का द्योतक थी। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष प्रयी विद्या में आने वाले विषय थे।[5] आन्वीक्षी से सांख्य योग और लोकायत विषयों का बोध होता था।[6] वार्ताशास्त्र के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन तथा व्यापार आदि विषयों का अध्ययन आता था।[7] दण्डनीति से प्रशासन से सम्बन्धित विषयों का आशय ग्रहण किया जाता है।8 आधुनिक काल में भी सामाजिक विषयों के अन्तर्गत, इतिहास, भूगोल तथा नागरिक शास्त्र को सम्मिलित किया गया किन्तु ऐसे विषयों के उदाहरण अधिक नहीं हैं। यह अति उत्तम होगा कि इस प्रकार के संग्राही पाठ्य विषयों की संख्या में वृद्धि कर दी जाये।

अतः स्पष्ट है कि प्राचीन पाठ्यक्रम में धर्म-ग्रन्थों की भाषा के शिक्षण का बहुत अधिक महत्व था। प्रत्येक छात्र से शुद्ध उच्चारण के साथ पाठ विशेष की आवृत्ति अनेक बार कराई जाती थी तथा भाषा एवं ध्वन्यात्मक नियमों से सम्बन्धित त्रुटियों को अनवरत सुधारा जाता था। छात्र वेदों का पाठ करते समय हाथ और मुख से हाव-भाव भी प्रदर्शित करता था। इन सम्पूर्ण प्रक्रियाओं से विद्यार्थी को एक भाषा में पूर्ण अधिकार प्राप्त करा दिया जाता था। इसलिए वैदिक काल में वेदों के अध्ययन पर बल दिया जाता था। इनकी रचना प्राचीन संस्कृत में की गयी थी। बौद्ध काल में धर्मग्रन्थों की रचना पाली भाषा में की गयी थी। अतएव शिष्यों को इस भाषा का पूर्ण ज्ञान कराया जाता था। नव-ब्राह्मण काल में स्मृतियों और पुराणों के पढ़ने पर बल दिया जाता था। इनकी रचना नई संस्कृत में की गयी थी। एक भाषा पर पूर्ण अधिकार होने से अभिव्यक्ति और प्रसार पर पर्याप्त बल दिया जा रहा है। अतएव छात्रों को एक भाषा का ज्ञाना होना परम आवश्यक है। त्रिभाषा-सूत्र किन्हीं कारणों से उचित ठहराया जा सकता है। परन्तु बालक की मातृभाषा में श्रेष्ठ अभिव्यक्ति करने की क्षमता को कदापि नहीं भुलाना चाहिए।

आज भारत में लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना हुई है। लोकतंत्र में स्पष्ट विचार करने और नये विचारों का स्वागत करने की आवश्यकता होती है। उनके साथ वार्तालाप और लेखन में स्पष्टता होनी चाहिए। अतएव भाषा पर

व्यक्ति का अच्छा अधिकार होना लोकतंत्र में सफल जीवन व्यतीत करने के लिए जरूरी है। इसके द्वारा लोगों को वाद-विवाद करने, अपने मतानुसार विचार व्यक्त करने और विचारों का आदान-प्रदान करने में सहायता मिलती है। अपने प्रभाव को स्थापित करने के लिए तथा स्वस्थ लोकमत बनाने के लिए व्यक्ति में उत्तम अभिव्यक्ति शक्ति होनी चाहिए। लोकतंत्र में प्रचार प्रभावपूर्ण होता है। अस्तु प्रचार के अम्बार से सत्य ढूँढ निकालना तभी हो सकता है जब व्यक्ति का भाषा पर अधिकार हो। अतः आज आवश्यकता है कि मातृभाषा के पठन-पाठन पर उतना ही बल दिया जाये जितना कि प्राचीन काल में वेदों आदि की संस्कृत के पढ़ने पर बल दिया जाता था। भाषा की शिक्षा में डॉ0 रवीन्द्र नाथ टैगोर 'हाव भाव की भाषा' को भी महत्व देते थे। शब्दों के स्थान पर संकेतों से भी बहुत बातें व्यक्त की जा सकती हैं। अतएव पढ़ाते या बोलते समय छात्रों को यह सांकेतिक भाषा भी सिखाई जाये। इससे उनकी अभिव्यक्ति अधिक समृद्ध और शक्तिशाली बनेगी। भाषा का समृद्धिशाली होना अनिवार्य होता है।

प्राचीन भारतीय पाठ्यक्रम में बालक के सर्वांगीण विकास पर भी बल दिया गया था। मानसिक चारित्रिक और नैतिक विकास के साथ शारीरिक विकास भी आवश्यक था। अतएव छात्रों को गुरू आश्रम में श्रम करने का अवसर दिया जाता था। प्रातः उठकर एवं दैनिक कार्यक्रम से निवृत्त होने के पश्चात छात्र आश्रम की स्वच्छता[9], पशुओं की देखभाल[10] और यज्ञ समिधा[11] आदि एकत्र करने में जुट जाते थे। आज शारीरिक व्यायाम की हमारे विद्यार्थियों में प्रायः अवहेलना सी हो गयी है। उसकी समुचित व्यवस्था करना बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। इसके लिए योगासन की पद्धति अपनाई जा सकती है। यह परम्परागत व्यायाम है और आज भी अंग-प्रत्यंग की समुचित क्रियायें कराकर शरीर में स्फूर्ति और शक्ति का संचार कर सकते हैं। प्राणायाम से विशेष कर चित्त की एकाग्रता बढ़ाई जा सकती है जिससे बालकों को अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित करने और अवधान बनाये रखने में सहायता मिल सकती है।

शिक्षण विधियाः-पाठ्यक्रम के विपरीत शिक्षण विधियाँ काल-निरपेक्ष होती हैं। उनका उद्देश्य पाठ्य सामग्री का ऐसा सम्प्रेषण करना है जिससे वह बालक की समझ में आ जायें। विधियाँ प्रायः बाल प्रकृति और पाठ्य सामग्री पर निर्भर करती हैं। बाल-प्रकृति में आदि काल से अब तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। केवल आधुनिक मनोविज्ञान में उसका अधिकाधिक उद्घाटन हुआ है। विषय सामग्री भी उसकी प्रकृति के अनुसार कतिपय वर्गों में विभाजित की जा सकती है और प्रत्येक वर्ग के अध्यापन की पृथक- पृथक विधियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। कालान्तर में इन विषयों की प्रकृति में विभेदीकरण अवश्य हुआ है किन्तु परिवर्तन नहीं इसलिए जिन प्राचीन शिक्षण विधियों का इस सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है। उनमें से अधिकांश आज भी शिक्षण में प्रयुक्त होती है भले ही उनके नामों में परिवर्तन क्यों न हो गया हो। हमारे आचार्यों ने पाठ्यक्रम में सम्मिलित विषयवस्तु को सुबोध, ग्राह्म एवं आकर्षक बनाने हेतु एवं एतदनुरूप ही शिक्षण विधियों का चयन किया था। तत्कालीन समय में अध्यापक शिक्षण की सफलता हेतु मौखिक विधि से सभी प्रारूपों का प्रयोग करते थे। आवश्यकतानुसार दार्शनिक विषयों के कठिन स्थलों को स्पष्ट करने के लिए प्रायोगिक विधियों को भी अपनाते थे। ये विधियाँ वर्तमान समय में प्रचलित अनेक शिक्षा सूत्रों पर आधारित थीं। तत्कालीन शिक्षण प्रक्रिया में मौखिक, पाठ्यवस्तु व्याख्या, सम्बोध, कथा, प्रयोग, निर्देशन, प्रत्यावर्तन, स्वगत कथन, प्रयोजन तथा अनवेषण विधियाँ आदि प्रमुख रूप से अपनायी जाती थीं। उस समय के शिक्षकगण उनके सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष से भलीभाँति परिचित थे। वे आवश्यकतानुसार कक्षा परिस्थितियों के अनुकूल इनमें परिवर्तन और परिवर्धन भी करते थे। अस्तु प्राचीन कालीन शिष्यगण प्रयोग में लाई गयी विधियों का उचित उपयोग करके कठिनतम् पाठ्यवस्तु को स्पष्ट करने में सफल हो जाते हैं। वर्तमान प्रशिक्षण महाविद्यालयों में छात्रों को शिक्षण विधियों के प्रयोग सम्बन्धी उचित मार्ग दर्शन उपलब्ध नहीं हो पाता है। प्रशिक्षणकाल में अधिकांशतः विद्यार्थियों को विशेष शिक्षण विधियों सम्बन्धी सैद्धान्तिक ज्ञान ही प्रदान किया जाता है जबकि इन शिक्षण विधियों का व्यावहारिक ज्ञान नितान्त आवश्यक है।

प्राचीन गुरूजन यह भलीभाँति जानते थे कि सरल से कठिन की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर, दृष्टान्त से सामान्यीकरण की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर आदि ऐसे शिक्षण सूत्र हैं जिनसे पठन-पाठन सरल एवं सुगम हो जाता है। इन्हीं आधारभूत सिद्धान्तों से शिक्षण प्रणालियाँ उद्धृत हुई हैं। आचार्यगण यह भी जानते थे कि बालकों में व्यक्तिगत भेद होते हैं और इसीलिए उन्होंने प्रयोग तथा अन्वेषण विधि का आविष्कार किया था। प्राचीनकाल में प्रचलित परावर्तन विधि, अन्वेषण, विश्लेषण विधि, व्याख्या विधि, संबोध विधि, कथा विधि, विचार विधि, आगमन-निगमन विधि आदि आज भी शिक्षा जगत में यथावत चल रही हैं।

अब प्रश्न उठता है कि इन सभी आधुनिक विधियों की आवश्यकताओं ने किस प्रशिक्षण महाविद्यालय में शिक्षा पाई थी? वे तो मनुष्य थे जिनके तार्किक बुद्धि थी। किन्तु पक्षियों को कौन सा प्रशिक्षण दिया जाता है जो अपने शावकों को जीवनयापन सम्बन्धी सभी प्रकार का प्रशिक्षण दे देते हैं। अतएव आधुनिक काल में शिक्षण- प्रशिक्षण पर इतना बल देना अनावश्यक जान पड़ता है। इस प्रशिक्षण की अनिवार्यता भी प्राथमिक शिक्षा के विकास में पर्याप्त सीमा तक बाधक है। वर्तमान शिक्षा मनोविज्ञान केन्द्रित होना चाहिए जो विवेकशक्ति में तर्कशक्ति का विकास कर सकें। यदि हम प्राचीन भारत की एकल शिक्षण-पद्धति का अनुसरण करें तो सुदूर ग्रामीण अंचलों में भी अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है तो संविधान द्वारा निर्दिष्ट दस वर्षों में पूरा किया जाना प्रस्तावित था किन्तु संविधान लागू होने से अब तक 65 वर्षों के उपरान्त भी उक्त लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका है। तीन सौ से कम जनसंख्या के अधिकांश ग्रामों और बस्तियों में विद्यालय स्थापित करना अपव्ययी समझा जाता है। लघु बालक दूर से विद्यालय में जाकर शिक्षा लेने में असमर्थ होते हैं। अतएव इन ग्रामों में प्राचीन शिक्षा प्रणाली का अनुसरण किया जा सकता है। किसी भी शिक्षित व्यक्ति को निजी पाठशाला खोलकर शिक्षण कार्य करने दिया जाये। उसके जितने भी छात्र प्राथमिक विद्यालय परीक्षा में उत्तीर्ण हों उनके लिए शिक्षक को एक हजार रूपये प्रति छात्र दर से (तत्कालीन मंहगाई दर को दृष्टिगत रखते हुए) अनुदान दिया जाये। इससे अध्यापक प्रयत्न करके निकट के अधिकाधिक बालकों को एकत्र करके अत्यन्त परिश्रम से शिक्षण कार्य करेगा। प्रशासन को भवन, श्यामपट तथा अन्यान्य उपकरणों की चिन्ता नहीं करनी होगी। इस प्राचीन आश्रम पद्धति से छोटे-छोटे ग्रामों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो जायेगा और कृषकों के बालकों के सुविधानुसार पाठशाला का समय निर्धारित किया जा सकेगा। इससे सर्वजन हित में शिक्षा का प्रसार किया जा सकता है।

प्राचीनकाल में 'कंठस्थीकरण पद्धति' पर बहुत अधिक बल दिया जाता था किन्तु आधुनिक काल में उसे बहुत हेय बताया जाता है और मनोवैज्ञानिक उसका बड़ा विरोध करते हैं। उचित ही कहा गया है कि-

''पुस्तकस्था तुया विद्या परहस्ते गतं धनं,
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्।।''

अस्तु विद्या कंठ में होनी चाहिए जिससे आवश्यकता पड़ने पर उसका सदुपयोग किया जा सके। आधुनिक मनोविज्ञान यह स्वीकार करता है कि पन्द्रह सोलह वर्ष की आयु तक पुनराभिव्यक्ति स्मृति (त्मचतवकनबजपवद उमउवतल) बहुत तीव्र रहती है और उस आयु में जो याद कर लिया जाता है वह बहुत दिनों तक स्मृति में बना रहता है। इसलिए लघु कौमुदी, व्याकरण सूत्र आदि बालकों

को कंठस्थ करा दिये जाते थे जो जीवनपर्यन्त रहते थे। आजकल जब छात्र यह भी नहीं जानता कि पुस्तक में कहाँ क्या लिखा है तब उसे कंठस्थीकरण कराना और भी आवश्यक हो जाता है। जब आधुनिक मनोवैज्ञानिक कंठस्थीकरण की मितव्ययी विधियों जैसे आंशिक और पूर्ण-विधि, व्यवधान रहित विधि, सक्रिय एवं निष्क्रिय विधि तथा समूहीकरण लय की चर्चा करते हैं तो समझना चाहिए कि वे कंठस्थीकरण का विरोध नहीं करते। अतः कंठस्थीकरण को आधुनिक समय में भी महत्व दिया जाना चाहिए। इससे कुछ ज्ञान तो बालक के पास रहेगा ही। प्राचीन विद्वान कंठस्थीकरण को सरल बनाने के लिए विषयवस्तु को पद्य में बांधते थे। लय और तुकान्त होने से भाषा मधुर एवं हृदयग्राही बन जाती थी यहाँ तक कि कोष और व्याकरण भी पद्यमय बना दिये जाते थे। स्मृति के इस पक्ष पर आधुनिक समय में बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया है। खाद्य पदार्थों में मिलने वाले तत्वों के सम्बन्ध में जूनियर स्तर पर हमारे विज्ञान शिक्षक ने दो पंक्तियाँ कंठस्थ कराई थीं-

शकर-कार्बो, घी-वसा और दूध-प्रोटीन,
हरी सब्जी में खनिज लवण और विटामिन

आज भी कंठस्थ हैं। इस प्रकार पाठ्य सामग्री को संगठित करने से बालक अत्यधिक सरलता से याद कर लेते हैं। इसी प्रकार कंठस्थीकरण की विषयवस्तु को उच्च कक्षाओं में पद्यबद्ध करना चाहिए, जिससे कि कंठस्थ करने में सरलता एवं बोधगम्यता आ सके। यद्यपि आधुनिक पाठ्यक्रम की विशालता को देखते हुए यह पूर्णतः सम्भव नहीं है। एकल शिक्षण पद्धति होने के कारण 'नायक प्रणाली' का आविष्कार हुआ था। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इस प्रणाली से बेल और लेकास्टर ने इंग्लैण्ड की शाखाओं में शिक्षकों को कम किया था। किन्तु अपनी ही देन को हम आज भूल गये हैं और विद्यालयों में शिक्षकों की कमी का राग अलापते रहते हैं। हमें नायक प्रणाली का प्रयोग अधिकाधिक करना चाहिए। इससे शिक्षकों की कमी का समाधान तो होगा ही, साथ ही नायक छात्र को अपने विषय पुष्टिकरण करने का सुअवसर उपलब्ध होगा। एक जर्मन कहावत है कि- ''यदि आप कोई विषय सीखना चाहते हैं तो उसे पढ़ाइये अथवा उस पर ग्रन्थ लिखिये।'' इसके अतिरिक्त छात्र को शिक्षण-प्रशिक्षण भी मिलता रहेगा। क्योंकि वह पढ़ाने का कार्य अपने अनुभवी शिक्षक के पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण में करेगा। इससे कार्य कुशलता बढ़ेगी और विद्यालय व्यय कम होगा। विचार-विमर्श, वाद-विवाद, वार्तालाप और शास्त्रार्थ आदि विधियाँ जो उच्च कक्षाओं में बहुत प्रचलित थीं। आज हमारे महाविद्यालयों से लुप्त हो रही हैं। इनके द्वारा विद्यार्थी दूसरों से बहुत कुछ सीखता था तथा अपने ज्ञान के प्रयोग को तत्पर बनाता था। इससे यह भी ज्ञात हो जाता था कि विद्यार्थी के ज्ञान में कहाँ कमी अथवा त्रुटि है, जिससे कि उसका सुधार किया जा सके। वाक् शक्ति भी सुदृढ़ सुव्यवस्थित और विस्तृत बनती थी तथा अपनी बात को पुष्ट करने के लिए अपने मस्तिष्क के ज्ञान भण्डार से उपर्युक्त बातों को शीघ्रतापूर्वक स्मरण कर लेने की आदत पड़ती थी। प्राप्त ज्ञान का किस तरह प्रस्तुतीकरण किया जाये कि उससे कार्य सिद्ध हो सके, इसका भी अभ्यास होता था। अतएव इन पद्धतियों का आधुनिक शिक्षा में प्रयोग करना उचित होगा। इन विधियों का प्रयोग स्मृति शक्ति का विकास कर सकता है। परन्तु आजकल प्रायः देखा जाता है कि बालकों को गणित, विज्ञान तथा साहित्य आदि के प्रत्ययों को ठीक समझदारी नहीं हो पाती है। परीक्षायें उत्तीर्ण कर लेने पर भी वे उनकी भ्रामक धारणायें अपनाये रहते हैं। प्राचीन भारत के शिक्षण में प्रत्यय का ठीक-ठाक निर्माण करना शिक्षण का एक महत्वपूर्ण अंग था। इसके लिए 'संबोध विधि' का प्रयोग होता था। इस विधि के श्रवण, मनन और निदिध्यासन आदि तीन चरण थे। श्रवण के अन्तर्गत छात्र शिक्षक से नये प्रत्यय के सम्बन्ध में सुनता था तदनन्तर वह एकान्त में इस प्रत्यय के सम्बन्ध में मनन करता था जिससे वह प्रत्यय के विभिन्न अवयवों पर विचार करके उसकी अन्य प्रत्ययों से तुलना करता था। प्रत्यय के स्पष्ट हो जाने के उपरान्त वह इस पर निदिध्यासन अथवा उसकी अनावरत आवृत्ति करता था और प्रत्यय अर्थ आकार को आत्मसात कर लेता था। प्रत्यय ठीक बनने में ही ज्ञान का सम्यक बोध होता है। अतएव बालकों के स्पष्ट तथा शुद्ध प्रत्यय निर्माण पर आज की शिक्षा में बल देना चाहिए।

इसी प्रकार चीनी यात्री इत्सिंग ने लिखा है कि- ''यदि मुझे नालन्दा विश्वविद्यालय में उपाध्यायों के समीप रहकर ज्ञानार्जन करने का सुअवसर न मिला होता तो शायद मैं इतना अधिक ज्ञानार्जन न कर पाता।'' वैदिक काल में भी शिष्य- गुरू के समीप बैठकर ही ज्ञान प्राप्त करता था। आज की साठ-पैंसठ छात्रों की कक्षा में शिष्य और गुरू का समीप आना दुर्लभ हो गया है। इस न्यूनता का अनुभव करके ही आजकल ''ट्यूटोरियल'' प्रणाली से पढ़ाने की अपेक्षा की जाती है, किन्तु वास्तव में यह अनुशिक्षण ही नहीं हो पाता है। प्राचीन काल के गुरू की निकटता के सिद्धान्त को आज भी वरीयता देना आवश्यक है, जिससे छात्र की व्यक्तिगत कठिनाइयाँ दूर हो सकें और शिक्षक के चरित्र का प्रभाव शिष्य पर पड़ सके।

प्राचीन युग के तीनों काल खण्डों में 'प्रयोजन विधि' का प्रयोग होता रहा है। इसका प्रमुख उद्देश्य पठित ज्ञान को क्रियात्मक रूप देना रहा है। उदाहरणार्थ- वैदिक काल में यज्ञ आदि सम्पादन के लिए शिष्यों को वेदी आदि का निर्माण करना पड़ता था जिसमें स्थान चयन, मापन, चित्रांकन तथा गणना आदि सभी क्रियायें करनी पड़ती थी। अतएव प्रत्येक पाठ्य इकाई के पश्चात् उससे सम्बन्धित प्रयोगात्मक क्रियाओं को कराना आवश्यक है। आधुनिक काल में प्रचलित इकाई-शिक्षण-पद्धति के अन्त में चरमावस्था आती है जिसमें समापन की क्रिया होती है जो दिये नये समस्त ज्ञान को कार्य अन्तस्थ हो जाता है। इसी प्रकार की कोई क्रिया प्रत्येक पाठ इकाई के बाद कराई जानी चाहिए जिससे बालकों में ज्ञान को क्रियान्वित करने का विवेक उत्पन्न हो सके।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन पाठ्यक्रम और पद्धतियों का आधार शिक्षण के उत्तम सिद्धान्तों पर बनाया गया था। लिखने की सामग्री के अभाव के कारण ही बहुत सी मौखिक पद्धतियों का प्रयोग होता था जिनमें से बहुत कालजयी हो गयी हैं। पाठ्यक्रम समय की आवश्यकताओं के अनुसार था, किन्तु उसके निर्माण के सिद्धान्त आजकल के सिद्धान्तों से बहुत भिन्न नहीं हैं। हम आधुनिक शिक्षा में उन सिद्धान्तों और पद्धतियों का उपयोग कर सकते हैं, जिससे शिक्षण के स्तर को उन्नत करने में सहायता मिलेगी।

सन्दर्भ सूची :-

1. शतपथ ब्राह्मण 11,5,6,8
2. आर0के0 मुखर्जी-एन्शियेन्ट इण्डियन एजूकेशन, पृष्ठ-110
3. वही0 पृष्ठ-110
4. विनय चुल्लवग्ग 5,33,2
5. जातक 1,356
6. आर0के0 मुखर्जी-एन्शियेन्ट इण्डियन एजूकेशन, पृष्ठ-110
7. वही0 1,3
8. वही0 1,4
9. शतपथ ब्राह्मण 3,62,15
10. वही, 11,4,1,9
11. अथर्ववेद 11,5

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

आधे अधूरे का अधूरापन

डॉ. मीनाक्षी

सहायक प्राध्यापक, हिंदी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवानी

अधूरापन जीवन में हो या किसी वस्तु विशेष में अंतर मन में बेचैनी का कारण ही बनता है अनिश्चित और घटनाहीन संदर्भ, जीवन को पूरे पन अर्थात परिपूर्णता से जोड़ने से बेजोड़ प्रयास हैं,यहि मोहन राकेश के आधे अधूरे की पृष्ठभूमि है राकेश के दोनों नाटकों में यह नाटक भिन्न स्तर व अलग स्वर का है वर्तमान में जिस जीवन के सहभागी हम सभी हैं इसी आज के मनुष्य की अनियंत्रित और गणित यंत्र नाम के यथार्थ को रेखांकित करता है आधे अधूरे आधुनिक यथार्थ की भूमि पर आधुनिक बोध के स्वर को उद्घाटित करता है आधुनिक जीवन में आम आदमी जिन व्यवस्थाओं और अभिशप्त जीवन स्थितियों का शिकार है इस नाटक की कथावस्तु में यही स्थितियां ही निरूपित होती हैं यह पूरी तरह से यथार्थ संदर्भों से युक्त है और आधुनिक बोध की सीमाओं में अंतर निहित है यथार्थ में जीवन में संवेदनाएं मर रही हैं एक अजीब शून्यता में घेराबंदी कर रखी है खूब है तो कहीं, अजनबी पन है यही दोनों चीज जीवन में घर करती जा रही हैं या यूं कहें कि कर चुकी है अलगाव अपनी जड़ों को गहरा करने में लगा है सब कुछ है इस नाटक में अधूरापन ही इस नाटक के कथा के केंद्र में है यदि चरित्र पर हीसूक्ष्म दृष्टिपात करते हैं तो सावित्री में आधुनिक नारी की स्थितियां उजागर होती हैं रोजी-रोटी स्टेटस इन सब से दो दो हाथ होती हुई वर्तमान में स्त्री कितने समझौते करती है, कितनी चुनौतियों से जद्दोजहद करती है।

पैसा कमाने और रुतबे की दौड़ में कभी बच्चे पीछे छूट जाते हैं, तो कभी पारिवारिक व पारंपरिक संस्कार पीछे छुटजाते हैं, कभी संबंधों के मूल्य पीछे रह जाते हैंप् एक रिक्त तथा बराबर सी जीवन में बनी हुई है सावित्री में भी और वर्तमान की प्रत्येक सावित्री में भी सब पूरेपन धीरे-धीरे अधूरेपन में परिवर्तित होने लगते हैं सावित्री की पूरे पन की खोज और भटकाव दोनों में ही आधुनिकता का बोध निहित है महेंद्र नाथ को देखें तो पारिवारिक सीमाओं को तोड़कर बाहर आने की बाहर आने की जो छटपटाहट उसमें है वही छटपटाहट शत प्रतिशत वर्तमान परिवेश में भी मौजूद है वही शून्यता का भाव, वही निरर्थकता से भरे मार्ग, जिन पर आम आदमी चलने को अभिशप्त है वर्तमान में ज्यादातर संबंधों की परिणीति का आईना है आधे अधूरे नाटक का समग्र नाटक के प्रमुख, गोण समस्त पात्र इसी अधूरेपन का शिकार है बिल्कुल वैसे, जैसे तमाम सुख सुविधाओं से लेंस व्यक्ति भी अंजानी छटपटाहट का शिकार रहता है यह नाटक वर्तमान में मौजूद विसंगतियों का कच्चा चिट्ठा है और आश्चर्य जनक है कि इस नाटक के चित्र पत्रों के अलावा,समाज में अधूरेपन का शिकार वर्ग मानव इसी नाटक का ही पात्र है जीवन के अति सामान्य सुख सुविधाओं से वंचित मध्यम वर्ग का परिवार इस नाटक के केंद्र में है प्राइस देखा गया है कि मध्यम वर्गीय पत्र असंतोष और अट्रपति अधूरेपन से ग्रसित है पति-पत्नी के संबंध में संवेदनहीनता है, संवाद शून्यता हैप् मां बेटी पिता पुत्र ऐसे लगता है जैसे सब संबंध नाम की जकड़न से जकड़े हुए हैं संबंध भाव नहीं अपितु बंधन यानी परतंत्रता का पर्याय हो गया है आधे अधूरे के पत्र और स्थितियां तो मानो वर्तमान की मध्यम वर्गीय दुखती रग है ज्योतिष इस नाटक में पत्र भोगते हुए नजर आते हैं वही बेकरी बेचौनी हम आसपास के परिवेश में महसूस करते हैं यहां नारी पुरुष की ठंडी पड़ती संवेदनाओं के विघटन की कहानी है मध्यम वर्ग के लोगों की स्थितियां इसमें इतनी गहनता से चित्रित हुई है की कथा आयामों को सीधे-सीधे समाज से जोड़ती हैं वर्तमान में जीवन संबंधों के तनावों का शिकार है सहर्ष बने संबंध अचानक उबाऊ पन का और अलगाव बाग का निशाने पर आने लगते हैं आधी अधूरे तनाव और लगाव का चित्र है वर्तमान की स्थितियों पर शत प्रतिशत साबित होता हुआ दस्तावेज हैं बिन्नी और मनोज का तनाव तो सांकेतिक तनाव है वर्तमान में चलन है कि टीनएज और एडल्ट जैसे शब्दों का उम्र की इस अवस्था पर पहुंचकर जैसे बालक अपने पूर्ण जीवन का स्वामी हो जाता है श्विल करोश् कि इस नवीन संस्कृत में मध्यम वर्ग के यह बच्चे सामंजस्य नहीं बिठा पाते हैं ना परंपराओं को वहां कर पाते हैं और ना ही उन्हें सहन परिंदों की तरह स्वच्छंद उड़ने की कामना रखते हैं पर स्थिति वसंत पाठ पर कटे परिंदों का जीवन उनके हिस्से में आता है ना वह पुराने रह पाते हैं और ना वह आधुनिक हो पाते हैं बांधों को खेलने उन्हें पहना और उन्हें ही उड़ाते हैं जहां तक दांपत्य संबंधों की बात है तो निसान द अर्थ की आजीविका अस्तित्व की मांग तो करती है समानता के नाम पर संबंध कब मनमानी उडन्ता के शिकार हो जाते हैं इस बात का आभास समाज में तब भी नहीं हो पाता और नाटक में भी घुटन, तनाव, बढ़ती दूरियां, रोते पीटते जिंदगी व्यतीत होने लगती है पुरुष अपनी जगह विवश है वह असंतुष्ट है पितृ सत्ता को आघात पहुंचता देखकर चित्र विचित्र है और स्त्री अपनी जगह कुंठित है संबंधों को सामाजिकता के नाम पर धोने के लिए लाचार है और असंतुष्ट है चाहते हुए भी वह एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हो पाए और यही स्वतंत्रता उडन्ताका दामन था में मूल्य विघटन के पथ पर अग्रसर हो जाती है इस स्तर पर यह नाटक मानवीय जिवंगत प्रवृत्तियों की कुर्ताओं को भी सांकेतिक ढंग से शत-प्रतिशत चित्रित करता है मानवीय असंतोष मनुष्य का अधूरापन इन दोनों पहलुओं को चित्रांकित करता है सामान्यतः मनुष्य अपने जीवन में अपनी असीम आकांक्षाओं के अनुरूप बहुत कुछ हासिल करना चाहता है परंतु स्थिति बरसात ज्यादातर चीजों में वह सफल नहीं हो पता उसके अंदर असंतोष अटरिया वैकुंठ धीरे-धीरे घर करने लगते हैं सावित्री का जीवन इसी यथार्थ का जीवंत उदाहरण है और यह सावित्री वर्तमान में भी ऐसी ही कुंठाओं की

शिकार स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है उसे सब कुछ अधूरा व अपूर्ण आभासित होता है और इसी के परिणाम स्वरूप निराशा दिनों दिन गहराती चली जाती है सावित्री की प्रत्येक असफलता उसे अपने परिवेश व घर के सदस्यों के प्रति और ज्यादा उग्र बनने की भूमिका अदा करती है नाटक में चित्रित अनेक पत्र भले ही अलग-अलग किरदार में अलग-अलग भूमिका में दृष्टिगोचर होते हैं परंतु उनमें एक विशेष समानता यह है जो उनका अधूरापन है घर में एक साथ रहते हुए भी परिवार के सदस्य मानो अजनबी पन का ग्रास हूं अलगाव वाद के शिकार हूं वर्तमान समाज इन्हें तमाम विसंगतियों के चक्रव्यूह में उलझा हुआ है पारिवारिक स्थितियों ढके ढोल सी है देखने पर समृद्ध दिखने वाले खुशहाल गैरों में भी एक अधूरापन अपनी छाया बिखरे हुए हैं जिसका सीधा सा कारण अत्यधिक महत्वाकांक्षा है भौतिक सुखों की दौड़ है स्वार्थ पड़ता है उत्पादवाद है इस अधूरे पन्ने एक अत्यंत गहन अवसाद को तो जन्म दिया ही है तथा ऐसे वातावरण को उत्पन्न कर दिया है जहां परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही घर में अपनेपन का आभास ही नहीं होता अपना ही घर उन्हें अपना महसूस नहीं होता पति-पत्नी के बीच की कटुता बेगानेपन की छाया विकृति है जिस घर का प्रत्येक सदस्य प्रभावित हुआ है दांपत्य संबंधों की टूटन परिवार व नई पीढ़ी के लिए मूल्य व आदर्शों की टूटन का केंद्र बनती हैइन संबंधों का केंद्र बिंदु सावित्री व उसका पति या वर्तमान के दांपत्य संबंध यह सभी हैं जो पूरे परिवार को दिशा भ्रमित करते हैं नाटक में एक बार एहसास होता है कि जैसे कि घर के आर्थिक हालात सुधरने पर शायद सब कुछ सही और सुगम हो जाएगा परंतु यह भ्रम ज्यादा देर तक अपने अस्तित्व में नहीं रह पाता संबंधों के इस अलगाववाद का एक ही परिणाम सामने आता है कि सब घर के भीतर होकर भी जैसे घर के बाहर हैं घर कैद जैसा प्रतीत होता है जहां भीतरी कुंठा उडन्ता को ही स्वतंत्रता मां बैठी है कड़वा सत्य यह है की बड़ी लड़की को तो घर चिड़ियाघर जैसा प्रतीत होता है उसे लगता है कि वह एक पिंजरे में कैद है उसे अपनी नियति अभिशप्त सी मालूम पड़ती है वह अपने सपनों को उड़ाने का आकाश देना चाहती है परंतु परिस्थिति बरसात वह पूर्णतया असफल स्थापित होती है ठीक है अभिशप्त महेंद्र सावित्री आदि किरदार महसूस करते हैं सब अपने अंदर एक पूर्णता की खोज का प्रयास करते हैं लेकिन लेकिन इसी पूर्णता की खोज उसे आधा अधूरा महसूस करवाती है एक लाचारगी इकलिजली जापान उसके व्यक्तित्व में बसा हुआ है पूर्णता की खोज अपने आप में निजता की खोज है और निजता की खोज संबंधों की खोज है संबंधों की खोज आत्मीयता की खोज है आत्मीयता की खोज संतोष वृद्धि जीवन की खोज है और इन सब का अभाव ही आधे अधूरे नाटक का वह वर्तमान विसंगतियों से जूझते व्यक्ति का अधूरापन है यही अधूरापन नाटक के केंद्र में है और यही अधूरापन भौतिकतावादी सोच के पीछे भाग रहे व्यक्ति के जीवन में है यही कारण है कि अधूरापन अभिशप्त करता रहता है।

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

त्रिलोचन के काव्य में ग्रामीण चरित्र
विशेष संदर्भ :- ताप के ताए हुए दिन और उस जनपद का कवि हूँ, काव्य संग्रह

सत्यनारायण मीणा

सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, देवली, टोंक, राजस्थान

सारांश :-त्रिलोचन शास्त्री हिंदी साहित्य के समकालीन कवियों में अपने सॉनेटके लिए जाने जाते हैं। सॉनेट के विदेशी कलेवर में त्रिलोचन ने ठेठ भारतीय ग्रामीण जीवन के चरित्रों को ढाला है।लोकजीवन के पात्रत्रिलोचन की कविताओं बार-बार आते है और अपनी अलग पहचान बनाते है इन पात्रों की विशेषता यह है कि अपने आप में विशिष्ट होते हुए भी यहअपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा लोकजीवन को अभिव्यक्त करते हैं। कवि स्वयं को कविता के केंद्र में रखकर आत्मकथात्मक कविता लिखता है-तब वह आम भारतीय ग्रामीण जीवन की ही प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करता है।

बीज शब्द :- सॉनेट, संगठित वोटबैंक, लोकतंत्र, जाति भेद,अभाव और उपेक्षा, मध्यमवर्गीय व्यक्ति अकेलापन, शोषित, शोषण

शोध पत्र :-

'हैं मानव इतने सारे
क्यों यह असहाय हुए
अलग-अलग हारें'[1]

त्रिलोचन की इन पंक्तियों में भारत के ग्रामीण समाज की एक बड़ी कमजोरी को पकड़ा गया है। हमारे देश की सत्तर फीसदी जनता गांव में रहती है। परंतु वह संगठित नहीं है। लोकतंत्र में संगठित वोट बैंक अपनी ताकत रखता है। ग्रामीण लोगों में अपनी समस्याओं को लेकर जागरूकता तो हुई है। परन्तु एक दूसरे से संवाद की कमी दिखाई देतीहै। त्रिलोचन सवाल उठाते हैं कि 'इतने सारे मानवंहोकर भी यह 'क्यों हारे हैं? जवाब है-'संगठन का अभावं। जनता को धर्म-सम्प्रदाय,जाति,क्षेत्र आदि में बाँट दिया गया है। त्रिलोचन के समकालीन कवि शमशेर बहादुर सिंह की मशहूर कविता 'बात बोलेगीको देखें तो उसमें भी लगभग इसी समस्या को कवि ने मुख्य माना है-

'दैन्य दानवकाल भीषण
कंगाल बुद्धि-घर मजदूर
एक जनता का अमर वर-
एकता का स्वर
अन्यथास्वातंत्र्य इति'[2]

लगभग इसी तरह के भाव रघुवीर सहाय की कविता 'आपकी हंसीमें भी है। यहाँ भी शोषणकारी तत्वों को पता है कि जनता संगठित नहीं है औरंअकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इसीलिए वह दशोषकङ्ग प्रसन्न है-

'निर्धन जनता का शोषण है
कह कर आप हंसे
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है
कहकर आप हंसे
कितने आप सुरक्षित होंगे
मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हंसें'[3]

त्रिलोचन,प्रयोगवाद और नई कविता के दौर में लिख रहे थे। परन्तु उनकी काव्य अनुभूति नई कविता से अलग है। नई कविता मुख्य रूप से शहरी जीवनशैली से उत्पन्न मनोभाव एवं मध्य वर्ग को आधार बनाकर लिखी गई थी। इस संबंध में त्रिलोचन की कविता को अन्य कवियों की कविताओं से अलगाते हुए डॉक्टर गोविंद प्रसाद ने लिखा है। आयातित या उधार के पाउडर से कविता का मुख लेपन करना उन्हें पसंद नहीं है। फैशन वाली आधुनिकता को वे नकारते हैं-उनकी आधुनिकता तो फैशन से कटे-कटे रहने में ही रही है।'[4] त्रिलोचन के ग्रामीण चरित्रों की अगर बात की जाए तो वे दकविङ्गस्वयं को भी एक चरित्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने बहुत सी आत्मकथात्मक कविताएं लिखी है। इसका अच्छा उदाहरण उनकी मैं-तुमंकविता है। गांव के व्यक्ति की सारी समस्याओं और दुखों को कवि महसूस तो करता ही है]उसे भोगता भी है-

'मैं तुम्हारे खेत में
तुम्हारे साथ रहता हूं
ताप के ताए हुए दिन-पृ-60

त्रिलोचन जब स्वयं को विषय वस्तु बनाकर कविता लिखते हैं तो व्यापक सामाजिक सच्चाई का उद्घाटन करते हैं। एक कविता में कहते हैं -

चीर भरा पाजामा
लट लट कर गलने से
छेदों वाला कुर्ता
रूखे बाल उपेक्षित
दाढ़ी मूछ सफाई कुछ भी नहीं'[5]

जिसके वस्त्र फट चुके हैं। कुर्ता छेदों से भरा है। बाल रूखे हैं। यही भारतीय गांव के आम आदमी की तस्वीर है। जिसको जीवन की मूलभूत सुविधाएं-रोटी,कपड़ा, मकान,शिक्षा और स्वास्थ्य उपलब्ध नहीं है। त्रिलोचन ऐसी कविताओं में अपने बहाने आम ग्रामीण चरित्रों की वास्तविक स्थिति बताते हैं। नागार्जुन के यहां भी इस बदहाली के प्रति आक्रोश है। परन्तु दोनों कवियों की अभिव्यक्ति में अंतर भी है। त्रिलोचन आक्रामक नहीं होते,जबकि नागार्जुन में आक्रामकता,परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा और नकार का भाव अधिक है। एक कविता उदाहरण के लिए-

'मन करता है

नंगा होकर कुछ घंटों तक सागर तट पर मैं खड़ा रहूं
यों भी क्या कपड़ा मिलता है
धनपतियों की ऐसी लीला !
मन करता है
नंगा होकर दूं आग लगा–जो पहन रखा है उसमें भीं[6]

'चंपा काले काले अक्षर नहीं चिह्नतीकविता 'धरतीकाव्य संग्रह में संकलित है। कविता में आए तद्भव शब्द इसे ग्रामीण परिवेश से जोड़ते हैं। कविता का अंत इस प्रकार होता है–

'मैं तो अपने बालम को संग साथ रखूंगी
कलकता मैं कभी ना जाने दूंगी
कलकता पर बजर गिरें[7]

इस कविता में पढ़ाई के महत्व को तो बताया ही गया है। साथ में एक गहरा दु:ख भी है। जो 'कलकता पर बजर गिरेंपंक्तियों में दिखाई देता है। बेरोजगारी कलकत्ते ले जाती और स्त्री अकेलेपन की जिंदगी जीने के लिए अभिशप्त होती है। इस कविता के बारे में नामवर सिंह ने लिखा है।चंपा के लहजे में गँवई गांव के एक बेपढे लिखे आदमी की स्वाभाविक सहजता और प्रमाणिकता है, धूमिल के मोचीराम से कहीं अधिक।[8] त्रिलोचन की 'नगई मेहरा कविता ने सर्वाधिक ध्यान खींचा है। 'नगई मेहराएक लंबी कविता है। कविता का नायक नगई है। जिसको कवि ने कहार जाति का बताया है। यह कवितातिाप के ताए हुए दिनकाव्य–संग्रह में संकलित है। कविता जाति व्यवस्था की सच्चाई को प्रकट करती है। नगई बोला,जाती गंगा ने मुझे पावन कर दियां। हमारे देश की सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी बना दी गई है कि जाति के बाहर व्यक्ति अपने को अकेला खड़ा पता है। इसलिए कवि को बापू की याद आती है–

'बापू तुम होते तो कितना अच्छा होता
बिना तुम्हारे सूना–सूना सा लगता हैं
'उस जनपद का कवि हूं पृ–सं–67ङ्क

कवि ने आगे यह भी स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपिंतुमसे मेरे मन का मेल ना होतां। जहां तक जाति भेद का सवाल है–साहित्यकार इससे आदिकाल से जूझते रहे हैं।आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है। जाति भेद से जर्जरित इस देश में जो कोई महानायक आया है उसे यह प्रथा खटकी है।'[9] नगई अपने सगे भाई की सास को घर में बैठा लेता है। इस पर गांव की एक तथाकथित उच्च वर्ग की स्त्री ने नगई की पत्नी पर व्यंग्य किया तो वह कहती है।'बुआ अपनी ओर ही निगाह करोंसुनकर बुआ कहती है–'कौन नीच जाति के मुहँ लगें[10] इन पंक्तियों में वही पीड़ा है। जिसकी अभिव्यक्ति आज के दलित साहित्यकार कर रहे हैं। जन्म आधारित जाति व्यवस्था को लेकर अपमानित करने का भाव और सहने की पीड़ा। नागार्जुन की 'हरिजन गाथा कविता भी जातीय अत्याचार का मार्मिक एवं आक्रोश युक्त चित्रण प्रकट करती है। फणीश्वर नाथ रेणु ने लिखा है कि यहां नाम पूछने के तुरंत बाद ही लोग जाति पूछते हैं।नाम डॉक्टर प्रशांत कुमार– जात? नाम पूछने के बाद ही लोग यहां जात पूछते हैं। जात बहुत बड़ी चीज होती है। जात–पांत नहीं मानने वालों की भी जाति होती है।'[11] त्रिलोचन के यहां केवल शोषित वर्ग ही नहीं है। शोषण करने वाले चरित्र भी हैं। ग्रामीण चरित्रों में केवल शोषित ही नहीं होते। 'राम चंद्र दुबैंकविता शोषणकारी चरित्रों का प्रतिनिधित्व करती है। सूदखोरी गांव में सूरदास के जमाने से चली आ रही है। हो सकता है– उससे भी पहले हो। परंतु सूरदास ने इस कुप्रथा को चिन्हित किया।[12] रामचंद्र दुबे ने किसी को पैसा दिया था 'ब्याज नहीं आयाइसी से 'ब्राह्मण भाव पर आ गएं–'प्राप्ति नहीं दिखी तो ब्राह्मण भाव आ गएज्ज्न्याय देवता करें इसलिए बाल रखायां[13] त्रिलोचन संचयिता पृष्ठ सं–257। यह ब्राह्मण भाव प्रेमचंद के यहां भी है।'सवा सेर गेहूं'[14]कहानी में गांव में न जाने कितने रामचंद्र दुबे है। खास बात यह है कि यहां आर्थिक शोषण धर्म के नाम पर किया जा रहा है। 'इंदो आई थींकविता में इंदो नाम की बालिका के असमय वृद्ध हो जाने का दुःख प्रकट किया गया है। इंदो का बाल विवाह हो जाने के कारण सारा बचपन गायब हो जाता है। सारी चंचलता नष्ट हो जाती है। खेलने कूदने के दिनों में उस पर परिवार का बोझ डाल दिया जाता है–

' इंदो आई थी पहले मैंने पहचाना
नहीं–बताया उसकी मां ने देखा–
गोदी भरी हुई है–आया मुझको याद जमाना
गुजरा हुआ.... तूने तो खो दी
अपनी पूंजी–कहां गई तेरी चंचलता
वह नटखट.... बूढ़ी तू असमय बन बैठीं
उस जनपद का कवि हूँ पृ–सं–92

'इंदो 'उन समस्त बच्चों की प्रतिनिधि है– जो कच्ची उम्र में विवाह हो जाने से वृद्धावस्था एवं जिम्मेदारियों की शिकार हो जाते है। जिमका बचपन गायब हो जाता है और स्वास्थ्य तबाह। हिंदी पट्टी के प्रदेशों में यह कुप्रथा आज भी जारी है। राजेश रेड्डी ने लिखा है–

'वक्त से पहले पक जाती है कच्ची उम्र
मुफलिसी नाम है बचपन में बड़ा होने का'[15]

हिंदी के समकालीन कवियों ने अपने अकेलेपन की अनुभूति को अपने काव्य में बहुत ज्यादा दिखाया है।यह अकेलापन शहरी मध्यमवर्गीय व्यक्ति का अकेलापन है। त्रिलोचन ने 'आरर डालंकविता में एक मजदूर व्यक्ति के अकेलेपन को दिखाया है–यह मजदूर गांव से रोजगार की तलाश में शहर आता है और यहाँ आकर बहुत अकेलापन महसूस करता है –

' सचमुच इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई
झूठ क्या कहूँ पूरे दिन मशीन खटना
बासे पर आकर पड़ जाना...'
उस जनपद का कवि हूंपृ–सं–46ङ्क

इस कविता के बारे में मैंनेजर पांडे ने लिखा है।आधुनिकतावाद के दौर में मध्यमवर्गीय व्यक्ति के परायापन को कविता और कहानी में बहुत फेंटा गया है परंतु मजदूर का परायापन 'आरर डालं कविता में ही है।'[16]

आलोचनात्मक पक्ष:–त्रिलोचन की कविता में ग्रामीण पक्षों को लेकर एक कमी भी दिखाई देती है। कविताओं में ग्रामीण चरित्रों के जीवन का एकपक्षीय चित्रण अधिक दिखाई देता है। त्रिलोचन उसमें केवल दुःख और समस्याओं का चित्रण अधिक करते हैं। ग्रामीण जीवन के मार्मिक पक्षों को अधिक अभिव्यक्ति दी गई है।इसका कारण भी स्वयं कवि ने 'दिगंतमें बताया है–

...अगर न हो हरियाली कहां दिखा सकता हूं?
फिर
आंखों पर मेरी
चश्मा हरा नहीं है–यह नवीन अय्यारी
मुझे पसंद नहीं है....[17]

प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु के यहां जो ग्रामीण पत्र आते हैं।

उनमें दुखों के साथ-साथ ग्रामीण जीवन का उल्लास और उमंग भी है।

त्रिलोचन ग्रामीण प्रकृति के सौंदर्य पर भी कविता लिखते हैं परंतु वहां के लोगों की जब बात आती है। तब उनकी नजर ग्रामीण जीवन के कष्टों की ओर ही अधिक जाती है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि त्रिलोचन ने स्वयं अभाव और उपेक्षा का जीवन जिया था। ग्रामीण समाज में भी अधिकांश लोग अभाव का ही जीवन जीते हैं। उनकी कविताओं का मूल भाव यदि उन्हें के शब्दों में बताना हो तो -

'भाव उन्हीं का सबका है जो थे अभावमय
पर अभाव से दबे नहीं,जागे स्वभावमय।
दत्रिलोचन संचयिता पृष्ठ सं- 259

संदर्भ सूची:-

1. ताप के ताए हुए दिनं,त्रिलोचन,संभावना प्रकाशन,रेवती कुंजहापुड़ पहला संस्करण-1980 ई-पृष्ठ संख्या-36
2. 'प्रतिनिधि कविताएं,शमशेर बहादुर सिंह,बात बोलेगीं कविता,प्रकाशक राजकमल दरियागंज दिल्ली,संस्करण- 2007 ई-पृष्ठ संख्या-43
3. 'प्रतिनिधि कविताएं,रघुवीर सहाय,संपादक-सुरेश शर्मा, राजकमल प्रकाशन दरियागंज दिल्ली,संस्करण-2006 ई-पृष्ठ संख्या-7
4. 'त्रिलोचन के बारे मैं, संपादक-गोविंद प्रसाद,वाणी प्रकाशन दिल्ली,प्रथम संस्करण-1994 ई-की भूमिका से
5. 'उस जनपद का कवि हूं, त्रिलोचन- राधा कृष्ण प्रकाशन दरियागंज दिल्ली संस्करण 1982 ई-पृष्ठ संख्या-12
6. प्रतिनिधि कविताएं, नागार्जुन- संपादक-नामवर सिंह-राजकमल प्रकाशन दिल्ली संस्करण-2006 ई-पृष्ठ संख्या-92
7. त्रिलोचन संचयिता,संपादक-ध्रुव शुक्ल- वाणी प्रकाशन- दिल्ली- प्रथम संस्करण- 2002 ई-पृष्ठ संख्या-313
8. 'त्रिलोचन के बारे मैं संपादक-गोविंद प्रसाद-वाणी प्रकाशन दिल्ली-प्रथम संस्करण-1994 पृष्ठ संख्या-80
9. हिंदी साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- राजकमल प्रकाशन दिल्ली- संस्करण-2000 ई-पृष्ठ सं-12
10. 'ताप के ताए हुए दिनं, त्रिलोचन-संभावना प्रकाशन-रेवती कुंजहापुड़ पहला संस्करण-1980 ई-पृष्ठ संख्या-39
11. 'मैला आंचलं, फणीश्वर नाथ रेणु- राजकमल प्रकाशन दिल्ली- संस्करण 2007 ई
12. 'सूरदास के मन पर ऋण प्रथा की क्रुरता का इतना गहरा प्रभाव है कि वे गोपियों की विरह वेदना की गंभीरता व्यक्त करने के लिए उसका लाक्षणिक उपयोग करते हैं-सूर मूर अक्रुर ले गए ब्याज निबेरत उधौंभक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्यं, मैनेजर पांडे- वाणी प्रकाशन दरियागंज-दिल्ली संस्करण 2003 ई-पृष्ठ संख्या 294
13. मूलधन मिल चुका है केवल ब्याज नहीं मिला है।
14. प्रतिनिधि कहानियां, प्रेमचंद-संपादक- भीष्म साहनी- राजकमल प्रकाशन दिल्ली- संस्करण-2007 ई-पृष्ठ संख्या-58
15. 'हंसं पत्रिका- संपादक- राजेंद्र यादव- अंक- नवंबर 2009 ई- अक्षर प्रकाशन- दरियागंज दिल्ली-पृष्ठ संख्या-144

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

'सावित्री व्रत का समापन' कहानी में पितृसत्ता का प्रतिरोध

अमृता सी एस

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन, केरल

भारतीय दलित कार्यकर्ता कुमुद पावड़े ने 'सावित्री व्रत का समापन'शीर्षक कहानी पितृसत्तात्मक समाज में अपने अधिकारों से अनभिज्ञ स्त्रियों को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। पितृसत्तात्मक पुरुष-प्रधान समाज में वंश पिता के नाम से चलता है तथा पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी पुत्र होता है। स्त्रीवादी दृष्टिकोण से देखा जाए तो पितृसत्ता का अर्थ असमानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्थिति से है। 'स्त्रीवादी समाज शास्त्रियों ने इसकी तीन तरह की भूमिका को दिखाया है। एक तो यह कि यह विचारधारा के रूप में काम करती है। इसका विचारक लाकाँ है,वह कहता है कि समाज की संस्कृति पर पुरुष लिंग का वर्चस्व होता है, कुछ ऐसा कि ज़रूरत पड़ने पर पुरुष अपने लिंग का प्रयोग स्त्री पर हथियार के रूप में करता है। दूसरे यह कि पुरुष सत्तावाद का आधार परिवार व्यवस्था है, जिसमें पुरुष स्त्री पर दबदबा आर्थिक, सांस्कृतिक और सम्भोग क्रिया के आधार पर कायम करता है। ऐसे में विवाह का संविदा वास्तव में मजदूर बनाकर स्त्री श्रम पर नियंत्रण कायम करना है।'[1] लिंग के आधार पर पितृसत्तात्मक समाज में सारे नियम, कानून, वर्चस्व पुरुषों के हिसाब से चलते हैं, वहाँ स्त्री की भूमिका न के बराबर है। इसलिए इस पुरुषवादी समाज में स्त्री पुरुषों के हाथ की कठपुतली बनकर अपना जीवन व्यतीत करने को सदियों से विवश है। लिंगभेद पर आधारित एक समाज में स्त्री की संवेदनाओं और उसकी अनुभूतियों को भली-भाँति समझने के लिए स्त्री-विमर्श की ज़रूरत है। स्त्री विमर्श स्त्री पर आरोपित पारंपरिक मानदंडों को तोड़ने की एक पहल है जिससे स्त्री को समानता पर आधारित अधिकार, सम्मान, अस्तित्व और स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके। इसके लिए पुरुषों की मानसिकता में बदलाव लाने की आवश्यकता है।

'सावित्री व्रत का समापन' कहानी में लेखिका ने पुरुषवर्चस्ववादी समाज में पुरुष के गुलाम बन कर जीने वाली स्त्रियों की कथा सुनाई है। इस गुलामी ज़िंदगी नेस्त्रियों को अपनी आँखों के सामने उपस्थित शोषणकारी व्यवस्था की सच्चाई को अनदेखा करके समाज द्वारा निर्धारित जीवन चुपचाप जीने के लिए लाचार बना देता है। स्त्री की अधीनस्थ वृत्ति को स्पष्ट करते हुए रेखा कस्तवार ने बताया है कि 'उसकी अधीनस्थ की भूमिका असमानता को जन्म देती है और शोषण के अवसर प्रचुर हो जाते हैं। स्त्री एक ऐसी मादा में तब्दील हो जाती है जिसकी जिंदगी रोटी, कपड़ा और मकान की उपलब्धता के अहसान तले सीमित हो जाती है। जिसके बदले में वह हर तरह की जहालत झेलने की अधिकारिणी है। माँ,बहन, पत्नी, बेटी की भूमिकाओं में सीमित स्त्री अपनी स्वतंत्र सत्ता के अवसर कम करती है।'[2] ऐसी अधीनस्थ स्त्रियों को आधार बनाकर कुमुद पावड़े ने प्रस्तुत कहानी लिखी है। कहानी में लेखिका सावित्री व्रत के नाम पर सालों से स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों का पर्दाफाश करती हैं। कहानी के मुख्य पात्र हैं अम्माजी और लेखिका । दोनों दो पीढ़ियों की प्रतिनिधि स्त्रियाँ हैं। पुरुषसत्तात्मक समाज द्वारा शोषित,पीड़ित एक अबला स्त्री है अम्माजी और लेखिका कामकाजी आधुनिक नारी। कहानी से यह साफ स्पष्ट होता है कि धर्म में जितने भी रीति-रिवाज़ हैं, व्रत हैं सारे केवल स्त्रियों को निभानी पड़ती है, पुरुषों को नहीं। लेकिन सच्चाई यह है कि ये सारे नियम पुरुषों द्वारा बनाए हुए हैं। सामाजिक मान-मर्यादाओं के अनुसार पतिव्रता धर्म ही स्त्री की ज़िंदगी को सार्थक बना सकती है। इसलिए हर लड़की को बचपन से लेकर अपनी माँ की तरह आचरण-व्यवहार करने और घर-गृहस्थी संभालने का प्रशिक्षण दिया जाता है। कहानी के अम्माजी इस प्रशिक्षण को पूरी निष्ठा के साथ मुकम्मल करनेवाली औरत थी, उसकी वेशभूषा और बरताव इसका सशक्त उदाहरण है। लेखिका ने अम्माजी का वर्णन इस प्रकार किया है 'लगभग सत्तर साल की उम्रदार। नाटी कदकाठी वाली। सिर पर माथे तक पल्लू ओढ़े । पल्लू में ढके सिर से झाँकता चौड़ा माथा देख मुझे लगता कि उनके सिर पर बाल हैं भी या नहीं? अम्माजी अत्यंत सत्वशील और सहनशील प्रवृत्ति की महिला थी। जब देखो किसी न किसी कामकाज में जुड़ी रहतीं। चेहरे पर किसी प्रकार की नाराजगी की कोई शिकन तक नहीं। बोलेंगी तो भी बिलकुल धीमे से उनकी हँसी में एक प्रकार की असह्या नज़र आती।'[4] भारतीय समाज में स्त्री को एक आदर्श पत्नी और आदर्श माँ का मुकुट मिलने केलिए उसको माँ बनना पड़ती है, बच्चों को पाल-पोसकर बढ़ा करना पड़ती है और इसके साथ ही धर्म का सही तरीके से पालन भी करना पड़ती है। यदि कोई स्त्री इस सामाजिक आचरण को लाँघे तो समाज उसे बदचलन, भ्रष्ट, दुश्चरित्र, आचरणहीन जैसे कई नामों से संबोधित करने लगते हैं। समाज ने स्त्री के लिए आदर्श बेटी, बहू, पत्नी और माँ बनने के अलावा और कोई विकल्प ही नहीं छोड़ा है।' 'यंत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रसन्ते तत्र देवता' से लेकर 'नारी तुम श्रद्धा हो'... तक भारतीय संस्कृति और साहित्य में ढोल-नगाडों के साथ काफी लाउड तरीके से नारी की महिमा और महानता का बखान किया गया है। वह पूजनीय है, वंदनीय है। पूजनीय बने रहने केलिए धर्मग्रंथों और पुराणों में उसके अंतहीन कर्तव्य गिनाए गए हैं।'[5] और जब कोई स्त्री इन निर्धारित कर्तव्यों में से किसी एक को निभाने में असमर्थ हो जाती है तो समाज उसे गालियाँ देने लगते हैं, विशेष रूप से समाज की अन्य स्त्रियाँ। जब अम्माजी अपने पति और सौतन के शोषण से भाग कर मायका वापस आती हैं तो समाज की दूसरी औरतें उन्हें तानें कसती हैं। इस पुरुष वर्चस्ववादी समाज की दृष्टि में अपने पति का घर छोड़कर मायका आने वाली स्त्रियाँ अपने माँ-बाप के लिए अपमान जनक होती हैं। इसलिए ससुराल में रहकर सारी यातनाओं को सहने में वे मज़बूर

हैं। अम्माजी भी उसी तरह की एक औरत है। अम्माजी की पच्चीस वर्ष की आयू में ही उसके पति एक दूसरी गृहस्थी बसाता है। इसके बाद उस घर में अम्माजी की कोई अहमियत नहीं रह जाती है और वहाँ सब कुछ सौतन के मुताबिक चलने लगते हैं। इसलिए अम्माजी अपनी हालत को इस प्रकार कोसती हैं कि 'मैं कोई कोने में पड़ी निरुपयोगी वस्तु जैसी ही हो गई। मुझसे तो वह कोने में पड़ा कूड़ा-कचरा तो भी अच्छा।'[6] अपनी इस बदतर ज़िदगी से ऊब खाकर अम्माजी पाँव की जूती को अपने से बहत्तर कहते हैं क्योंकि उन्हें उस घर में उतना भी मान प्रतिष्ठा न थी। परिवार वालों ने पूरी इज्जत और ताम-झाम के साथ अम्माजी की शादी करायी थी। ढेर सारा दहेज देने के बाद भी सिर पर लगाने के लिए तेल और नहाने को साबुन जैसी मामूली चीज़ों तक मायका से उसे दिया था। इन सबके बावजूद भी ससुराल में अम्माजी को बेईज्जती का पात्र बनना पड़ता है। पहले अम्माजी अपने ऊपर हो रहे हर शोषण को चुपचाप सहती थीं लेकिन एक दिन वे तंग आकर ससुराल छोड़ती हैं। लेकिन इतना कुछ सहने के बाद भी हर साल अम्माजी सावित्री व्रत उठाती थीं। ताकि आने वाले जन्मों में भी उन्हें अपने पति का साथ मिले। हिन्दु धर्म के अनुसार अग्नि को साक्षी मानकर फेरे लेने से पति-पत्नी का रिश्ता सात जन्मों के लिए बन जाता है। इसी वजह से अम्माजी अपने आनेवाले जन्मों में भी उन्हें अपने पति के रूप में पाना चाहती थीं। इसीलिए अपने पति के साथ रिश्ता तोड़ने के बाद भी वह सावित्री व्रत का पालन पूरे लगाव के साथ रखती हैं क्योंकि यह उस समाज में औरत का धर्म माना जाता था। लेखिका कई बार अम्माजी को यह समझाने की कोशिश करती थी कि ऐसे एक पति के खातिर सावित्री व्रत रखना निरर्थक है। अतः वे हमेशा अम्माजी को व्रत रखने से रोकने की कोशिश करती थीं। तब अम्माजी कहती थीं'बाई, नहीं कुछ तो अगले जन्म में तो भी अकल आएगी उन्हें?'[7] इस प्रकार वह आनेवाले जन्म में अपने पति के प्रेम मिलने के लिए इस जन्म में सावित्री व्रत रखती है। सावित्री व्रत के पीछे की कथा को कहानी में लेखिका ने इस प्रकार व्यक्त किया है कि 'सावित्री का सत्यवान उसे दिलो जान से प्यार करता था। सावित्री के अलावा और कोई स्त्री उसके जीवन में आई ही न हो तो सावित्री का यह आग्रह कि सत्यवान ही जन्म-जन्म तक उसे पति के रूप में प्राप्त हो।'[8]और सावित्री भी एक लकड़हारे जैसे गरीब मेहनतकश इंसान को अपने पति के रूप में चुनने के लिए तैयार होती है। पति दरिद्र नारायण होने के बावजूद उसके साथ सुख-दुख बाँट कर गृहस्थी बसाने का उसने दृढ़ निश्चय किया था। सावित्री की कथा इतिहास के पन्नों में इस प्रकार बतायी गई है। और अल्पायुष्य वाला सत्यवान के प्राण हर ले जाते यमराज के पीछे जाकर अपने पति का जीवन दान में हासिल करने वाली सावित्री की कथा भी इतिहास में देखने को मिलती है। पतिव्रता सावित्री के इस पौराणिक कथानक को आधार बनाकर आज भी भारतीय स्त्रियाँ हर साल अपने पति के नाम सावित्री व्रत रखती हैं। पर वास्तव में व्रत का पालन करना स्त्रियों के सम्मुख एक बोझ साबित होती है। जिस पति ने पत्नी का महत्व पाँव की जूती से अधिक कभी माना ही न हो और उसके रहते हुए भी एक दूसरी स्त्री को लेकर आया हो, तो ऐसे पति के लिए अम्माजी का सावित्री व्रत रखना अर्थशून्य है। कहानी में यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि विधवा औरतों को भी व्रत रखना पड़ता है। कहानी में लेखिका इस बात को स्पष्ट करते हुए बताती हैं कि 'विरोधाभास है कि एक ओर सावित्री व्रत पर विधवा औरतों की भी उतनी ही निष्ठा और विश्वास, तो दूसरी ओर पति को पुनः हासिल करने वाली सावित्री द्वारा विधवा न होने का आग्रह अर्थात् विधवा के उपेक्षित जीवन से इंकार। इसलिए एक विधवा द्वारा सावित्री व्रत रखने का प्रश्न ही कहीं नहीं उठता।'[9] लेखिका अम्माजी को सावित्री व्रत रखने से रोकने के लिए हर साल इस प्रकार कई बातें समझाती रहती थीं, उन्होंने यह भी समझाया कि अम्माजी जिस प्रकार सावित्री व्रत रखकर आनेवाले जन्मों में अपने पति का साथ ईश्वर से माँगती है वैसे ही अम्माजी की सौतन भी करेंगी। मतलब कि आनेवाले हर जनम में वह अम्माजी की सौतन बनेगी और अम्माजी की ज़िदगी हर जन्म में इसी प्रकार पीड़ादायक होगी। लेखिका की इन बातों की मतलब अम्माजी अंत में आकर समझती हैं और व्रत न रखने का फैसला करती है। इस प्रकार लेखिका की भरपूर कोशिशों के बाद अंत में बूढ़ी अम्माजी का त्रिरात्री उपवास को रोकने का प्रयास सफल हो जाता है। फलतः कहानी का समापन इस प्रकार होती है कि सावित्री व्रत के दिन अन्य सभी औरतें वट पूजा करते वक्त अम्माजी इत्मीनान से बैठकर मजे में भोजन करती रहती हैं।

इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि हमारे समाज में जितने सारे रीति-रिवाज़ प्रचलित हैं वे सब पुरुषवादी नज़रिए की उपज हैं। अतः वे सब स्त्री के लिए दोषकारी सिद्ध होते हैं। एक जगह पर आकर कहानी स्वयं इस बात से वाकिफ होती है कि सारे धर्मशास्त्र केवल नारी पर अन्याय पूर्ण पाबंदियाँ लादने के लिए ही तैयार किए गए हैं।[10]यही बात पूरी कहानी का बीज है। प्रत्येक देश-काल के भीतर प्रत्येक समाज में सत्ता के केन्द्र में सदैव पुरुष ही रहा है, सभी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संस्थानों का नेतृत्व उसके हाथों में हैं, जहाँ पुरुषों द्वारा बनाये गये सभी नियम-कानून, विधी-विधान, रिति-रिवाज़ उसके अनुकूल रहें, वहीं स्त्रियों की निर्भरता सदैव से पुरुषों पर ही रही। पुरुषसत्ता सदियों से चली आ रही एक ऐसी व्यवस्था के रूप में स्थापित हो गयी जिसमें सदा के लिए स्त्री को द्वितीय लिंग घोषित कर दिया गया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा ही धर्म बने, इतिहास और संस्कृति बनी और उन्हें बनानेवालों ने प्रत्येक स्थिति अपने अनुकूल बनायी, अतः उसमें स्त्रियों को कोई स्थान नहीं दिया गया।

कहानी के माध्यम से कुमुद पावड़े धर्म के नाम पर स्त्री पर लगी पाबंदियों पर तीखा प्रहार किया है। इस पुरुषवर्चस्ववादी समाज के इशारों पर नाचने वाली स्त्री अपनी व्यावहारिक बुद्धि को भी खो बैठी है। इसीलिए आजकल स्त्री-मुक्ति की चर्चा चारों तरफ गूँज रही है। लेकिन समाज का विरोधाभास यह है कि 'स्त्री को मुक्ति के लिए कुछ करने की ज़रूरत नहीं। उसकी मुक्ति इसी में है कि वह अपने पति को खुश रखे और गृहस्थी सँवारकर रखे या फिर तपस्या करने का अधिकार सिर्फ पुरुष को है और वह अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्त्री को कभी भी त्याग सकता है।'[11] सारांश यह है कि लेखिका ने यह सिद्ध किया है कि समाज में हर तरह के शोषण और अत्याचार की उपभोक्ता प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अधिकतर स्त्री ही होती है, चाहे वह धार्मिक कुरितियाँ हो, यौन हिंसा या आर्थिक पराधीनता, युद्द हो या जातिगत दंगे-विवाद इन सभी का सबसे बुरा प्रभाव स्त्री पर ही पड़ता है। लेखिका ने कहानी के ज़रिए स्त्री के ऊपर पुरुषसत्तात्मक समाज द्वारा थोपे गए नैतिकता, सहनशीलता, त्याग इत्यादि बंधनों को नकारने का प्रयास किया है। समय और समाज अन्य क्षेत्रों में चाहे जितना भी बदलाव लाए हो लेकिन स्त्री की स्थिति में उतना नहीं। रेखा कस्तवार के अनुसार 'भिन्न-भिन्न श्रेणी, वर्ग, जाति, नस्ल की होते हुए भी 'जेंड़र' के धरातल पर सारी दुनिया में स्त्री का संघर्ष एक सा है क्योंकि उसकी लड़ाई हर जगह पितृसत्तात्मक व्यवस्था से है।'[12] संक्षेप एमें कहा जाए तो कुमुद पावड़े ने सावित्री व्रत का समापन कहानी के माध्यम से समाज में हो रहे पुरुषसत्तात्मक

मानसिकता के खोखलापन का पर्दाफाश किया है।

संदर्भ सूची:-

1. मिश्र,श्री प्रकाश. उत्तर आधुनिक अवधारणाएँ,लोकभारती प्रकाशन,2018,पृ-181
2. कस्तवार,रेखा.स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन,2016,पृ-25
3. श्रीवास्तव,संतोष. धार्मिक परंपराएँ ज़िदा रहीं, औरत मरती रही, धर्म के आर-पार औरत (सं-नीलम कुलश्रेष्ट),किताबघर प्रकाशन,2010,पृ- 55
4. पावड़े,कुमुद. सावित्री व्रत समापन, समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,(सं रजनी तिलक,रजनी अनुरागी),स्वराज प्रकाशन, 2018, पृ- 74
5. मनुस्मृति संस्करण... पृ- 67
6. पावड़े,कुमुद. सावित्री व्रत समापन, समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,(सं रजनी तिलक,रजनी अनुरागी),स्वराज प्रकाशन, 2018, पृ-74
7. पावड़े, कुमुद.सावित्री व्रत समापन, समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,(सं रजनी तिलक,रजनी अनुरागी),स्वराज प्रकाशन, 2018, पृ- 75
8. पावड़े,कुमुद. सावित्री व्रत समापन, समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,(सं रजनी तिलक,रजनी अनुरागी),स्वराज प्रकाशन, 2018, पृ- 75
9. पावड़े,कुमुद. सावित्र व्रत समापन, समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,(सं रजनी तिलक,रजनी अनुरागी),स्वराज प्रकाशन, 2018, पृ- 78
10. सारे धर्मशास्त्र केवल नारी पर अन्याय पूर्ण पाबंदियाँ लादने के लिए ही तैयार किए गए है,क्या पावड़े,कुमुद. सावित्री व्रत समापन, समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन,(सं रजनी तिलक,रजनी अनुरागी),स्वराज प्रकाशन, 2018, पृ- 76
11. श्रीवास्तव, संतोष. धार्मिक परंपराएँ ज़िदा रहीं, औरत मरती रही, धर्म के आर-पार औरत (सं- नीलम कुलश्रेष्ट),किताबघर प्रकाशन, 2010,पृ-54
12. कस्तवार,रेखा. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन,2016,पृ- 26

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

'कुछ जनसांख्यिकीय चर के संबंध में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का अध्ययन'

डॉ. अमर ज्योति

सहायक प्रोफेसर, के. एम. गवर्नमेंट गर्ल्स पीजी कॉलेज, बादलपुर, जी. बी. नगर, उत्तर प्रदेश

सूचक शब्द: भावनात्मक क्षमता, माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक, विद्यालय का क्षेत्र, शिक्षण अनुभव, विषय वर्ग, परिवार का प्रकार । शिक्षकों को सामाजिक, राष्ट्रीय एकता और बेहतर समाज के निर्माण में पथप्रदर्शक माना जाता है। वे शैक्षिक प्रक्रिया की भूमिका को आत्मसात करने और आत्मसात करने के लिए जिम्मेदार हैं। शिक्षक सम्मानजनक कार्य करके समाज में योगदान देता है और देश के भविष्य को आकार देने में मदद करता है। यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है कि शिक्षा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए एक प्रभावी साधन है और काफी हद तक यह उन समस्याओं का समाधान प्रदान करती है जिनका समाज सामना करता है। ये समस्याएँ जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और शैक्षणिक आदि पहलुओं से जुड़ी हो सकती हैं। चूंकि शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण और प्रमुख भूमिका निभाते हैं, इसलिए शिक्षकों की अपनी शिक्षा, दृष्टिकोण और क्षमताएं महत्वपूर्ण चिंता का विषय बन जाती हैं। इसलिए, प्रभावी शिक्षण के सिद्धांतों और प्रथाओं को नवीनतम तकनीकों, प्रौद्योगिकियों और संगठनों के तनाव मुक्त वातावरण से समृद्ध करना होगा। एक शिक्षक के लिए पहचानी गई भावनात्मक, सामाजिक और व्यावसायिक दक्षताओं को विकसित करने के साथ-साथ उचित संतुलन बनाए रखना भी आवश्यक है। एक शिक्षक शैक्षिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण ध्रुव है और वह राष्ट्र के भविष्य के लिए हमारी संतानों का संरक्षक है।

शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों की चुनौतियाँ:-शिक्षण प्रत्येक दिन विकास के लिए अनंत चुनौतियाँ और अवसर प्रदान करता है। हर दिन, शिक्षण शिक्षक के ज्ञान, कौशल और क्षमताओं आदि का परीक्षण करता है। अपने काम के प्रति शिक्षकों की भक्ति और सकारात्मक दृष्टिकोण एक अच्छे शिक्षण की मांग है। शिक्षा की आधुनिक अवधारणाओं में स्कूलों को समाज का एक लघु रूप माना जाता है, जो इनपुट की तुलना में आउटपुट पर अधिक जोर देता है। इसलिए, शिक्षक एक निश्चित समय अवधि में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करके वांछित परिणाम प्रदान करने के लिए उत्तरदायी हैं। माध्यमिक स्तर को प्राथमिक और उच्च स्तर की शिक्षा के बीच एक संक्रमण या सेतु माना जाता है। मूलतः कक्षा 9 से कक्षा 12 तक को माध्यमिक स्तर की कक्षाएँ माना जाता है। इस स्तर पर छात्र किशोर या किशोरावस्था होते हैं, जो अक्सर स्वतंत्र, बंधनमुक्त, बिना किसी सीमा के और स्वतंत्र रूप से रहना पसंद करते हैं। जैसा कि प्रख्यात मनोवैज्ञानिक स्टेनली, हॉल[1] ने किशोरावस्था के बारे में ठीक ही कहा है कि 'यह अत्यधिक तनाव और तनाव, तूफान और संघर्ष का काल है' । किशोरावस्था के चरण में बच्चे बहुत अधिक ऊर्जावान और जिज्ञासु होते हैं। इसलिए, इस स्तर पर छात्रों के लिए उचित मार्गदर्शन और दिशा-निर्देश आवश्यक हैं, ताकि उनकी ऊर्जा को सकारात्मक दिशा और रचनात्मकता में ढाला जा सके और साथ ही उनकी जिज्ञासाओं और प्रश्नों को भी संतुष्ट किया जा सके। यही वह समय है जब छात्र अपने करियर के लिए भी सपने देखना शुरू करते हैं। इस प्रकार, शिक्षा के इस स्तर पर शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे सकारात्मक दृष्टिकोण से परिपूर्ण हों, उनके पास अपने छात्रों के लिए पर्याप्त समय हो, अपने छात्रों के आत्मविश्वास को बढ़ाने के साथ-साथ उनके मानसिक संतुलन को भी बनाए रखें, छात्रों को प्रेरित करें, छात्रों की देखभाल करें और सुनें और जरूरत पड़ने पर छात्रों का मार्गदर्शन भी करें। इसलिए, इस स्तर पर शिक्षक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

भावनात्मक क्षमता की भूमिका:-भावनात्मक क्षमता भावनाओं को क्षमता के साथ जोड़ती है। यह दोनों का अनोखा प्रतिच्छेदन है। इस दृष्टि से भावना और सोच एक साथ काम करते हैं, क्योंकि भावना सोच में सहायता करती है और सोच का उपयोग भावनाओं का विश्लेषण करने के लिए किया जा सकता है। भावनात्मक क्षमता शब्द का तात्पर्य उन सामाजिक कौशलों से है जो एक और दूसरे को पहचानने, व्याख्या करने और प्रतिक्रिया देने के लिए आवश्यक हैं। यह मूल रूप से, प्रभावी ढंग से और सफलतापूर्वक नेतृत्व करने और दूसरों के साथ अभिव्यक्ति व्यक्त करने की क्षमता निर्धारित करता है। भावनात्मक क्षमता एक महत्वपूर्ण जीवन कौशल या मानवीय क्षमता है जो किसी व्यक्ति की भावनाओं को सफलतापूर्वक प्रबंधित करने में बड़ी भूमिका निभाती है। यह भावना को प्रबंधित करने, आवेगों को संभालने, नौकरी से प्यार करने के साथ-साथ लोगों के साथ घुलने-मिलने से जुड़ा है। ऑलपोर्ट (1961)[2] के अनुसार यदि व्यक्ति पर्याप्तता की भावना को प्राप्त करना और बनाए रखना चाहता है, तो उसे दुनिया के बारे में कुछ व्यावहारिक धारणाएं हासिल करनी होंगी, जहां क्षमता जीवन के अधिकांश मूलभूत उद्देश्यों के रूप में मौजूद है, क्योंकि व्यक्ति सक्षमता के माध्यम से जीवित रह सकता है, आगे बढ़ सकता है। योग्यता के माध्यम से और यहां तक कि योग्यता के माध्यम से स्वयं को साकार भी करते हैं। भावनात्मक क्षमता भावनाओं को अधिक आसानी से और सफलतापूर्वक नियंत्रित करने की शक्ति को संदर्भित करती है जो किसी की अपनी और दूसरे की भावनाओं और भावनाओं पर नजर रखने की क्षमता के रूप में कार्य करती है।

समस्या:-

'कुछ जनसांख्यिकीय चर के संबंध में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का अध्ययन'

अनुसंधान प्रश्न

प्रस्तावित अध्ययन निम्नलिखित शोध प्रश्नों को संबोधित करता है:

प्रथम प्रश्न- क्या माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक भावनात्मक रूप से सक्षम हैं?

द्वितीय प्रश्न- क्या निम्नलिखित जनसांख्यिकीय चर के बीच माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता में भी अंतर है?

ए) लिंग- पुरुष और महिला।

बी) क्षेत्र- ग्रामीण और शहरी।

ग) शिक्षण अनुभव- वरिष्ठ और कनिष्ठ।

घ) विषय धाराएँ- कला और विज्ञान।

ई) परिवार का प्रकार- एकल और संयुक्त।

इसे ध्यान में रखते हुए, शोधकर्ता ने निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए वर्तमान अध्ययन किया:

अध्ययन के उद्देश्य:

अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए डिज़ाइन किया गया था:

1. माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का अध्ययन करना।

2. निम्नलिखित श्रेणियों के संबंध में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता में अंतर का पता लगाना।

ए) लिंग- पुरुष और महिला।

बी) क्षेत्र- ग्रामीण और शहरी।

ग) शिक्षण अनुभव- वरिष्ठ और कनिष्ठ।

घ) विषय वर्ग ध् स्ट्रीम- कला और विज्ञान।

ई) परिवार का प्रकार- एकल और संयुक्त।

परिचालनात्मक परिभाषाएँ

(1) भावनात्मक क्षमता: वर्तमान अध्ययन में भावनात्मक क्षमता को क्रियात्मक रूप से किसी व्यक्ति की पांच दक्षताओं के रूप में भावना की पर्याप्त गहराई के रूप में परिभाषित किया गया है। (एडीएफ), भावनाओं की पर्याप्त अभिव्यक्ति और नियंत्रण (एईसीई), भावनाओं के साथ कार्य करने की क्षमता (एएफई),समस्या भावनाओं से निपटने की क्षमता (एसीपीई) और सकारात्मक भावनाओं को प्रोत्साहन (ईपीई) जैसा कि एच.सी.शर्मा और आर.एल. भारद्वाज (2016)[3] द्वारा भावनात्मक क्षमता स्केल द्वारा मापा जाता है।

(2) माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक: वर्तमान अध्ययन में, माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक उत्तर प्रदेश के माध्यमिक विद्यालयों उत्तर प्रदेश राज्य के मेरठ जिले में के 9वीं और 10वीं कक्षा में यू.पी. बोड में पढ़ाने वाले शिक्षकों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(3) विद्यालय का क्षेत्र: इसे क्षेत्र के आधार पर दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया था, अर्थात् यू.पी. बोर्ड के ग्रामीण और शहरी माध्यमिक विद्यालय। ग्रामीण स्कूल ग्रामीण क्षेत्र से संबंधित है, जबकि शहरी स्कूल शहरी क्षेत्र से संबंधित है।

(4) शिक्षण अनुभव: वर्तमान अध्ययन में शिक्षकों को उनके शिक्षण अनुभव के अनुसार दो समूहों में वर्गीकृत किया गया था, जहां शिक्षण अनुभव उनके करियर की शुरुआत से लेकर डेटा संग्रह की विशेष तिथि तक शिक्षण में अनुभव के कुल वर्षों की संख्या को संदर्भित करता है। समूह इस प्रकार थे:

- वरिष्ठ / सीनियर माध्यमिक विद्यालय शिक्षक: शिक्षक, जिनके पास 15 वर्ष से अधिक शिक्षण अनुभव था।
- जूनियर सेकेंडरी स्कूल शिक्षक: वे शिक्षक, जिनके पास 15 वर्ष से कम शिक्षण अनुभव था।

(5) विषय वर्ग / स्ट्रीम: यह माध्यमिक विद्यालय स्तर पर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले विषयों की वर्ग /स्ट्रीम को संदर्भित करता है। अन्वेषक ने माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों को उनकी शिक्षण विषय वर्ग ध् स्ट्रीम के आधार पर दो समूहों में वर्गीकृत किया। वे इस प्रकार थे.

- विज्ञान शिक्षक वे थे, जो माध्यमिक विद्यालय में विज्ञान, जीव विज्ञान और गणित विषय पढ़ा रहे थे।
- कला शिक्षक वे थे जो माध्यमिक विद्यालय में विज्ञान विषयों के अलावा अन्य विषय पढ़ा रहे थे।

(6) परिवार का प्रकार: यह परिवार के प्रकार को संदर्भित करता है, जिसमें शिक्षक शामिल होते हैं। यहां अन्वेषक ने शिक्षकों को उनके परिवार के प्रकार के आधार पर दो समूहों में वर्गीकृत किया। वे इस प्रकार थे.

संयुक्त परिवार से संबंधित शिक्षक: यह वे शिक्षक होते थे जो संयुक्त परिवार में रहते थे (जहाँ माता-पिता, भाई, पति/पत्नी और बच्चों सहित पूरा परिवार एक ही घर में एक साथ रहते हैं)।

एकल परिवार से संबंधित शिक्षक: यह वे शिक्षक थे जो एकल परिवार में रह रहे थे (केवल पति/पत्नी और उनके बच्चे एक साथ रहते हैं)।

शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता से संबंधित शोध अध्ययन एवं साहित्य समीक्षा: विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता के संबंध में कई अध्ययन किए गए जैसे कि...

ज़म्बारे (2005)[4] ने बी.एड की भावनात्मक दक्षताओं का अध्ययन किया। प्रशिक्षु और उनकी बुद्धि के साथ इसका संबंध। नमूने में शैक्षणिक सत्र 2002-2003 से कॉलेज ऑफएजुकेशन जलगांव, (महाराष्ट्र) के कुल 157 बी.एड प्रशिक्षु शामिल हैं। अध्ययन के नतीजों से पता चला कि बी.एड. प्रशिक्षु अत्यधिक भावनात्मक रूप से सक्षम पाए गए। बी.एड. की बुद्धिमत्ता और भावनात्मक दक्षताओं के बीच काफी उच्च संबंध पाया गया। प्रशिक्षु. अध्ययन में सुझाव दिया गया कि भावनात्मक क्षमता जितनी अधिक होगी, बुद्धिमत्ता भी उतनी ही अधिक होगी।

कुमार (2012)[5] ने वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता और उनकी उम्र, लिंग और स्कूल के प्रकार के साथ इसके संबंध पर एक अध्ययन किया। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य लिंग-वार और क्षेत्र-वार वर्गीकृत करते समय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का तुलनात्मक विश्लेषण करना था। अध्ययन के लिए 200 वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों को नमूने के रूप में चुना गया था। अध्ययन के निष्कर्षों से पता चला कि लिंग के कारण शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता पर कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पड़ता है, जबकि शिक्षकों की उम्र और स्कूल का प्रकार शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है।

सिंह, जे.डी. (2014)[6] ने कुछ जनसांख्यिकीय चर के संबंध में शिक्षक प्रशिक्षकों की भावनात्मक बुद्धिमत्ता के स्तर का पता लगाया। परिणामों से पता चला कि शिक्षक प्रशिक्षकों की भावनात्मक बुद्धिमत्ता औसत थी। शिक्षक प्रशिक्षकों का लिंग और अनुभव उनकी भावनात्मक बुद्धिमत्ता को प्रभावित करते हैं जबकि शिक्षक प्रशिक्षकों की भावनात्मक बुद्धिमत्ता क्षेत्र और वैवाहिक स्थिति के संबंध में काफी भिन्न पाई गई।

मेहरोत्रा और दुआ (2014)[7] ने रोहिलखंड के किशोरों की भावनात्मक क्षमता में लिंग और क्षेत्र के मामलों का अध्ययन किया। अध्ययन

के नमूने के रूप में रोहिलखंड से 600 छात्रों का चयन करने के लिए एक बहुस्तरीय यादृच्छिक नमूनाकरण तकनीक का उपयोग किया गया था। किशोरों की भावनात्मक क्षमता का मूल्यांकन शर्मा और भारद्वाज द्वारा विकसित भावनात्मक क्षमता स्केल द्वारा किया गया था। अध्ययन के नतीजे बताते हैं कि ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा के छात्रों में भावनात्मक क्षमता का औसत स्तर पाया गया। परिणामों से यह भी संकेत मिला कि किशोरों की भावनात्मक क्षमता उनके लिंग और क्षेत्र से प्रभावित थी, केवल सकारात्मक भावनाओं की वृद्धि का एक आयाम था।

देशवाल, एस. (2015)[8], माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक दक्षताओं की जांच की गई। अध्ययन के लिए दिल्ली के पांच गांवों के निजी और सरकारी दोनों स्कूलों से 200 शिक्षकों (130 महिला और 30 पुरुष) का एक नमूना चुना गया था। निष्कर्षों से पता चला कि सरकारी स्कूल की महिला शिक्षकों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया, लेकिन सरकारी स्कूल की महिला और पुरुष शिक्षकों की भावनात्मक दक्षताओं में काफी अंतर पाया गया। परिणाम ने सुझाव दिया कि यदि कोई शिक्षक मानसिक रूप से स्वस्थ और भावनात्मक रूप से स्थिर है तभी वह अपना कर्तव्य अच्छी तरह से निभा सकता है।

ठाकुर और चावला (2016)[9] ने शिक्षक प्रशिक्षुओं के बीच उनके लिंग के संबंध में भावनात्मक क्षमता पर एक तुलनात्मक अध्ययन किया। एक नमूने में 200 शिक्षक प्रशिक्षुओं का चयन किया गया जो लुधियाना के शिक्षा महाविद्यालयों में कार्यरत थे। अध्ययन से डेटा एकत्र करने के लिए शर्मा और भारद्वाज (2007) द्वारा भावनात्मक क्षमता स्केल (ईसी-स्केल) का उपयोग किया गया था। एकत्रित आंकड़ों के विश्लेषण के लिए माध्य, एसडी, तिरछापन, कर्टोसिस और टी-टेस्ट लागू किया गया। अध्ययन के नतीजों से यह निष्कर्ष निकला कि पुरुष और महिला शिक्षक प्रशिक्षुओं के बीच भावनात्मक क्षमता के चर में कोई खास अंतर नहीं था।

वर्तमान अध्ययन माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का अध्ययन करने का एक प्रयास है, साथ ही इसका उद्देश्य भावनात्मक क्षमता का कुछ अन्य जनसांख्यिकीय चर (लिंग, क्षेत्र, धारा, शिक्षण अनुभव और परिवार के प्रकार) के संबंध में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का अध्ययन करना भी है।

वर्तमान अध्ययन के संबंधित साहित्य को पढ़ने और उपलब्ध शोध अध्ययनों के निष्कर्षों की गहरी समझ रखने के बाद, वर्तमान अध्ययन के लिए अन्वेषक द्वारा निम्नलिखित परिकल्पनाएँ तैयार की गईं।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक भावनात्मक रूप से सक्षम होते हैं।
2. पुरुष और महिला माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।
3. ग्रामीण और शहरी माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।
4. कला और विज्ञान स्ट्रीम के माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।
5. वरिष्ठ (शिक्षण अनुभव झ 15 वर्ष) और कनिष्ठ (शिक्षण अनुभव ढ 15 वर्ष) माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।
6. एकल और संयुक्त परिवार से संबंधित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

शोध पद्धति:

अध्ययन के प्रमुख और छोटे उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक वर्णनात्मक सर्वेक्षण प्रकार का अध्ययन आयोजित किया गया था।

ए) आश्रित चर: माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता।

बी) स्वतंत्र चर: माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों का लिंग, क्षेत्र, विषय वर्ग, शिक्षक अनुभव ,परिवार का प्रकार।

नमूना:

वर्तमान अध्ययन में, अन्वेषक द्वारा मल्टी स्टेज सैंपलिंग तकनीक को अपनाया गया था। प्रारंभिक चरण में स्तरीकृत नमूनाकरण का प्रयोग किया गया। अगले चरण में सरल यादृच्छिक नमूनाकरण तकनीक का उपयोग किया गया। इस प्रकार, नमूने में यूपी बोर्ड में पढ़ाने वाले मेरठ जिले के माध्यमिक विद्यालय के 410 शिक्षक शामिल थे।

तालिका 1: जनसांख्यिकीय चर के आधार पर अध्ययन के लिए चयनित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों का नमूना

Øe l[;k	çyx		{k=		fo"k; oxZ		f'k{kd vuqHko		ifjokj dk çdkj	
1	i#"k	222	xkeh.k	210	dyk	228	lhfu;j	226	,dy ifjokj	211
2	L=h	188	'kgjh	200	foKku	182	tfu;j	184	l;qä ifjokj	199
Dy	410		410		410		410		410	

अध्ययन के उपकरण: भावनात्मक क्षमता स्केल (ESC) आर.एल. भारद्वाज और एच.एस. शर्मा (2016) द्वारा विकसित किया गया।

डेटा विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय तकनीकें: प्राप्त माध्य का विश्लेषण और व्याख्या करने के लिए, माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के दो समूहों के बीच महत्वपूर्ण अंतर का पता लगाने के लिए एसडी और टी परीक्षण को नियोजित किया गया था, जब उन्हें लिंग के अनुसार, स्थानीयता के अनुसार, शिक्षण अनुभव, विषय धाराओं और परिवार के प्रकार को वर्गीकृत किया गया था।

आवृत्ति ग्राफः माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के भावनात्मक क्षमता स्कोर का वितरण

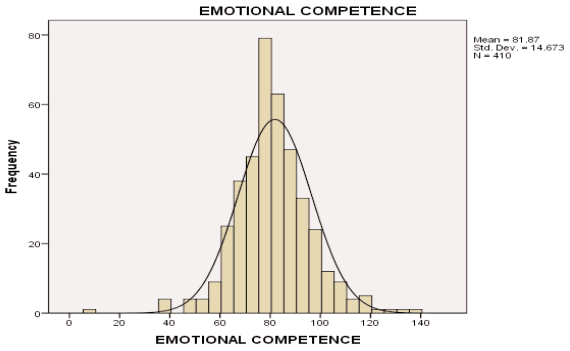

उपरोक्त आवृत्ति ग्राफ भावनात्मक क्षमता स्कोर के वितरण की आवृत्ति को दर्शाता है जो दर्शाता है कि भावनात्मक क्षमता का औसत स्कोर 81.87 था; मानक विचलन कुल नमूने का 14.673 था।

तालिका 2: कुल नमूने में माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के भावनात्मक क्षमता स्कोर का वितरण

l[;k	410
ek/;	81.87
ek/; ekud =fV (Std. Error of mean)	.725
ekf/;dk (Median)	80
ekud fopyu (Std. Deviation)	14.673
fo"kerk (Skewness)	-.061
fo"kerk dh ekud =fV (Std. Error of Skewness)	.121
Ddnrk (Kurtosis)	2.478
ddnrk dh ekud =fV (Std. Error of Kurtosis)	.240
U;ure (Minimum)	33
vf/kdre (Maximum)	142

तालिका 2 कुल नमूने के माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के भावनात्मक क्षमता स्कोर के वितरण को दर्शाती है। इससे पता चला कि भावनात्मक क्षमता का माध्य स्कोर 81.87 पाया गया जो माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के बीच भावनात्मक क्षमता के औसत स्तर को दर्शाता है। इसके अलावा माध्य की मानक त्रुटि .725 पाई गई। जबकि माध्यिका, मानक विचलन क्रमशः 80 और 14.673 पाए गए, जबकि विषमता, विषमता की मानक त्रुटियां और कुकुदता क्रमशः –.061, .121 और 2.478 पाई गईं। कुकुदता की मानक त्रुटि .240 पाई गई । माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के भावनात्मक क्षमता स्कोर की न्यूनतम और अधिकतम सीमा क्रमशः 33 और 142 पाई गई।

माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता से संबंधित आंकड़ों का विश्लेषण:

तालिका 3: माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के लिंग के संबंध में उनकी भावनात्मक क्षमता का माध्य, मानक विचलन और टी-मूल्य:

Gender	N	Mean	S.D.	S.E.D.	D	Df	t-value	Significant/not significant
Male	222	49.71	11.472	1.11	2.18	408	1.96	0.05 (significant)
Female	188	47.53	11.050					

यह प्रमाणित है कि पुरुष और महिला माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का औसत स्कोर 49.71 और 47.53 पाया गया है। क्रमशः 11.472 और 11.050 पाया गया है। तालिका से यह भी पता चला कि प्राप्त टी-मान (1.96) 0.05 स्तर पर तालिका मान से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना अस्वीकृत नहीं की जाती है।

तालिका 4: माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के क्षेत्र के संबंध में उनकी भावनात्मक क्षमता का माध्य, मानक विचलन और टी-मूल्य:

REGION	N	MEAN	S.D.	S.E.D.	D	Df	t-value	Significant/not significant
RURAL	210	49.11	11.542	1.128	0.73	408	0.647	n.s.
URBAN	200	48.38	11.313					

तालिका 4 से संकेत मिलता है कि ग्रामीण और शहरी माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का औसत स्कोर एसडी के साथ क्रमशः 49.11, 48.38 और 11.542, 11.313 पाया गया है। परिकलित टी-मान 0.647 प्राप्त हुआ है जो 0.05 स्तर पर महत्वपूर्ण नहीं है। इस प्रकार, शून्य परिकल्पना खारिज नहीं की जाती है, जिसका अर्थ है कि ग्रामीण और शहरी माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

तालिका 5: माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के विषय वर्ग के संबंध में उनकी भावनात्मक क्षमता का माध्य, मानक विचलन और टी-मूल्य:

STREAM	N	MEAN	S.D.	S.E.D	D	df	t-value	Significant/not significant
ARTS	228	50.39	11.024	1.11	3.91	408	3.52	0.01 (significant)
SCIENCE	182	46.48	11.476					

तालिका से स्पष्ट है कि कला एवं विज्ञान स्ट्रीम के माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का औसत स्कोर एस.डी. के साथ क्रमशः 50.39, 46.48 और 11.024, और 11.476 पाया गया । इसके अलावा, परिकलित टी-मान (3.52) 0.01 स्तर पर तालिका मान से अधिक पाया गया है। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकार की जाती है।

तालिका 6: माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के शिक्षण के अनुभव के संबंध में उनकी भावनात्मक क्षमता का माध्य, मानक विचलन और टी-मूल्य:

Teaching Experience	N	Mean	S.D.	S.E.D.	D	Df	t-value	Significant/not significant
SENIOR	226	50.15	11.294	1.125	2.53	408	2.25	0.05 (significant)
JUNIOR	184	47.62	11.368					

तालिका से स्पष्ट है कि वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों (15 वर्ष से अधिक शिक्षण अनुभव वाले) और जूनियर माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों (15 या 15 वर्ष से कम शिक्षण अनुभव वाले) की भावनात्मक क्षमता का औसत स्कोर एसडी के साथ क्रमशः 50.15 47.62 और 11.294, 11.368 है। टी-वैल्यू (2.25) 0.05 स्तर पर महत्वपूर्ण पाया जाता है, इसलिए शून्य परिकल्पना खारिज कर दी जाती है और वैकल्पिक परिकल्पना खारिज नहीं की जाती है।

तालिका 7: माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के परिवार के प्रकारों के संबंध में उनकी भावनात्मक क्षमता का माध्य, मानक विचलन और टी-मूल्य:

Family Type	N	Mean	S.D.	S.E.D.	D	Df	t-value	Significant/not significant
NUCLEAR	211	51.34	10.994	1.09	3.74	408	3.43	0.01
JOINT	199	47.60	11.135					(significant)

तालिका से पता चलता है कि एकल परिवार और संयुक्त परिवार से संबंधित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता का औसत स्कोर 51.34 और 47.60, एसडी क्रमशः 10.994 और 11.135 है। टी-वैल्यू (3.43) 0.01 स्तर पर महत्वपूर्ण पाया जाता है, इसलिए शून्य परिकल्पना खारिज कर दी जाती है और वैकल्पिक परिकल्पना खारिज नहीं की जाती है, जिसका अर्थ है कि माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता के औसत अंकों के बीच महत्वपूर्ण अंतर है।

विश्लेषण एवं निष्कर्षः

आँकड़ों के विश्लेषण एवं परिणामों की व्याख्या के आधार पर अन्वेषक द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गयेः

- पुरुष और महिला माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता के बीच महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।
- ग्रामीण और शहरी माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता में कोई खास अंतर नहीं पाया गया।
- माध्यमिक विद्यालय के कला एवं विज्ञान संकाय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता में भी काफी अंतर पाया गया।
- वरिष्ठ और कनिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता में महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।
- एकल और संयुक्त परिवार से संबंधित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की भावनात्मक क्षमता में भी काफी भिन्नता पाई गई।

निष्कर्ष

शैक्षिक प्रणाली की सफलता शिक्षकों के कौशल और क्षमताओं के इर्द-गिर्द घूमती है। एक प्रभावशाली शिक्षक स्वयं को शिक्षा के निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने का साधन सिद्ध करता है। केवल प्रभावी शिक्षक ही छात्रों को उनकी छिपी क्षमताओं और गुणों को प्रकट करने और उनके व्यवहार को वांछनीय दिशाओं में आकार देने में मदद कर सकते हैं। इसलिए, एक शिक्षक के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि वह भावनात्मक रूप से सक्षम हो।

संदर्भ सूचीः-

1. Stanley G. Hall (February 1, 1846- April 24, 1924) on Adolescence.
2. Allport,G.W., Patterns and Growth in Personality. New York: Holt Rhinehart and Winston (1961).
3. Sharma, H. C., and Bhardwaj, R. Emotional Competence Scale (EC Scale), Pankaj Mapan, Bal Niwas Basai Khurd, Agra, U.P. (India), (2016).
4. Zambare, S., "The Relationship between the Emotional Competencies and Intelligence among B.Ed. Trainees", In Quest Of Bharateeya Shikshan, 15 (11), (2005), p.n. 7-10.
5. Kumar, "Emotional Competence As A Determiner Of Mental Health Of Prospective Teachers Of Arts Stream Of Himachal Pradesh, India", Research Journal of Educational Sciences, 4 (1), (2016), p.n. 1-9.
6. Singh, J.D. , "A Study of Emotional Intelligence Of Teacher Educators In Relation To Certain Demographical Variables", Scholarly Research journal for interdisciplinary studies, MAR-APR, 2015. vol. iii/xvii , (2014) PP- 2883 - 2893 ISSBN- 2278-8808, SJIF 2014=4.889
7. Mehrotra, K., and Dua, R., "Gender and Region matter in emotional competence of adolescents: A study", Sai Om Journal of Arts and Education, 1 (3), (2014), p.n. 17-22.
8. Deshwal, S., "Emotional competencies of teachers", International Journal of Applied Research, 2015; 1(6): 299-301 ISSN Print: 2394-7500 ISSN Online: 2394-5869 IJAR 2015; 1(6): 299-301
9. Thakur, S., and Chawla, J., "Comparative Study of Emotional Competence among Teacher Trainees In Relation To Gender", International Journal of Science and Research, 5 (1), (2016), p.n. 956-959.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

राजेन्द्र यादव के कथा साहित्य में सामाजिकता

डॉ. मनु प्रताप

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली, उप्र.

''राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में सामाजिक विसंगतियों का चित्रांकन है। समाज में अनेक वर्ग हैं, जिनकी अपनी-अपनी समस्याएँ हैं। वही ऊँच-नीच, जाँति-पाँति का भेदभाव, अनमेल विवाह आदि स्पष्ट देखा जा सकता है। ये समस्याएँ सामाजिक स्तर पर भीषण दिखाई देती हैं''[1] किन्तु मानव को इन समस्याओं से साक्षात्कार करना ही पड़ता है। वहीं दूसरी ओर समस्याएँ केवल समाज के बाह्य स्तर पर ही नहीं अपितु मानव के अन्तर्मन से उद्भूत भी हैं। कई बार मानव को अपनी परिस्थितियों से उद्वेलित होकर मानसिक संघर्ष का सामना भी करना पड़ता है। कहीं पुरुष अपने आत्म-स्वाभिमान को बनाये रखना चाहता है तो कहीं नारी अपने स्वत्व के लिए स्वतन्त्र मार्ग अपनाना चाहती है। नारी और पुरुष विषयक यह आन्तरिक समस्याएँ भी राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में बिखरी पड़ी हैं।

राजेन्द्र यादव ने अपनी रचनाओं में सामाजिक महत्व को बताया है। अनेक ऐसे लोग भी समाज में रहते है, जिनके जीवन में ईर्श्या, निराषा, संघर्श और अभाव है, जिसका कारण वर्तमान समाज विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं में डूबा हुआ है। 'षह और मात' नामक उपन्यास में राजेन्द्र यादव ने मानसिक गुत्थियों एवं कुंठाओं का सूक्ष्म चित्रण किया है। जिसमें विभिन्न प्रकार के सामाजिक पक्षों को दर्षाया है। षह और मात में कथाकार ने प्रेम कथा का संयोजन किया है। प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे को धोखा देते है, जो वर्तमान समाज में हो रहा है। प्रेम को वास्तव में भूल चुके है केवल एक-दूसरे के षरीर के प्रति आसक्त है।

''राजेन्द्र यादव ने जनमानस में प्रचलित विवाह सम्बन्धी मान्यताओं की आलोचना अपने उपन्यासों में की है। मन्त्रोचार करके समाज के कुछ लोगों के सामने लड़के-लड़की का अग्नि को साक्षी मानकर विवाह सूत्र में आबद्ध हो जाना ही विवाह की अनिवार्य परम्परा है।''[2] इसे वे नहीं मानते। आज समाज के लोगों की विचारधारा में परिवर्तन आने लगा है। यह परिवर्तन भिन्न-भिन्न स्तर पर दिखाई देता है। सामाजिक रूप से परिवर्तन का यह सिलसिला सम्बन्धों को लेकर प्रारम्भ हुआ है। परिणामत प्रचलित वैवाहिक मान्यताएं भी आज बदली हुई दिखाई देती है। जैसे विवाह एक सामाजिक परम्परा है किन्तु आज उसके दकियानूसी रूप की आलोचना राजेन्द्र यादव के उपन्यास में की गई है। अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दिया गया है। 'मन्त्रविद्ध' में यह मान्यता समाप्त हो गई है कि अपनी ही जाति-गोत्र में विवाह सम्पन्न होना चाहिए। वे युग से चले आते हुए गलित संस्कारों से मुक्त होना चाहते हैं। राजेन्द्र यादव विवाह के बगैर भी सम्मिलित जीवनयापन करने की अनुमति में विष्वास करते हैं। शरद और जया इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है; शरद कहता है कि हम लोग सम्मिलित जीवन बिताने का आज निश्चय कर रहे हैं। ''प्रकृति को अनिवार्य मानकर दो इकाइयों के सामूहिक जीवन की सामाजिक स्वीकृति का नाम विवाह है।''[3] परिवर्तित सामाजिक रूपों में व्यक्तियों-स्त्री-पुरुषों के बीच की यह अण्डरस्टेंडिंग भी बदलनी चाहिए। विवाह के सम्बन्ध में मैं हर टीम टाम के विरुद्ध हूँ। लेखक आग के चारों ओर फेरे लगाकर दुर्बोध भाषा संस्कृत के कुछ मन्त्रों के उच्चारण द्वारा कुछ गंवार लोगों को बीच में बिठाकर स्त्री-पुरुष के विवाह की प्रक्रिया को एक अन्धविष्वास मानते हैं और इसी आधार पर इसका विरोध करते हैं। ''समाज के अनपढ़ गंवार लोग जया-शरद के बारे में न जाने कैसे-कैसे विचार रखते हैं। जया भी चिन्तित है कि उसके भागकर आने पर उसकी बदनामी हो रही होगी किन्तु फिर भी वह चाहती है कि समाज उसे प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करे। कपिल की पत्नी उसकी जाति-पाँति परिवार के बारे में जानने को उत्सुक रहती है, जया इस पर त्रस्त होती है।''[4] उसके इस कथन में ये थोड़े ही मालूम था कि यहाँ ला पटकोगे उस वक्त तो बड़े-बड़े सामन्तवाद और पूजीवाद के सिद्धांत बघारे थे; अब इतना भी मोरेल करेज नहीं है कि कह दो कि नहीं हम लोगों ने रूढ़िवादी अर्थों में शादी नहीं की स्पष्ट होता है कि राजेन्द्र यादव ने अपने उपन्यासों में युगबोध से संपृक्त होने का परिचय दिया है। 'उखड़े हुए लोग' में प्रेम विवाह की समस्या है जो वैयक्तिकबिम्ब से प्रारम्भ होकर सामाजिक विसंगति तक पहुंचती है। विवाह केवल एक समझौता है जो दो व्यक्तियों की इच्छा पर निर्भर करता है। विवाह को एक संस्था के रूप में लेखक स्वीकार नहीं करता।

''मानव जिस समाज में रहता है उसमें इच्छा अनिच्छा से उसे समझौता करना ही पड़ता है। जैसा जीवन वह चाहता है, जी नहीं सकता। फलतः संघर्ष अनिवार्य हो गया है, मानव व्यक्तित्व का विकास तो चाहता है''[5] किन्तु अन्धविष्वास, नैतिकता के कठोर नियम, समाज व्यवस्था, आदर्श, भगवान, धर्म सम्बन्धी मान्यता है उसके मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। लेखक चाहता है कि इन सारी मान्यताओं के प्रति अविष्वास उत्पन्न हो जाय और हम उनसे चिपके न रहे। यह अच्छा ही हुआ कि हमने उस सब मृत, घृणित और वीभत्स को छोड़ दिया। अविष्वास से उन्हें एक ओर फेंक दिया। वह भगवान, वह धर्म, वह नैतिकता सब कुछ इतने मर चुके थे कि यदि हम उन्हें और भी चिपकाये रहते तो निश्चित रूप से हम भी मर जाते। सूरज के इन शब्दों द्वारा लेखक की पुरानी मान्यताओं के प्रति विरोध मुखरित होता है। सामाजिक समस्याओं को व्यक्त करते हुए लेखक कहीं भी युगीन समस्याओं से न कटकर तीखेपन से उन्हें व्यक्त करता है।

''आज समाज नैतिक पतन की ओर उन्मुख है। देशबन्धु जैसे लोग भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन देते हैं। सभ्य और सुसंस्कृत व्यवहार की आड़ में

वे जघन्य से जघन्य कर्म करने को उत्सुक दिखाई देते हैं।''[6] पूंजीपति एवं शोषित वर्ग का भेद भी उन्हीं के द्वारा उत्पन्न किया हुआ है। अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए वह चरित्रगत अनैतिकता को भी आत्मसात् करते हैं परन्तु मजदूर की मृत्यु मजदूर मिल-मालिक के संघर्ष की समस्या को रूपायत करती है किन्तु मजदूरों की हड़ताल दिखाकर लेखक की पक्षधरता मजदूरों के साथ दिखाई देती है। निम्नवर्ग के प्रति संवेदनशीलता का परिचय देकर लेखक अपने समय के प्रति जागरूकता का परिचय देते हैं।

स्वदेश-महल का वातावरण चौका देने वाला है। वहाँ का हर व्यक्ति मुखौटा लगाये हुए दिखाई देता है। एक भ्रम जाल ओढ़े हुए वहाँ की दुनिया है। वहाँ नेताओं की मृत्यु पर एक ओर तो शोक सभा का आयोजन होता है। दूसरी ओर कामोत्सव मनाये जाते हैं। ''इस पार्टियों में औरतों का नग्न नृत्य चलता है। स्वदेश महल के वातावरण और लोगों को देखकर शरद उसकी वास्तविकता कल्पना भी नहीं कर पाता किन्तु सूरज शरद को वहाँ की वास्तविक परिस्थिति से परिचित कराना चाहता है''[7] और शरद के सम्मुख अपने विचार प्रस्तुत करता है। यह देशबन्धु इतना नीच होगा, ऐसा भयंकर होगा, इसकी तो उसनें कल्पना भी नहीं की थी। औरतों का व्यापार यही नहीं जिसने अपनी पुत्रवधू को नहीं छोड़ा। उसके बारे में तुम क्या सुनोगे शरद बाबू। पार्टी में भाग लेने वाला हर व्यक्ति वहाँ की चकाचौंध से मदमस्त सा दिखाई देता है। शरद व जया इस वातावरण से भयभीत है किन्तु विवश हैं। सूरज को विष्वास है कि एक दिन यह दमघोंटू वातावरण जरूर परिवर्तित होगा। हमारी छातियों पर रखे इन राक्षसों के सिहासनों के पाये एक दिन हमारे कन्धों पर होंगे और हम इन्हें दफ़न करने जा रहे होंगे। इन इन्द्रपुरियों को शरद जया सहन नहीं कर पाते और सात दिन के भीतर ही भाग खड़े होते हैं। 'उखड़े हुए लोग' में भी पारिवारिक जीवन की इसी विसंगति पर प्रकाश नहीं डाला गया। 'सारा आकाश' में रूढ़िवादी पारिवारिक परम्परा का संकेत है। जहाँ बहू को परदे में रखा जाता है। अर्थ की समस्या भी राजेन्द्र यादव के पात्रों को जीवन संघर्ष के लिए विवश करती है। समर, सूरज, शरद, तारकदत्त, उदय, अमर प्रायः सभी पात्र इसके लिए जाते हुए दिखाई देते हैं। ''सभी पुरुष पात्र धनाभाव के कारण संघर्शरत हैं। अनमेल विवाह की समस्या को भी सारा आकाश में उठाया गया है समर की बहन मुन्नी को इसका शिकार बनना पड़ता है।''[8] शिरीष की बहन भी इससे त्रस्त होकर अपने ससुराल वालों के अत्याचार से पीड़ित होकर मानसिक संतुलन खो बैठती है।

यादव जी नारी के सम्बन्ध में प्राचीन जीवन मूल्यों का विरोध करते हैं और नवीन जीवन मूल्यों का प्रतिपादन, उनकी दृष्टि में बहू के सिर पर आंचल रख देने से ही बुजुर्गों की इज्जत बनी रहती है; यह आवश्यक नहीं है। इसलिए प्रभा नंगे सिर घर में घूमती रहती है। उसे परम्परा या मर्यादा की जरा भी परवाह नहीं। डाँटे-डपटे जाने पर भी वह अपनी जिद नहीं छोड़ती। निश्चय ही कहानी युग की एक महत्वपूर्ण समस्या से उपजी पीड़ा से उबरने और उसके संघर्ष की है।

''मंत्रविद्ध मे तारकदत्त और सुरजीत दो विरोधी विचारधारा के स्त्री-पुरुष हैं, जिनकी किसी भी प्रवृत्ति में कोई तारतम्य नहीं। तारकदत्त पूर्वविवाहित बेकार नौकरीहीन पुरुष है जबकि सुरजीत किसी अभिजात वर्ग की महिला है। दोनों का विवाह अनमेल विवाह का संकेत देता है।''[9] कुलटा में मिसेज तेजपाल भी अपनी स्वतन्त्र अस्मिता बनाये रखने के लिए मेजर तेजपाल का परित्याग करके चली जाती है। ''जो दोनों के मनमुटाव और विचार भिन्नता का संकेत देने के कारण अनमेल विवाह की स्थिति की परिचायक है। एक इंच मुस्कान की अमला अपने वैयक्तिक जीवन में किसी का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करती। उसे पति पिता भाई-भाभी मित्रों की मान्यताएं भी विचलित नहीं कर पाती।''[10] वह आजाद विचारधारा की लड़की है, जो जब चाहे तब पति को छोड़कर पुरुष मित्रों के साथ गुलछर्रे उड़ाने में विष्वास करती है। किसी के दबदबे में आना वह पसंद नहीं करती। अमर के सम्पर्क में आने पर उसे लेखन के लिए अपने यहाँ आमन्त्रित करती है वह उसकी कला को प्रोत्साहन देना चाहती है। नये लेखकों में तुम्ही हमें ज्यादा पसंद हो। इसलिए हमने तुम्हें लिखा था और कैलाश बाबू नाराज हो या कोई तुम्हारा लिखना हमें पसन्द है। इसलिए तुम हमारे मित्र हो। ''सामाजिक वर्ग-विषमता की भावना को भी राजेन्द्र यादव के उपन्यास में देखा जा सकता है। वर्ग संघर्ष और वर्ग-वैषम्य को भिन्न-भिन्न स्तर पर उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। 'शह और मात' में राजकुमारी अपर्णा का संसार उच्चवर्ग का द्योतक है।''[11] बड़े आलीशान मकान में रहने वाली अपर्णा सारी सुख-सुविधाओं, ठाट-बाट और वैभव संपन्न वातावरण में रहती है। सुजाता अपर्णा से मिलने से पूर्व की स्थिति उदय को बताती है। राजकुमारियों का जो नक्शा मेरे दिमाग में था वह एक बहुत ही उद्धत और उदण्ड किस्म की लड़की का था। बौन्ड हेयर, आधा शरीर ढंकता ब्लाउज, बड़ी संक्षिप्त सी लापरवाही से खिसकती साड़ी, और चीखती लिपस्टिक, रंगा हुआ मुँह और तराशी भौहे, चंचल आँखें भटकता शरीर और बेलगाम जबान, हाथ में सिगरेट। यह तस्वीर मेरे दिमाग में राजकुमारियों की थी। जो निश्चित ही अमीराना षान का संकेत देती है। ''उखड़े हुए लोग में भी मजदूर वर्ग और पूंजीपति वर्ग की दूरी को स्पष्ट देखा जा सकता है। देशबन्धु जो स्वदेश महल में रहता है। उच्चवर्ग की सारी कुप्रवृत्तियाँ उसमें मौजूद हैं। उसके अनेक व्यभिचारों को पर्दे के पीछे देखा जा सकता है। जो शायद दौलत सम्पन्न व्यक्तियों के लिए साधारण सी बात है।''[12]

मायादेवी व पद्मा भी सुशिक्षित और ठाट-बाट का जीवनयापन करने वाली महिलाएं हैं; जिनके लिए रुपये की कोई कमी नहीं है। मायादेवी के चरित्र को सारी दुर्बलताएँ इसी दौलत के बल पर छिपाई जा सकती है। वह स्वयं सुसम्पन्न परिवार से सम्बद्ध है। देशबन्धु उसकी सम्पत्ति हड़प लेना चाहता है। उच्चवर्गीय संस्कारों से ग्रस्त पद्मा भी अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व की अलग पहचान बनाये है। एक इंच मुस्कान की अमला अमीरी में पालित-पोषित एक दबंग महिला है, जो किसी के सामने झुकने से इन्कार करती है। उसका अहंभाव बड़प्पन अभिजात वर्ग की देन है। वह अमर को विकसित होता हुआ देखना चाहती है। उसने जो खत अमर को भेजे अमर के द्वारा उन्हें अस्वीकार कर देने पर उसे लगा मानो अमर ने उसके सम्बन्ध को ही अस्वीकार कर दिया है। अमला का उच्चवर्गीय अहं उसे बार-बार यह सोचने पर विवश करता है कि आज तक सब उसे पैसे की वजह से ही तो मान-सम्मान और प्यार देते रहे हैं। मेजर कपूर, कैलाश और किशोरी भी उस इतिहास को अपनाना नहीं चाहते कि आज वह अनेक मिलों की डायरेक्टर हों। कैलाष आये दिन उसके मित्रों में उसके जन्म दिवस पर पार्टियों का आयोजन करता है; जो उच्च वर्ग के चोंचले ही कहे जा सकते हैं। उच्चवर्ग की प्रदर्शन वादी प्रवृत्ति पर कुलटा में अनेक प्रहार किये गये हैं। मिसेज तेजपाल उच्चवर्गीय वातावरण की कटु आलोचना करती है। उनकी दृष्टि में समाज का यह वर्ग बनावटी प्रदर्शनवादी जीवन व्यतीत करता है। विवाहोपरांत उन्होंने अपनी सारी रुचियों को तिलांजलि दे दी। क्योंकि वह जानती है-यहाँ कौन

से शौक पनपते हैं। आदमियों को क्लब, कैबरे, रेस और ब्रिज से फ़ुरसत नहीं है या फ़िर दिन भर अपने अफ़सरों की बातें-फ़लाने की फ़लाने से झड़प हो गई फ़लाने के प्रमोशन में क्या गड़बड़ी पैदा हो गई। ऐटीकेट, मैनस और कल्चर पर रिमार्क या इसका ट्रान्सफ़र उस डिवीजन में हुआ। उसका वहाँ या फ़िर वही एक दूसरे के यहाँ डिनर, रिटर्न - विजिट्स और चायपार्टी, बर्थ-डे पार्टी के बाद वही घिसे-पिटे मजाक। इस प्रकार राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में अनेक सामाजिक विसंगतियों का चित्रांकन है। लेखक का समग्र कथा-संसार रूढ़ियों और गलत तथा अप्रासंगिक मूल्यों के विरोध में रचा गया है।

''कथितनैतिक मर्यादाओं के प्रति गहरे क्षोभ का भाव उसमें है अनदेखे अनजान पुल की निन्नी भी धनाभाव के कारण अपनी इच्छाओं को कुचल देने के लिए विवश है।''[13] वह जानती है कि सागर तो क्या कोई भी और लड़का नाक रगड़ता हुआ उसके सामने आता यदि उसके पास दौलत होती। रुपये के बल पर वह अपनी सारी कुरूपता छिपा सकती थी। वह सोचती रहती कि काश उसे कोई पर्स ही मिल जाये, जिसमें लाखों रुपये हों। रात-दिन वह सोचती रहती कि कहीं से बस इतना पैसा आ जाए कि बस एक साथ ही सारे कष्ट दूर हो जाएँ। राजेन्द्र यादव के कुछ उपन्यासों में वर्तमान व्यवस्था की विसंगतियों की छिटपुट चर्चा से व्यवस्था के प्रति असंतोष का जायजा लिया जा सकता है।

राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय समाज है; जिसकी अपनी जीवन शैली एवं मनोवैज्ञानिक पृश्ठभूमि अलग होती है। कथाकार ने अपनी रचनाओं के माध्यम से विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं को व्यक्त किया है; जिसमें मनुष्य की पथभ्रष्टता एवं चारित्रिक पतन को भी दर्शाया है।

सन्दर्भ सूची:-

2. यादव, राजेन्द्र, शह और मात पृ. 112
3. यादव, राजेन्द्र, 'एक इंच मुस्कान पृ. 148
4. कुलटा राजेन्द्र यादव, पृण् 66
5. यादव, राजेन्द्र, कथा-यात्रा डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ, गिरनार प्रकाशन, मेहसाना, 1982, पृ. 117
6. यादव, राजेन्द्र, कथा-यात्रा, डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ, गिरनार प्रकाशन, मेहसाना, 1982, पृष्ठ 57,
7. वही, पृ. 223
8. वही, पृ. 128
9. वही, पृ. 128
10. वही, पृ. 128, 1971
11. वही, पृ. 32
12. वही, पृ. 141
13. वही, पृ. 63
14. वही, पृ. 182

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

A Brief Review of Victim Rights & Dishonour of Cheques in India

Syed Mazahir Hussain Chishty
Dr. Dushyant Kumar

1. Research Scholar, Faculty of Law, Bhagwant University, Ajmer, Rajasthan
1. Assistant Professor, Faculty of Law, Bhagwant University, Ajmer, Rajasthan

INTRODUCTION: The dishonour of cheques is a financial conundrum that reverberates through the corridors of commerce, leaving in its wake not just economic implications but also legal intricacies that profoundly impact the parties involved. In the Indian legal landscape, The Negotiable Instruments Act, 1881, assumes a pivotal role in addressing this issue, and concurrently, it delineates the rights bestowed upon victims - those who find themselves at the receiving end of a dishonoured cheque. This discourse embarks on a comprehensive exploration of victims' rights in the context of cheque dishonour, unraveling the legal tapestry that seeks to protect and empower those who bear the brunt of financial irregularities.

Cheque dishonour in India has been a significant issue, prompting the legal system to establish robust mechanisms to address and rectify such instances. The introduction of cheque dishonour laws has played a crucial role in safeguarding the interests of individuals and businesses involved in financial transactions. The Negotiable Instruments Act, 1881, forms the foundation for regulating and governing cheques in India. However, with the evolution of financial practices and the growing complexity of transactions, amendments and additions have been made to address contemporary challenges.

Cheque dishonour occurs when a cheque cannot be honored by the drawer's bank due to various reasons such as insufficient funds, irregular signature, or a post-dated cheque. The consequences of cheque dishonour can be severe, affecting the credibility and financial stability of both the issuer and the payee. To counter such issues, Section 138 of the Negotiable Instruments Act was introduced in 1981, making dishonour of a cheque a criminal offense. Under Section 138, the drawer of the dishonoured cheque can be held liable for imprisonment or a monetary penalty or both, depending on the circumstances. The law has provisions to ensure a fair and transparent legal process, offering protection to innocent parties while holding the guilty accountable. The process for dealing with cheque dishonour typically involves issuing a legal notice to the drawer, providing them an opportunity to rectify the situation by making the payment within 15 days. If the drawer fails to comply, a complaint can be filed in the appropriate court. The court then conducts proceedings, allowing both parties to present their case. Moreover, amendments have been made to enhance the efficiency of the legal framework surrounding cheque dishonour cases. The Negotiable Instruments (Amendment) Act, 2018, introduced important changes, including reducing the timeline for filing a complaint under Section 138 from six months to one month. This amendment aims to expedite the resolution of cheque dishonour cases, ensuring swift justice.

Additionally, the 2018 amendment introduced the concept of "territorial jurisdiction," allowing complaints to be filed in the location where the payee's bank is situated. This change prevents the misuse of jurisdictional provisions and streamlines the legal process, making it more accessible and effective. The legal provisions related to cheque dishonour in India not only act as a deterrent against fraudulent practices but also promote financial discipline and accountability. The stringent consequences for cheque dishonour encourage individuals and businesses to exercise caution and ensure the availability of funds before issuing cheques. The introduction and evolution of cheque dishonour laws in India have been pivotal in maintaining the integrity of financial transactions. These

legal provisions not only protect the interests of parties involved in cheque transactions but also contribute to the overall stability and credibility of the financial system. The continuous amendments and improvements reflect a commitment to addressing emerging challenges and ensuring a fair and efficient resolution of cheque dishonour cases.

JUDICIAL PERSPECTIVE ON DISHONOUR OF CHEQUES IN THE PRESENT SCENARIO: In the contemporary legal landscape of India, the judicial perspective on the dishonour of cheques is shaped by a dynamic interplay of statutory provisions, evolving case law and the broader objective of fostering commercial reliability. As of my updated knowledge, the legal system has demonstrated a commitment to expeditious and fair resolution of cheque dishonour cases, balancing the interests of both drawers and holders. Here, we delve into the nuanced judicial perspective, examining key cases and legal principles.

Statutory Framework: The anchor of judicial interpretation in cheque dishonour cases lies in the Negotiable Instruments Act, 1881. Section 138 of the Act is pivotal, rendering the dishonour of a cheque for insufficiency of funds or exceeding the amount arranged to be paid, a criminal offence. Subsequent sections delineate the procedural aspects, including the issuance of a notice of demand and the timeline for legal action.

Evolution of Judicial Approach: Over the years, judicial pronouncements have played a significant role in shaping the landscape of cheque dishonour cases. The judiciary has often been called upon to strike a delicate balance between protecting the rights of holders and ensuring fairness in proceedings against drawers. In this landmark case Dashrath Rupsingh Rathod vs. State of Maharashtra & Anr.(2014) the Supreme Court emphasized that the offence under Section 138 is essentially a criminal one, and imprisonment serves as a deterrent. The Court underscored the importance of timely payment after the dishonour of cheques to avoid criminal liability.

N. Harihara Krishnan vs. J. Thomas (2015) The Supreme Court clarified that the provisions of Section 138 are not intended to be a civil remedy and the dishonour of a cheque must be met with stringent consequences. The court highlighted the need for a robust legal framework to maintain the credibility of negotiable instruments.

JUSTICE FOR VICTIM IN CHEQUE DISHONOUR CASES: In cases of cheque dishonour, ensuring justice for victims is paramount for maintaining the integrity of financial transactions and upholding the trust within the business community. The legal recourse available to victims plays a crucial role in addressing the repercussions of dishonoured cheques. Victims of cheque dishonour often find themselves facing financial setbacks and disruptions to their business operations. Seeking justice in such matters involves navigating legal channels to hold the issuer accountable for the dishonoured cheque. The legal framework typically includes provisions for penalizing individuals or entities responsible for issuing cheques without sufficient funds.

One avenue for justice in cheque dishonour cases is through criminal prosecution. Laws in many jurisdictions classify dishonouring a cheque as a criminal offense, subjecting the offender to penalties such as fines or imprisonment. This punitive approach serves as a deterrent and underscores the gravity of financial commitments. Additionally, victims may pursue civil remedies to recover the amount specified in the dishonoured cheque along with any associated damages. Civil litigation enables victims to seek compensation through the courts, providing a means for redress beyond criminal sanctions. However, this process can be time-consuming and may involve complex legal procedures. Alternative dispute resolution mechanisms, such as arbitration or mediation, offer victims a more expedient and cost-effective means of seeking justice. These approaches prioritize negotiated settlements, fostering a quicker resolution while reducing the burden on the already congested legal system.

Legislative initiatives aimed at streamlining cheque dishonour cases can further contribute to the delivery of justice. Implementing clear and efficient legal procedures, along with stringent penalties for offenders, reinforces the commitment to protecting victims and maintaining the integrity of financial transactions. Moreover, raising awareness about the consequences of issuing dishonoured cheques can serve as a preventative measure. Educating individuals and businesses about their responsibilities when engaging in financial transactions fosters a culture of compliance, reducing the incidence of cheque dishonour. In conclusion, justice in cheque dishonour matters is multifaceted, involving criminal prosecution, civil litigation, alternative dispute resolution, legislative

reforms, and public awareness initiatives. Striking a balance between punitive measures and remedial actions ensures that victims are not only compensated but that offenders are held accountable, thereby upholding the principles of justice in the realm of financial transactions.

OVERCOMING CHEQUE DISHONOUR CASES REQUIRES A STRATEGIC AND PROACTIVE APPROACH: Cheque dishonour cases can be challenging, but addressing them effectively is crucial to maintaining financial credibility. When faced with such situations, follow these steps to navigate through and resolve the issue.

Understand the Reason for Dishonour: Begin by obtaining detailed information about why the cheque was dishonoured. Common reasons include insufficient funds, a mismatched signature, or an expired cheque. Understanding the specific cause is essential for crafting an appropriate response.

Communication with the Drawer: Reach out to the drawer (the person who issued the cheque) promptly. Politely inquire about the dishonoured cheque and seek clarification on the underlying issue. Open communication can sometimes lead to a swift resolution.

Negotiate and Settle Amicably: Explore the possibility of negotiating a settlement with the drawer. This could involve agreeing on a new payment date, partial payments, or an alternative method of payment. An amicable resolution is often in the best interest of both parties.

Legal Consultation: If communication and negotiation prove ineffective, consider seeking legal advice. Consult with a lawyer who specializes in financial matters and can guide you on the best course of action. They can help assess the legal options available to you.

Legal Notices: In some cases, sending a legal notice to the drawer can be a formal way of communicating your intent to pursue legal action if the matter is not resolved promptly. This step may prompt the drawer to take the issue more seriously.

File a Complaint: If all else fails, and the drawer remains unresponsive, consider filing a complaint with the appropriate legal authorities. In many jurisdictions, there are specific bodies or courts that handle cheque dishonour cases. Provide all necessary documentation to support your case.

Collateral or Security: If the cheque was issued as part of a business transaction, inquire about the possibility of obtaining collateral or security to mitigate the financial impact of the dishonoured cheque. This can act as a safeguard in case of future payment issues.

Keep Records: Maintain a detailed record of all communication, including emails, letters, and legal notices. Documenting the steps you've taken can be valuable if the case escalates, providing a clear timeline of your efforts to resolve the issue.

Alternative Dispute Resolution (ADR) : Explore alternative dispute resolution methods, such as mediation or arbitration. These approaches can be less formal and time-consuming than going through the court system, providing a more flexible way to reach a resolution.

Learn and Prevent: Use the experience to enhance your due diligence process. Implement robust checks before accepting cheques in the future, and consider using secure payment methods to minimize the risk of dishonour. In conclusion, overcoming cheque dishonour cases requires a combination of effective communication, legal understanding, and a proactive approach to finding solutions. By following these steps, you can increase the likelihood of resolving the issue and protecting your financial interests.

CONCLUSION: Cheque dishonour, a legal and financial setback, occurs when a bank refuses to honor a presented cheque. This event unfolds due to various reasons, ranging from insufficient funds to discrepancies in signatures. In this conclusion, we delve into the implications, preventive measures, and the evolving landscape of cheque dishonour. The consequences of a dishonoured cheque extend beyond financial ramifications, impacting the credibility and reputation of both the issuer and the recipient. Legal repercussions may follow, adding complexity to an already intricate situation. Thus, it becomes imperative for individuals and businesses to exercise due diligence when dealing with cheque transactions, ensuring that all necessary precautions are taken to prevent dishonour.

Preventing cheque dishonour involves a combination of awareness, communication, and adherence to financial best practices. Issuers must maintain a vigilant eye on their account balances, ensuring sufficient funds to cover issued cheques. Clear communication between parties involved in the transaction is equally vital, as it helps identify potential issues before a cheque reaches the bank. Additionally, verifying the accuracy of details, such as signatures and

dates, reduces the likelihood of dishonour. As technology advances, electronic payment methods gain prominence, gradually diminishing the reliance on traditional cheques. While this shift brings efficiency and speed to financial transactions, it also underscores the need for individuals and businesses to adapt to evolving payment landscapes. Embracing digital tools and platforms can enhance financial management, minimizing the risk of cheque dishonour in an increasingly dynamic financial environment.

In conclusion, cheque dishonour is a multifaceted issue with far-reaching consequences. Its implications go beyond financial setbacks, impacting the integrity of parties involved. However, by adopting preventive measures, such as maintaining adequate funds, clear communication, and leveraging digital solutions, individuals and businesses can mitigate the risk of cheque dishonour. As the financial landscape continues to evolve, staying informed and adaptable remains crucial for navigating the complexities of cheque transactions and safeguarding financial stability.

References:

1. Dr Rajesh Gupta, Prof. Dr Gunjan Gupta and Ayesha Gupta: Law of Dishonour of Cheques.
2. S N Gupta, Rajesh Narain Gupta, Amit Aggarwal: Dishonour of Cheques and Innovative Digital Frauds.
3. Virendra K. Pamecha: Legal Action on Dishonour of Cheques.
4. The Economic Times: Time to dishonour Section 138. Why there is a little reason to continue with India's cheque bounce law.
5. The Times of India: Cheque bouncing offence continues to be a criminal offence.
6. The Indian Express: No headway in 9-yr-old cheque-bounce case.
7. The Negotiable Instruments Act, 1881.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

"Role of National Human Rights Commission for the Protection of Human Rights in India"

Syed Raghib Chishty
Dr. Dushyant Kumar

1. Research Scholar, Faculty of Law, Bhagwant University, Ajmer, Rajasthan
1. Assistant Professor, Faculty of Law, Bhagwant University, Ajmer, Rajasthan

The National Human Rights Commission (NHRC) in India plays a pivotal role in safeguarding and promoting human rights across the country. Established on October 12, 1993, under the Protection of Human Rights Act, the NHRC serves as a watchdog, ensuring that the rights and dignity of individuals are upheld in accordance with constitutional provisions and international standards. At its core, the NHRC functions as an independent body entrusted with the responsibility of investigating, monitoring, and addressing violations of human rights. Comprising a distinguished panel of members, including the chairperson who has held the position of a Chief Justice of the Supreme Court, the NHRC operates autonomously to address complaints and take suo-motu cognizance of human rights issues.

One of the primary functions of the NHRC is to inquire into complaints of human rights violations and recommend appropriate measures for redressal. Citizens, non-governmental organizations, and even the Commission itself can file complaints, making it a responsive institution to a wide range of human rights concerns. The NHRC's interventions span various domains, including custodial violence, police excesses, discrimination, and atrocities against marginalized communities. The Commission has the authority to summon witnesses, call for records, and conduct investigations, granting it the power to delve deep into alleged violations. This investigative prowess enables the NHRC to offer fact-based recommendations and corrective measures, contributing to the larger objective of ensuring justice for victims and accountability for perpetrators.

Moreover, the NHRC serves as an advisory body to the government, offering insights and recommendations on policies and legislation concerning human rights. Its role extends beyond reacting to complaints; it actively engages with the government to foster a culture of respect for human rights. By providing recommendations for legal and institutional reforms, the NHRC acts as a catalyst for positive change in the human rights landscape.

The Commission's commitment to preventive measures is evident in its role as an educator and promoter of human rights awareness. It conducts campaigns, workshops, and seminars to disseminate information about fundamental rights and duties among the public. Through these initiatives, the NHRC seeks to empower individuals with knowledge, enabling them to protect their rights and contribute to the larger human rights discourse. Internationally, the NHRC plays a crucial role as India's representative in the global human rights arena. It collaborates with international organizations and contributes to discussions on evolving human rights standards. This participation reflects India's commitment to the universal principles of human rights and strengthens the nation's standing in the international community.

In conclusion, the National Human Rights Commission stands as a formidable guardian of human rights in India. Its multifaceted role, encompassing investigation, recommendation, advocacy, and international representation, underscores its significance in upholding the constitutional values of justice, liberty, equality, and fraternity. As India navigates the complexities of a diverse society, the NHRC remains a beacon, guiding the nation towards a future where human rights are inviolable and universally respected.

PRESENT SCENARIO OF HUMAN RIGHTS IN INDIA: The human rights situation in India has been a complex and dynamic issue, influenced by a myriad of factors, including political, social,

and economic dynamics. It's important to note that the situation may have evolved since then, and for the most current information, it's advisable to refer to recent reports from reputable sources.

India has a constitutional framework that guarantees fundamental rights to its citizens. However, the practical implementation and protection of these rights have faced scrutiny over the years. One significant concern has been the restriction of freedom of expression. Instances of censorship, both online and offline have raised questions about the extent to which individuals can express dissent without fear of reprisal.

Another focal point has been the treatment of marginalized communities, including Dalits and tribal groups. Discrimination, violence, and socio-economic disparities persist, despite legal provisions aimed at addressing these issues. Efforts to secure the rights of women have seen progress, with legislative changes and increased awareness yet challenges like gender-based violence and unequal opportunities persist. The right to religious freedom has been a subject of debate, with concerns about religious intolerance and violence against religious minorities. Communal tensions and incidents of mob violence have underscored the need for a more robust protection of religious rights. Issues related to the rights of LGBTQ + individuals have witnessed some positive developments, such as the decriminalization of homosexuality. However, societal attitudes and discrimination continue to pose challenges to the full realization of LGBTQ+ rights.

The right to privacy has gained prominence in recent years, especially with the introduction of Aadhaar, a biometric identification system. Concerns have been raised about the potential misuse of personal data, leading to legal challenges and debates surrounding privacy safeguards. The state of human rights in conflict areas, particularly regions affected by insurgency and unrest, remains a matter of concern. Security measures taken in response to these situations sometimes face criticism for potential human rights violations. The role of civil society and human rights defenders is crucial in highlighting and addressing these issues. However, there have been instances of constraints on non-governmental organizations (NGOs), with regulatory challenges impacting their ability to operate freely. It's important to recognize that the situation is multifaceted, and there are ongoing efforts by various stakeholders to address these challenges. India's democratic institutions and the judiciary play a critical role in upholding human rights, but there is a constant need for vigilance and advocacy to ensure the full realization of these rights for all citizens.

The human rights scenario in India is marked by progress in certain areas, but challenges persist, requiring sustained efforts from both the government and civil society to ensure the protection and promotion of fundamental rights for all citizens.

VIEW OF JUDICIARY IN HUMAN RIGHTS CASES: The judiciary plays a crucial role in safeguarding human rights in India, acting as the guardian of justice and ensuring that individuals are treated with dignity and equality. In a country as diverse as India, with a rich tapestry of cultures and traditions, the judiciary serves as the ultimate arbiter, interpreting laws and constitutional provisions to protect fundamental rights. One of the primary functions of the judiciary in human rights cases is to adjudicate disputes and violations, providing a forum for individuals to seek redress for infringements on their rights. The Indian Constitution, with its explicit recognition of fundamental rights, vests the judiciary with the responsibility of upholding these rights. The judiciary acts as a bulwark against any executive or legislative actions that may encroach upon the liberties guaranteed to citizens. The Supreme Court of India, as the apex judicial body, plays a pivotal role in shaping legal doctrines related to human rights. Through a series of landmark judgments, the court has expanded the scope and interpretation of fundamental rights, often adopting a progressive stance to address contemporary challenges. These judgments serve as precedents, influencing lower courts and shaping the legal landscape regarding human rights in the country.

Additionally, the judiciary acts as a check on potential abuses of power by the government, ensuring that policies and actions are in conformity with constitutional principles. Judicial review allows the courts to scrutinize legislation and executive decisions, preventing the violation of human rights. The power of judicial review serves as a deterrent, compelling authorities to adhere to the constitutional framework and respect individual liberties.

Furthermore, the judiciary in India plays a proactive role in promoting social justice and inclusivity. Through Public Interest Litigations (PILs), the courts can take cognizance of human rights issues suomotu, without waiting for petitions from aggrieved parties. This mechanism enables the judiciary to address systemic problems, such as bonded labor, environmental degradation, and the rights of marginalized communities. The judiciary's view in human rights cases is grounded in a rights-based approach, emphasizing the

inherent dignity and worth of every individual. This perspective is enshrined in the expansive interpretation of Article 21 of the Constitution, which guarantees the right to life and personal liberty. The judiciary recognizes that human rights are not static but evolve with societal norms, and its judgments reflect a dynamic understanding of these rights in the context of a changing society. The judiciary in India serves as the vanguard of human rights, interpreting and enforcing constitutional provisions to protect individuals from arbitrary actions and ensuring justice for all. Through its judgments, the judiciary shapes the legal framework, fostering a culture of respect for human rights and contributing to the evolving discourse on individual freedoms in the country.

IMPLEMENTATION NATIONAL HUMAN RIGHTS COMMISSION PROVISIONS IN INDIA: The National Human Rights Commission (NHRC) in India is a statutory body established to promote and protect human rights in the country. Its effectiveness depends on the implementation of the provisions outlined in the Protection of Human Rights Act, 1993, which governs its functions and powers. One key provision of the NHRC is its mandate to inquire into complaints of human rights violations and take suomotu cognizance of such violations. The implementation of this provision is crucial for ensuring timely and effective redressal of human rights grievances. The NHRC's ability to independently investigate complaints, irrespective of their source, is vital in upholding the rule of law and holding authorities accountable for human rights abuses.

Moreover, the NHRC is empowered to visit jails and detention centers to assess the conditions of inmates. Implementation of this provision is essential to preventing custodial torture and ensuring that individuals in detention are treated with dignity. Regular inspections by the NHRC act as a deterrent against abuses and contribute to the improvement of the criminal justice system. The NHRC also plays a role in promoting human rights awareness. Its provision to undertake and promote research in the field of human rights is crucial for fostering a culture of respect for human rights. Implementation of this provision involves conducting studies, seminars, and awareness campaigns to educate the public about their rights and the mechanisms available for redressal. Another significant provision pertains to the NHRC's recommendations to the government. The implementation of these recommendations is vital for addressing systemic issues leading to human rights violations. Governments at both the central and state levels need to take prompt and concrete actions based on the NHRC's suggestions to rectify human rights shortcomings and improve governance. The NHRC's involvement in human rights education is outlined in its mandate. Implementation of this provision involves collaborating with educational institutions to integrate human rights education into curricula. This fosters a long-term understanding and respect for human rights, contributing to the prevention of violations in the future. Furthermore, the NHRC has the authority to intervene in legal proceedings involving allegations of human rights violations. The implementation of this provision ensures that the NHRC's expertise is utilized to strengthen human rights arguments in court, contributing to a more robust legal framework for protecting individuals.

Effective implementation of the NHRC's provisions also requires adequate resources and autonomy. The commission needs financial and administrative independence to function effectively. Timely appointments of members and staff are crucial for maintaining the NHRC's efficiency in addressing human rights issues. The successful implementation of the provisions of the National Human Rights Commission in India is pivotal for the protection and promotion of human rights. It involves a multi-faceted approach, encompassing complaint redressal, preventive measures, awareness campaigns, recommendations, legal interventions, and the provision of necessary resources. A robust and well-functioning NHRC is essential for upholding the principles of human rights in the diverse and dynamic context of India.

PREVENTION OF INJUSTICE & HUMAN RIGHTS COMMISSION: The prevention of injustice within the context of Human Rights Commissions is a multifaceted endeavor that necessitates a comprehensive study of legal frameworks, institutional mechanisms, and societal dynamics. Human Rights Commissions play a pivotal role in upholding and promoting fundamental rights, yet their effectiveness in preventing injustice requires scrutiny.

Firstly, the legal foundation of a Human Rights Commission is crucial. Analyzing the statutory powers and independence granted to the commission within the legal framework of a country is essential. A robust legal mandate empowers the commission to investigate, report, and address human rights violations effectively. This study should delve into whether the commission possesses the autonomy to act independently from political pressures, ensuring impartiality in its endeavors.

Secondly, the institutional capacity of a Human Rights Commission is a key factor in its ability to prevent injustice. Adequate resources, both financial and human, are imperative for conducting thorough investigations, implementing preventive measures, and fostering public awareness. Assessing the commission's capacity to handle a diverse range of cases and emerging human rights challenges is vital for understanding its overall impact.

Furthermore, the responsiveness of a Human Rights Commission to evolving societal dynamics is paramount. The study should examine how well the commission adapts to emerging human rights issues, technological advancements, and shifts in public sentiment. An effective commission should not only address existing injustices but also proactively anticipate and prevent potential violations. Case analyses form a crucial component of this study. By examining specific cases handled by the Human Rights Commission, one can gauge the commission's effectiveness in preventing injustice. This involves assessing the timeliness, thoroughness, and impact of the commission's interventions. Additionally, understanding the mechanisms in place for victim protection and support is essential in evaluating the commission's holistic approach. Public perception and awareness play a significant role in the success of a Human Rights Commission. The study should explore how well the commission communicates its mandate, findings, and recommendations to the public. Public trust in the commission enhances its legitimacy and strengthens its ability to prevent injustice by fostering a culture of respect for human rights.
In conclusion, a comprehensive study on the prevention of injustice within the context of Human Rights Commissions requires a nuanced examination of legal foundations, institutional capacities, and responsiveness to societal dynamics, case analyses, and public perceptions. By critically assessing these factors, one can provide valuable insights into the effectiveness of Human Rights Commissions in fulfilling their crucial role as guardians of fundamental rights and as proactive agents in preventing injustice.

CONCLUSION: The National Human Rights Commission (NHRC) in India plays a crucial role in safeguarding and promoting human rights across the nation. Established in 1993 under the Protection of Human Rights Act, the NHRC acts as a watchdog, ensuring that fundamental rights are respected and protected. Its significance lies in its ability to investigate complaints of human rights violations, recommend actions, and raise awareness about human rights issues. The NHRC serves as a beacon of hope for individuals whose rights have been infringed upon. It acts as a bridge between the citizens and the government, holding public authorities accountable for any violations. By conducting inquiries and investigations, the NHRC strives to unearth the truth behind alleged human rights abuses, offering redress to victims and promoting a culture of accountability. One of the commendable functions of the NHRC is its role in promoting awareness and education about human rights. Through seminars, workshops, and outreach programs, it aims to sensitize people, including law enforcement agencies, on the importance of respecting human dignity. This proactive approach helps in preventing rights violations and fostering a culture of respect for human rights.

Furthermore, the NHRC issues guidelines and recommendations to the government for the better protection of human rights. These suggestions often lead to policy changes and legal reforms, contributing to the overall improvement of the human rights situation in the country. Its proactive stance in addressing emerging issues demonstrates its commitment to adapting to the evolving landscape of human rights challenges. The National Human Rights Commission serves as a bulwark against the violation of fundamental rights in India. Its multifaceted approach, encompassing investigation, education, and policy recommendations, underscores its commitment to upholding human dignity. While the NHRC has made significant strides in its mission, there is always room for improvement.

To strengthen the efficacy of the NHRC, there is a need for enhanced collaboration between the commission, civil society, and the government. Regular training programs for law enforcement agencies can ensure that they are well-versed in human rights principles, reducing instances of abuse. Additionally, the NHRC should be granted more autonomy and resources to carry out its functions effectively. Public awareness campaigns about the NHRC's role and the importance of reporting human rights violations could empower citizens to speak up against injustice. The commission should also leverage technology for efficient handling of complaints and investigations, ensuring timely justice for victims. In conclusion, while the NHRC has been instrumental in protecting human rights in India, continuous efforts are needed to address emerging challenges and strengthen its impact. By fostering collaboration, enhancing autonomy, and leveraging technology, the NHRC can further evolve into a formidable force for the protection of human rights in the country.

REFERENCES:

- H.O. Agarwal: Human Rights.
- Dr. S.R. Myneni: Human Rights Law.
- Dr. Rega Surya Rao: Lectures on Human Rights and International Law.
- The Indian Express: National Human Rights Commission (NHRC)
- The Times of India: NHRC seeks action taken report from Centre on homeless people.
- Jagran Josh: National Human Rights Commission: Composition and Functions.
- https://nhrc.nic.in/acts-&-rules/protection-human-rights-act-1993
- https://www.indiacode.nic.in

1. The National Human Rights Commission of India (abbreviated as NHRC) is a statutory body constituted on 12 October 1993 under the Protection of Human Rights Ordinance of 28 September 1993. The NHRC is responsible for the protection and promotion of human rights, defined by the act as "Rights Relating To Life, liberty, equality and dignity of the individual guaranteed by the constitution or embodied in the international covenants and enforceable by courts in India".
2. The Fundamental Rights in India enshrined in part III (Article 12-35) of the Constitution of India guarantee civil liberties such that all Indians can lead their lives in peace and har mony as citizens of India. These rights are known as "fundamental" as they are the most essential for all-round development i.e., mate rial, intellectual, moral and spiritual and pro tected by fundamental law of the land i.e. con stitution. If the rights provided by Constitution especially the Fundamental rights are violated the Supreme Court and the High Courts can issue writs under Articles 32 and 226 of the Constitution, respectively, directing the State Machinery for enforcement of the fundamental rights.
3. People who identify as lesbian, gay, bisexual, transgender and queer.
4. Public interest Litigation (PIL) means litiga tion filed in a court of law, for the protection of "Public Interest", such as Pollution, Terrorism, Road safety, Constructional hazards etc. Any matter where the interest of public at large is affected can be redressed by filing a Public Interest Litigation in a court of law.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

Role of Ayurveda and Yoga in Mental Disorder of Mental illness

Sagar Mantry

Assistant Professor, P.G. Department of Yoga & Naturopathy, MSCB University, Baripada

ABSTRACT:-Mental health is an individual and personal matter. As human beings we require to maintain sound mental health. However, we develop certain behaviors and habits which can lead to a poor state of mental health. Such behaviors range from mild irritation to severe forms of anxiety and depression. Mental illness is a broad term which includes almost all the disorders of mood behavior which caused by faulty perception, emotion, thinking and attitude. Such individual also have problems in making adjustment with others in the society. A mental disorder is a significant contributor to the global burden of disease and affects people in all communities across the world. Mental disorders often start at a young age. Today eve third person in India cities is a youth so Mental and behavioral problems are increasing part of the health problems in India. If we take a look in Ayurveda so in Ayurveda also mental health has a great importance for all over healthy personality. ?yurveda consider prassana atma, indriya and mana beside the equilibrium of dosha, dhatu and mala as swastha.ayurvedadeals with four aspects of lifestyle which can ensure good health in us. These include right food (Ahara), right recreation (vihara), right routine (acara), and right thinking (Vicara) life. Observing certain practice ensure a healthy and happy life. There are lots of discussions regarding Aachar Rasayana, sadvatta, pranayama, Asanas etc. in Ayurveda. All these are helpful to maintain proper mental health as well as to tackle mental illness. Role of these in altered mood behavior will be discussed in detailed in full paper.

Keywords: Mental health, Ayurveda, pranayama, Asanas.

INTRODUCTION: Health is refers to a state of physical mental, social and spiritual well-being of the individual. Thus, mental health is one of the components of the broad concept of health. It is concerned with an optimum level of emotional and behavioral adjustment of the Individual. Devil of mental disorders is gaining its worst shape as seen in various data collected and published by WHO (World Health Organization).today depression is estimated to affect 350 million people. The world mental health survey conducted in 17 countries found that on average[1] in 20 people reported having an episode of depression. The demand for curbing depression and other mental health conditions is on the rise globally. Mental health is a state of maintaining her- money or balance between the needs, desires, aspirations and attitudes of the individual with respect to the prevailing condition in the external environment.For these reasons, depression is the leading cause of disability worldwide in terms of total years lost due to disability. Ayurveda covers not only for strengthening the physical power of the body, but also principles of spiritual as well as mental development.

MENTAL DISORDER OR MENTAL ILLNESS: Mental disorders or mental illness is a psychological or behavioral pattern generally associated with subjective distress or disability that occurs in an individual, and which is not a part of normal development or culture. Mental health describes either a level of cognitive or emotional well-being or an absence of a mental disorder Concepts of mental health includes subjective well-being, perceived self-efficacy, autonomy, competence, intergeneration dependence and recognition of the ability to realize one's intellectual and emotional potential. Mental health is an individual and personal matter. As human beings we require to maintain sound mental health.

However, we develop certain behaviors and habits which can lead to a poor state of mental health. Such behaviors range from mild irritation to severe

forms of anxiety and depression. Mental illness is a broad term which includes almost all the disorders of mood behavior which caused by faulty perception, emotion, thinking and attitude. Such individuals have problems in making adjustment with others in the society. Mental disorders are significant contributor to the global burden of disease and affects people in all communities across the world. Mood disorders are a group of clinical conditions characterized by a loss of that sense of control and a subjective experience of great distress.

Three basic forms of mood disorders:

1. Major depressive disorder
2. Dysthymic disorder (a chronic, mild depression)
3. Bipolar disorder (also called manic Depression)

Depression: Depression is one of the most global public health issue and common disease on human race. Its burden on society is really impressive. It is chronic illness that affects mood thoughts, physical health and behavior of any individual and has been estimated to affect up to 21% of the world's population. Depression is defined as a change in mood characterized by feeling of "tone of sadness" which may vary from mild despondency to the most abject despair. This change in mood is relatively fixed and can persist over a period of days, weeks, months or years. The symptoms of depression can be complex and vary widely between people. But as a general rule, if we are depressed, we feel sad, hopeless and lose interest in things we used to enjoy. The symptoms persist for weeks or months and are bad enough to interfere with our work, social life and family life.

AYURVEDIC CONCEPTS: The Ayurveda philosophy explained health is not just an absence of disease; it is achieved when there is perfect balance of all three Doaas, Satva, Atma, Aarara. Satva (mind), Aarara (body) and Atma (soul) is tripod of life[2]. If one is disturbed; the whole life is in turmoil. When the Satva is in good state, it generates positive feelings but if the mind is not healthy then the body-mind apparatus gets imbalanced.

Treatment: Ayurveda is a holistic science, Ayurveda deals with four aspects of lifestyle which can ensure good health. These include right food (ahara), right recreation (Vihara), right routine (acara), and right thinking (Vicara). Observing certain practices ensures a healthy and happy life. As the Vishaad is not explained as a detailed disease in Ayurveda so its treatment is also not available. But the general method of treatment can be taken into consideration. Achariya Vagbhatta stated the general treatment of manasika roga as- "Dhi Dharya Atmadhi Gyanam Mano Doaa Aushadam parama."

The Chikitsha for treating mental illnesses are of three types-

1. Daivavyparshraya Chikitsa
2. Yuktivyparshraya Chikitsa
3. Satvavajaya Chikitisa

Yuktivyparshraya Chikitsa refers to ahara, Aushadha and Dravya Yojana. Food has been given the prime importance since Vedic period because health is dependent on food. It is considered as Brahma in Upanisad. Food is responsible for growth; development and enhancement of Ojas. According to Acharya Caraka body as well as diseases are formed by food. Wholesome and unwholesome food is responsible for the happiness and misery respectively. The disease can be cured without any medicine by just following the wholesome regimen. No medicine is equivalent to food. It is possible to make a person disease free with just proper diet because food increases the enthusiasm, memory, Agni, life span, luster and Ojas etc.

Day routine (Dincharya) and night routine (Ratricharya) refer to eating and doing activities according to the time of day and night specifying Do?as. One should get up early in the morning before sunrise. Drinking water should be the first act after waking. It ensures smooth excretion of body waste, and is a sure remedy for constipation. After excretion and cleaning of teeth, massage of the body should be done before taking bath. Thus, there should be proper time for each and every activity in the cycle of twenty four hours.

Routine consists of three kinds of activities in which an individual indulges in. These are taking food and doing activities as per the seasonal demands called Ritucharya. It means taking food and doing activities in accordance with seasons. We must eat and act according to the characteristics of seasons. Sound and positive mental health can only be maintained with right kind of thinking. A person who is mentally fit and healthy has self- satisfaction, accommodative intellect, ability to accept criticism, understanding of the emotional needs of others, and self-control. Such individuals are neither driven by greed or lust nor dominated by fear, anger, attachment, jealousy, guilt or worry.

According the Acharya charaka If peoples use of acara Rasayana, Sadvrutta (Bramcharya, Gyana,

Dana, Mitrta, Daya, Harsha, Upeksha, Shanti), they will get Aarath Dwaya (Aarogya, victory on Indraya) 8.All these are helpful to maintain proper mental health as well as to tackle mental illness.

Mode of action of diet: Achariya Caraka quated -"Bhojanam Vidhanma Ca Yatha Swyam Yuktya."[9] That means diet have effect on Agni, Tridoshas. Milk, ghee, sweet dish, Aachar Rasayan influences the Pravar Satva. Madhur Rasa promotes the sixth Indriya. Amla Rasa strength the Indriya& influences the Satva. Whether there is a direct link or not, eating healthily will help the subject generally feels better and give him more energy. In mild or moderate depression diet could be recommended affectivity. Yoga is being as an exercise referral scheme. Ideally both should be aiming to take depression down in shorter periods to fit it into your everyday life.

Mode of Action of Yoga: Yoga has good effect on body as well as mind. When it is performed correctly it relaxes the mind and tone up the nervous system, endocrine system and the activity of internal organs. When aavasana is done it lows parasympathetic nervous system to operate and reverse the effect of arousal and returning the body to a balance state. Savasana aspects of autonomic nervous system is stimulated consequently the whole body is revitalized. Bhramari Pranayama produces a particular range of vibration which influences the body function in such a Way that it can maintain the integrity of body. Whole viscera are control by autonomic nervous system. Regular exercise of Pranayama increases longevity of respiration & controlling command. Chanting of mantras silently According to Vedas produces energy. This results in calm & relaxed stage of mind.

ROLE OF YOGA MAITAINING GOOD HEALTH: Weight loss, a strong and flexible body, glowing beautiful skin, peaceful mind, good health - whatever you may be looking for, yoga has it on offer. However, very often, yoga is only partially understood as being limited to asana (yoga poses). As such, its benefits are only perceived to be at the body level and we fail to realize the immense benefits yoga offers in uniting the body, mind and breath. When you are in harmony, the journey through life is calmer, happier and more fulfilling. With all this and much more to offer, the benefits of yoga are felt in a profound yet subtle manner.

Here, we look at the important benefits of yoga practice.

- All-round fitness. You are truly healthy when you are not just physically fit but also mentally and emotionally balanced. As Sri Sri Ravi Shankarji puts it, Health is not a mere absence of disease. It is a dynamic expression of life - in terms of how joyful, loving and enthusiastic you are. This is where yoga helps: postures, Pranayama (breathing techniques) and meditation are a holistic fitness package.
- Weight loss. What many want! Yoga benefits here too. Sun Salutations and Kapalbhati Pranayama are some ways to help lose weight with yoga. Moreover, with regular practice of yoga, we tend to become more sensitive to the kind of food our body asks for and when. This can also help keep a check on weight.
- Stress relief. A few minutes of yoga during the day can be a great way to get rid of stress that accumulates daily - in both the body and mind. Yoga postures, Pranayama and meditation are effective techniques to release stress.

CONCLUSION:"A sound mind always lives in sound body." Quality of life is a broad term without exact definition. It depends upon number of factors support from relatives and friends, interest of one's occupation and ability do work and financial status according to expectations course health and to disabilities whether congenital or recently acquired disease. These Life Style Disorders are curse for unhealthy living. Our Ayurvedic classics have described a set of rules for nearly everything needed in life. That's why it is known "science of life" nor a basically a source of medicine. Following them it is possible to lead a healthy life; depression like mood disorder can be tackled & kicked off life. Various Yoga's, Pranayama, Aharas, Viharas etc. can pave a way of health. Physical fitness is basic attempt to get the mental fitness and so both cannot be neglected and have mutual importance. Knowledge of Ayurveda is boon for humanity, blessing given by god, the almightily himself. So, we should follow its teaching for full filling needs of our daily routine life as well as to attain Dharam, Artha, Kama and above all Moksa the ultimate aim of life.

REFERENCES:

1. Charaka Saahita, Satrasthan 1/42, page no. 13, by pt. Kasinath Sastri, Dr. Gorakha Nath Chaturvedi with Elaborated Vidyotini Hindi Commentary Part-I Published by Chaukhambha bharati Academy Varanasi, Reprintyear 2005
2. Charaka Saahita, Satrasthan 1/47, page no.

18, by pt. Kasinath Sastri, Dr.Gorakha NatChaturvedi with Elaborated Vidyotini HindiCommentray Part-I Published by Chaukhambha bharati Academy Varanasi, Reprint year 2005
3. Charaka Saahita, Vimana than 6/5, page no. 718, by pt. Kasinath Sastri, Dr. Gorakha Nath Chaturvedi with Elaborated Vidyotini Hindi Commentary Part-I Published by Chaukhambha bharati Academy Varanasi, Reprint year 2005
4. Charaka Saahita, Nidanaasthan 1/21, page no. 611, by pt. Kasinath Sastri, Dr. Gorakha Nath Chaturvedi with Elaborated Vidyotini Hindi Commentary Part-I Published by haukhamb ha bharati Academy Varanasi, Reprint year 2005
5. Astang Hadya satrasthana 1/26, page no.14 by Kv. Atridev Gupta Vidyotini Commentary of Astanga hrdayam of Vagbhata, Published by Chaukhambha prakashan sansthan Varanasi, Reprint year 2011
6. Charaka Saahita, Satrasthan 11/54, page no. 238, by pt. Kasinath Sastri, Dr. Gorakha Nath Chaturvedi with Elaborated Vidyotini Hindi Commentary Part-I Published by Chaukhambha bharati Academy Varanasi, Reprint year 2005
7. Charaka Saahita, Satrasthan 11/54, page no. 238, by pt. Kasinath Sastri, Dr. Gorakha Nath Chaturvedi with Elaborated Vidyotini Hindi Commentary Part-I Published by Chaukhambha bharati Academy Varanasi,Reprint year 2005
8. Swami Satyanand Saraswati; asana Pranayama Mudra Bandha Yoga publications trust, munger, Bihar, India
9. Haaha Yoga Pradapika
10. Text book of psychiatry written by Niraj huja.

अक्षर वार्ता
अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2349-7521, Impact Factor - 8.0
Vol - XX, Issue - IV, February - 2024
MSME Reg. No. UDYAM-MP-49-0005021
"AKSHARWARTA" Monthly International Refereed Journal

Yoga and Ayurveda : Concomitant Preventive therapeutics for some important Lifestyle Disorders

Sujata Jena

Assistant Professor, P.G. Department of Yoga & Naturopathy, MSCB University, Baripada

ABSTRACT: Yoga is considered as one of the important measure for prevention of diseases and promotion of health, practiced in India since time immemorial and presently emphasized greatly by the Government of India. In spite, procedural part of Yoga, viz. Asana, is more popular among common people, but actual application of Yoga meant in a wider way. Yoga, in therapeutic purpose, includes both the physical and psychological aspects. Similar approach is also described in Ayurveda. The preventive aspects of therapeutics are the primary aim of Ayurveda and it is predicted that the idea of Ayurveda percolated in Yoga too. Importance of preventive therapeutics is now a great concern in bio-medical sciences. An attempt has been made in the present article regarding concomitant applications of both the Yoga and Ayurveda in prevention of certain diseases like respiratory problems, cardio-vascular diseases, hepato-billiary diseases and diabetes mellitus.

Keywords: Yoga, Ayurveda, Myocardial infarction, Hepato-billiary disorders, Diabetes mellitus.

Yoga is defined as a practical aid, not a religion. Yoga is an ancient art based on a harmonizing system of development for the body, mind, and spirit. The continued practice of yoga leads to a sense of peace and well-being, and also a feeling of being at one with their environment. The practice of yoga makes the body strong and flexible, improves the functioning of the respiratory, circulatory, digestive and hormonal systems. Yoga brings about emotional stability and clarity of mind. Practice of yoga is as old as Ayurveda in our country and there is a close relationship between these two systems. It is also predicted that Yoga is originated from Ayurveda. Aim of both Ayurveda and Yoga are maintenance of health. Health can be maintained by maintenance of homeostatic state of aarara (physical body), Atma (soul), the Indriyas (organs) and the Mana (mind) in a tranquilizing level (Prasanatamendriya Mana). This definition of health closely mimics with modern definition of health. There are many facets of activities for maintenance of this balance. Yoga and Rasayana could perform it with proficiency. Although Rasayana therapy/ Cikitsa are the least understood branch of Ayurveda science but is fascinating the people around the world today. Concomitant Yoga and Rasayana therapy may be considered as beneficial for prevention of disease and promotion of health. Besides, this combination of therapy may also be beneficial for certain diseases, especially respiratory disorders.

Fundamental principles of Ayurveda3,4

Classically Ayurveda is defined as:

Hitahitam Sukham Duhkhamayustasya Hitahitam | Mananca Tacca YatroktamAyurvedah Sa Ucyate || (Charak Saahita Sutrasthana: 1/15)

The subject which deals to describe that hitayu (physical wholesome aspect of life span), ahitayu (physical unwholesomeness), sukhayu (happiness in mind), dukhayu (sorrowful mind) and it's the management, is known as Ayurveda. Ayurveda is a holistic healing science which comprises of two words, Ayu and Veda. Ayu means life and Veda means knowledge or science. The two most important aims of Ayurveda are to maintain the health of healthy people and to cure the diseases of sick people. Person is seen in Ayurveda as a unique individual made up of five primary elements. These elements are Akara or ether (space), Maruta or air, Teja or fire, Apa or water and Kaiti or earth. Just as in nature, we too have these five elements in us. When any of these elements are imbalanced in the environment, they will in turn have an influence on us.

Important aspects of Ayurveda includes fol-

lowing facts:

Dhatus- These are the basic tissues which maintain and nourish the body. They are seven in number namely- rasa (chyle), raktha (blood), mamsa (muscles), meda (fatty tissue), asthi (bone), majja (marrow) and sukla (reprodutive tissue).

Mala- These are the waste materials produced as a result of various metabolic activities in the body. They are mainly urine, feaces, sweat, etc.

Srotas-These are different types of channels which are responsible for transportation of food, dhatus, malas and doshas. Blockage of srotas causes many diseases.

Agni- These are different types of enzymes responsible for digestion and transforming one material to another.

Doaa- Balance and harmony of the three Doaas when the three Doaas are well harmonized and function in a balanced manner, it results in good nourishment and well-being of the individual.

Lifestyle diseases: Role of Yoga and Ayurveda

Respiratory diseases: More than 3 million people died of chronic obstructive pulmonary disease (COPD) in 2005. In 1990, the World Health Organization/World Bank Global Burden of disease study estimated the global prevalence of COPD to be 9.33 per 1000 individuals for men and 7.33 per 1000 for women[5]. The prevalence was observed to be higher in industrialized countries. In India, there have been only a few population-based studies on the prevalence of COPD, some hospital-based studies and some in specific population groups such as workers or patient's attendants.

Role of Yoga in prevention of respiratory diseases: Every human society, be it rural or urban, industrial or technologically advanced, is affected extremely by pollution of the air. Atmospheric pollution due to the increase in the concentration of gases other than oxygen in the air is responsible for various respiratory illnesses. Breathing sustains life, but natural breathing brings health and happiness. It clears the mind and calms all the emotions and releases the vitalizing flow of energy within us. Many people with serious respiratory ailments have found a solution in Yoga. As the mind is calmed the hyper reactivity that causes diseases such as bronchial asthma and nasal allergy is reduced. Pranayama, an important aspect of Yoga, helps in strengthening the immune system, so chronic infections are less likely. Regular practice of Pranayama helps in improving the mechanical efficiency of our breathing and makes the most of our lung capacity.

Diabetes mellitus (DM): Diabetes mellitus is a chronic disease caused by inherited and/or acquired deficiency in production of insulin by the pancreas, or by the ineffectiveness of the insulin produced. Such a deficiency results in increased concentrations of glucose in the blood, which in turn damage many of the body's systems, in particular the blood vessels and nerves.

Insulin is unavailable and unaffordable in many poor countries, despite being listed by WHO as an essential drug. Access to insulin by those who require it is a subject of special concern to international health agencies and national health authorities (Fig. 4)35,36.

Role of Yoga in prevention of Diabetes mellitus: The claim of yogic exponents that yoga cures diabetes, is perhaps an expression of the good control of diabetes achieved among obese type 2 diabetes subjects, who also respond to diet and exercise. Studies have been carried out in our country to evaluate the effect of yoga on diabetes. Most of these studies were done on small number of patients, over small periods of time and just relied on blood sugar estimations to assess the results. These studies had also combined pranayama and several other yogic practices making it difficult to interpret their individual contributions.

A study has been carried out to assess the effect of yoga in the treatment of diabetes as well as other diseases during the period 1978-1995 at the Vemana Yoga Research Institute, Secunderabad. This is a review of the work done. Postulations based on the results of previous studies which had postulated that yogic practices help in controlling diabetes by the following mechanisms: exercise effect, changes in biochemical and hormonal profile, elimination of stress and instilling a sense of discipline (Fig. 5). To assess these postulations normal individuals and diabetics were investigated with a carefully chalked out protocol for the effect of yogic practices on

Fig. 5 - Important yogic postures to treat diabetes mellitus

Exercise tolerance, obesity, hypertension, insulin kinetics and lipid metabolism. Patients with complications like retinopathy, nephropathy were not included in the study, patients selected were explained the outline and aim of the studies and their consent taken. They were given advice regarding diet, those on treatment were advised to continue on the same drugs. Patients were recalled after 10 days for baseline investigations so as to exclude the effect of dietary therapy. The investigations included anthropometric data, GTT (75 gm oral glucose tolerance test), serum insulin estimation, plasma cortisol, blood urea, serum creatinine, serum lipid profile, serum lactates and pyruvates. ECG and exercise tolerance test (in willing patients) were carried out. In order to assess the effect of individual Asanas, patients were randomly allotted to different groups and they performed yogic practices of that group for 45 min each day followed by relaxation practices, i.e., Aavasana and Makrasana. Effect of Yogic practices on body composition in normal healthy volunteers the skin fold thickness was significantly reduced with increase in the lean body mass, without any significant change in the weight of the individuals.

Discussion: Research related to yoga as complementary and/or alternative intervention to medicine gained increased attention in the 21st century simultaneouslywith increasing interest for other Complementary and Alternative Medicine and their incorporation into the concept of integrative medicine. A total of 195 papers regarding yoga, published from 2001 to 2014 in from 24 journals indexed in Integrative and Complementary medicine. In a critical review it was found a great variety of medical conditions treated, different methodologies were applied; also, results on effectiveness of yoga therapy were widely ranged from non-effective to significantly effective in treating the particular medical condition40.

Conclusion: Fundamentally Yoga and Ayurveda has a great similarity. The line of treatment, the measurements may be different but the therapeutic approach diagnostic tools are same. The life style disorders began to grasp our society day by day due to our undisciplined life style, heavy workload and lack of exercise. The modern medicine having major side effects supports the clause that the combined therapy of Ayurveda and Yoga must have an alternative way.

References:

1. Bhole MV & Karambedkar PV, Yoga practices in therapeutics, Yoga Mimansa, 14 (3&4) (1971-72) 27-34.
2. Ghatore ML, Yogic training and physical fitness seminar on Yoga, Science and man, (Min. of Health and Family Planning, Govt. of India), 1975.
3. Tripathi BN, Charaka Samhita, Hindi commentary Vidyotini, Chikitsa sthana Kasa Chikitsa, (Chaukhambha Surabharati Prakashan, Varanasi, India), 1999.
4. Acharya JT, Susrutha Samhita, Sutra Sthana: Chapter 20, Hitahita Adhyay with Nibandhasangraha commentary of Dalhana, Chaukambha Sanskrit Sansthan, Varanasi (India), 2009.
5. Bielory L & Lupoli K, Herbal intervention in asth ma and allergy, J Asthma, 36 (1999) 1-65.
6. Chavan S, Reddy GR, Hartalkar J & Jawale P, A clinical study on efficacy of Nidigdhikadi kvatha on tamaka shvasa (Bronchial as thma), Int Res J Pharm, 4 (3) (2013) 141-4.
7. Bhatt S, Upadhyay U, Upadhyay S, Soni H & Patel P, Evaluation of acute toxicity study and anti - asthmatic activity of Zeal herbal granules, Int Res J Pharm, 4 (5) (2013) 213-215.
8. Kajaria D, Kajaria A, Tripathi JS & Tiwari SK, Evaluating anti-asthmatic effect of polyherbal Ayurvedic drug Bharangyadi on respiratory mechanics using matlab, Int Res J Pharm, 4 (2) (2014) 167-169.
9. Patel PD, Patel RK & Patel NJ, Analysis of pre scription pattern and drug utilization in asthma therapy, Int Res J Pharm, 3 (7) (2012) 257-260.
10. Satoskar RS, Bhandarkar SD & Ainapure SS, Pharmacology and Pharmacotherapeutics, Vol 18, (Popular Prakashan, Mumbai), 2003, 362.
11. VB Athavale, Ayurveda: The Science of Living (Health and Vigour Forever), Delhi, Vol 10, (Chaukhamba Sanskrit Pratishthan,Varanasi), 2003, 164.
12. Sairam K, Rao Ch V, Babu MD, Kumar KV, Agarwal VK & Goel RK, Anti-ulcerogenic effect of methanolic extract of Emblica officinalis: an experimental study, J Ethnopharmacol, 82 (1) (2002) 1.
13. Anila L & Vijayalakshmi NR, Flavonoids from Emblica officinalis and Mangifera indica-effec tiveness for dyslipidemia, J Ethnopharmacol, 79 (1) (2002) 81.
14. Chopra A & Doiphode VV, Ayurvedic medicine: Core concept, therapeutic principles, and current relevance, Med Clin North Am, 86 (1) (2002) 75.
15. JLN Sastry, Dravyaguna Vijnana: Fundamental Principles of Pharmacotherapeutics in Ayurveda,

Vol I, (Chaukhambha Orientalia, Varanasi), 2002, 440.
16. Pandit S, Biswas TK & Debnath PK, Chemical and pharmacological evaluation of different Ayurvedic preparations of iron, J Ethnopharmacol, 65 (2) (1999) 149.
17. Singh RH, An assessment of the Ayurvedic con cept of cancer and a new paradigm of anticancer treatment in Ayurveda, J Alt Comp Med, 8 (5) (2002) 609.
18. Sandhya Singh, Preeti Pandey & Sushil Kumar, Traditional Knowledge on the Medicinal Plants of Ayurveda, Vol 6, (Central Institute of Medicinal and Aromatic Plants, Lucknow), 2000, 392.
19. Go VL & Champaneria MC, The new world of medicine: Prospecting for health, Nihon Naika Gakkai Zasshi, 91 (2002) 159 63.
20. K Nishteswar, Ayurvedic Management of Stroke (Hemiplegia), Vol 6, (Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi), 2003, 69.
21. Chopra A, Lavin P, Patwardhan B & Chitre D, Randomized double blind trial of an ayurvedic plant derived formulation for treatment of rheuma toid arthritis, J Rheumatol, 27(6) (2000) 1365.
22. Paranjpe P & Kulkarni PH, Comparative efficacy of four Ayurvedic formulations in the treatment of acne vulgaris: a double blind randomised placebo-controlled clinical evaluation, J Ethnopharmacol, 49 (3) (1995) 127.
23. Hu FB, Stampfer MJ & Rimm E, Dietary fat and coronary heart disease: a comparison of approach es for adjusting for total energy intake and model ling repeated dietary measurements, Am J Epidemiol, 149 (1999) 531.
24. Kinosian B, Glick H & Garland G, Cholesterol and coronary heart disease: predicting risks by levels and ratios, Ann Intern Med, 121 (1994) 641.
25. Bordia A, Effect of garlic on blood lipids in patients with coronary heart disease, Am J Clin Nutr, 34 (10) (1981) 2100.
26. Mueller S, Millonig G & Seitz HK, Alcoholic liver disease and hepatitis C: a frequently underestimat ed combination, World J Gastroenterol, 15 (28) (2009) 3462-3471.
27. Duryee MJ, Klassen LW & Thiele GM, Immunological response in alcoholic liver disease, World J Gastroenterol, 13 (37) (2007) 4938-4946.
28. Jou J, Choi SS & Diehl AM, Mechanisms of dis ease progression in nonalcoholic fatty liver dis ease, Semin Liver Dis, 28 (4) (2008) 370-379.
29. Dunn W, Jamil LH, Brown LS, Wiesner RH, Kim WR, Menon KV, et al., MELD accurately predicts mortality in patients with alcoholic hepatitis, Hepatology, 41 (2) (2005) 353-358.
30. Beasley RP & Hwang LY, Overview on the epi demiology of the hepatocellular carcinoma, In: F.B. Hollinger, (Baltimore: Lemon and Wilkins Co), 1991, 532-5.
31. Wasley A, Grytdal S & Gallagher K, Surveillance for acute viral hepatitis- United States, 2006, MMWR Surveill Summ, 57 (2) (2008) 1-24.
32. Samudram P, Rajeshwari H, Vasuki R, Geetha A & Sathiya moorthi P, Hepatoprotective activity of Bi-herbal ethanolic extract on CCl4 induced hepatic damage in rats, Afr J Biochem Res, 2 (2) (2008) 61-65.
33. Wei Y, Rector RS, Thyfault JP & Ibdah JA, Nonalcoholic fatty liver disease and mitochondri al dysfunction, World J Gastroenterol, 14 (2) (2008) 193-199.
34. Hye-Lin Ha, Hye-Jun Shin, Mark A Feitelson & Dae-Yeul Yu, Oxidative stress and antioxidants in hepatic pathogenesis, World J Gastroenterol, 16 (48) (2010) 6035-6043.
35. Enas AM Khalil, Antidiabetic effect of an aqueous extract of Pomegranate (Punica granatum L.) peels in normal and alloxan diabetic rats, The Egyptian J Hospital Med, 16 (2004) 92-99.

स्वत्वाधिकारी,प्रकाशक,मुद्रक डॉ.मोहन बैरागी द्वारा अक्षरवार्ता पब्लिकेशंस से मुद्रित व 43,क्षीर सागर,द्रविढ़ मार्ग,उज्जैन,मप्र,-456006 से प्रकाशित।
सभी विवादों का न्याय क्षैत्र उज्जैन रहेगा।संपादक- डॉ. मोहन बैरागी,फोन-0734-2550150,8989547427,**Email-aksharwartajournal@gmail.com**